श्री स्वामीस्मृति ग्रंथ

प्रकाशक

श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद

दतिया (म. प्र.)

श्री स्वामीस्मृति ग्रंथ

से संकलित प्रथम भाग

(श्रद्धा खण्ड)

प्रकाशक

श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद्

दतिया (म.प्र.)

प्रकाशक :

पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद्
दतिया (म. प्र.)

प्रथम संस्करण :

चैत्र शु. प्रतिपदा, संवत् २०६३,
गुडीपाडवा, ३० मार्च सन् २००६

मूल्य :

७५.०० रुपये

मुद्रक :

शिवशक्ति प्रेस प्रा. लि.
बैद्यनाथ भवन, ग्रेट नाग रोड,
नागपुर-४४० ००९

प्रधान संपादक का निवेदन

पूज्य स्वामीजी की पुण्यस्मृति में प्रकाशित यह ग्रन्थ आप के हाथों में सौंपते हुए मुझे सन्तोष एवं परितृप्ति का अनुभव हो रहा है। वस्तुतः साथी सम्पादकों, महाराज जी के श्रद्धालुओं, विद्वानों, आश्रम के न्यासियों और मुद्रण प्रकाशन के व्यवस्थापकों के सम्मिलित उपक्रम का यह परिणाम है। इस शाब्द श्राद्ध वलि के स्वधोच्चारक के नाते मैं इन सबकी सात्त्विक परितृप्ति का सहभागी मात्र हूँ। आर्ष ऋण के उन्मोक की दिशा में यह छोटासा विनम्र प्रयास है, और आतृण्य की हलकीसी भी अनुभूति किसे सुखद नहीं लगती।

स्वामीजी कोई सामान्य ऋषि नहीं थे। हाँ वह सामान्य दीखते अवश्य थे। उनकी सामान्यता, सरलता और सर्व सुलभता के भीतर बड़ी असाधारणता, गम्भीरता और महार्घता का आवास था। निराडम्बरता उनके सब उपाधियों से परिमुक्त होने की परिचायक थी और सहस्र प्रवाहित समवेदना उनके **'सर्वभूत हिते रत'** होने का प्रमाण। धर्म, दर्शन, तन्त्र, योग और भक्ति शास्त्रों के निचक्षण प्रतिभावान मनीषी होने पर भी उन्होंने निष्णातता को कभी चौराहों पर प्रदर्शित नहीं किया और न वैदिक संहिताओं, कल्पसूत्रों तथा अन्य आह्निक साहित्य और उपनिषदों के मर्मवेदी विद्वान होकर उन्होंने अपनी वैदुषी या गम्भीर स्वाध्याय से किसी को चमत्कृत करने की ही चेष्टा की। शाक्त, शैव, वैष्णव, जैन एवं बौद्ध तान्त्रिक आगमों, पूजोपचार विधानों एवं गूढ साधनाओं के सिद्ध तत्त्व दर्शी होकर भी उन्होंने कभी अपनी उपलब्धि या सिद्धि को प्रकाशित नहीं किया। शंकर पुरी की दीर्घ सरस्वती-साधना के परिणाम स्वरूप होने वाले उनके विद्या के वैद्युत स्फुरण ने किसी के तेज को अभिभूत करने की इच्छा नहीं की। उच्चतम पदों पर प्रतिष्ठित प्रशासकों, शासकों, मानी राजनीयकों, धनी श्रेष्ठियों, व्यापारियों और सामान्य गृही, कृषकों, भिक्षुकों एवं समाज के उपेक्षित जनों के साथ उनका समान व्यवहार था। राजा-रानी-रंक उनके सामने समान आसन पर बैठते और समान ममता पाते। प्रसाद की कामना से आनेवाला हर व्यक्ति उनके स्नेह का अधिकारी था। न कोई छोटा, न कोई बड़ा। वह सभी को समान परामर्श देते, जप करो जप। **तज्जपस्तदर्थभावनम्**। यही दवा थी, यही नुस्खा जिससे वह हर आर्त, हर पीडित का इलाज करते और **'श्रद्धावान लभते मुक्तिम्'** के अनुसार जो उनकी इस भिषज को मन से स्वीकार करता, उसका सेवन करता, वह वेदना से मुक्ति पाता। उसके कष्ट कटते, दुर्व्यसन छुटते, उसमें सद्वृत्तियों का उदय होता

और धीरे धीरे उसका व्यक्तित्व ही परिवर्तित हो जाता। ऐसे परिवर्तित व्यक्तित्व के बहुत से लोग आज सानन्द धरा पर विचरण कर रहे है। इस शान्त मौन मसीहा के पास कोई द्विभाव, दुराव या गोपन नहीं था और न था वह दोहरा स्वरूप या मानदण्ड जो संपर्क में आनेवालों को अन्तरंग और वहिरङ्ग की श्रेणियों में बाँटता है और आप को पल पल अपनी हीनता का बोध कराता चलता है। उनके पास कोई भभूत या ताबीज नहीं थे, और नहीं थे लच्छेदार प्रवचन या जादुई चमत्कार। उनका न कोई मठ था, न मण्डल। इसलिये वह मठाधीश या मण्डलेश्वर भी नहीं थे। विरासत में मिली गद्दी पर प्रतिष्ठित या अभिषिक्त वह नहीं हुए। उन्होंने कुछ लिया नहीं जो कुछ परम्परा से मिला था घरबार, कुल वंश, गाँव प्रदेश वह सब यहाँ तक कि अपना नाम तक छोड़कर वह सच्चे सन्यस्त बन गये। सन्यस्त होकर उन्होंने नया नाम तक ग्रहण नहीं किया जो उनके सारे मूर्त-अमूर्त व्यक्तित्व प्रतीक बनता। नाम के अभाव में हम उन्हें स्वामीजी इस सामान्य सम्बोधन से अभिहित करने को विवश है। यह हमारी मजबूरी है, किन्तु इससे हम गर्वित भी हैं। मध्यप्रदेश के एक मामूली कस्बे की झाड़ी झुरमुटोंवाली शान्त स्थली में जो बैठे तो अन्त तक बैठे रहे। चालीस से भी अधिक वर्षों तक निरन्तर एक मामूली भले गृहस्थ के घर का सादा भोजन करते रहे। बस बैठने भर को थोड़ी सी छाया और पीताम्बरा माँ का लघु परिमाण मन्दिर। बस यही था उनका साधना-स्थल। किसी तीर्थ या सिद्ध पीठ में उन्होंने अपना झण्डा नहीं गाड़ा। राजधानियों और व्यापारिक प्रतिष्ठान, पुरों के दवदवेदार बँगलों और ऊँची आसन्दियों पर उन्होंने दृष्टि नहीं डाली और न जयकार करनेवालों या सदावर्त बाँटनेवालों का जमघट अपने चारों ओर लगने दिया। उन्होंने अपने भक्तों और पुजारियों से भगवान की स्तुति, आरती के साथ अपनी स्तुति नहीं गवायी अपनी आरती नहीं उतरवायी। अपनी विद्या का गर्व नहीं, महत्ता का बोध नहीं, सिद्धि का स्मरण नहीं। सब कुछ सहज, सब कुछ साधारण। इसीलिये जैसा मैंने ऊपर कहा है, वह कोई साधारण सन्त नहीं थे। अपने पुण्य बाँटना और दुखियों के पाप ताप अपने काँधे ढोना। कौन करेगा यह। फिर भी अन्तिम श्वास तक यहीं तो करते रहे थे वह। ऐसे ही के दर्शन और स्मरण को लक्ष्य कर माघ ने कहा था – **''हरत्यघं सम्प्रति हेतु रेतष्यतः शुभस्य पूर्वा चरितैः कृतं शुभैः।''**

हाँ, एक शक्ति थी उनमें। चरित्रवान् विद्वान को देख कर वह पुलकित हो उठते थे – **'सुरभिर्वत्स मिवागतम्'**। फिर सब भूल कर उससे शास्त्र चर्चा करते, खो जाते आत्म प्रतिभान विगलित हो जाता, और कहां कहां की बात कौन सा प्राचीन ग्रन्थ था जो उनकी नजर से नहीं गुजरा और कौन सा नया चिन्तन जिससे उनका परिचय नहीं। इतने पुरातनग्रही और इतने नवीन? आश्चर्य होता था उनका

व्यापक ज्ञान देख कर। सब कुछ कण्ठस्थ, सब ताजा जंग लगा कुछ नहीं।

ऐसे अपरिग्रहो महासन्त की स्मृति ईंट पत्थर की समाधियाँ और उसके आसन के इर्द गिर्द बनायी गयी ऊँची भव्य इमारतें या मठ मन्दिर नहीं होते। श्रद्धालु भावुकों के अपने मन की शान्ति के साधन हो सकते हैं वे। उनकी स्मृति, उनके श्राद्ध की वलि होती है शब्द ब्रह्ममयी ज्ञानाञ्जलियां (नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते) श्रद्धावनतियां (यों यच्छ्र द्धः एव सः) और अनासक्त साधनायें कर्म (मा ते सङ्गोऽस्त्व कर्मणी))। इसीलिये उनकी स्मृति में सन्जोयी हुई इस अर्ध्य वलि में श्रद्धा, ज्ञान और कर्म ने तिल तण्डुल और माष का स्थान लिया है।

श्रद्धाखण्ड में उनके सम्पर्क में आनेवाले बहुसंख्यक प्रबुद्ध जनों के निजी उद्‌गार हैं जिनके सहारे अपरिचित पाठक भी इन सिद्ध महात्मा के जीवन सम्बन्ध में थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। उनके दतिया पूर्व जीवन के विषय में किसी को कुछ पता नहीं है। उनका जन्मकाल, स्थान, कुल और मूल नाम तक अज्ञात है और दतिया में आकर ठहरने के बाद का सभी कुछ खुली पुस्तक की तरह सुवाच्य। **'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्तिसंयमी'** यह गीता वाक्य जैसे उन्हीं के लिये लिखा गया था। वह दक्षिण मार्गी सिद्ध सन्त थे। उनकी साधना निशा बेला में चलती थी एकान्त अजन क्षणों में। इसलिये श्रद्धा खण्ड में जो भावाभिव्यक्तियाँ है वे लेखकों के विशिष्ट निजी अनुभवों पर आधारित हैं। सत्य का एक अंशमात्र हैं वो वैसे ही **''हरि अनेक हरि कथा अनन्ता।''**

ग्रन्थ प्रकाशन एवं मुद्रण महानुभावों का सहयोग, द्रव्य एवम् सेवा के रूप में मिला वे भाग्यशाली तो है ही लेकिन विशेष रूप से साधुवाद के अधिकारी भी है। इस स्मृतियज्ञ के केन्द्रीभूत देव-ऋषि पूज्य स्वामीजी के चरणों में अर्पित है यह विनम्र श्रद्धान्जलि –

त्वदीयं वस्तु देवर्षे तुभ्यमेव समर्पये।

विनीत
प्रधान सम्पादक

संपादक की ओर से दो शब्द

ब्रह्मलीन पूज्य स्वामीजी की पुण्यस्मृति में कुछ सोचना भी पुण्य है, उनकी स्मृति में ज्ञान कर्म भक्ति की त्रिवेणी की संकल्पना उनकी स्मृति से उद्भूत पुण्य का सहज परिणाम है। आज मैं जब अपनी स्मृतियों को सहेजने बैठता हूं तो अशोक ओर शोकांतीत महात्मा के लिए मन शोकाकुल हो जाता है। उनके लिए तो कुछ अवाप्तव्य रह नहीं गया था, पर हमारे जैसे लोगों में तो सच्ची प्राप्ति की लालसा भी नहीं जागी है। उनकी उपस्थिति में यह लालसा अंकुरित होती थी, इसी से मन शोकाकुल है।

लगभग तीस वर्ष पहले उनसे भेट हुई। बन्धुवर गोस्वामीजी और बन्धुवर अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव ने चर्चा की, दर्शन करने गया, तब पीताम्बरा पीठ वनखण्डी था। देखा एक आसन पर निष्पन्द भाव से घंटों बैठे रहने वाला व्यक्ति केवल शिर का संचालन करता है, कोई भी दूसरा अंग हिलने नहीं पाता, किसी को पैर नहीं छूने देता, किसी की निन्दा नहीं सुनता, किसी की भी निन्दा नहीं करता और बहुत सहज रूप में दर्शन की चर्चा करता। पहले ही दर्शन में मुझे यह व्यक्ति असम्भव लगा। समस्त दोषों पर विजय लोग प्राप्त कर लेते है, पर क्रोध और मात्सर्य पर विजय पाना बड़ा कठिन है। पूज्य स्वामीजी को न क्रोध आता था, न किसी के प्रति कभी भी वे अवज्ञा का भाव नहीं रखते थे, यही नहीं, किसी को अवज्ञा करते देखते थे तो बहुत मधुर ढंग से टोक देते थे। नहीं, ऐसा नहीं कहते, उस विचार को भी समझने की कोशिश करनी चाहिए। एक बार विन्ध प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के दतिया अधिवेशन में दर्शन परिषद् में पूज्य स्वामीजी विराजमान थे। डा. देवराज ने शांकरमत की बहुत कड़ी आलोचना की, कुछ भक्त श्रोता तिलमिला उठे। उन्होंने विरोध करना चाहा, पूज्य स्वामीजी ने हाथ के इशारे से बरज दिया। सुनो, पश्चिम के विचार से घबड़ाओं मत, पूरी तरह सुनो। मैंने यही एक प्रसंग नहीं, अनेकों प्रसंग देखे, विभिन्न सम्प्रदाय के लोग आते, अपने अपने सम्प्रदाय के बारे में जिज्ञासा करते और पूज्य स्वामीजी उसी सम्प्रदाय के अनुसार उत्तर देते। मैंने एक बार पूछने का दुस्साहस किया कि आप द्वैत का प्रतिपादन क्यों कर रहे हैं, बोले-प्रश्नकर्ता द्वैत सम्प्रदाय का है, उसके मन में अश्रद्धा उत्पन्न नहीं करनी चाहिए। उसकी बुद्धि में विभ्रम नहीं उत्पन्न हो, इससे में उसके सम्प्रदाय के अनुसार

समाधान कर रहा हूँ।

उनके पास बैठने पर यही नहीं लगता कि हम किसी अलौकिक विभूति के पास हैं, यही लगता कि हम मां की गोद में है, वैसी ही सहज मृदुता, वैसा ही आश्वस्त भाव, वैसी ही ज्योति-तरल दृष्टि, वैसा ही अपनापन और वैसा ही प्रत्येक सन्तान के प्रति साम्यभाव। उनसे अलग होते तो लगता चूक हो गयी, हम कितने भाग्यहीन थे कि अमृत के सिन्धु के पास से प्यासे लौट आये, हम उसकी दो बूँद भी न ले सके। हमारा भाजन कितना ओछा निकला इसमें केवल फेन भरा, रस की बूंद उसने जाने कहां सोख ली। उनके पास जाने पर कुछ भोगने की इच्छा नहीं होती थी, पूछते रहे, सुनते रहें, पर मुंह कुछ मांगने के लिए खुलता ही नहीं था। जाने कैसा अभिमान घेर लेता था, माँ से भी क्या माँगना, माँ तो सारी आवश्यकताएँ समझती हैं। यह अभिमान भी उन्होंने ही दिया, अहैतुक स्नेह देकर जहां कहीं रहा, पत्र लिखा तो उन्होंने उत्तर लिखवाया, उन्होंने मानसिक और शारीरिक क्लेश के क्षणों में उपासना के संकेत दिये। मन में यह अभिमान पल गया कि पूज्य स्वामीजी की अहैतुकी कृपा है। पर उनके ब्रह्मलीन होने के पूर्व जब गया तो एक संकेत मिला कि दीक्षा लू, पर मुंह नहीं खुला और मैं वंचित रह गया। उस स्पर्श से जो मिट्टी की काया को कंचन कर देता और आज मैं उनके स्मृति ग्रन्थ की भूमिका लिख रहा हूँ। कितनी प्रवंचना है?

पूज्य स्वामीजी पचास वर्ष से अधिक दतिया की वनखण्डी में टिके रहे। उन्होंने इस स्थान को जगाया, भगवती पीताम्बरा की स्थापना की, श्री विद्या की साधना का केन्द्र बनाया, अनेक पुस्तकें सम्पादित की, अनेक छपवायीं और अन्त में तैयारी कर ली कि मुझे अब जाना है। कभी उन्होंने पूर्वाश्रय का कोई आभास नहीं दिया, इस आश्रय का भी क्या नाम, यह भी नहीं बतलाया, ज्योति का क्या नाम, वह वहीं आविर्भूत होती है, जहां है, वह वहीं तिरोभूत होती है जहां आविर्भूत होने की पुनः सम्भावना है, वे पीताम्बरा पीठ की ज्योति होकर प्रकट रहे, आज अप्रकट है, पर आज भी अनुभव गोचर हैं। इस युग में सन्यास का सम्यक् न्यास का, सम्पूर्ण विदेहभाव का, सम्पूर्ण मरजीवा भाव का, सम्पूर्ण आत्म निवेदन का, सम्पूर्ण ब्रह्मलीनता का ऐसा उदाहरण मैंने नहीं देखा। किसी भक्त ने कुछ इशारे से महाराज श्री की अलौकिक शक्ति की चर्चा कभी करनी चाही, उन्होंने तुरन्त कहा यह गड़बड़ आदमी है, इसे चुप करो। मैंने बार बार जब सोचा यह कैसे संभव हुआ तो यही समाधान मिला कि माँ की कृपा से संभव हुआ। उनके ऊपर माँ की असीम कृपा थी, नहीं तो ऐसे शक्ति ऐसी तितिक्षा और ऐसी करुणा उनमें नहीं आती, इसी के कारण यह अपने को न साधक, न सिद्ध, न ज्ञानी, न निष्काम कर्मयोगी और न यती के रूप में लोगों के बीच उपस्थित करते थे, वे बस एक

वात्सल्य की अस्ति के रूप में अपने को उद्‌भासित करते, आदमी आये बैठे, निरांतक, निर्भय और आश्वस्त भाव से कुछ लेने देने की बात न करे, परमार्थ का व्यवसाय न करे, बस एक ही समुद्र की लहर बनकर बैठे।

मुझे स्मरण आता है एक बार विन्ध प्रदेश राज्य के मुख्यमंत्री स्व. पं. शम्भुनाथ शुक्ल आये, प्रणाम करके बोले – मेरे योग्य कोई सेवा। पूज्य स्वामीजी ने हंसकर कहा – मेरे नाम पर, इस आश्रम के नाम पर कोई सरकार से अनुदान ले रहा है, उसे बन्द कर दीजिए। स्व. शुक्लजी बहुत चकित हुए, पूज्य स्वामीजी ने फिर कहा कि उसकी जीविका नहीं मार रहा हूं परन्तु यह वनखण्डी सरकार के ऊपर आश्रित क्यों हो, यह तो स्वयं आश्रय है। पूज्य स्वामीजी की यह निरपेक्षता कभी कभी गलत भी समझी गयी, क्योंकि उनके पास विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं के लोग आते परन्तु स्वामीजी राजनीति का प्रश्न कभी नहीं छिड़ने देते, उल्टे वे अपने पास आनें वालों को राजनिति से ऊपर उठने की ही बात करते। इस मामले में ही वे निठुर थे, वैसे यह निठुराई नहीं थी, यह भी मातृ सुलभ चिन्ता थी, वे कभी भी किसी को पराभूत करने की साधना का उपाय नहीं बतलाते थे, न राजनीतिक जीत-हार मैं कोई रुचि रखते थे, ऐसे लाभ की आकांक्षा से कोई आता तो उसे साफ बतला देते कि यहां झोली में कोई विभूति नहीं है जो चमत्कार कर दे, मैं तो स्वयं निहंग हूं, निःस्व हूं। मैं क्या दूंगा। उनका बराबर इशारा यही रहता कि यहां आओ तो निःस्व होकर आओ, निहंग होकर आओ, स्तन्य के लिए व्याकुल बछड़े होकर आओ।

वे अनुष्ठान कराते और अनुष्ठान की विधि समझाते, परन्तु वे ममता और अहन्ता को एक बिन्दु में घोलने वाली महावैन्दवी त्रिपुरसुन्दरी के कृपा सिन्धु में पूर्ण रूप में निमग्न हो चुके थे, उन्होंने अपना भाजन उलट कर उस सिन्धु में डाल दिया था, वह भाजन सिन्धु बन गया था। उनकी सन्निधि में रहने का मुझे सौभाग्य नहीं मिला, परन्तु उनके लेख पढ़े, उनकी पंचोपनिषदों पर टीका पढ़ी, उनसे एक ही बात बार बार प्रति ध्वनित हुई कि अद्वैत है सही, पर मा है, चैतन्य की वह अनादि अनन्त धारा है जिसमें हिलोर लेते हुए भी हम यही अनुभव करते रहते हैं कि माँ हमें हिला रही है अपनी गोद में।

सोचा था कि ललिता सहस्त्र नाम का तत्त्व उनसे कभी न कभी पाऊंगा, पर उनका एक संकेत मात्र मिल पाया कि ललिता त्रिशती का पाठ करके ललिता सहस्त्र नाम का पाठ करो, पंचदशी और षोड़शी का मर्म उनसे नहीं जान पाया। हां, इतना अनुभव अवश्य हुआ कि इस देश में यदि चैतन्य चन्द्रोदय पुनः होता है तो मातृ-शक्ति की साधना से होना है। पुंभाव ने इतने स्तरभेद पैदा कर दिये है, इतने अधिकार के प्रपंच खड़े कर दिये हैं, इतने अहंकार के स्तूप रच ड़ाले हैं,

इतने दम्भ के त्रिशूल गाड़ दिये है कि इस देश में निरहंकार ममता का, निर्लोभ प्रीति का, निरपेक्ष करुणा का सोता सूख गया है। इस देश में नारी अब केवल स्त्री हो गयी है, बिछने की वस्तु उसमें रचने वाले, मापने वाले भाव को कोई आज देख नहीं रहा है। उसमें अन्तर्निहित आद्या शक्ति के प्रकाश को कोई आज देख नहीं रहा है। पूज्यपाद ब्रह्मलीन स्वामीजी ने एक अनाम शहर में एक अनाम व्यक्ति के रूप में अविज्ञापित ढंग से अर्धशती ऐसे रहते हुए जैसे कोई छायादार वृक्ष खड़ा रहता हो, उसी मातृशक्ति की पुकार लगायी, बचन से कम, मन से अधिक और तन से अधिक कर्म से। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण पूर्ण आत्म निषेध का या उलट कर कहें पूर्ण आत्म विधि का क्षण था, निषेध का इस अर्थ में कि व्यक्ति के रूप में वे कुछ नहीं थे, विधि का इस अर्थ में कि वे केवल परार्थ थे, माँ अपने लिए नहीं जीती। खजुराहो में एक मुमूर्षु माँ की प्रतिमा देखी थी, शरीर अस्थिपंजर रह गया है, आँखों में मृत्यु झांक रही है, पर बच्चा शरीर में रस की अन्तिम बूंद निचोड़ रहा है और होठों पर परितृप्ति की स्थिति झलक रही है, यही आत्म निषेधमय आत्मविधि है, जिसे स्वामीजी जीते रहे और यही जीवन, जीवन है, यह अनबोले शाम्भवी दीक्षा देते रहे।

उनके स्नेह का ऋण ऐसा नहीं है कि उससे उऋण होने की कोई चाह करे, उलटे मन में ऐसी इच्छा होती है कि वह ऋण बढ़ता जाय, चढ़ता जाय, और संकल्प बार बार जगाता जाय कि स्वयं स्नेह बनो, आज के रूखे और भूखे संसार को इस स्नेह की जितनी अपेक्षा है, उतनी कभी नहीं हुई होगी। कोई यह समझे कि व्यक्ति के छोटे से दायरे में रहकर क्या रूखापन क्या भूखापन कम किया जा सकता है, तो यह उसकी नादानी होगी, क्योंकि एक तो इस भाव से स्नेह देने वाला और पूज्य स्वामी जी के स्नेहवश स्नेह देनेवाला व्यक्ति, व्यक्ति कहां कह पायेगा, दूसरे छोटे से दिये से विपुल अन्धकार मिटेगा, इसलिए थोड़े ही दिया अपने को जलाता है, वह तो इसलिए जलाता है कि मेरे बुझने के पहले मुझे ही से बल कर दूसरा दिया जल उठेगा और अन्धकार को चुनौती देने में है, प्रकाश का अभिमान पालने में नहीं है।

यहीं मैं श्री पीताम्बरापीठ न्यास के कर्मियों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता हूं, वैसे यह बात समस्त आस्तिक समुदाय को सम्बोधित है। तंत्र का बहुत प्रचार हुआ, दुष्प्रचार ही बल्कि अधिक हुआ, सबसे दुखद स्थिति यह हुई कि तंत्र फैशन में आ गया, साहित्य, कला, समाजशास्त्र, दर्शन, सर्वत्र तंत्र की चर्चा होने लगी, विशेषकर तंत्रों में उपयोजित यौन प्रति की चर्चा अधिक रस लेकर की जाने लगी, तंत्र ने वर्जनाओं के कपाट खोल दिये और यकायक संभोग से समाधि का योग उड़ने लगा, परन्तु तंत्र का वास्तविक अभिप्राय समझने वाले

बहुत कम हुए और उसे अपने जीवन में उतारने वाले और कम। मैं दो महात्माओं को तंत्र में पारंगत रूप में श्रद्धापूर्वक प्रणाम करता हूं, दोनों ब्रह्मलीन हो चुके है, एक तो पूज्य स्वामीजी (दतिया) और दूसरे पूज्य श्री करपात्रीजी। दोनों अद्वैत सिद्धान्त के विद्वान थे, दोनों ने श्री विद्या की विधिवत साधना की थी, दोनों कठिन तपस्या से तप कर निकले थे। दोनों ने तंत्र का रहस्य यहीं समझा था कि सबकी बात सोचो, सम्पूर्ण की बात सोचो, भूमा की बात सोचो, अल्प में सुख नहीं है, सबकी बात सोचने के लिए एक ही आधार है, सबको एक जननी की सन्तान मानो, एक जगदम्बा के स्नेह से ही सबको पोषित मानो, प्रत्येक घटना में उसी जगदम्बा का कोई स्फुरण पहचानने की कोशिश करो, कोई अभिप्राय ढूंढो। आदमी जब यह सोचेगा तो उसके लिए सुख भारी पड़ेगा, दुख फूल की तरह हल्का हो जायेगा। वह व्यक्ति मद, मोह, मत्सर्य, कुछ भी नहीं फल सकेगा, हां उसे केवल मां से अमर्ष हो सकता है और जगन्नियन्त्री से अमर्ष श्री मच्छङ्कराचार्य तक को हुआ –

माया हस्तेर्पयित्वा भरण कृति कृते मोहमूलोद्भवं मां
मातः कृष्णाभिधाने चिरसमय मुदासीन भावं गतासि
कारुण्यैका धिवासे सकृदपि बदनं नेक्ष से त्वं मदीयं
तत्सर्वज्ञे न कर्तुं प्रभवति भवती कि तु मुलस्य शान्तिम्।

"माँ कृष्णो, तुमने केवल इसलिए मुझे जनमते ही माया के हाथों में भरण-पोषण के लिए छोड़ दिया कि मैं मोह के मूल नक्षत्र में पैदा हुआ था फिर तुम एकदम हमेशा हमेशा के लिए उदासीन हो गयी? सच बतलाओ, क्या यह तुम्हारे स्वभाव के अनुरुप बात हुई, तुम करुणा की एकमात्र अधिष्ठान भूमि और तसम एक बार मेरा मुंह तक नहीं देखना चाहती, कैसी है यह करुणा? पर छोड़ो, तुम डरती हो, कहीं मूल की छूत न लगे, पर तुम तो सर्वज्ञ हो, क्या इस मूल की शान्ति नहीं करा सकती?"

ऐसी माँ से अपने भीतर का क्षोभ व्यक्त करने वाले बालक के रूप में अपने को प्रस्तुत करो, यही तन्त्र का वास्तविक सन्देश है।

तन्त्र का दूसरा सन्देश है कि इस काया को, इस इन्द्रिय गोचर संसार को झूठ न मानो, माटी न मानो और माटी भी कोई छोटी वस्तु नहीं है। परशुराम को पूज्य स्वामीजी श्री विद्या का प्रवर्तक मानते थे और उनके कल्पसूत्र का बहुत श्रद्धापूर्वक स्मरण करते थे, परशुराम कल्पसूत्र में एक जगह आया है –

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं तद्धि देहे व्यवस्थितम्।

आनन्द ब्रह्म का आकार है, प्रत्यायक है और वह इसी देह में अधिष्ठित है,

इसी के द्वारा अभिव्यंजित होता है। इस देह को ठीक तरह साधना चाहिए।

मैं योग प्रक्रिया के विषय में विशेष कुछ नहीं जानता, परन्तु साधारण जीवन व्यवहार में ही यह अनुभव करता हूं कि इस शरीर को दूसरों की सेवा का साधन बनाये, अपने आप एक परितृप्ति मिलती है, पौधे को सीचें, पसीने से तर हो जाय, पौधे का मन हरा हो जाय, वही देखकर शरीर का श्रम धन्य हो जाता है और उस हरे मन को देखकर भीतर का आनन्द आंखों की खुशी बनकर लहरा उठता है। यही तो ब्रह्म का रूप है।

तन्त्र इन्द्रियगोचर संसार को महत्त्वहीन नहीं मानता, परंन्तु इन्द्रिय को ही इन्द्रिय नहीं रहने देता, उसे अश्व नहीं रहने देता, उसे सारथि बना देता है, वह आंख से केवल देखने के लिए नहीं कहता, वह कहता है तुम जहां देख रहे हो, वहां तुम हो, तुम देखने के साधन मात्र भी नहीं हो, तुम देखने वाले भी हो, इन्द्रिय का इस प्रकार का संसार अपने आप विषय को विषय नहीं रहने देता, विषय को आत्मरूप बना देता हैं। दूसरे शब्दों में कहे तो कह सकते है, तन्त्र समस्त सांसारिक अनुभव को सहज बना देता है। क्रीड़ा बना देता है। परमहंस रामकृष्ण को कँसर होने पर कुछ लोग बडी आशंका करते है कि ऐसे पहुँचे हुए योगी को रोग क्यों? परन्तु यह भूल जाते है कि उनका कँसर स्वेच्छा से वरण किया हुआ था, कितने लोगों के कष्ट उन्होंने अपने ऊपर लिये और कष्ट क्यों होता और कोई भी रोग, कोई भी व्याधि एक शरीर की नहीं होती, वह सम्पूर्ण जीवन की होती है सम्पूर्ण जीवन का रोग मुक्त होना, शोक मुक्त होना ही चरम पुरुषार्थ है, वह पुरुषार्थ सिद्धि में नहीं साधना में है, निरन्तर साधते रहो।

सर्वे भवन्तु सुखिनो सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत्।।

एक भी व्यक्ति दुख में है, एक भी प्राणी कष्ट में है, तब तक सर्वमय शरीर को दुख रहेगा ही रहेगा, उसका वास्तविक सुख ऐसे कश्चित के दुख का वरण है, अपने दुख की यहां कोई गुंजाइश ही नहीं है। परमहंस रामकृष्ण देव महाकाली के उपासक थे, तभी दुख वरण के आनन्द की परा भूमिका में पहुंचे थे। महाकाली की उपासना को वे इस रूप में देखते थे कि मां बाघिन है, दांत में दबाकर चलती है, गोदी में चिपकाकर नहीं चलती। जो गोदी में चिपकाकर चलना चाहता है वह गोदी में ही घुटकर मर जाता है, उसमें छलांग भरने की कभी हिम्मत आती ही नहीं। तन्त्र की उपासना अभय की साधना है, उसमें बहुत सारी कठिन क्रियायें भय के निष्कासन के लिए हैं, घृणा के निष्कासन के लिए हैं, लोभ के निष्कासन के लिए हैं। पूज्य श्री स्वामीजी जैसे विरल सच्चे साधक तन्त्र का उपदेश नहीं

करते थे, वे तन्त्र को जीते थे-शुद्ध सहज रूप में। कभी भी उन्होंने लोक व्यवहार की शुचिता, मृदुता और समरसता की उपेक्षा करके तान्त्रिक क्रिया का महत्त्व नहीं प्रतिपादित किया, सर्वदा लोक की अपेक्षा करते हुए ही व्यक्ति की साधना को सार्थक मानते थे और उनका पुण्यस्मरण तन्त्र को समझने की उनकी दृष्टि दे, इसके लिए श्री पीताम्बरापीठ न्यास के भक्तों को सतत जागरूक रहना होगा। तन्त्र की दीक्षा चित्त को निर्मल दर्पण बनाती है, एक दर्पण पूज्य स्वामीजी दिखा गये हैं, हमें निरन्तर जांचते रहना है कि उस दर्पण की स्वच्छता कितनी पायी, कितनी पानी शेष हैं।

यह स्मृतिग्रन्थ इस निरन्तर जांच के संकल्प का प्रथम अनुष्ठान है, पहले आसनशुद्धि और देहशुद्धि करके ही ऐसा संकल्प लिया जाता है। इस ग्रन्थ के द्वारा पूज्य स्वामीजी के भक्तों ने अभी आसनशुद्धि और देहशुद्धि का अनुष्ठान सम्पन्न किया है, अभी संकल्प लेना, कुशजल-अक्षत् के साथ जाग्रत संकल्प लेना शेष है, क्योंकि उसके पूर्व अपने प्राणों को साधना शेष है कि ये प्राण मेरे नहीं, ये समस्त भूतों के प्राण हैं, ये प्राण मेरे पास धरोहर हैं।

इस विनम्र शब्दों के साथ में ब्रह्मलीन स्वामीजी के श्री चरणों का ध्यान करता हूं और उन्हें नमन करता हूं साथ ही श्री पीताम्बरा पीठ न्यास के कार्यकर्ताओं और अधिकारियों, विशेष रूप से सतत जागरूक श्री ललिता प्रसाद शास्त्री, श्री सूर्यदेव शर्मा, श्री प्रभुदयालजी अग्निहोत्री को बधाई देता हूं कि उन्होंने यह प्रथम अनुष्ठान पूरी श्रद्धा से पूरा किया, मेरे जैसे बाहरी आदमी को उन्होंने जोड़ लिखा, मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूं।

– संपादक

ब्रह्मलीन

श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर, दतिया (म०प्र०)

में पू
बहुमू
और
एक
को प्र

लिए
पुनः
जो च
रूप
हो ज

पिरोय
उल्हा

भाग
में य
स्वामि
न हो

प्रकाशकीय

पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद, दतिया इस संस्था द्वारा सन् १९८३ में पूज्यपाद ब्रह्मलीन श्री अनन्त श्री विभुषित स्वामीजी की पुण्यस्मृति में एक बहुमूल्य ''स्मृतिग्रन्थ'' प्रकाशित हुआ था। यह ग्रन्थ श्रद्धाखण्ड, ज्ञानखण्ड और कर्मखण्ड इस तीन खण्डों से पुष्पित हुआ है। इसी ग्रन्थ से संकलित एक पुष्प ''श्रद्धाखण्ड'' को विशेष रूप से पुनर्निर्माण करने का सौभाग्य परिषद को प्राप्त हुआ, यह परिषद के लिए गौरवान्वित तथा बडे सौभाग्य की बात है।

पूज्यपाद श्री राष्ट्रगुरु श्री स्वामीजी की असीम कृपा से ही साधकों के लिए स्मृति ग्रन्थ का प्रथम भाग अपार श्रद्धा के संयोगवश निर्बाधित रूप से पुन: निर्माण हो रहा है। पूज्यपाद के सान्निध्य में जिन श्रद्धालुओं, साधकों को जो चमत्कारिक साक्षात्कार, प्रसंगवश अनुभव हुए उसको उन्होंने इतने भावपूर्ण रूप से लेखनीद्वारा साकार किया है कि स्वयं पाठक पठन करते हुए स्वामीमय हो जाता है, स्वामी चरणों में लीन होकर स्वामीजी को अन्तर्मन से छू लेता है।

श्रद्धालुओं ने श्रद्धारूपी मोतियों को श्रद्धाखण्ड मणिमाला में इस तरह पिरोया है कि यह मणिमाला आगे-आगे पिरोतीही जाए, कहीं रुके नहीं ऐसा उल्हास मन में होता है।

आशा है साधकगण, पाठक और विद्वत्जन इस स्मृतिग्रन्थ के प्रथम भाग ''श्रद्धाखण्ड'' को समादरसहित जन-जन तक लाभान्वित करेंगे। अन्त में यहीं ''जगतभर की रोशनी के लिए, करोडों की जिन्दगी के लिए'' यह स्वामीरूपी ग्रन्थ जनकल्याणार्थ हेतू नित्य ही प्रेरणास्पद रहेगा यह कहना अनुचित न होगा।

श्री पीताम्बरा पीठ संस्कृत परिषद
दतिया (म.प्र.)

विषय सूची

अ.नं.	विषय	लेखक	पृ.सं.
१.	जब स्वामीजी दतिया पधारे	वासुदेव गोस्वामी	१-१०
२.	स्वामिस्तवस्तवकम्	पं. सुधाकर शुक्ल	११-१२
३.	गुरु-स्तवनम्	पं. सूर्य प्रकाश गोस्वामी	१३-१४
४.	कलौ स्थानानि पूज्यन्ते	पं. सुब्रह्मण्य शास्त्री केदारघाट, वाराणसी	१५-१६
५.	एक श्रद्धाञ्जलि	सुमेरन पीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य शङ्करानन्दजी महाराज वाराणसी	१७-१८
६.	श्री पीताम्बरापीठ पर ब्रह्मयज्ञ	पं. रामनाथ मिश्र 'आचार्य' वाराणसी	१९
७.	श्रद्धाञ्जलिः	पं. मोहनलाल चतुर्वेदी आयुर्वेदाचार्य	२०-२२
८.	श्री पीताम्बरापीठ के महर्षि	पं. सूर्यदेव शर्मा, दतिया	२३-२७
९.	गुरुवर्यो विजयताम्	पं. देवीसहाय दीक्षितः	२८
१०.	संस्मरणाञ्जलिः	पं. लक्ष्मीकांत पाठक, साहित्य शास्त्री	२९
११.	पीताम्बरा पीठाधीश्वर श्री पू. स्वामीजी महाराज की साधना	पं. ललिता प्रसाद शास्त्री दतिया	३०-३३
१२.	श्री दतिया स्वामिनस्तवः	विश्वनाथ शुक्ल शास्त्री प्राचार्य संस्कृत विद्यालय, जालौन	३४
१३.	श्री स्वामीश्वरी पीताम्बरास्तवः		३५
१४.	श्री स्वामीजी का प्रसाद	कैलाश जोशी भू. पू. मुख्यमंत्री म. प्र.	३६
१५.	करत प्रवेश मिटे दुख दावा	वैद्य रामनारायण शर्मा, संचालक बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, झाँसी	३७-४०
१६.	अक्षराञ्जलि	वासुदेव गोस्वामी दतिया	४१-४२
१७.	थे मम स्वामीनाथ सहारा.	बदनसिंह, रायभा, आगरा	४३-४४
१८.	महान विभूति का दिव्य प्रयाण,	अम्बाप्रसाद श्रीवास्तव भू. पू. सहायक संचालक सूचना प्रकाशन, भोपाल	४५-४८
१९.	मनीषी के चरणों में!	प्रेम शंकरसिंह प्राचार्य रायपुर	४९-५०
२०.	श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर स्वामीजी महाराज	वेणी शंकर शर्मा भू. पू. संसद सदस्य कलकत्ता	५१-५२
२१.	शिवरूप श्री स्वामीजी	मनमस्त त्रिपाठी दतिया	५३
२२.	श्रद्धा सुमन	देवकीनन्दन मिश्र, टीकमगढ़	५४
२३.	श्री स्वामी जी के साथ सत्संग के क्षण	डॉ. राधेश्याम द्विवेदी एम.ए, डी.लिट. शिवपुरी	५५-५६

अ.नं.	विषय	लेखक	पृ.सं.
२४.	श्रद्धाञ्जलि	मथुरादास मुदगल व्याख्याता दतिया	५७
२५.	पूज्यपाद की कृपा	प्रो. एन. एल. वैद्य, भोपाल	५८-६०
२६.	भारतीय विद्याओं के महामनीषी	डॉ. सुवालाल उपाध्याय 'शुक्ररत्न' व्याख्याता केन्द्रीय विद्यालय, ग्वालियर	६१-६२
२७.	१७ दिसम्बर सन् १९७८ की वह रात	राजन साजन मिश्र सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक	६३-६४
२८.	राजत अब स्वामी हैं।	जगदीश शरण बिलगइयाँ मधुप	६५
२९.	ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री स्वामीजी	डॉ. रवि शंकर दीक्षित आचार्य शा. म. वि. दतिया	६६-६७
३०.	कबिरा संगति साधु की	डॉ. शिव मन्दिर प्रधान अभियन्ता, दिल्ली	६८-७१
३१.	पूज्यपाद के चरणों में	नरसिंह जोशी	७२-७३
३२.	श्री चरणों का स्मरण	डॉ. शिवशरण शर्मा एम.ए.पी.एच.डी प्राध्यापक, ग्वालियर	७४-७५
३३.	पूज्यपाद का संगीत प्रेम	सुषमा सिंह भू.पू. विधायक ग्वालियर	७६-७८
३४.	असाधारण चमत्कार साधारण रूप में	भगवान स्वरूप सक्सैना अभियन्ता, लखनऊ	७९-८१
३५.	श्रद्धाञ्जलिः	स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि निवृत्त जगद्गुरु शंकराचार्य	८२
३६.	पूज्यपाद के दर्शन	श्रीकृष्णराय हृदयेश सम्पादक गाजीपूर	८३-८५
३७.	श्री स्वामीजी महाराज	बाबूलाल गुप्त	८६
३८.	ब्रह्मलीन श्री स्वामीजी महाराज	राजेन्द्र शर्मा, सम्पादक 'स्वदेश' ग्वालियर	८७-८८
३९.	पूज्य स्वामीजी महाराज एक श्रद्धाञ्जलि	डॉ. रामकृष्ण त्रिवेदी आयुर्वेदाधिकारी, भोपाल	८९-९०
४०.	गुरुदेव कृपा की कोर रहे(गीत)	हरिसिंह हरीश	९१
४१.	संगीत प्रिय पूज्य. श्री अनंत श्री स्वामीजी महाराज	एम.डी. शृंगी ऋषि आकाशवाणी, लखनऊ	९२-९३
४२.	संत सद्गुरु देव स्वामीजी	आचार्य भागवतानन्द वेदान्ताचार्य	९४-९८
४३.	शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ पूज्य. श्रीस्वामीजी महाराज	पं. रेवाराम तिवारी संगीत विभागाध्यक्ष पीताम्बरापीठ, दतिया	९९-१०२

अ.नं.	विषय	लेखक	पृ.सं.
४४.	गुरु-कृपा	प्रेम नारायण त्रिवेदी अतिरिक्त जिलाधीश, जबलपुर	१०३-१०४
४५.	मेरी उनकी प्रीति पुरानी	किशोरी शरण चउदा, दतिया	१०५-१०७
४६.	स्वामीजी महाराज की अनुपम कृपा	माणिकचन्द्र शर्मा अधिवक्ता, उरई	१०८-११०
४७.	गुरु-महिमा	मदन मोहन शर्मा गौड़ अवकाश-प्राप्त एस. डी. ओ. मथुरा	१११-११२
४८.	पूज्य श्री स्वामीजी का जीवन परिचय	बदनसिंह रायभा आगरा	११३-११७
४९.	श्री गुरुदेव का आशीर्वाद	श्याम सुन्दर छापड़िया प्रशासक सिमको, ग्वालियर	११८-११९
५०.	पूज्यपाद की स्मृति का प्रभाव	वीरेन्द्रकुमार कुढ़रा कहानीकार, दतिया	१२०-१२१
५१.	एक संस्मरण	ब्रजवल्लभ सिंह चौहान आई.पी.एस. इन्दौर	१२२
५२.	गुरु के चार आदेश	हरिराम सांवला कोषाध्यक्ष, श्री पीताम्बरापीठ, दतिया	१२३-१२४
५३.	संस्मरण	श्री प्रकाश शर्मा शास्त्री, एम.ए.दतिया	१२५-१२६
५४.	श्री स्वामीजी महाराज	श्री लक्ष्मण किशोर गोस्वामी भू.पू. न्यायाधीश	१२७-१२८
५५.	शिव स्वरूप श्री स्वामीजी महाराज	कुलभूषण पं. रमादत्त शुक्ल एम.ए. सम्पादक, चण्डी इलाहाबाद	१२९-१३२
५६.	योगी चिर निद्रा में	रघुवीर शरण नाहर, प्राचार्य दतिया	१३३-१३५
५७.	पूज्यपाद की कृपा	वैद्य प्रजानाथ शास्त्री धौलपुर राजस्थान	१३६
५८.	पूज्यपाद की आराधना	रतनसिंह परमार दतिया	१३७-१३८
५९.	पूज्य. और संन्यास आश्रम	रामनाथ श्रोत्रिय, धौलपुर	१३९
६०.	गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई	केदारनाथ शर्मा, उरई	१४०-१४१
६१.	श्री स्वामीजी महाराज की जय	डी. एस. कोठारी, नागपुर	१४२-१४३
६२.	पूज्यपाद की सहजता	दीनबन्धु पाराशर, मथुरा	१४४-१४५
६३.	गुरुरूवाच	हरनारायण नाहर दतिया	१४६-१४७
६४.	तात सुनहु यह अकथ कहानी	हेमचन्द्र मिश्र व्याख्याता उज्जैन	१४८-१५०

अ.नं.	विषय	लेखक	पृ.सं.
१०४.	मेरे जीवन रक्षक पूज्यपाद श्री स्वामीजी	गोपालदास मिश्र	२८५-२९०
१०५.	पूज्य स्वामिसंस्मरण	बाबूराम मिश्र जालौन	२९१-२९४
१०६.	वे देवता थे	श्री जगन्नाथ प्रसाद भण्डारी दतिया (म.प्र.)	२९५-२९६
१०७.	ऐसे थे मेरे स्वामीजी महाराज	गुलाबदेवी जैन, धौलपुर	२९७
१०८.	गुरुस्मरण	मोहनलाल भट्ट झाँसी	२९८-२९९
१०९.	पीताम्बरापीठ-एक दर्शन	डॉ.शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी वाराणसी	३००-३०५
११०.	श्री चरणों की कृपा का फल	देवेन्द्रनाथ रेखी, नागपुर	३०६-३०९
१११.	श्री गुरु चरणों में शतशः नमन	अ. प्र. त्रिपाठी नागपुर	३१०-३१३
११२.	ब्रह्मलीन से पूर्व (दि. २३-१२-७८ से दि. ३-६-७९ तक)	मास्टरजी	३१४-३२८
११३.	विश्व बन्धुता चिरं विजयताम्	डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर	३२९
११४.	श्री स्वामी जी का जन्म दिवस	वासुदेव गोस्वामी, वाणी विहार भरतगढ़, दतिया ४७५६६१)	३३०-३३१
११५.	नारी सम्मान के पक्षधर	पं. बाबुलाल गोस्वामी, संवाददाता नवभारत टाईम्स, दिल्ली	३३२-३३३
११६.	जन्म दिवस पर विचार	पं. रामकृष्णा शर्मा, वैद्यशास्त्री भाण्डेर, ग्वालियर	३३४-३३६

जब श्री स्वामीजी दतिया पधारे

– वासुदेव गोस्वामी
वाणी बिहार, भरतगढ़, दतिया, (म. प्र.)

जुलाई सन् १९२९ की ९ तारीख थी। संध्या समय एक युवक संन्यासी झाँसी से ग्वालियर की ओर पैदल जा रहे थे। रात्रि में विश्राम करने के लिये वे ग्वालियर रोड से दतिया नगर की ओर मुड़े और दंतवक्त्रेश्वर महादेव के मन्दिर पर जा पहुँचे। इस मंदिर पर आने वाले दर्शनार्थियों में कुछ संस्कृत के पण्डित भी उसी रात्रि संपर्क में आये। दूसरे ही दिन नगर में इनकी विद्वत्ता की चर्चा होने लगी। इसी मंदिर के पास मकान है स्व. श्री पर्वतसिंह फौजदार का जो उस समय विद्यमान थे। वे कट्टर शैव तथा विद्या-व्यसनी एवं साधु-सेवी जागीरदार रहे हैं। जब श्री पर्वतसिंह ने भी यह चर्चा सुनी तो पहले उन्होंने अपने पुत्र बलवीर सिंह को भेजा और फिर स्वयं इन संन्यासी की सेवा में उपस्थित हुए। फौजदार पर्वतसिंह उन्हें अपने घर ले आये और बाहर के कोने पर दुमंजले मकान में खपरैल के एकान्त कमरे में इन्हें ठहराया। इस प्रकार दूसरे तीसरे ही दिन वे उस मंदिर से जो महादेव की मड़िया के नाम से विख्यात है, वहां फौजदार साहब के घर पहुंच गये। यहां इन्होंने ईश्वर गीता का अनुवाद फौजदार साहब के निवेदन पर किया। ये स्वामी जी के नाम से ही जाने जाते थे। अन्य नाम अपना नहीं बतलाते थे, किन्तु पत्र व्यवहार में उन दिनों भारती नाम लिख दिया करते थे। फौजदार पर्वतसिंह का आना-जाना दतिया नरेश गोविन्द सिंह के पास रहता था। उन्होंने श्री स्वामी जी की विद्वत्ता एवं संगीत में अभिरुचि की चर्चा राजा से भी की। इस कारण जब कोई नामी संगीतज्ञ दरबार में आता तो वे उसे फौजदार साहब के घर भेज देते थे कि वह स्वामी जी की सेवा में अपनी कला का प्रदर्शन करे।

संध्या समय स्वामी जी सर्वश्री बलबीर सिंह, मंगतराम पंजाबी एवं राधेश्याम दुबे, राम चरण मिश्र आदि के साथ पंचम कवि की टौरिया, कैम के झरना एवं ग्वालियर रोड पर भ्रमण करने जाते थे। भजन-पूजन से अवकाश मिलने पर प्रवास स्थान पर ही सत्संग होता था। नगर के कई पण्डित प्रति दिन समय पर आकर शास्त्र चर्चा करते थे। सीता सागर पर निवास करने वाले महात्मा मंगलदास जी एवं स्व. शिवचरण दीक्षित भी आते रहे। वैसे तो यहां कोई असुविधा स्वामी जी को नहीं थी, किन्तु

नगर के बीच वे अधिक नहीं रहना चाहते थे। अत: जब महात्मा मंगलदास जी ने उन्हें सीतानगर के बांध पर स्थित अपने मंदिर में ठहरने का प्रस्ताव किया तो वहाँ के शान्त वातावरण को देख कर उन्होंने स्वीकार कर लिया और लगभग एक डेढ़ माह फौजदार साहब का आतिथ्य ग्रहण करने के उपरान्त वे महन्त श्री मंगलदास जी के यहाँ आ गये। यहाँ पंचदशी के अध्ययन हेतु कुछ लोग आते थे।

सीता सागर के बांध पर स्थित महन्त श्री मंगलदास जी के निवास स्थान पर तीन-चार माह ठहर कर श्री स्वामी जी २३ दिसंबर १९२९ ई. को वनखण्डी महादेव के मंदिर पर आ गये। सभी जानते हैं कि स्वामी जी अचानक वृत्ति के साधु थे। दतिया आगमन के पूर्व गंगा तट पर कई दिनों इन्हें जब भिक्षा नहीं मिली थी तब इनकी भूख से द्रवित होकर स्वयं गंगा माता ने इन्हें खीर खिलाई थी। यह अलौकिक प्रसंग गुप्त नहीं रह सका। उस समय से तो इन्होंने भिक्षा की ओर ध्यान ही नहीं दिया। दतिया आगमन पर इन्हें स्वत: जो भोजन भेज देता था उसी से सन्तोष करते रहे। यहाँ यह बात सभी को ज्ञात थी, अत: उनके अनेक श्रद्धालु ठीक समय पर नियमित रूपेण बारी-बारी से भोजन की व्यवस्था बनाए रहे। प्रारंभ में अनुरोध-पूर्वक निमंत्रण पर कुछ सेवकों के घर भी भिक्षा करने (प्रसाद पाने) गये हैं, किन्तु बाद में इसे प्रोत्साहित नहीं किया।

आज पीताम्बरा पीठ का जो स्वरूप है वह सबके सामने एवं विकासोन्मुख है। इसलिये उस समय के दृश्य की चर्चा रोचक होगी जब श्री स्वामी जी ने इस स्थल पर पदार्पण ही किया था। जितनी सी जगह में श्री पीताम्बरा माई का मंदिर है, ठीक उतनी ही उसी सीमा में (लगभग ५० वर्ग फुट के क्षेत्रफल की) एक कच्ची (गुंदियाऊ) कोठरी थी। खपरैल से आच्छादित कोठरी में एक द्वार था। उत्तर की ओर सड़े से टुटे किवाड़ लगे थे। ताला तो लगता न था। कुदरा, फावड़ी जैसी नगण्य सामग्री पहिले उसमें पड़ी रहती थी। काछी-माली की कोठरी रही हो या अखाड़े वाले कसरती लोगों के काम में आती रही हो। उसे साफ कराया गया और लीप-पोत कर सँवारा गया। आगे कच्ची चौतरिया थी। गोबर से लीप कर यह आने वालों के लिये बैठने का स्थान बनी। स्वामी जी ने इसी कोठरी में अपनी जप साधना प्रारंभ की। भजन तो वे बहुत अधिक समय तक करते थे, किन्तु जो विद्यार्थी उनसे पढ़ना चाहते थे उन्हें उन्होंने कभी निराश नहीं किया। संध्या समय नगर के अनेक पण्डितों के अतिरिक्त गणमान्य सज्जन आकर सत्संग में लाभान्वित होने लगे।

दतिया जैसी छोटी नगरी में पहिले ही दिन जब स्वामी जी ने इतने अधिक संस्कृत के पण्डितों को पाया था और समय-समय पर उन्हें अपने-अपने विषयों में निष्णात परखा था, तभी से उनका मन यहाँ के वातावरण में लगने लगा था।

वनखण्डी के स्थान में जब प्रथम बार भ्रमण करते हुए ही स्वामी जी ने प्रवेश किया था तब उन्हें यह अनुभव अपने आप होने लगा कि यह सिद्ध भूमि है और यहाँ पहले भी तपस्या की गई है। इसी से उन्होंने अपनी साधना के हेतु इसे अपनाया।

जब कुछ समय स्वामी जी यहाँ रह चुके थे तब एक रात उन्हें एक दिव्य पुरुष के दर्शन हुए। श्री स्वामी जी ने मुझे ही बताया था कि उनकी ऊँचाई छतरी तक (९-१० फुट) की थी। शुभ्र वस्त्र, गौरवर्ण, लम्बी सफेद दाढ़ी। वह दिव्य पुरुष, जिन्हें स्वामी जी ने जिन्द कहा है स्वामी जी के पास आकर बोले – यहाँ आ गये हो? महाराज ने उत्तर दिया "आ तो गया हूँ, आप कहे तो चला जाऊं।" प्रत्युत्तर में जिन्द ने कहा कि यहीं रहो और अपना काम पूरा करो। बस इतनी वार्ता के बाद जिन्द महात्मा वहीं अदृश्य हो गये। बाद में एक बार वे स्वामी जी को पुनः दिखाई दिये थे, किन्तु कोई वार्तालाप नहीं हुआ। आश्रम पर रात्रि में रुकने वाले कुछ विद्यार्थियों ने भी उन जिन्द महात्मा की गतिविधि से उत्पन्न वृक्षों में खड़खड़ाहट के अनुभव किये हैं। झांसी से आने वाले एक साधक ने भी उन जिन्द के दर्शन करने की बात श्री स्वामी जी को बताई थी।

महाराज जी कहते थे कि इस स्थान में प्रवेश करते ही उन्हें ऐसा आभास मिला कि जिस प्रकार के स्थल की खोज वे अपनी प्रस्तावित साधना के हेतु कर रहे थे वह यही है। फलतः यहाँ वे डट गये। कुछ ही दिनों बाद इन पंक्तियों के लेखक ने अपने यहाँ से कुछ संस्कृत की पुस्तकें महाराज जी को भेंट की। उनमें एक छपी हुई संस्कृत पुस्तक श्री प्रेम नारायण गोस्वामी चरितामृतम् भी थी। उसमें घटिका शतक पं. अयोध्यानाथ उपाध्याय द्वारा बनखण्डेश्वर महादेव और इस स्थान का श्रद्धापूर्वक वर्णन किया गया था। महाराज जी ने मेरा ध्यान उन उल्लेखों की और आकर्षित करते हुए कहा था कि यह प्राचीन तपस्थली है। घटिकाशतक जी भी इस स्थान पर रहे थे। इन श्री अयोध्यानाथ उपाध्याय को काशी में भारत धर्म महामण्डल द्वारा घटिका शतक की उपाधि से विभूषित किया गया था, क्योंकि ये आशु कवि एक घड़ी (२४ मिनट) में संस्कृत भाषा के सौ श्लोक तत्काल रच कर सुनाने की क्षमता रखते थे। कुम्हड़ार (उ.प्र.) निवासी इन घटिका शतक जी को यह सिद्धि वनखण्डी पर निवास कर भजन साधना के द्वारा प्राप्त हुई थी। माघ कृष्ण ११ संवत् १९७६ विक्रमी के दिन घटिका शतक जी ५५ वर्ष की आयु में दिवंगत हो चुके थे।

यद्यपि पिछले प्रवास स्थानों पर भी आगन्तुकों पर कोई रोक नहीं थी किन्तु वे व्यक्तिगत स्तर के थे, इस कारण कुछ लोगों को वहाँ जाने-आने में संकोच था। श्री चरणों का बनखण्डी स्थान पर जब से आगमन हुआ, तब से दर्शनार्थियों की संख्या में नित्य प्रति वृद्धि होने लगी। स्त्रियों का आना पूर्णतया वर्जित था। अधिकांश संस्कृत के पण्डित और धार्मिक विचार के व्यक्ति संध्या के समय एकत्र होते थे।

उनमें मेरे श्वसुर स्व. पण्डित मुनई नागार्च राज्य ज्योतिषी भी एक थे। इनको महाराज जी ज्योतिषी जी कहते थे। विद्या व्यसनी होने के कारण वे प्रति दिन ही आते-जाते थे और अनेक पण्डितों का वहाँ जमाव होता था। शास्त्रार्थ भी कभी कभी अच्छे विवाद का रूप ले लेता था।

वनखण्डी के पास ही उन दिनों एक हाईस्कूल था, जिसमें मैं पढ़ता था और मध्यान्तर का समय प्राय: बनखण्डी में ही बिताता था।

एक बार ज्योतिषी जी महाराज जी के पास दोपहरी में भी बैठे थें। उसी समय मैं वनखण्डी पर पहुँचा। मुझे इंगित करते हुए उन्होंने महाराज जी से प्रार्थना की कि वे मुझे कोई साधना बतावें। (मैंने यह सब नहीं सुना था। बहुत समय बाद महाराज जी ने ही कई बार यह बात बताई थी।) फलत: जब १-२ दिन बाद पुन: मैं वनखण्डी पहुँचा तो महाराज जी ने मुझे बुलाया। प्रणाम करके मैं बैठ गया। श्री चरणों ने पूछा कि उस दिन जो ज्योतिषी जी यहाँ थे वे तुम्हारे कौन हैं? मैंने बतलाया कि वे मेरे श्वसुर हैं। तब पूछा कि क्या तुम कुछ भजन पूजन करते हो? मैंने कहा कि संध्या, गायत्री करता हूँ। इस पर उन्होंने संध्या के मंत्र सुनाने का आदेश दिया। मैं २-४ मंत्र ही सुना पाया था कि वे उठे और एक हस्तलिखित छोटीसी पुस्तिका मुझे देते हुए बोले कि "इस स्तोत्र का पाठ किया करो। उससे तुम्हारी बुद्धि का विकास होगा। इसकी नकल करके यह पुस्तक लौटा देना"। उसी पुस्तक में एक मंत्र भी लिखा था, जिसे पढ़ कर महाराज जी ने कहा कि इसका जाप किया करो। कुछ और विधान भी बताए। वसंत पंचमी से प्रारम्भ करने की आज्ञा दी।

जनवरी सन् १९३१ ईस्वी सन् की यह बात है। मैंने उस सिद्ध सरस्वती स्तोत्र की प्रतिलिपि स्वयं कर ली और महाराज जी को बताई। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि प्रतिलिपि मेरे द्वारा ही की गई है तो कहने लगे कि अपने हाथ से तैयार की गई प्रतिलिपि का पाठ नहीं किया जाता। फलत: उनकी अनुमति से दूसरी प्रतिलिपि मैंने अपने पूज्य पिता जी से तैयार करायी। पिता जी ने स्तोत्र की पुस्तिका में उसका लिपिकाल माघ शुक्ल १ संवत् १९८७ वि. अंकित कर दिया था। इस आधार से आज भी यह कह पा रहा हूँ कि उक्त स्तोत्र का पाठ महाराज जी की आज्ञानुसार संवत् १९८७ वि. की वसंत पंचमी (२४-१-१९३१ ई.) से मैंने प्रारंभ किया था। तभी से महाराज जी के द्वारा बताए गये मंत्र का जप करने लगा। मैं उन्हीं की कृपा का यह फल मानता हूँ कि मुझ जैसे अल्पज्ञ की लिखी हुई पुस्तक आज रींवा विश्वविद्यालय के हिन्दी एम.ए. की पाठ्यपुस्तक है और वह भी बिना प्रयास के अपने आप स्वीकृत हुई है। मुझ जैसी साधारण योग्यता के व्यक्ति को **'मंद: कवि यश: प्रार्थी'** का दुस्साहस सहज बनाने का श्रेय श्री चरणों को ही है। अभिप्राय यह कि जनवरी सन् १९३१ ई. में मैं श्रीचरणों के संपर्क में आया और अयाचित कृपा का

सदा ही पात्र बना रहा। बाद में वह स्तोत्र छपा और उस सिद्ध सरस्वती स्तोत्र का कार्तिकी नवरात्र में जो सामूहिक पाठ पीताम्बरा पीठ पर सरस्वती पूजन के समय होता है उस कक्षा का "मोनीटर" कह कर महाराज जी अपना सहज स्नेह मुझे सदैव ही प्रदान करते रहे।

श्री स्वामी जी जगद्‌गुरु शंकराचार्य के मतानुयायी थे। उन्हीं की प्रेरणा पाकर स्व. फौजदार पर्वतसिंह ने दंतवक्त्रेश्वर महादेव के मंदिर पर शंकर जयन्ती का उत्सव प्रारम्भ कराया था। 'यशवंत शंकर समाज' नामक एक संस्था का गठन किया गया और उसी के तत्वावधान में वैशाख शुक्ल ५ संवत् १९८८ वि. (सन् १९३१ ई.) को प्रथम बार शंकर जयन्ती बड़ी धूमधाम से मनाई गई। श्री स्वामी जी का प्रवचन भी इस उत्सव में हुआ था। तब से प्रतिवर्ष यह उत्सव होने लगा, जिसमें विद्वानों के भाषण और कवि सम्मेलन का आयोजन मुख्य होता था। कालान्तर में पीताम्बरा पीठ की स्थापना के उपरान्त परशुराम जयन्ती, पीताम्बरा जयन्ती और शंकर जयन्ती के उत्सव लगातार तीन दिन धूमधाम के साथ इस पीठ पर होने लगे।

महाराज जी तो अपनी साधना में लगे रहे किन्तु उनकी तपस्या ने पांच वर्ष में ही उस कच्ची खपरैल कोठरी को पीताम्बरा माई का मन्दिर बनवा दिया और ज्येष्ठ कृष्ण ५ संवत् १९९२ विक्रमी (१९३५ ई.) के दिन माई की दिव्य प्रतिमा यहाँ आ बिराजी। इस दिव्य मूर्ति के निर्माण हेतु आधार भूत चित्र की स्वामी जी के निर्देशन में श्री सुन्नूलाल पटैरिया ने बनाया था। माई के मन्दिर के उत्तर में दालान का निर्माण भी तभी हो गया था, और समय-समय पर इसी दालान में एक तखतिया पर व्यास गद्दी लगती तथा श्री स्वामी जी गीता का प्रवचन करते थे। दिन में ४ बजे के लगभग यह प्रवचन होता था।

सन् १९३६ ई. में एक सप्ताह का अखंड हरिनाम संकीर्तन यज्ञ हुआ। तभी से दतिया में अखण्ड कीर्तन की परंपरा प्रारम्भ हुई। श्री स्वामी जी ने संकीर्तन के हेतु **"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।"** मन्त्र निर्दिष्ट किया था। जिसमें एक मंत्र जप से ही १६ नाम का जप होता है। कलि संतरणोपनिषद् में इस मंत्र की बड़ी महिमा कही गई है। संकीर्तन की व्यवस्था हेतु एक सभा में जब एक पण्डित जी ने यह कहा कि यह तो वैष्णव मंत्र है, तो महाराज जी को उनका यह कहना अप्रिय लगा और उन्होंने इस प्रकार की साम्प्रदायिक संकुचित भावनाओं की भर्त्सना की। उनके पास हिन्दू-मुसलमान, जैन-बौद्ध, शाक्त-वैष्णव सभी समान रूप से स्नेह पाते रहे। इस सात दिन के अखंड कीर्तन में दो-दो घण्टा के लिए एक-एक टोली निर्धारित थी। अतिथि सत्कार की उत्तम व्यवस्था थी। जप और हवन भी प्रति दिन होते थे और संध्या समय धार्मिक भाषण एवं संगीत भी होता था। इस प्रकार कीर्तन के साथ अन्य धार्मिक कार्यक्रमों का मेल रहता था। व्यवस्था

के लिये स्काउट्स कैम्प लगा था। कीर्तन सप्ताह की समाप्ति पर एक विशाल शोभा यात्रा की गई। राज परिवार के विशेष आग्रह के कारण इस जुलूस ने किले के अन्दर भी प्रवेश किया। इसके पूर्व उतना बड़ा जुलूस कभी नहीं निकला था – ऐसा लोग कह रहे थे। महाराज जी ने भी इसमें चलना स्वीकार किया था।

सर्व प्रथम मार्गशीर्ष शुक्ला ११ संवत् १९९५ (३-१२-१९३८ ई.) को गीता जयन्ती का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। प्रातः गीता पाठ एवं हवन, दोपहर १ से ४ बजे तक गीता के १० वे एवं ११ वें अध्याय का 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।।' मंत्र के साथ कीर्तन हुआ। संध्या ५ बजे से ८ बजे तक विद्वानों के व्याख्यान हुए। इसी में एक गीता प्रश्नोत्तर का भी कार्यक्रम था जिसका आलेख स्वयं पूज्यपाद ने तैयार किया था। इसमें तीन वक्ता थे – एक गीता में भक्ति योग, दूसरा ज्ञान योग और तीसरा कर्म योग का प्रतिपादन करता था। इस त्रयी में मुझे भक्ति योग प्रतिपादन करने की भूमिका दी गई थी और स्व. महेन्द्रसिंह सेंगर को कर्म की तथा स्व. बलबीरसिंह को ज्ञान की भूमिका दी गई थी। सरल भाषा में प्रश्नोत्तरों के द्वारा गीता का सन्देश जन-जन तक भेजने का यह उपक्रम था। तदुपरान्त रात्रि ८ से १० बजे तक महाराज जी का गीता पर प्रवचन हुआ। उसके उपरान्त रात्रि १२ बजे तक कीर्तन होता रहा। इस प्रकार पूरे दिन व्यस्त कार्यक्रम के साथ पहली गीता जयन्ती सम्पन्न हुई थी। कार्यक्रम के व्यवस्था का भार लाला बलदेव सिंह भूतपूर्व तहसीलदार पर था।

सन् १९४३ ईस्वी में दतिया रियासत के दीवान पद पर सैयद एनउद्दीन आये थे। कुशल प्रशासक और सख्त स्वभाव के कारण उनका आतंक प्रारम्भ से ही छाया हुआ था। वे काव्य प्रेमी थे और उर्दू शायरी की उन्हें गहरी परख थी। प्रति दिन रात में उनके निवास को कोठी पर (जो अब सिविल लाइन में राव राजा साहब की कोठी कहलाती है) नियमित रूप से लगभग दो घण्टे की बैठक होती थी, जिसमें शायरी, कविता और अन्य कला विषयक चर्चाएँ ही मुख्य रूप से होती थी। सीमित लोग ही भाग लेते थे जिनमें एक मैं भी रहा।

दीवान एनउद्दीन ने मुझ से कहा कि एक दिन बाबा जी के पास चलना है। उनका अभिप्राय स्वामी जी से था। मैंने कहा कि जब चाहे तब चलिये। दूसरे ही दिन रायगढ़ से उठकर शाम को ५ बजे मुझे साथ लेकर वे पीताम्बरा पीठ पर आ गये और दालान में श्री स्वामी जी के चरणों पचास रुपए के नोट चढ़ाए। उन दिनों महाराज जी रुपयों को हाथ नहीं लगाते थे और आश्रम पर उस समय कोई अन्य सेवक उपस्थित न था। अतः वे सब नोट मैंने उठाकर अपनी जेब में रख लिये। वहाँ से उठकर जब एनउद्दीन बाहर आये तो उन्होंने मुझ से पूछा कि आपने रुपए अपनी जेब में क्यों रख लिये? मैंने बतला कर कहा कि आश्रम के सेवक आने

पर उन्हें यह रुपया दिया जाएगा। एनउद्दीन ने मुझ से कहा कि इन रुपयों का क्या उपयोग होता है यह मुझे बताना। दूसरे ही दिन महाराज ने उन रुपयों से लैटिन भाषा का शब्दकोष मँगवाने का आदेश दिया। जब मैंने दीवान साहब को यह बात बताई तब इस पर वे चकित रह गये। दीवान एनउद्दीन से स्वामी जी की काफी देर तक चर्चा होती रही थी। बातचीत के दौरान दीवान साहब ने स्वामी जी से कहा कि यह जगह आप के लिए बहुत कम है। आप स्थान बतावें तो वहां आपके रहने लायक मकान बनवाया जाय। महाराज जी ने कहा कि मकान छोड़ कर ही तो हम संन्यासी होते हैं, मकान की हम लोगों को क्या जरूरत। इस प्रकार महाराज जी की असहमति होने पर भी दीवान एनउद्दीन ने दो कमरे और एक बरामदा बनवा ही दिया। बनने के बाद श्री स्वामी जी के पास वे जब आये तो निवेदन करने लगे कि इसका नाम आप बतायें। उस समय स्वामी जी ने 'साधना-कुटीर' नाम रखा। इसका उद्घाटन भी धुमधाम के साथ एनउद्दीन ने कराया था। संगीत और कवि-सम्मेलन तथा मुशायरा हुए पर स्वामी जी उस साधना कुटीर में रहने को नहीं गये। उस में पीताम्बरा संस्कृत परिषद् का कार्यालय कर दिया गया और भारतीय विद्या भवन मुम्बई के द्वारा जो संस्कृत की परीक्षाएँ होती थी उनके निमित्त अध्यापन एवं परीक्षा आदि का कार्य भी इसी साधना कुटीर में होने लगा।

तब यह अकेला सा निर्माण था, किन्तु अब तो इतने अधिक निर्माण हो चुके है और होते जा रहे हैं कि साधना कुटीर का वह प्रारम्भिक रूप उनमें विलुप्त सा हो गया है।

दतिया जिला की राम चरित मानस चतुश्शताब्दी समारोह समिति के तत्वावधान में एक त्रि-दिवसीय मानस सम्मेलन नगर में आयोजित किया गया था। १२ दिसम्बर १९७३ ई. को इसका उद्घाटन होना था। उक्त समिति के अध्यक्ष होने के नाते मुझ से दतिया के कलेक्टर श्री. जी. बैंकन्ना ने पूछा कि समारोह का उद्घाटन कौन कर रहा है। मैंने कहा कि मेरा विचार श्री स्वामी जी महाराज से उद्घाटन के हेतु प्रार्थना करने का है। सुनते ही वे प्रसन्नता से उछल पड़े और कहने लगे कि यदि स्वामी जी उद्घाटन करें तो अपना आयोजन अत्यन्त सफल रहेगा। मेरे साथ राजगढ़ पर उस समय इस मानस सम्मेलन के संयोजक श्री नारायण लाल जी भट्ट भी थे। हम दोनों दोपहर में उसी समय सीधे राजगढ़ से पीताम्बरा पीठ पर आये। महाराज जी धूप में विराजे थे। मैंने आने का प्रयोजन बताते हुए कहा कि व्यवस्था संबंधी कार्य तो हम लोगों को करने का है सो जैसा भी हो सकेगा वैसा उसे कर रहे हैं, किन्तु बाकी काम तो बाबाओं और महात्माओं का है इसलिये उद्घाटन के हेतु आप से प्रार्थना करने हम लोग आये हैं। महाराज जी ने कहा कि मैं तो नगर में जाता नहीं हूँ।

तब मैंने निवेदन किया कि यदि नगर में न जाने का कोई संकल्प आप कर चुके हैं तब तो हम विवश हैं, किन्तु यदि ऐसा नहीं तो काम यह आप का ही है। महाराज जी मुस्कराए और बोले कि – हाँ, है तो काम यह हम ही लोगों का, किन्तु मैं भाषण नहीं दूंगा। मैंने कहा कि मंच पर आप के पदार्पण से ही समारोह गौरवान्वित होगा, और स्वीकृति हो गई। नगर में बड़ी तेजी से यह समाचार फैल गया। पं. श्रीराम दुबे मेरे पास आये और उन्होंने चाहा कि महाराज जी की समारोह स्थल (बग्घीखाना) पहुँचाने के लिये बड़े बाजार से लाया जाय, क्योंकि मार्ग के दुकानदार महाराज जी का स्वागत करेंगे। यह भी हो गया। स्व. राम स्वरूप खरे एडवोकेट की कार लेकर मैं पहुंचा और महाराज जी को साथ लाया। पीताम्बरा पीठ के २-१ सेवक भी साथ थे। बड़े उत्साह से दुकानदारों ने महाराज जी की कार को रोक कर पुष्पहार और भेंट से हार्दिक स्वागत किया। वह दृश्य भी देखते ही बनता था। बग्घीखाने का चौक नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ था। सुसज्जित मंच पर श्री रामचरित मानस ग्रंथ पर श्री स्वामी जी ने अपने कर-कमलों से पुष्प चढ़ा कर समारोह का उद्‌घाटन सम्पन्न किया।

जब कलेक्टर श्री बैकन्ना ने मुझ से कहा कि श्री स्वामी जी से आशिर्वाद के रूप में दो शब्द कहने के लिये कहो, तो मैंने उन्हें उत्तर दिया कि मैं उनसे वचनबद्ध हूँ कि मैं भाषण के लिये आप से आग्रह न करूंगा। हम लोगों की यह बातचीत कदाचित् महात्मा जी ने भाँप ली तो पूछा कि क्या है? मैं चुप रहा। बैंकन्ना ने हाथ जोड़ कर दो शब्द कहने के लिये उनसे निवेदन किया। वे मुस्कराए और बहुत ही संक्षेप में मानस की अद्वितीयता और गोस्वामी तुलसीदास जी के राष्ट्र धर्म की सराहना करते हुए संक्षेप में अपनी शुभ कामनाएँ व्यक्त की। वे गोस्वामी तुलसीदास जी को हिन्दू एकता के राष्ट्रीय महात्मा मानते थे।

प्राचीन ऋषियों की भांति श्री स्वामी जी ने भी अपने व्यक्तित्व से संबंधित तथ्य प्रकट नहीं किये। सत्संग या चर्चाओं के बीच जब कभी कोई ऐसी बात उनसे सुनने को मिलती, जिससे उनकी जीवनी का सत्र पकड़ा जा सकता, तो उसका अपना अलग महत्त्व होता था। ऐसी सूचनाएँ कितने ही जिज्ञासुओं ने अपनी नोटबुकों में लिख रखी हैं। यदि वे सब एकत्र हों तो उनसे कल्पना को काफी सहारा मिल सकता है।

मेजर बी. एन. तुस्सू की नोटबुक में अंकित सूचनाओं का विवेकपूर्ण परीक्षण करके इस लेख में भी आगे उपयोग किया गया है।

वाराणसी एवं बलिया के आसपास के किसी ग्राम में महाराज जी का जन्म संभावित है।

वाराणसी से कुछ दूर चकिया नामक ग्राम में काली माई के दर्शनार्थ इनकी माता जी इन्हें कंधे पर बैठाकर ले जाती थीं। सन् १९१२ ई. में इन्होंने हिन्दी मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की थी। किसी कथन के अनुसार बलिया जिला के छाता ग्राम के मिडिल स्कूल में ये पढ़ते थे। द्वितीय भाषा के रूप में उर्दू भी इन्हें पढ़ाई गई थी। अपनी रुचि की आध्यात्मिक गजलों को श्री स्वामी जी ने एक नोटबुक में फारसी लिपि में ही लिख रखा था। उस सुन्दर लिखावट को मैंने उस समय देखा था जब दतिया के एक खुशनसीब श्री मुनव्वर अली खाँ को स्वामी जी ने अपना उर्दू खत दिखाया था।

सन् १९१३ ई. में महाराज जी ने गृह त्याग किया और १९१४ ई. में बंगाल जा पहुंचे। तदनन्तर सन् १९१६ से १९१९ ई. तक भारत का भ्रमण करते रहे। इसी बीच डेढ़ वर्ष तक गुजरात में भी रहे और वहाँ गुजराती भाषा भी सीखी। अपने इस पर्यटन में सन् १९१७ ई. में ये प्रथम बार ग्वालियर भी गये। उस समय ग्वालियर के किले के पीछे एक कनफटा योगी रहता था। उससे इनकी भेंट हुई। सन् १९२० में भडोंच, सिद्धपुर, अहमदाबाद, बरोदा, महासेना आदि नगरों में गये और सन् १९२२ ई. में पुनः काशी जी लौट आये।

२५ वर्ष की अवस्था तक इन्होंने शास्त्रों का अच्छा अध्ययन कर लिया था। ३१ जनवरी सन् १९२६ ई. के दिन इन्होंने काशी छोड़ी, फिर बांदा में आये, फिर कांगला, मुम्बई, बंगाल, नेपाल, ज्वालामुखी, चामुंडा, चित्तपुरनी आदि की यात्रा करते रहे। उरई में भी कुछ दिनों ठहरे और धौलपुर में काफी समय रहे। वहां के जेलर ठाकुर नारायण सिंह जी इनके कृपा पात्र सेवक थे। दतिया आगमन के पूर्व महाराज जी उन्हीं के पास रह रहे थे। पहले ये कथा वाचक थे और संस्कृत के प्रचारार्थ पाठशालाएं स्थापित कराने में विशेष रुचि रखते थे। सन् १९२७ ई. में जब ये पंजाब के नवरोटा नामक स्थान में थे तब वहां इनकी भेंट अनंतानंदनाथ नामक एक गुजराती संन्यासी से हुई। वे गौर वर्ण और ऊंचे कद के हृष्ट-पुष्ट शरीर के ओजस्वी महापुरुष थे। उन्हीं के उपदेश से स्वामी जी श्री पीताम्बरा माई की साधना में प्रविष्ट हुए। शाक्त मार्ग की दीक्षा में इन्हीं गुरुदेव अनंतानंदनाथ ने स्वामी जी को अमृतानंद नाम प्रदान किया था। इसी कारण ब्रह्मलीन होने के उपरान्त श्री स्वामी जी महाराज की समाधि पर जिन शंकर जी की स्थापना हुई है उन्हें अमृतेश्वर नाम से अभिहित किया गया है। अपने गुरु की आज्ञानुसार साधना के लिये आप नर्मदा नदी के तट पर स्थित सिद्धनाथ नामक स्थान पर एक वर्ष तक रहे। फिर अमृतसर, तरनतारन आदि स्थानों में भ्रमण करते हुए कुछ समय धौलपुर में प्रवास किया। तदनन्तर सन् १९२९ में दतिया आकर अर्ध शताब्दी पर्यन्त शाक्तसाधना में लीन रहे।

श्री स्वामीजी महाराज की तपस्थली का गौरव अर्जित करके दतिया न केवल मध्य प्रदेश और भारत का ही तीर्थ बनी है वरन् विश्व के धार्मिक केन्द्रों में इसकी गणना होने लगी।

श्री पीताम्बरा की उपासना के साथ ही शाक्त सम्प्रदाय का रहस्य और जप योग की सिद्धि का साक्षात्कार महाराज जी ने कराया। हिन्दू धर्म के सभी संप्रदायों में परस्पर प्रेम का विकास किया एवं अन्य मतों के प्रति आदर भाव का बर्ताव किया।

पूज्यपाद आध्यात्मिक मार्ग में तत्पर रहते हुए भी लोक-कल्याण व राष्ट्ररक्षा के लिए समय-समय पर यज्ञानुष्ठान कराते रहते थे। सन् १९४६ में भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए बृहद् अनुष्ठान कराए थे। सन् १९६२ में चीन देश ने विश्वासघात करके हमारे भारत देश पर अचानक अमानवीय आक्रमण किया, उस समय भारत देश की सैनिक शक्ति पूर्णरूप से सबल न होने से इस आकस्मिक हमले का मुकाबला करना भारतीय सैनिकों के लिए असम्भवसा था। चीन के सैनिक निरन्तर भारतभूमि में प्रवेश करने लगे। उस समय पूज्य स्वामीजी राष्ट्रीय भावना से द्रवित होकर देशव्यापी इस कष्ट के निवारण हेतु उन्होंने बृहद् अनुष्ठान करने का संकल्प किया। इस अनुष्ठान में विभिन्न प्रान्तों से विद्वान ब्राह्मण एकत्रित किये गये तथा स्थान के भी कुछ ब्राह्मण उस में सम्मिलित हुए। ८५ ब्राह्मणों द्वारा दुर्गासप्तशती का सम्पुट पाठ व ११ ब्राह्मणों द्वारा माताधूमावती का जप आरम्भ हुआ। अनुष्ठान के २१ वे दिन पूज्यपाद को शुभ संकेत मिले और दूसरे ही दिन समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ कि चीन की सेना वापस लौट गई। इसके बाद पूज्यपाद ने देश की शान्ति व समृद्धि के लिए सन् १९७४ में बृहद् वैदिक-यज्ञ (ब्रह्मयज्ञ) का अभूत पूर्व अनुष्ठान कराये थे जो निरन्तर ३६ दिनों तक चलकर निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। इस वैदिक यज्ञ के आचार्य वैदिक सम्राट पं. श्री रमानाथ जी मिश्र थे।

ऐसे बहुत से कार्य लोक-हित व धर्म-रक्षा के लिए स्वामी जी द्वारा सम्पन्न हुए जो कि स्वामी जी के राष्ट्र प्रेम व जन-कल्याणी भावना का द्योतक है।

***

स्वामिस्तवस्तवकम्

— सुधाकर शुक्ल

यो धीरधीरपि बुधस्तदगाध बोधः।,
शोधाय साधुसुधियः सुमतेः सुयोधः।
आकाङ्क्षयाप्यपचितश्चिदुपासनायाम्,
चाराचरीञ्च्युतिमहोबृहयत्युदात्तः।।१।।

यः सत्य-सञ्चयरुचिश्चिरचारुवाचा-
माचामतिस्वसुखभावपराङ्गमुखञ्च।
प्राचामपि प्रचरति-प्रियरुग्विचारा-
नाचारवांश्च धृतधैर्यधरैक-धन्यः।।२।।

मन्यामहे सगुरुरञ्जजनप्रबाधो,
बोधाय यस्य विदधे सुविधिं बुधानाम्।
शोधाय यस्तु यतते मनसाऽऽयतेन,
यच्चातुरी चरति चारु-विचारधाराम्।।३।।

आराच्चिनोति स तु चित्तरुचिं विभुञ्च,
भो चक्रपाणिचरणे विचरे सुचेतः।
चेतः प्रवृत्ति रुचिरा च विचार-बीचौ,
सांसारिकेषु गतिसार-प्रसारकेषु।।४।।

प्रायो विरक्तहृदयो सदयप्रवृत्तिः
सम्बाहि सार-सरसासरसारसानाम्।
सा नामिता च विपदां ध्रियते सुवृत्तिः,
कृत्यङ्करोति नियमप्रणय प्रवृत्तेः।।५।।

चित्तस्य वृत्तिमपि यस्य चिनोत्यराग-
स्त्वासक्ति-रक्तिरहितः सहितः शिवैश्च।
भावैरभाव-विभवः भवभूति-भव्यैः,
चैतन्यचारु विशदात्मनि योनिलीनः।।६।।

सततिमति बलानामद्य सम्मानितानाम्,
दुरितकरिवराणामेकदम्भोलिरेषः।
न विशति विषमाणां वेषमेष प्रमाणाम्,
अगजगजगतीनां रंहसा-सार-सिंहः।।७।।

अद्वैतब्रह्मलाभ प्रभवभवहतिर्हन्तयश्चैकहन्ता,
सन्तापानां समन्तात् विरतमतिरसौ सन्ततिं चापदायाम्।
दैवीं सम्पत्तिमेकोप्यनुभवति भवी-निर्भयो भावभूतिम्,
ब्राह्मीं यश्चत्वजिह्मां प्रथयति प्रथुलां पोथयन्पार्थवीञ्च।।८।।

स शक्तोप्यासक्तो न भवति-भवेसक्तहृदयः,
हरे यो नाहारो विहरति विहारे-चरणयोः।
स माधुर्यं राघावपुषि परिपश्यन्नपि सदा,
तदाधारा धारानुरसि धरति प्रीतिरसिकः।।९।।

***

–: सिद्धान्त रहस्य :–

- किसी के विषय में परोक्ष में या सम्मुख अपनी एक राय रक्खो। यदि किसी कारण वश अप्रिय सत्य न कह सको या सुनने वाला उसे सुनना ही न चाहे, तो किसी भी अवस्था में उसकी चर्चा मत करो। प्रायः देखा गया है कि झूठी सभ्यता या लौकिक प्रतिष्ठा के नशे में आकर मनुष्य हलकेपन का उद्‌गार निकाला करता है, जो द्वेष या मखौल उड़ाने से सम्बन्ध रखता है। ऐसे भावों को निन्दा, पिशुनता आदि शब्दों से शास्त्रों में कहा गया है।

– श्रीस्वामीजी

गुरु-स्तवनम्

— सूर्य प्रकाश गोस्वामी

पञ्चाशन्नववर्णसिक्तललिता संगृह्य यो तूलिका
ब्रह्मास्तम्बमयी विचित्र रचना चित्राङ्कितं चित्त भूः।।
नाना वर्णमयी करोति सुखदा लीलायितुं सर्वदा
तं सर्वात्म स्वरूपिणं निजगुरुं वन्दे प्रसन्नं प्रभुम्।।१।।

कलाभ्यां तत्वाभ्यां भुवन वर्णाभ्यां परगतः
पदाभ्यां मंत्राभ्यां पर तर पदे यो विलसति।
अचिन्त्योऽवक्तव्यो परम सुहृदो स्नेह बपुषः
सप्तीमो साकारोऽभवत मम हेतोर्करुणया।।२।।

न ब्रह्मा रुद्रो वा हरि सुरपतिर्नासुर गणाः
न पृथ्वीर्नायोग्निः अनिल गगनर्वाः नहि दिशः।
न कालो नो वेदा रवि शशि ग्रहाः नैव यजनः
महाज्योतिश्चैकः स्वयम भूता गुरुमयी।।३।।

प्रकाशानन्दात्मा परम महिमस्तव गुरो
सदा भक्त्या मग्नः कथयति कविर्विष्णु प्रमुखः।
स्वकीयात्मैवैषा निरतिशय आनन्द सरणिः
महाविद्या रूपा अखिलमिदमावर्त जयति।।४।।

सहस्रारे पद्मे निशिकर प्रभे चारु रुचिरे
महाशून्याकाशे द्विदश सुदले वारिज प्रभे।
समासीनं पीठे परम पुरुषो शक्ति सहितो
सदा प्रेमाकारो अनिश दृग विषयो भवतु मे।।५।।

हतो माया मृत्युर्तव वचन खङ्गेन मनसः
प्रभिन्नं मालिन्ये व्यपहृतमहङ्कार तिमिरम्।
हतो में कामाद्याः प्रबल रिपवः स्वात्म विषयः
महेश त्वत्सेवाविदित सुविवेकाग्नि महसा।।६।।

त्वंनाथस्त्वं गुरुस्त्वं परपद जनिताम्नाय विद्यार्थ कोशस्त्वं
शंभुस्त्वं परेशः परतर महिमा त्वं परात्वं पराग्निः।
त्वं भानुस्त्वं सुधांशुस्त्वमपि च जननी त्वं पिता त्वं सुमित्रस्त्वं
भ्राता बान्धवस्त्वं त्वमसि भवनिधिस्त्वां विना नास्तिमेऽन्यः।।७।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

'ककाररूपा कल्याणी' (त्रिशती) उस महाशक्ति का स्वभाव कल्याण करना है, वह एक रूप में ही सदा रहती है, क्यों कि सच्चिदानन्द उसका स्वभाव है। श्रीमाता के उपासकों को कोई लौकिक चिन्ता न करके उसका स्मरण एवं विश्वास रखना चाहिए। वह सर्व व्यापक और अपने भक्तों की सभी बातों को जानती है। यह तत्त्व सांख्ययोगियों की जड़ प्रकृति नहीं है, न वैशेषिकों का परमाणु ही है, न वेदान्तियों की माया ही है। इन सबसे परे ब्रह्म स्वरूप से रहने वाली वह चेतन है। दया-स्नेह करना उसका स्वभाव है। आध्यात्मवादियों की साधना, वीरों की राष्ट्ररक्षा, असुरों को पराजित करके देवताओं को विजय प्रदान करना उसका स्वभाव है।

– *श्रीस्वामीजी*

कलौ स्थानानि पूज्यन्ते

– *श्री सुब्रह्मण्य शास्त्री*
केदारघाट, वाराणसी

अस्मिन् प्रपंचे भगवतः परमेशानस्य करुणावरुणालयस्य विभूतयः समय विशेषे आविर्भवन्ति। आविर्भूय च मानवानां ऐहिकामुष्मिकसमुन्नतये कञ्चन् परिष्कृतं मार्गमुपदिश्य समय विशेषं प्राप्य तिरो भवन्ति इति नैसर्गिकी कथा। अस्मिन् भारतवर्षे हि भगवदंशभूता भगवदवतारा वा बहवः सन्तः प्रादुरभूवन्। तैः हि किं किं कृतम् इत्यत्र इतिहास एवं परमं प्रमाणम्। परमद्यत्वे भगवदंशभूताः स्वामिचरणाः प्रातःस्मरणीयवरणाः स्वयं दासास्तपस्विनः इति वचनमनुवर्तयन्तः षष्ठिवर्षाणि एकस्मिन्नेव स्थले तपस्यामकुर्वन्। 'साधवः तीर्थानि स्वयं कुर्वन्ति' इति न्यायेन तैरपि गंगायमुनादिवत् कश्चन तीर्थ विशेषः मध्यप्रदेशान्तर्गते दतिया नामके नगरे तपश्चरणेन भगवत्याः पीताम्बरादेव्याः नकुली सरस्वत्याःपूजनेन पवित्रमन्त्रजपेन तपसा समाधिना च तीर्थश्चक्रे। एतेच महनीय कीर्तयः आदिशक्तेः भगवत्याः समुपासका वहून् विनेयान् शिष्यान् उपदेशेन शक्तिदीक्षायां दीक्षितान् अकुर्वन्। एतेषां नामस्मरणम् अस्माकं समेषामास्तिक जनानां महते श्रेयसे कल्पते। ऐते –

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूष पूर्णाः त्रिभूवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

इति अभिधोक्तिम् चरितार्थयन्ति। एतेषां महानुभावानां प्रथमदर्शनं कृष्णानन्द-बुधौलिया द्वारेणैव मम समजनि। तान्पाठयितुमहं भाण्डेरनगरं प्रति गतवानासम्। तैरहमुद्बोधितः अत्र स्वामिपादाः विराजन्ते तेषां दर्शनं त्वयावश्यमेव कर्तव्यमिति। अहं निरचैषम्। तदा तैः साकमेव दतिया नगरं प्राप्तवान्। तत्र स्वामिपादानां दर्शनमभूत्। तदिदानीं स्वप्नवत् प्रतिभाति। प्रथम परिचय एव स्वामिपादैः ममोपरि निरुपधिकः स्नेहः प्रादर्शि – दिनत्रयं त्वयात्र स्थातव्यमिति। तत्र वनखण्डेश्वरः महादेवः विराजते तस्य रुद्राध्याय चमकाध्यायाभ्याम् अभिषेकं विधाय महिम्नस्तोत्र पाठेन साकं श्रीपादानामन्तिकमुपगतवान् आसम्। तदानीं प्रसन्न चित्तास्ते वेदचर्चया वेदान्तचर्चया च महान्तम् आनन्दमन्वभूक्त्। तदा प्रभृति तस्मिन् आश्रमे यत् किमपि कार्य प्रचलति तदा सुब्रह्मण्यशास्त्रिणः आमन्त्रितव्याः इति वाक्यमासीत्। तदनुसारेण अहमपि यथासमयं उपस्थाय स्वकीय सेवया शास्त्रचर्चया च भगवत्याः पीताम्बरा देव्याः मानसिकं वाचिकमर्चनं कृतवानस्मि।

पञ्चषेभ्य: वर्षेभ्य: प्राक् कदाचित् स्वामिपादानां दर्शनसमये मया वेदविषये चर्चाकृता। तत्र चतुर्वेदपारायणं कर्तव्यमिति स्वामिपादै: आज्ञप्तम्। तदानीमेव वेद्यशिरोमणिना रामनारायण शर्मणा कृत्स्नोऽपि व्ययभार: स्वीकृत:। चतुश्चत्वारिशदिनानि क्रमश: ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदानां पारायणं समवर्तिष्ट। वैदिका: विद्वांस: प्रभूतेन धनेन वस्त्रादिना च बहुधा सम्मानिता: तत्र श्रीपादानां कृपैव परमं मूलम्।

अपि च श्रीचरणै: केवलेन पूजनेन उपन्यास-मुखेनच जनताया: उपरि प्रभाव: न तावान् पतति यथा ग्रन्थलेखनेन सरल-भाष्य निर्माणेन च। सर्वेजना: श्रीविद्या च समुद्धर्तव्या इति मनीषया प्रकाश नामकं भाष्यं षष्णामुपनिषदां अन्यानि च कानिचित् प्रकरणानि श्रीविद्या प्रतिपादकानि सरलया भाषया निर्माय प्रकाशं नीतानि। तदर्थं समग्रमपि भारतवर्ष तेषां कृते सर्वथा अधमर्णं भवति। इत्यत्र नास्ति संदेह लेशोऽपि, अत: श्रीविद्या समुपासकै: शाक्तै: जीवनमध्ये सकृत् असकृद्वा दतिया नगरं गत्वा तेषां भगवत्या: पीताम्बरा देव्याश्च दर्शनं विधाय तेषांमनुग्रहभाजनं भवेयुरिति समुश्रयं सानुनयं प्रार्थयते।

***

–: सिद्धान्त रहस्य :–

- देखा गया है कि बहुत से लोग बाहरी सम्बन्ध से अलग दीखते हैं और लोगों को वैसा ही बताते भी हैं; तथापि मन में उन्हीं छोड़े हुए सम्बन्धों के विषय की बड़ी लम्बी चौड़ी स्कीम (Scheme) बनाया करते हैं। किसी ने अपने साथ अपकार किया तो उससे किस प्रकार बदला लेवें, अमुक को किस तरह गिरावें या उसका अनिष्ट कैसे हो इत्यादि वाली बातें वे सदैव सोचा करते है और ये अत्यन्त हानिकर परिणाम पहुँचाने वाली हैं, यही प्रतिहिंसा आदि के रूप में परिणत होकर अनर्थ को उत्पन्न करती है। अत: इनसे बचने का प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है।

– *श्रीस्वामीजी*

एक श्रद्धाञ्जलि

—सुमेरनपीठाधीश्वर जगद्‌गुरु
शंकराचार्य शंकरानन्दजी महाराज, वाराणसी

चीन के द्वारा भारत पर आक्रमण होने पर हमें ज्ञात हुआ कि दतिया में पीताम्बरा पीठस्थ एक महात्मा तान्त्रिक अनुष्ठान कराने जा रहे हैं, जिसमें एक सौ आठ दीक्षित विद्वान पंडितों की आवश्यकता है, हमें भी किसी ने प्रेरित कर दतिया भेजा – परन्तु वहाँ पर लगभग ८० पंडित ही उपस्थित हुये, स्वामीजी ने कहा कि इतने पंडितों से भी कार्य होगा। स्वामीजी के द्वारा निर्मित संकल्प के आधार पर विद्वानों द्वारा दो प्रयोग आरम्भ किए गए। प्रथम श्री बगला माई का अनुष्ठान एवं द्वितीय श्री धूमावती की आराधना, दोनों प्रयोग स्वामीजी के ही देख रेख में हुये। उस समय मैं ब्रह्मचर्य आश्रम में था। स्वामीजी के पास प्रात: सायं उपस्थित होकर उनकी विचारधारा एवं निष्ठा के विषय में गंभीरता पूर्वक अध्ययन करता था। उनकी दिनचर्या के विषय में जानने की हमारी बड़ी उत्कंठा थी।

उनके विषय में हमने विभिन्न लोगों से उनके चमत्कारिक कार्यों के विषय में सुना था। शनैः शनैः स्वामीजी के सान्निध्य एवं सत्संग से हमारे अन्त:पटल पर उनकी शक्ति एवं निष्ठा का प्रभाव उत्तरोत्तर पड़ने लगा। उनका यह सुदृढ़ सिद्धान्त था कि भारत के पतन का कारण शक्ति उपासना की कमी होने के कारण है। साम्प्रदायिक द्वेष एवं आगम रहस्यों के अनवबोध के कारण भारतवासी दिग् भ्रमित होकर विभिन्न पथानुगामी बनते गए तथा प्राचीन निगमागम सिद्धान्त से भटककर वर्तमान में साम्प्रदायिकता, एवं संकीर्णता के कारागार में आबद्ध हो गए हैं।

उनकी भावना शक्ति की उपासना के द्वारा राष्ट्र की शक्ति को उत्तरोत्तर वृद्धिगत करने की रहती थी। स्वामीजी सुर भारती के विशेषत: आगम या तन्त्र ग्रन्थों के उत्तम कोटि के विद्वान थे।

सामान्यतया इंग्लिश, उर्दू तथा क्षेत्रीय भाषाओं का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था।

वास्तव में स्वामीजी प्राचीन सन्त परम्परा के ज्वलन्त प्रतीक थे, उन्होंने साधकों की साधना को दृढ़ एवं परिमार्जित करने के लिये ही सिद्धस्थान वनखण्डेश्वर महादेव के सान्निध्य में पीताम्बरा पीठ की स्थापना की। संस्कृत भाषा ज्ञान के बिना प्राचीन आध्यात्मिकता का प्रचार प्रसार असंभव है, इस प्रकार की उनकी मान्यता थी।

भगवान परशुराम के प्रति उनकी अटूट निष्ठा थी किन्तु किसी के प्रति लेश मात्र भी द्वेष उनके हृदय में नहीं था। हम उनके द्वारा संचालित तथा प्रवर्तित पीताम्बरा पीठ की विभिन्न संस्थाओं की शुभ कामना करते हैं तथा आशा करते हैं कि उनके द्वारा संगृहीत विज्ञान तन्त्र ग्रन्थों का पीठ के संचालकों द्वारा प्रकाशन होने से भारतीय साधना के पुनरुज्जीवन में योगदान मिलेगा।

***

–: वैदिक उपदेश :–

इस दृश्यमान सृष्टि की उत्पत्ति के पहले एक अद्वैत रूप से रहने वाले परमतत्व ने अपनी सच्चिदानन्द रूप वाली चेतन परमशक्ति के द्वारा इस जगत को उत्पन्न किया, क्यों कि बिना शक्ति के किसी कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इस लिए वह परमात्मा हम सब का पिता है। जैसे भाई-बन्धु हमारे कार्यों के सहायक होते है इसी तरह वह हमारे सभी का बन्धु है।

– ***श्रीस्वामीजी***

श्री पीताम्बरा पीठ पर ब्रह्मयज्ञ

– पं. रामनाथ मिश्र 'आचार्य'
वाराणसी

लगभग ७-८ वर्ष के पूर्व श्रीपीताम्बरा पीठ दतिया पर पूज्यपाद राष्ट्रगुरु श्री स्वामीजी महाराज की प्रेरणा से ब्रह्मयज्ञ का अपूर्व आयोजन हुआ था। ब्रह्मयज्ञ के आचार्य का गुरुतर भार मुझ पर सौंपा गया था। शास्त्रों में ब्रह्मयज्ञ का महत्त्व विविध प्रकार से प्रतिपादित है। स्मृतियों के अनुसार ब्रह्मयज्ञ सभी यज्ञों में श्रेष्ठ है। स्वाध्याय को ही ब्रह्मयज्ञ कहा गया है **''स्वाध्यायो हि ब्रह्मयज्ञः''** पीताम्बरा पीठ पर ब्रह्मयज्ञ का आयोजन बृहद् रूप से किया गया था। वर्तमान समय में वेदों के सस्वर पाठ करने वाले वैदिकों की संख्या न्यून होती जा रही है। इसलिये भविष्य में इस प्रकार के ब्रह्मयज्ञ का आयोजन भी सम्भव न होगा। पीताम्बरा पीठ पर जिस प्रकार का साङ्गोपाङ्ग ब्रह्मयज्ञ हुआ उस प्रकार का ब्रह्म यज्ञ अन्यत्र कही नहीं हुआ। ब्रह्मयज्ञ ४४ दिन तक चला। इसमें प्रथम ११ दिन ऋग्वेद का षडङ्ग सहित पाठ हुआ। उसके बाद शुक्ल यजुर्वेद, कृष्ण यजुर्वेद एवं कण्व शाखा का ११ दिन तक पाठ हुआ। बाद में इसी क्रम के अनुसार सामवेद तथा अथर्ववेद का पाठ चला। इस ब्रह्मयज्ञ में वेद की छह शाखाओं का षडङ्ग सहित पाठ किया गया। सभी वेदपाठी अपने विषय में पूर्ण निष्णात थे। पूजन एवं हवन का कार्यक्रम भी साथ चलता था। सायंकाल में सभा का आयोजन किया जाता था जिसमें वेद के विभिन्न पाठ होते थे तथा वेद के महत्त्व पर विद्वानों के प्रवचन होते थे। पूज्यपाद स्वामी जी महाराज प्रतिदिन वैदिक विद्वानों से वार्तालाप करते थे तथा ब्रह्मयज्ञ से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करते थे।

पूज्यपाद शास्त्र विहित कर्म को ही प्रधानता देते थे। इस प्रकार के यज्ञ का सफल आयोजन पूज्यपाद के आशीर्वाद का ही परिणाम था।

***

श्रद्धाञ्जलिः

– मोहनलाल चतुर्वेदी, 'आयुर्वेदाचार्य'

धन्योऽस्ति वै भारतभूमिदेशः।
सिद्धैः प्रसिद्धैरनुसेव्यमानः।।
प्रान्तः सुधन्यो नगरञ्च धन्यम्।
वर्णैः समस्तैरधितिष्ठमानम्।।१।।

धन्यं गृहं तत्परमं पवित्रम्।
श्रिया युतं धान्यधनादिपूर्णम्।।
यस्मिन् प्रजातो महनीयकीर्तिः।
श्रीस्वामिवर्य्यो विबुधैकवन्द्यः।।२।।

धन्यं कुलन्ते जननी च धन्या।
धन्यः पिता ते परमर्षितुल्यः।।
धन्यो गुरुस्ते सफलाभिलाषः।
तन्त्रोपदेष्टाऽपि च ते सुधन्यः।।३।।

सिद्धिप्रदा सर्वसमृद्धिदात्री।
संस्तम्भिनी या जगति प्रसिद्धा।।
आराध्यभूता बगलामुखी सा।
पीताम्बरा धन्यतमा बभूव।।४।।

मध्यप्रदेशे दतियाख्यपुर्य्याम्।
स्थाने पवित्रे वनखण्डक्षेत्रे।।
महालये श्रीशिवशङ्करस्य।
पुरातने सिद्धनिषेविते च।।५।।

ध्याने स्थितः श्रीयुत स्वामिवर्य्यः।
अहर्निशं मन्त्रजपेषु मग्नः।।
तपोभिरात्मानमलङ्‌चकार।
प्रवर्तयामास च धर्मचक्रम्।।६।।

पीताम्बरापीठमतिप्रसिद्धं।
संस्थापयामास जगद्विशिष्टम्।।
देव्यालयं यत्र सुभक्तवर्य्याः।
स्वाभीष्टसिद्ध्यै बगलां भजन्ते।।७।।

श्रीस्वामिवर्य्यैः शिवशक्तितन्त्रे।
शिष्याः प्रशिष्याः मन्त्रोपदिष्टाः।।
ग्रन्थाः विशिष्टाः विविधोपयुक्ताः।
श्रीस्वामिवर्य्यैः रचिता अनेकाः।।८।।

पाठेन तेषां सुतरां मनुष्याः।
ज्ञानस्य कोषं विपुलं लभन्ते।।
तन्त्रक्रियासाधनतत्पराश्च।
स्वाभीष्टसिद्धिं परमां लभन्ते।।९।।

गोविप्रदीनान् परिपालनार्थं।
तन्त्रादिशास्त्रान् परिवर्द्धनार्थम्।।
जातः पुनर्भारतभूमिदेशे।
श्रीशङ्करः स्वामिवरो महात्मा।।१०।।

आपद्विपद्भ्यो जनत्राणहेतोः।
अनुष्ठितास्तन्त्रक्रिया अनेकाः।।
लोकस्यकल्याणकरो महात्मा।
श्रीस्वामिवर्य्यो भविकाय भूयात्।।११।।

कार्यं स्वकीयं सम्पाद्य सर्वम्।
निष्कामभूतः परमेष्ठिवर्य्यः।।
देवान्पुनस्तन्त्रसुपाठनार्थम्।
भूमि परित्यज्य दिवं प्रयातः।।१२।।

रामो हि कृष्णश्च महर्षिमुख्याः।
कालेन नीताः सुदिवं प्रयाताः।।
तथापि यातः स्वयमेव त्वन्तु।
कालस्य शक्तिर्नहि ते प्रयाणे।।१३।।

शोकं त्वदीयं नहि सह्यमानाः।
भक्तास्त्वदीयाः परिपीड्यमानाः।।
त्वामेव शरणं परिलब्धुकामाः।
दिवानिशं त्वामिह संस्मरन्ति।।१४।।

श्रद्धानुरक्तो हि गुणानुरक्तः।
स्नेहानुरक्तश्च हि ते सुभक्तः।।
श्रद्धाञ्जलिं सादरभक्तिपूर्णाम्।
त्वदीयचरणेषु समर्पयेऽहम्।।१५।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

इस जगत का कर्ता एवं संचालक जड़प्रकृति एवं जीव नहीं हो सकते। ज्ञानशक्ति का विकास जड़प्रकृति में न होने से नियामक या संचालक वह नहीं हो सकती। जीव में ज्ञान-शक्ति संकुचित अल्पमात्रा में होने से जगत के उक्त कार्य के लिए जीवात्मा भी अनुपयुक्त है। जगत का संचालन इन्द्र, वरुण, अग्नि आदि देवताओं के द्वारा वही जगदीश्वर कर रहा है।

– *श्रीस्वामीजी*

श्री पीताम्बरा पीठ के महर्षि

– *सूर्यदेव शर्मा,* दतिया

मेरे गुरुदेव विश्व की प्रख्यात शक्तिपीठ श्री पीताम्बरा पीठ दतिया के संस्थापक ब्रह्मलीन राष्ट्रगुरु पूज्यपाद स्वामी जी महाराज के द्वितीय महानिर्वाण दिवस पर जब मुझ से संक्षेप में कुछ लिखने के लिये कहा गया तो मैंने इस आग्रह को सहर्ष स्वीकार कर लिया, परन्तु जब लिखने बैठा तो मैं ऐसे असमंजस में पड़ गया कि यह सब जो मैंने विगत ३०-३२ वर्षों के अन्तराल में देखा सुना व अनुभव किया, वह सब संक्षेप में कैसे लिखूँ? शायद, हजार पृष्ठ भी कम होंगे पूज्यपाद स्वामी जी महाराज पर लिखने के लिए। वे कृपा के महासागर थे। किसी की आँखों में आँसू तो देख नहीं सकते थे। किस के लिये क्या नहीं किया? कितनों को नवजीवन प्रदान किया। इन सब की कोई गिनती नहीं है। एक बार वे किसी पूंजीपति को निराश लौटा सकते थे, किन्तु किसी गरीब को जीवन पर्यन्त निराश नहीं लौटाया। गरीबों को वे बेहद ख्याल में रखते थे। ऐसे महान कृपानिधान के बारे में क्या लिखूं? चमत्कारों के बारे में सोचता हूँ तो कौन सा चमत्कार छोडूं और कौन सा लिखूँ। उनकी साधना, भक्ति, कर्मनिष्ठा, लोक व्यवहार, कुशलता, ज्ञान के बारे में लिखने को सोचता हूँ तो लगता है कि इस महासागर में से कौन सा मोती निकालूं और कौन सा नहीं। उनके ज्ञान के संबंध में सोचता हूँ तो हजारों ग्रन्थोंवाली वह लायब्रेरी मेरे सम्मुख आकर खड़ी हो जाती है। जिसमें रखे तमाम ग्रन्थ उन्हें कण्ठस्थ थे। संस्कृत, पाली व अन्य प्राकृत भाषाओं के अलावा अंग्रेजी, हिन्दी उर्दू, फारसी, बंगाली, मराठी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं के वे महान पंडित थे। शायद ही ऐसा कोई धर्म हो जिसका सूक्ष्मतम अध्ययन उन्हें न हो। संगीत की बात करें तो वे शास्त्रीय संगीत के प्रकाण्ड ज्ञाता थे। साहित्य संस्कृति और जीवन को कोई भी ऐसी विद्या शेष नहीं रही जिसका पांडित्य मेरे गुरुदेव के लिये अप्राप्त रहा हो। उन्होंने इन सब को अपने जीवन में व्यवहारिक रूप से उतारा था।

अत: जब महादेव के महाजीवन के महासागर में गोते लगाते थक गया तो सोचा कि अब मेरे प्रथम दर्शन और उससे मिली प्रथम उपलब्धि पर ही लिख डालूं।

लगभग सन् १९३७ से मैं ग्वालियर में हूँ। वैसे मेरा जन्मस्थान गाजीपुर उत्तर प्रदेश में है। ग्वालियर राज्य में मैंने हिन्दू महासभा का नेतृत्व संभाल रखा था। उन दिनों मेरी उग्र गतिविधियों के कारण सरकार मुझसे परेशान रहा करती थी।

उन्हीं दिनों यानि २६ जनवरी १९४८ को मैं संगठन कार्य हेतु तथा एक जनसभा को संबोधित करने के लिये दतिया आया। दतिया उन दिनों एक राज्य था। मेरे दतिया आगमन की सूचना से समूचे राज्य में सनसनी फैल गयी। वहाँ के महाराज श्री गोविन्दसिंह को भी जब यह सूचना मिली तो उन्होंने अपने दीवान श्री कृष्णपाल सिंह को बुलवाया तथा कहा कि ग्वालियर के पंडित सूर्यदेव शर्मा दतिया में हिन्दू महासभा की कोई मीटिंग करना चाहते हैं। ऐसा न हो कि कोई बड़ा उपद्रव खड़ा हो जाये। अत: धारा १४४ जाप्ता फौजदारी लगा दी जाये।

इस आदेश से हिन्दू भड़के। उपद्रव कम होने की बजाय उपद्रव बढ़ने के अवसर ज्यादा बढ़े। अत: २८ जनवरी, १९४८ को दीवान श्री कृष्णपाल सिंह के सुझाव पर पाबन्दी व धारा १४४ का आदेश उठा लिया गया। अब सभा के आयोजन की छूट मिली तो पूरे दतिया में महाराजा के डर से मेरी सभा की अध्यक्षता करने वाला कोई नहीं मिला। मैं बड़ा परेशान हुआ। मुझे एक मित्र ने सुझाव दिया कि दतिया की बनखण्डी में एक महान विद्वान और निर्भीक साधक स्वामी रहते है। उनसे मिलने पर कुछ काम हो सकता है। मीटिंग का समय हो रहा था। मैं परेशान हो रहा था कि विना अध्यक्ष के मीटिंग करना बड़ा अपमानजनक लग रहा है।

२८ जनवरी १९४८ का वह पावन दिवस। जब प्रथम बार मैं दतिया की वनखण्डी के महान तपस्वी साधक के सामने उपस्थित हुआ, प्रणाम व परिचय देने के पश्चात मैंने कहा – ''स्वामी जी! दतिया में कोई हिन्दू नहीं है।''

– क्या कहते हो?'' स्वामी जी बोले। मैंने विनम्रता से कहा – 'हाँ, ठीक कहता हूँ। आज मैं हिन्दू महासभा की एक मीटिंग कर रहा हूँ तो कोई अध्यक्ष बनने के लिए तैयार नहीं है।''

इस पर वे बोले हिन्दू तो मै भी नहीं हूँ। मैं सन्यासीं हूँ। सन्यासी का कोई धर्म नहीं है। लेकिन हिन्दुओं की रोटी जरूर खाता हूँ और वे मेरी सभा की अध्यक्षता करने को तैयार हो गये। उसी समय फिर ऐलान करवाया कि सभा की अध्यक्षता वनखण्डी के स्वामी जी महाराज कर रहे हैं। दतिया की ये आम सभा मेरे जीवन की सबसे बड़ी सभा थी। पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज की वजह से लोग उमड़ पड़े थे। स्वामी जी ने उस सभा में कहा कि अपने पूर्वजों की परम्पराओं व अपनी संस्कृति की रक्षा के लिये संगठित होना ही चाहिये। यह अधिकार सबको है और यह अधिकार होना चाहिए।

पूज्यपाद श्री स्वामी जी की निर्भीकता की यह प्रखरता और भी तेजी से फैल गयी। दतिया के महाराज गोविन्दसिंह जी पूज्यपाद स्वामी जी का खूब सम्मान करते थे। पूज्यपाद में सर्व धर्म के प्रति जो सम्मान था, वह किसी से छिपा नहीं था। तभी तो सिक्ख, ईसाई, मुसलमान, जैन आदि सभी उनके शिष्य परिवार में शामिल हैं।

सन् १९५२ में एक हत्या के मामले में पुन: १४ व्यक्तियों के साथ मैं भी फांस लिया गया और सेशन्स कोर्ट से मुझे व अन्य साथियों को साढ़े सात सात साल की सजा दी गयी तथा साथ में ढाई ढाई हजार रुपया जुर्माना हुआ। यह हत्याकाण्ड एक जमीन को लेकर हुआ था। जमीन के कागजातों में गड़बड़ी करने वाले पटवारी को भी अढ़ाई साल की सजा सुनायी गयी थी। मैं इस केस में मुल्जिम नम्बर एक था। अब मैं बड़ा परेशान हुआ। सुप्रीम कोर्ट में पैरबी करने वाले सुविख्यात बैरिस्टर श्री एन. सी. चटर्जी के पास मैं दिल्ली पहुँचा। वे हिन्दू महासभा के राष्ट्रीय अध्यक्ष थे और मैं केन्द्रीय कमेटी का सदस्य। मुझे देखते ही बोले – 'सूर्यदेव मैं छुड़ाऊँगा तुम्हें, डरो नहीं ... डरो नहीं ...।' मुझ में कुछ साहस आया।

चटर्जी साहब ने जब पूरी फाइल देखी तो वे बोले – 'सूर्यदेव! इसमें कोई गुंजाइश नहीं है, पर डरो मत। तीन चार साल जेल काट लेना, फिर नेकचलनी में छुड़वा लेंगे। जुर्माना भी भर लेंगे।' बस मैं घबड़ा गया। इलाहाबाद हाईकोर्ट में अपील कर ही दी थी। विख्यात बैरिस्टर श्री शशिकांत वर्मा हमारे वकील थे। बाद में आगे चलकर श्री वर्मा इलाहाबाद हाईकोर्ट में मुख्य न्यायाधीश हुये थे। श्री एन. सी. चटर्जी साहब से बड़ी उम्मीद थी। लेकिन वहाँ से निराशा ही हाथ लगी। उसी समय मुझे दतिया के स्वामी जी महाराज का स्मरण आया और मैं सीधा दतिया आया।

पूज्यपाद तो त्रिकाल दृष्टा ही थे। वे मुझे पहिचान गए। मेरे कष्ट भी जान गये। अत: वे बोले – 'तुम बहुत दु:खी हो। कहो क्या बात है?'

मैंने अपनी करुणामय कहानी उन्हें सुनाई। स्वामी जी को सब कष्ट सुनकर बडा दु:ख हुआ। वे माई (भगवती श्री पीताम्बरा श्री बगलामुखी) की ओर संकेत कर कहने लगे – 'यही हाईकोर्ट हैं – और ये ही सबसे बड़ी जज हैं। इनसे निवेदन करो।'

मैंने उनसे प्रार्थना की – 'मेरी वकालत कर दीजिये. ...' इस पर पूज्यपाद ने शेर सुनाया – **''कहां से लायेगा कासिद बयां मेरी जबां मेरी।''**

और कहा – 'तुम खुद अपनी बात करो।' इस समय पुज्यपाद मेरे बगल में खड़े थे। मेरे कन्धे पर हाथ रखे हुए थे। मैंने भगवती माई पीताम्बरा से निवेदन किया।

– ''बस, हो गया काम'' स्वामी जी ने कहा, उसी समय मुझे मन्त्र दे दिया। पूज्यपाद ने और कहा – ''एक दो माला रोज फेर लिया करना स्मरण भर के लिये ताकि याद रहे बुढ़िया को''। पूज्यपाद द्वारा मन्त्र देते ही तीन चमत्कार एकदम हुये।

पहला चमत्कार –

ग्वालियर में मेरे एक धनपति शुभ चिन्तक थे। जो मुझे मेरे मामले मुकद्दमें के लिये आर्थिक मदद देते थे। हाईकोर्ट के लिये धन की आवश्यकता थी। दतिया पहुँचने के पूर्व मैं उन सज्जन के पास गया था, तथा ३० जनवरी, १९४८ से सन १९५२ तक कहाँ गायब रहा? इसकी कथा व्यथा सुनाने उन तक गया था। उसी समय मैंने आर्थिक मदद हेतु भी निवेदन किया था। तो उन्होंने यह कहते हुये साफ इन्कार कर दिया था कि तुम तो सदा लड़ते झगड़ते ही रहते हो। तुम्हें अब एक कौड़ी भी नहीं मिलेगी। तब मैं और भी ज्यादा निराश हुआ।

अब देखिये, जैसे ही मुझे इधर मन्त्र मिला, उधर ठीक उतने ही बजे ग्वालियर में उन धनपति महाशय ने अपने दरबान से जो मुझे व्यक्तिगत रूप से जानता था, पूछा – "सूर्यदेव शर्मा आये थे, कहाँ गये?" इस पर दरबान ने कहा – "उनका घर देखा है। पता लगाकर बुलवा लूंगा।" अपनी ड्यूटी के बाद वह दरबान उस स्थान पर गया जहाँ मैं रहता था। उसने उन धनपति महाशय का नाम व संदेश घर पर छोड़ दिया। जब मैं दतिया से ग्वालियर लौटा तो मुझे उन धनपति महाशय का संदेश मिला। मैं उनके यहाँ पहुँचा। संक्षेप में यह कि मुझे उन्होंने अपने मन से ही इतना ज्यादा रुपया दिया कि हाईकोर्ट की पूरी अपील लड़ने के बाद भी मेरे पास ढाई तीन हजार रुपये बच गये।

दूसरा चमत्कार –

हाईकोर्ट में अपील करने के बाद, अपील का नंबर आने में चार-चार साल लग जाते हैं। लोग सजा काट काट कर घर आ जाते थे। फिर मुकदमों का फैसला होता था कि वे छूट गये। ऐसे वक्त में यह बड़ा भारी चमत्कार हुआ कि मेरी अपील चार महीने में ही नंबर पर आ गई और केस लग गया। मेरे प्रख्यात वकील बैरिस्टर को भी आश्चर्य हुआ। उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला – 'सूर्यदेव! यह सब कैसे जमा लिया?'

तीसरा चमत्कार –

हमारे कत्ल के केस की अपील की सुनवाई इलाहाबाद हाईकोर्ट के माननीय न्यायाधिपति श्री ब्रजमोहनलाल वर्मा जो बाद में हैदराबाद हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस हुए, की अदालत में हुयी। मेरे वकील ने खड़े होकर पैरवी करते हुए मुकदमे की कहानी बतलाने के लिए चार छः वाक्य ही बोले होंगे कि माननीय न्यायाधिपति महोदय ने मेरे वकील को बैठ जाने के लिए कहा। यह भी कहा कि केस घर पर पढ़ लिया है, आपको कहने की कुछ आवश्यकता नहीं है। इस पर मैं और मेरा वकील सुन्न रह गये। इतना बड़ा वकील भी उसी दिन हताश हो गया। मेरा वकील बैठ गया।

अब माननीय न्यायाधिपति ने सरकारी वकील से कहा कि अब आप बताइये कि इन्हें जो सजा दी गई है उसे बरकरार क्यों रखी जाये? माननीय न्यायाधिपति के इस प्रश्न पर अभियोग पक्ष का सरकारी वकील मानो मूक हो गया, उससे कुछ बोलते ही नहीं बना। उसने सिर्फ इतना कहा कि कब्जा हो गया था। लेकिन इतना नहीं मारना था कि वह मर जाये।

इतना सुनते ही माननीय न्यायाधिपति बोल उठे – "हमने ऐसे प्रवचन बहुत सुने हैं। आप बैठ जाइये, और इलाहाबाद हाईकोर्ट के माननीय न्यायाधिपति श्री ब्रजमोहनलाल वर्मा ने अपने स्टेनोग्राफर को बुलवा कर जजमेन्ट लिखवाया और हमें छोड़ दिया। मन्त्र के ये तीन चमत्कार मैंने उन दिनों देखे। छूटने के बाद पूज्यपाद के पास आया। इसके बाद मुझे उनसे सब कुछ मन्त्रों के माध्यम से ही मिला। तीन वक्त विधायक चुना गया। पूरे क्षेत्र में मेरी प्रतिष्ठा है। पंडित द्वारिका प्रसाद मिश्र के मुख्यमंत्री काल में भी मैं विधायक था। उन्हें भी विधानसभा में खूब सुनाता था और उससे कहीं ज्यादा उनका स्नेह सम्मान पाता था। आज मैं पूर्णरूपेण सम्पन्न हूँ। उनकी इच्छानुसार मैंने अपनी ढाई हजार रुपया प्रतिमाह के वेतन की नौकरी छोड़ी और अब उनके आदेशानुसार ही श्री पीताम्बरा पीठ ट्रस्ट का मंत्री हूं।

पूज्यपाद स्वामी जी महाराज ने मंत्रों के माध्यम से हजारों असाध्य रोग से पीड़ित लोगों के रोग ठीक किये। हजारों लोगों के मामलों, मुकद्मों आदि संबंधी कष्ट दूर किये। राष्ट्र की रक्षा हेतु चीनी आक्रमण के समय अनुष्ठान करवाया। मुम्बई में अंग्रेजी साप्ताहिक 'इल्युस्ट्रेटेड वीक्ली' ऑफ टाइम्स ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन ने उन दिनों लिखा था – "यह एक आश्चर्य जनक घटना है कि इधर अनुष्ठान की पूर्णाहुति हो रही थी, उधर चीन द्वारा अपने सैनिकों को वापस बुलाने का आदेश जारी हो रहा था।"

शत शत नमन ऐसे मेरे गुरुदेव को ....!

***

–: वैदिक उपदेश :–

मनुष्य अभिमानवश सभी कार्यों का अपने को कर्ता समझता है परन्तु इसका यह समझना यथार्थ नहीं है। अपने अल्प सामर्थ्य एवं ज्ञान से उसके कार्यों में त्रुटि का होना अनिवार्य है। जिस महान शक्ति परमात्मा ने अपनी स्वतन्त्र शक्ति से विश्व को बनाया है उसकी सहायता बिना मनुष्य कुछ भी नहीं कर सकता जैसे मकान बनाने में मिट्टी, पत्थर, लोहा, लकड़ी आदि वस्तुओं की सहायता लिए बिना कोई मकान नहीं बना सकता। उक्त चीजें मनुष्य की निर्माण शक्ति से नहीं बनी हैं। इसी प्रकार संसार के सभी कार्य समझने चाहिए।

– ***श्री स्वामीजी***

गुरुवर्यो विजयताम्

– देवीसहाय दीक्षितः

दन्तवक्त्र पुरीरम्या वनखण्डीश्वरः शिवः।
शिष्यैः परिवृतस्तत्र गुरुवर्य्यो विराजते।।१।।

पञ्चत्रिशून्य युग्माब्दे तपोन्ते शुचिमासके।
पूर्णातिथौ गुरोवरि गुरुपूजा समुत्सुकाः।।२।।

देशदेशान्तरात्प्राप्ताः राजानोपण्डिताःवराः।
भिषजो वणिजः श्रेष्ठाः श्रद्धावन्तोऽनसूयकाः।।३।।

अन्ये भक्ताः महात्मानः धनिनश्च महाधियः।
नमस्करोति भक्तेभ्यो देवीपूर्वसहायकः।।४।।

जयतु जयतु वन्द्यो वेद विद्यानुरागी
जयतु जयतु धन्यो धर्मधारी धुरीणः।

जयतु जयतु मान्यो मन्त्रशास्त्रादिवक्ता।
जयतु जयतु देवो देववाणी विलासः।।५।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

हमेशा से मनुष्य ईश्वर बनने का प्रयत्न करता रहा है परन्तु इसमें उसको सफलता नहीं मिल सकी है। आगे भी नाउम्मीदी ही है। इसलिए वेद ने त्यागपूर्वक व्यवहार करने की आज्ञा दी है और दूसरे के अधिकारों को छीनने के लिए मना किया है।

– श्री स्वामीजी

संस्मरणाञ्जलिः

– *लक्ष्मीकान्त पाठक*
एम. ए. साहित्य शास्त्री

आर्यावर्त पवित्र देश निलयो सिद्धो परिव्राजको,
कोटिश्री समलंकृतो बुधवरो ब्रह्मज्ञवंशोद्भवो।
शक्त्यानंद निमज्जितोसि सततं पीयूष-पाने-परः,
कारुण्यामृतसागरो करुणया त्रायस्व माम् रक्ष माम्।।१।।

पञ्चाम्नाय प्रकाशको यतिवरो योगीश्वरो योगगो,
सप्ताचार विभास्करो भवनिशा तन्त्रेण दूरीकृता।
श्रीविद्या-सकला-कला-कुशलता पांडित्य पारंगतः,
श्री स्वामी-चरणारविन्दयुगलौ कान्तस्य प्राणाधिकौ।।२।।

रोगी दीन जनोपकार निरतः ज्योतिष्मती कल्पदः,
वेदानां परिभाषको श्रुतिधरो ज्ञानस्य गंगाधरो।
दैवज्ञो भव-रोग-संकटहरो सिद्धेश्वरो सिद्धिदः,
वंदे तं वनखण्ड पीठ ललिते पीताम्बरा स्थापकम्।।३।।

तंत्रोद्यान-प्रफुल्ल-चम्पकवरो सौरम्यरूपान्वितो,
धर्माकाश-पुनीत-तारक-सभा शोभान्वितो चन्द्रमा।
ज्ञान-प्राङ्गण दीप्त-दीपकवरो स्नेहान्वितो शोभनो;
भक्तानामति जीर्ण-शीर्ण-तरणीं पारं नय त्वं प्रभो।।४।।

***

पीताम्बरा पीठाधीश्वर पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज की साधना

– *ललिता प्रसाद शास्त्री*
पीताम्बरा पीठ, दतिया

दतिया नगर के दक्षिण दिशा की ओर स्थित वनखण्डेश्वर महादेव का स्थान अत्यंत प्राचीन सिद्ध स्थान है। यह स्थान महाभारत काल से ही सिद्ध महात्माओं की तपस्थली रहा है। अपने समय के महान तान्त्रिक हिमकर ओझा ने यहीं पर सिद्धि प्राप्त की थी। इस शताब्दी के महान विद्वान अयोध्यानाथ उपाध्याय ने यहीं पर तपस्या कर "घटिकाशतक" की उपाधि प्राप्त की थी। उनके वंशज अभी भी काशी में निवास करते हैं। उपाध्याय जी ने अपने गोस्वामीचरितम् काव्य में इसी स्थान के कारण दतिया की तुलना काशी से की थी। इसी स्थान पर महाभारत काल के एक दिव्य महात्मा अभी भी निवास करते हैं, और अनेक भक्तों को समय समय पर दर्शन देते रहते हैं। जिनको उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, उन सब ने उनको एक ही वेशभूषा तथा आकृति में देखा है। लम्बा विशाल शरीर, आजानुबाहु (भुजाएं) तथा श्वेत वस्त्र परिधान और लम्बी श्वेत दाढी। इसी रूप में सभी ने उनके दर्शन किये हैं। परम्परागत अनुश्रुतियों से यह भी ज्ञात होता है कि यहाँ पर शिवलिंग पंचमुण्डी आसन पर स्थित है। तन्त्र शास्त्र में पंचमुण्डी तथा नवमुण्डी आसनों का महत्व प्रतिपादित है। इन आसनों से युक्त स्थान पर साधना करने का सौभाग्य विरले ही साधकों को मिलता है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने भी अपने तांत्रिक वाङ्मय में 'शाक्त दृष्टि' नामक ग्रन्थ में नवमुण्डी आसन का महत्व बताया है। पूज्यपाद स्वामी जी महाराज ने ऐसे दिव्य आश्रम पर साधना की और इस स्थान को दिव्यतम बना दिया।

पूज्यपाद स्वामीजी महाराज ने विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया और बाद में देशाटन को निकल पड़े। गुरु के आदेशानुसार उनको साधना करनी थी। वे इच्छित स्थान की खोज में थे। दतिया आकर उनको अनुभव हुआ कि यही स्थान उपयुक्त साधनास्थल है। यहाँ पर साधना करने से साधना कार्य को गति मिलेगी। फलस्वरूप वे यहीं पर रह कर साधना करने लगे। पूज्यपाद श्री स्वामी जी का दतिया आगमन सन १९२९ में हुआ। प्रारंभ में यहाँ जीर्ण हालत में वनखण्डेश्वर महादेव का मंदिर था। समीप ही श्मशान था। एकान्त और निर्जन होने के कारण यहाँ नगरवासी कम

ही आते थे। आज दिखाई पड़ने वाले आश्रम के विशाल रूप का निर्माण पूज्यपाद के यहाँ रहने पर ही हुआ। पूज्यपाद ने लगभग पचास वर्ष यहाँ रहकर साधना की। सामान्यतया पूज्यपाद दिन रात्रि में मिलाकर १२ घण्टे साधना में तल्लीन रहते थे। उनका यह क्रम आजीवन चला। उन्होंने साधना कर अपना लक्ष्य तो प्राप्त किया ही, साथ ही इस युग के साधकों में आत्मविश्वास जगाया। उनकी घोषणा थी कि साधना से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। विश्व में कोई ऐसी दुर्लभ वस्तु नहीं है, जो साधना-साध्य न हो। वे साधना से लौकिक विषय प्राप्त नहीं करना चाहते थे। उनका लक्ष्य तो आत्मज्ञान ही था, परन्तु उनका मत था कि साधना से जो प्रारम्भ में सिद्धियाँ प्राप्त होती है, उनसे साधक को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। साधना से लौकिक विषयों की प्राप्ति को वे बहुत अच्छा नहीं मानते थे, किन्तु इस विषय में उनका दृष्टिकोण उदार था। वे कहा करते थे कि यदि साधना से मनुष्य सांसारिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना चाहता है, और सांसारिक सुविधायें प्राप्त करना चाहता है तो भी बुरा नहीं है, क्योंकि यह भी शास्त्रानुमोदित है। यदि व्यक्ति शास्त्रानुमोदित मार्ग से सांसारिक उद्देश्य की प्राप्ति करता है तो वह भी ठीक ही है। उससे उस व्यक्ति को शास्त्र पर श्रद्धा बढ़ती है। यद्यपि चरम लक्ष्य नहीं होना चाहिये।

पूज्यपाद कहा करते थे कि हमारे आश्रम पर आने वाले व्यक्ति तीन कोटियों में विभक्त हैं। प्रथम कोटि में वे व्यक्ति आते हैं जो अपना पूरा समय साधना तथा शास्त्र चिन्तन में देते हैं, दूसरी कोटि में वे है जो आश्रम पर शारीरिक सेवा के विभिन्न कार्य करते है। तीसरी कोटि उन पुरुषों की है जो धन से सहायता करते हैं, इस प्रकार इनके विचारों से साधना कार्य ही श्रेष्ठ है। अन्य लोग साधना के कार्य में सहायता पहुँचाने से ही उपयोगी हो सकते हैं। साधकों में तथा जन साधारण में भी तांत्रिक प्रयोगों के विषय में जिज्ञासा रहती है। तन्त्र के प्रयोगों में प्रत्यक्ष सिद्धि देखकर लोगों की शास्त्र पर आस्था दृढ़ होती है, परन्तु वर्तमान समय में विरले ही साधक हैं, जो तांत्रिक साधनाओं का प्रत्यक्ष अनुभव करा सकते हैं। पूज्यपाद ने जनसाधारण में शास्त्र के प्रति श्रद्धा हो इस उद्देश्य से आश्रम में अनुष्ठान कार्य कराये। चीन के आक्रमण के समय पूज्यपाद के मन में बड़ी व्यग्रता रही। वे आक्रमण के निरोध के लिये अनुष्ठान कराना चाहते थे। इस कार्य के लिये समस्त भारतवर्ष से ८० तांत्रिक साधकों को इकठ्ठा किया गया और राष्ट्र रक्षा अनुष्ठान सम्पन्न कराया गया। इस अनुष्ठान की प्रचार से दूर रखा गया। अनुष्ठान के समय आश्रम के मुख्य द्वार को बन्द रखा जाता था तथा दर्शनार्थियों को प्रविष्ट नहीं होने दिया जाता था। इस अनुष्ठान में लोगों से आर्थिक सहायता भी नहीं ली गयी। अनुष्ठान ३३ दिन तक चला। अनुष्ठान के मध्य में अनेक प्रकार के अनुभव होते थे। पूज्यपाद सभी से उनके अनुभव सुनते थे और आवश्यकतानुसार अनुष्ठान की विधि में परिवर्तन होता रहता था। अनुष्ठान के

मध्य में ही पूज्यपाद ने अनुष्ठान की सफलता की घोषणा कर दी थी। इस अनुष्ठान में मुख्यत: भगवती पीताम्बरा माता एवम् भगवती धूमावती का आव्हान किया गया था। दिन के समय में शत्रुओं के स्तम्भनार्थ बगलामुखी की आराधना का कार्य होता था। भगवती बगलामुखी स्तम्भन की देवी हैं। इनकी साधना से शत्रु का स्तम्भन हो जाता है। रात्रि में शत्रु के उच्चाटन के लिये भगवती धूमावती की आराधना होती थी। भगवती के दर्शन विकराल होते हैं। उनकी साधना भी उग्र मानी जाती है। उग्र कर्मों में ही उनका आव्हान होता है। इसलिये रात्रि के कार्य में बाहर से आये हुये साधक तैयार नहीं हुये और रात्रि की साधना में अधिकांशत: आश्रमवासी पूज्यपाद के शिष्य ही सम्मिलित हुए। अनुष्ठान को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

आश्रम पर लोगों के उपकार के लिये व्यक्तिगत अनुष्ठान भी होते रहते थे। अनुष्ठानों के लिये पूज्यपाद की आज्ञा प्राप्त करना सहज कार्य नहीं था। जब उनकी इच्छा होती थी तभी स्वीकृति देते थे। अनेक भक्त जन इस हेतु निवेदन करते थे, किन्तु स्वीकृति मिलने पर ही अनुष्ठान होते थे। अनुष्ठान के कुछ ही दिनों में पूज्यपाद अनुष्ठान की सफलता के विषय में बता देते थे। यदि कोई कठिनाई आने की आशंका होती थी तो उसको भी दूर करने का उपाय बता देते थे। अनुष्ठान कार्य में आश्रम के पंडितों को जो पूज्यपाद के शिष्य थे रखा जाता था। अनुष्ठान कार्य में लगे पंडितों को भी विभिन्न प्रकार के अनुभव होते थे और वे पूज्यपाद से निवेदन करते थे। प्राय: सभी अनुष्ठान प्रत्यक्ष फल वाले होते थे और शत प्रतिशत सफलता प्राप्त होती थी। जिस कार्य के लिए पूज्यपाद की अनुमति मिल जाती थी तो यह मान लिया जाता था कि अब कार्य होना निश्चित है। इस प्रकार के अनुष्ठानों से लोगों में साधना के प्रति श्रद्धा पैदा हुई और अधिकांश आश्रम पर आने वाले लोग साधना-पथ की ओर अग्रसर हुए।

पूज्यपाद की साधना का क्षेत्र विस्तृत था। सभी दश महाविद्याओं की साधना को वे करते ही थे, इनके अतिरिक्त अन्य देवी और देवताओं का भी उन्होंने साक्षात्कार किया था। साधकों को भी वे योग्यतानुसार मार्ग निर्देशन करते थे। इस क्रम में वे शाक्त साधना के अतिरिक्त शैव, वैष्णव आदि साधनाएँ भी साधकों को बताते थे। आश्रम पर आने वाले साधक विभिन्न साधना पथों के अनुगामी हैं। सबको योग्यता और रुचि के अनुसार मार्गदर्शन मिला है। पूज्यपाद सभी तांत्रिक विधियों के पूर्ण ज्ञाता थे। समय समय पर इस दिशा में निर्देश भी देते रहते थे, किन्तु उनका विशेष आग्रह जप साधना के प्रति रहता था। स्वयं भी वे दिन रात जप में तल्लीन रहते थे और कहा करते थे कि मन्त्र के जप से सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है। उनके अनुसार जप से साधक अद्वैतावस्था में भी पहुँच जाता है। अन्य सभी मार्ग जटिल हैं और उनमें पतन का भी भय रहता है। यह जपमार्ग राजमार्ग है, इसमें चलने वाले पथिक को लक्ष्य प्राप्त हो जाता है और पतन का भी भय नहीं रहता।

पूज्यपाद साक्षात् शिव स्वरूप ही थे। उन्होंने आजीवन शास्त्र मर्यादा का पालन किया। वे शास्त्रों के प्रति समर्पित थे। उन्होंने वर्तमान समय के अनुसार शास्त्रों की व्याख्या की। आश्रम पर सभी कार्य शास्त्र मर्यादा के अनुसार ही प्रचलित थे। अन्य शास्त्रों के अतिरिक्त धर्म शास्त्रों के रहस्य के वे सूक्ष्म ज्ञाता थे। इतना होने पर भी वे आडम्बर से सर्वथा दूर रहते थे। प्रचार प्रसार में उनका विश्वास नहीं था। उनकी दृष्टि तो योग्य साधकों पर रहती थी और योग्य साधक के मिल जाने पर वे सब कुछ बताने को तैयार हो जाते थे। वे अगाध पांडित्य से परिपूर्ण रहने पर भी सरलतम थे।

संसार के समक्ष साधनामार्ग की सत्यता की उद्घोषणा कर पूज्यपाद जून १९७९ में ब्रह्मलीन हो गये। ब्रह्मलीन होने के पूर्व की एक घटना का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा। एक दिन, प्रात: काल मैं एक पुस्तक लेकर शंका समाधान के लिये पूज्यपाद की सेवा में उपस्थित हुआ। इस विषय पर बातचीत हो जाने पर पूज्यपाद ने हमारी ओर गहन दृष्टि से देखकर कहा कि आज रात्रि में वही दिव्य महात्मा आये और मुझसे कह रहे थे कि तुम्हारा काम पूरा हो गया अब जाने की तैयारी करो। इस प्रकार के बचनों को सुनकर मैं स्तंभित रह गया। उस समय पूज्यपाद पूर्णत: स्वस्थ थे। अत: इस प्रकार की कोई आशंका नहीं थी। बाद में पूज्यपाद ने वार्तालाप का विषय ही बदल दिया। कुछ दिनों पश्चात् उनके अस्वस्थ होने पर उस वार्तालाप की याद बराबर बनी रही।

पूज्यपाद के चरणों में शतश: नमन।

* * *

–: वैदिक उपदेश :–

कर्म-बन्धन से छूटने का यही एक उपाय है कि जगत-हित के लिये कर्म करना चाहिए। जगत-हित के कर्म का ऐसा प्रभाव है कि उससे मनुष्य का व्यक्तिगत स्वार्थ हो ही जाता है। वेद के इस तत्व के आधार पर ही समाजवाद के सिद्धान्त सफल हो सकते हैं। इसको छोड़कर और कोई भी सिद्धान्त सामाजिक उन्नति में पूर्ण सफल नहीं हो सकता।

– **श्रीस्वामीजी**

श्री दतिया स्वामिनस्तवः

– *विश्वनाथ शुक्ल शास्त्री*
प्राचार्य सं. विद्यालय, जालौन

श्री पीताम्बरधारिणीपदयुगध्यानावधूतांहसम्,
सच्चिद्बोधघनं वराभयकरं बाधाहरं शङ्करम्।
विद्यावार्धिममोघशक्तिनिलयं शाक्तप्रमोदप्रदम्,
भक्तानन्दकरं मदीयशरणं वन्दे गुरुं स्वामिनम्।।१।।

गुरुमणिं रमणीय पदाम्बुजं भवहरं महनीयगुणाकरम्।
विमलबोधमनीहमजं विभुं नमतिदासजनोऽयमहर्निशम्।।२।।

जनाराध्यं सिद्धं रुचिरवनखण्डी निवसतिम्,
गिरीशं गौरीशं सुरमुनिनिषेव्यं पशुपतिम्।
शरण्यं कारुण्यामृतरसपयोधिं समरसम्,
सदानन्दं शम्भुं विभवदमहं नौमि सततम्।।३।।

चेतो धावति दर्शनाय भवतां पादाब्जयोः सन्ततम्,
किन्त्वध्यापन भृत्यता निशिचरीतन्मार्गरोधार्गला।
कर्मेदं निजतन्त्रतापहरणं तन्मूलिका जीविका,
मोहव्याध वशोऽस्मि नाथ शरणं ते विश्वनाथोऽधुना।।४।।

***

श्री स्वामीश्वरी पीताम्बरास्तवः

– *विश्वनाथ शुक्ल शास्त्री*
प्राचार्य, जालौन

वनखण्डीश्वरसन्निधौत्रिजगतां पीताम्बरां जन्मदाम्।
दतियापत्तनपालिनीं स्वभजतां सिद्धिप्रदां शारदाम्।।
रसनास्तम्भनकारिणीं खलहृदां सर्वार्थदात्रीं सताम्।
बगलां सेवकसौख्यता मदवतीं स्वामीश्वरीं चिन्तये।।१।।

रजनीकान्ततनुं सरोजनयनां राजत्किरीटोज्वलाम्।
कबरीभारयुतां शशाङ्कवदनां चम्पासुजाभूषिताम्।।
हस्तैर्मुद्‌गरवज्रपाशरसनां सन्धारयन्तीं मुदाम्।
हृदये तां धृतदिव्यपीतवसनां स्वामीश्वरीं चिन्तये।।२।।

परमेष्टिप्रमुखैः सुरासुरगणैः संसेविताम् सर्वदाम्।
परमानन्दमयीं विशुद्धचरितां वेदान्तवेद्यां शिवाम्।।
करुणावारिनिधिं गणेशजननीं गौरीगिरीशप्रियाम्।
स्मरतामार्तिहरीं सुरारिदमनीं स्वामीश्वरीमाश्रये।।३।।

गलानज्यानलपद्मजार्धशशमृद् बिन्दुस्वरूपां पराम्।
निखिलाण्डोद्‌भवपालनेतिकरणीं विद्यामविद्याहराम्।।
ललितां विश्वमनोहरां भवतरीं संसारसारां रसाम्।
दतियाविघ्नविनाशिनीं भगवतीं स्वामीश्वरीमाश्रये।।४।।

सरलान्तःकरणे त्रिलोकभरणे स्वानन्दशरणेऽगुणे।
दतुजान्ते त्रिपुरान्तकस्य दयिते दारिद्र्यविद्रावणे।।
दतिया देवि विरोधि जीवदलनेदुर्देवदग्धस्य मे।
हरदुःखं दयितेशि भीतिहरणे दासस्य दैन्यं महत्ः।।५।।

***

श्री स्वामीजी का प्रसाद

– *कैलास जोशी*
(भू.पू. मुख्यमंत्री म.प्र.)

सन् १९७८ में, मेरी अस्वस्थता के दिनों में श्रीमंत राजमाता सिंधिया ने अनेक बार मुझसे तथा मेरी धर्मपत्नी से पीताम्बरा पीठ पर जाकर महाराज जी के दर्शन करने का आग्रह किया, किन्तु स्वीकारोक्ति के पश्चात् और इच्छा होते हुए भी मैं जाने का कार्यक्रम नहीं बना सका।

अन्ततः अप्रैल में नवरात्रि में संयोग प्राप्त हुआ और मैं अपनी धर्मपत्नी को लेकर चैत्र की नवरात्रि में दतिया पहुँचा।

यह मेरा पूज्य स्वामी जी के दर्शन करने का प्रथम अवसर था। महाराज जी के चुम्बकीय आकर्षण वाले प्रभावी व्यक्तित्व ने मुझे प्रथम दर्शन में ही अत्यन्त प्रभावित किया। उनके साथ एकान्त में लगभग आधा घण्टा मेरी चर्चा हुयी, जिसमें उन्होंने मुझे अत्यन्त आत्मीयता के साथ सांत्वना प्रदान करते हुए अधिकार पूर्ण वाणी में भविष्य में पुनः ऐसे अस्वस्थ होने का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् केवल दो बार मुझे महाराज जी के सान्निध्य में कुछ क्षणों तक रहने का और सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैं केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि मुझे पूज्य स्वामीजी के एक बार के दर्शन में ही इतनी उपलब्धि हुयी, जो शायद अनेकों को वर्षों तक दर्शन करने पर भी नहीं हो पायी होगी। मैं इसे अपना सौभाग्य और स्वयं पर परमेश्वर की अहेतुकी कृपा ही समझता हूँ, जो मुझे स्वामी जी के माध्यम से प्रसाद के रूप में मिली।

इन्हीं शब्दों के साथ मैं पूज्यपाद स्वामी जी के स्मरण में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, एवं आशा करता हूँ कि पीताम्बरा पीठ दतिया स्वामी जी के कार्य को अक्षुण्ण बनाया रखने के लिए निरंतर प्रयास रत रहेगा।

* * *

–: वैदिक उपदेश :–

ईश्वर ने सब सृष्टि को बनाकर मनुष्य को उसकी योग्यता एवं अधिकार के अनुसार कर्म करने का आदेश दिया है। वे कर्म दो प्रकार के हैं - व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक। व्यक्तिगत कर्म रागद्वेष से होते हैं और यही बन्धन के हेतु हैं।

– *श्रीस्वामीजी*

करत प्रवेश मिटे दुख दावा

– वैद्य रामनारायण शर्मा
(संचालक बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, झाँसी)

सम्पर्क गुण-दोष से तो मैं आरंभ से ही एक पक्का आर्यसमाजी था। जब मैं रामगढ़ के रुइया आयुर्वेद संस्कृत विद्यालय का छात्र था, तभी मेरा सम्पर्क एक आर्यसमाजी छात्र से हो गया था। जिसने मेरे विचारों को इस रूप में परिवर्तित होने में काफी सहायता दी थी। उस सम्पर्क से जहाँ मुझ में देशप्रेम की भावना बढ़ी, वहीं छुआछूत के प्रति घृणा और ढोंग-ढकोसलों के प्रति अरुचि भी पैदा हुयी। गैरिक वस्त्रधारी साधुओं के प्रति सम्मान का भाव भी मेरे अन्दर नहीं रह गया था। मैं यह समझता था कि ये साधु अपने देश भारस्वरूप बने हुये हैं, और इनका कोई सार्थक उपयोग समाज के लिए नहीं है। सौभाग्य से एक दिन एक साधु मध्यप्रदेश से पधारे। वे पहले शिक्षा विभाग में काम करते थे। संन्यासी होने के कारण भगवा वस्त्र धारण करते थे और हाथ में त्रिशूल रखते थे। उन्होंने आते ही बताया कि अगर मैं उनके भोजन और निवास का प्रबन्ध कर दूं तो वे मुझे कई उपयोगी युनानी औषधियों के नुस्खे बता देंगे। मैं तैयार हो गया। उन साधु महाराज ने मुझे बतलाया कि झाँसी के पास ही दतिया में एक पहुँचे हुये सिद्ध महात्मा रहते हैं, जो वेद-वेदांग के निष्णात् और परम साधक हैं तथा बहुत बड़े तांत्रिक हैं। उस समय मैं तांत्रिक शब्द से ही चौंक उठता था, और मन ही मन मैंने यह तय किया कि, मुझे किसी तांत्रिक के पास नहीं जाना।

उसी समय बैद्यनाथ कारखाना झाँसी में एक लड़का काम करता था। उसने भी मुझे कई बार प्रेरित किया कि मैं दतिया जाकर स्वामीजी के दर्शन करूँ, किन्तु न जाने क्यों मेरी इच्छा वहाँ जाने की न हुयी। पर एक दिन मैं सब बाल बच्चों को लेकर दतिया देखने के उद्देश्य से चला। यह सन् १९५१ की बात है। उस समय भी आश्रम में जाकर स्वामी जी महाराज के दर्शन की लालसा मेरे मन में बिल्कुल नहीं थी। पर जैसे ही हम लोग उस सड़क से गुजरे जहाँ स्वामी जी का आश्रम था। वह लड़का भी ठीक वहीं दैव संयोग से मिल गया और आश्रम में चलने के लिए अनुरोध करने लगा। इस अनुरोध को मैं टाल नहीं सका।

आश्रम में प्रवेश करते ही मेरे मन की सारी शंकाएं न जाने कहाँ विलीन हो गयीं और मन अनिर्वचनीय आनन्द से उसी प्रकार भर गया – जैसे भरत का मन

राम के चित्रकूट आवास में पहुँचते ही भर गया था –

"भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन।
करत प्रवेश मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा।।"

महाराज जी के दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। मैंने उन्हें एक बड़े पहुँचे हुए महात्मा के रूप में पाया। साधुओं के प्रति मेरी जो दुर्भावना थी, वह न जाने कहां तिरोहित हो गई। उनके सान्निध्य से मेरे अंदर एक नई चेतना का संचार होने लगा। मैंने मन ही मन तय किया कि मैं इस आश्रम में प्रति रविवार को आकर स्वामी जी के दर्शन किया करूंगा। इतने दिन तक न आने का मनस्ताप भी मुझे सता रहा था। बाद में ज्यों-ज्यों मेरा सम्पर्क उनसे बढ़ा मैंने उन्हें सचमुच ही विद्यास्वरूप और सरस्वती का रूप ही पाया।

कुछ समय बाद जब मेरी पत्नी का स्वर्गवास हो गया और मन में मैं खाली खाली सा अनुभव करने लगा, तब भी मुझे स्वामी जी के सम्पर्क में अनन्त शांति मिली। इसी अवसर पर मैंने विद्यारण्य स्वामी कृत पंचदशी का अध्ययन भी स्वामी जी से किया। उनका पढ़ाने का ढंग इतना सुन्दर था कि कोई शंका ही शेष नहीं रह जाती थी। अगर कोई शंका रहती भी तो वह दूसरे दिन निवृत्त हो जाती थी।

स्वामी जी के पास एक महिला जो स्विट्झरलैंड की रहने वाली थी, काशी से दतिया आकर महाराज से ब्रह्मविद्या पढ़ा करती थी। जब भी वह आश्रम में आती थी, वहां एक डेढ़ महीने रहा करती थी। मैंने एक दिन उससे पूछा कि आप काशी छोड़कर, जो सब विद्याओं की खान है तथा जहां सभी विषयों के चूड़ान्त विद्वान मिलते हैं, यहाँ क्यों आया करती हों। उस महिला ने बतलाया कि महाराज जी को छोड़कर कोई भी दूसरा ऐसा विद्वान नहीं है जो इस विद्या को समझ सके। श्री महाराज जी को शास्त्रीय और क्रियात्मक दोनों ज्ञान हैं। उसने यह भी बतलाया कि मुझे दतिया निवास में बहुत कष्ट होता है। मुझे उनके आश्रम से दो मील दूर पर बने सर्किट हाऊस में रहना पड़ता हैं, जहाँ जाने आने का कोई साधन नहीं है। महाराज जी रात में ११ बजे से ४ बजे सबेरे तक मन्त्र जाप करते हैं। उस समय आश्रम में स्त्री तो क्या पुरुष को भी नहीं रहने देते। एक विदेशी महिला के जिज्ञासु भाव तथा दतिया में होने वाली तकलीफों को देख कर ही मैंने महाराज जी से प्रार्थना की कि वे आश्रम में ही साधकावास बनाने की अनुमति प्रदान करें। जिसे उन्होंने सहज भाव से स्वीकार कर लिया। तब मैंने वहा साधकों के आवासगृह का काम हाथ में लिया जो स्वामी जी की कृपा से पूर्ण हो गया। श्री महाराज जी के अन्य शिष्यों ने भी यथा शक्ति सहायता दी।

बीच-बीच में मैं अपने कार्य हेतु कलकत्ता जाता रहता था। एक बार जाते समय मैंने महाराज जी को बतलाया कि कलकत्ता की कार्नवालिस स्ट्रीट पर एक अच्छा संस्कृत पुस्तक बिक्रेता है। जो केवल संस्कृत की पुस्तकों को ही बेचा करता

हैं। अगर उनको संस्कृत की किसी पुस्तक की आवश्यकता हो तो बतलायें ताकि मैं उसे लेता आऊँ। स्वामी जी ने बतलाया कि कलकत्ता में ही एक सेठ रामसहाय मोर चित्तरंजन रोड पर रहते हैं। उन्होंने निरुक्त पर यज्वा टीका प्रकाशित की है। उसे ले आना। वे सेठ उसे मुफ्त ही वितरित करते हैं। कलकत्ता जाकर मैंने अपने प्रधान वैद्य वेणीप्रसाद जी को सेठ जी के पास भेजा। सेठ रामसहाय मोर ने केवल यज्वा टीका ही नहीं, अपितु अपनी सभी प्रकाशित पुस्तकों का एक सैट ही दे दिया। इस सैट में सभी पुराणों का प्रकाशन किया गया है। सेठ जी ने सैट देने के साथ-साथ यह और कहा कि यह काम तो ब्राह्मणों का है कि वे पुस्तकों का प्रकाशन कर विद्या का प्रचार करें। तुम्हारे बैद्य जी तो काफी समर्थ हैं, उनसे कहो कि वे यह पवित्र कार्य हाथ में ले लें। दतिया पहुँचने पर मैंने सभी पुस्तकें स्वामी जी की सेवा में रख दी और उनसे विनती की कि वे मेरा मार्गदर्शन करें कि मैं किस पुस्तक का प्रकाशन करूँ। महाराज जी ने आद्यशंकर की लिखी सौन्दर्य लहरी देकर कहा कि इस पर डिण्डिम भाष्य है जो अन्यत्र नहीं मिलता। इसमें ब्रह्मविद्या के अर्चन प्रकार है, उसे छपाओ। मैंने अपना प्रेस होते हुए भी निर्णयसागर प्रेस मुम्बई में उसे छपाया। छपने के बाद जब उसकी प्रति महाराज जी को भेंट की गयी तो वे जो सदा हर्षरहित मुदितावस्था में ही रहते थे, वे स्वामी जी अत्यन्त प्रसन्न हो गये और कहने लगे कि यह बहुत अच्छा काम हुआ है। उसके बाद उन्होंने कई पुस्तकें हमें दी जिनका प्रकाशन हमने करवाकर आश्रम को अर्पित कर दिया। इन पुस्तकों में स्वामी जी के द्वारा लिखित पुस्तकों के अतिरिक्त ऋषि-मुनि प्रणीत अन्य कई पुस्तकें भी हैं।

कुछ समय बाद १९६२ में चीन देश की ओर से भारत पर आक्रमण हुआ। स्वामी जी महाराज उससे बहुत चिन्तित हो गये। बोले कि बड़े बलिदानों के बाद हमारा देश स्वतंत्र हुआ है, पर ये दस्यु आक्रमण करके देश को फिर से गुलाम बनाना चाहते हैं। ये दस्युगण हमारे आर्य धर्म को समूल नष्ट कर देंगे। फिर मैंने महाराज जी से प्रार्थना की कि इसका कोई उपाय किया जा सकता है? तब वे बोले साधु शस्त्र लेकर तो नहीं लड़ सकते, पर जगदम्बा से प्रार्थना रूप अनुष्ठान अवश्य कर सकते हैं। इसके लिये १०० पंडितों की आवश्यकता होगी। ऐसे पण्डित जो नित्य दुर्गा सप्तशती का पाठ करते हों, जो अपने भजन का विक्रय न करते हों तथा जो शक्तिमंत्र से दीक्षित हो। इन पण्डितों की खोज में मैं स्वयं काशी और विंध्याचल गया तथा वैद्यनाथ धाम, नागपुर तथा कई अन्य जगहों पर मैंने पत्र-व्यवहार किया। महाराज जी के शिष्य जो कि नित्यपाठ करते थे, ३५ को बुलावा भेजा। बहुत प्रयत्न के बाद ऐसे कुल ८५ पण्डित जुड़ सके। अनुष्ठान देशोध्वंसक शक्ति को प्रसन्न करने का था। अनुष्ठान के समय स्वामीजी महाराज रात-रात भर खड़े रहते थे। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। इस बीच बाहर का कोई व्यक्ति आश्रम में न आ सकता था न

जा सकता था। न बाहर के व्यक्ति से चन्दा लिया न प्रचार किया। इसी अनुष्ठान के मध्य चीन वापस ही गया। यही नहीं, उसका अपने ही मित्र रूस से अन्त:क्लेश शुरू हो गया। इस अनुष्ठान की खबर पता नहीं कैसे मुम्बई के 'इलुस्ट्रेटेड वीकली' में चित्रों सहित पूरे एक पृष्ठ में छपी।

इसके बाद तो मैं काफी समय और कई बार आश्रम में रहा और स्वामी जी के शैवदर्शन तथा उपनिषदों को पढ़ा। महाराज जी कभी कोई पुस्तक नहीं देखते थे। सब कण्ठ से ही पढ़ाते थे। पढ़ाने की उनकी विशेषता यह होती थी कि पूरी शंकाओं का समाधान हो जाता था। महाराज जी को पढ़ाने का बड़ा शौक था। उनके पढ़ाये अनेक व्याकरणाचार्य, दर्शनाचार्य और साहित्याचार्य हैं।

महाराज जी संस्कृत के तो पारंगत विद्वान थे ही, वे फारसी, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेजी भी जानते थे। उन्होंने पूरे देश का भ्रमण किया था। उनकी स्मरणशक्ति गजब की थी। एक बार मैंने कौतूहलवश प्रश्न किया कि संन्यासियों को देवी और तांत्रिक आराधना से क्या मतलब? उन्होंने कहा कि प्रश्न यथार्थ है। संन्यासी को सिवाय अद्वैत के किसी अन्य और जाना भी नहीं चाहिए। लेकिन एक बार एक सिद्ध पुरुष उनको मिले थे। जिन्होंने कहा था कि यह जो भारतीय तन्त्र शास्त्र है, वह ब्रह्म प्राप्ति का सर्व सुगम उपाय है। इसको सिद्ध करो और लोक कल्याण का मार्ग अपनाओ। इसके लिए एक जगह बैठ कर अनुष्ठान करने की आवश्यकता थी। दतिया का बनखण्डी स्थान वाममार्गी तान्त्रिकों का सिद्ध स्थान रहा है। यह जाग्रत स्थान देख कर ही यहां तीन वर्ष तपस्या करके इस स्थान को शुद्ध कर यहां पीताम्बरापीठ की स्थापना की।

महाराज जी की आखिरी इच्छा ब्रह्मयज्ञ करने की रही थी। उनका कहना था कि ब्रह्मयज्ञ यहाँ गत ५००० वर्षों से नहीं हुआ है। उसके लिये चारों वेदों का सस्वर पाठ करने वालों का समुदाय होना चाहिये। इसके लिये भी मुझे काशी की यात्रा करनी पड़ी। ऐसे पंडितों का समागम किया जिन्होंने १३-१३ दिन तक सस्वर और कण्ठ से विधि विधान पूर्वक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का पाठ किया।

स्वामी जी महाराज का मैं जितना कृतज्ञ हूँ, उसका वर्णन नहीं कर सकता। मेरा तो तन, मन, धन सब उन्हीं का है। इतना कृतज्ञ हूं कि अपना शरीर देकर भी मैं उनसे उऋण नहीं हो सकता। उन्होंने कभी सकाम अनुष्ठान नहीं करवाया। मेरा तो रोम-रोम उनका ऋणी है, इस सूक्ष्म से लेख द्वारा जिसमें उन जैसी महान और पवित्र आत्मा के गुण वर्णन की सीमित क्षमता भी नहीं है, मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

वे एक दिव्य पुरुष थे – सिद्ध और महानतम्।

***

अक्षराञ्जलि

— *वासुदेव गोस्वामी*
दतिया

साधे धनु बान के जो निपट निरक्षर में,
के जो रहे लोभी ते अँगूठा से तने रहे।
कोप भरे तमके तमाम तन तर्जनी से,
मिथ्या मान कामी यथा मध्यमा मनें रहे।।
'वासुदेव' पांच अँगुरीन सौ विषम विश्व,
कनक कनिष्ठा मोह मुद्रिका सने रहे।।
जगत अनंदिनी के वन्दन को स्वामी आप,
चन्दन चढ़ाइबे अनामिका बनें रहे।।१।।

श्रीपद प्रताप सों त्रिताप आप ही नसात,
नाम सों विहीन तौ हूं सब जग नामी जी।
ज्ञानी जो दिनेस से गनेस से प्रमानी मानी,
ध्यानी परिवेश में महेश देश धामी जी।।
कर में कमण्डल विरंचि को अभास देत,
भास देत 'वासुदेव' पन्नगारि गामी जी।
शक्ति, ब्रह्म, सूर्य, गणराज, शंभु, विधि, विष्णु,
सर्व देव रूप जे श्री गुरुदेव स्वामी जी।।२।।

कौन कहता है ये कि नाम इनका है नहीं,
विश्व भर में तो दतिया के यह नामी हैं।
लेश मात्र मोह धन धाम से नहीं हैं किन्तु,
जप करने में माल धारण के हामी हैं।।
किसी वस्तु पर भी जताते नहीं स्वत्व तो भी,
'वासुदेव' सब लोग जानते ही स्वामी हैं।
सहज सहिष्णुता की मूर्ति राष्ट्र गुरुदेव,
पीत बसना की रसना के अनुगामी हैं।।३।।

पीत बसना के प्रिय पूत ज्ञान में अकूत,
राष्ट्र हितकारी कर्मयोग के सुमतिया।
विमल विचार के प्रचारक प्रभा के पुंज,
देशिकेन्द्र परम उदार सद गतिया।।
आगम निगम के यथार्थ परिभाषक हैं,
दिव्य दृष्टि दान को प्रसिद्ध सिद्ध सतिया।
'वासुदेव' वंदन करत चरणारविन्द,
जिनके प्रताप सों पुनीत भई दतिया।।४।।

सतिया सदैव दृष्टि दान को निदान करे,
आंघरे अनेक नेक चाहे एक सतिया।
संत करे संतत प्रयास परमारथ कौ,
आरत प्रसन्न भये पाकें दिव्य मतिया।।
आदर मिलत 'वासुदेव' सत संगति सौं,
बर के निमित्त से ज्यों पुजत बरतिया।
भक्त भगवान के त्यों भगवान भक्तन के,
दतिया के स्वामी जी हैं, स्वामी जी की दतिया।।५।।

पुण्डरीक अक्ष ते समक्ष जप जज्ञ जोरि,
अक्षर प्रत्यक्ष करिके प्रवीण हो गये।
जंत्र मंत्र तंत्र साधना में सिद्ध राष्ट्र गुरु,
उन्नत आराधना में समीचीन हो गये।।
'वासुदेव' भारतीय संस्कृति के प्राणवान,
देशिकेन्द्र देश त्राण को अदीन हो गये।
पीताम्बरा मातु के कृपांबुधि के मंजु मीन,
लीन ब्रह्म में रहे सो ब्रह्मलीन हो गये।।६।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

लोभ-लालच ही संगठन को नष्ट करते हैं, जिसका अनुभव एक सहस्र वर्ष से भारत को है। त्याग-सत्य ही संगठन को प्रबल बनाते हैं। समान सिद्धान्त जब कबूतरों ने ग्रहण किया तब जाल से मुक्त हो गये।

– *श्री स्वामीजी*

थे मम स्वामीनाथ सहारा ...!

— *बदनसिंह*, रायभा, आगरा

तुम करुण शान्त-शिष्ट गुरु क्षमता प्रशान्त,
तुम तेजवन्त भानु फैलाये प्रकाश दिग्दिगान्त।।
थे द्वापर के योगीश्वर या थे काशी के भोला,
हुये अवतरित धरा पर पंचभूत का ओढ़े चोला।।१।।

थे तुम साधक प्रबल अथक तपस्वी ब्रह्मदूत,
थे तुम नव्य सभ्य की भूषा में भैरव जगदम्बा पूत।
दीनबन्धु दुःखहर्ता भवपालक सब के स्वामी,
शिवः शक्तितत्व के उद्गाता थे तुम अन्तर्यामी।।२।।

अकथ स्वाद के अनन्त निधि शब्द ब्रह्म जगगाता,
साक्षात् त्रिदेव जग के संहारक-पालक-अधिष्ठाता।
ये अकथ रूप के आत्म बिन्दु बने चिदानन्द मूर्तिमान,
चिच्छक्ति के आलिङ्गन में करते थे तुम नित सुधापान।।३।।

ज्ञानामृत से करने जिज्ञासु-भक्तों के जग का सिंचन,
आये बन लीलामय करने लीला हरने जग का क्रन्दन।
जगतीतल पर बने हुए थे तुम स्वयंसिद्ध अधिकारी,
थे स्वामी सहस्त्रार सुखराशी तेजस्वी बाल ब्रह्मचारी।।४।।

थे तुम दिव्य तेज पुञ्ज-परम पुरुष-कारम के कारण,
कर पाशमुक्त करते थे फिर भक्तों का भव तारण।
रहस्य की प्रतिमूर्ति है रहस्यमय इतिहास तुम्हारा,
आदि-अन्त से रहित थे मम स्वामीनाथ सहारा।।५।।

धन्य-धन्य तुम धन्य महात्मा थे दिव्यरूपधारी,
शरण तुम्हारी जो जन आया ध्यान किया अविकारी।
धन्य प्रभो वह सब कुछ पाया धन्य तुम्हारी है महिमा,
धन्य तुम्हारा दयाभाव था धन्य तुम्हारी है गरिमा।।६।।

कौन त्रुटि हुयी हमीं से दे वियोग गुरुवर किया पयाना,
बना ज्ञान अज्ञान सूक्ष्म देह से गुरु कण कण भरमाना।
बुद्धिहीन यह दास तुम्हारा सोच सोच अति चिंतित है,
स्थूल रूप का करने दर्शन चंचल मन अति विचलित है।।७।।

मैं तो अपने स्वामी की मृदुवाणी का ग्राहक हूँ,
मैं तो गुरुमुख से फिर 'ठाकुर' सुनने को उत्सुक हूँ।
संश्लेष्ट शक्ति योगिक स्वरूप नहिं अनहद नाद चाहिए,
मोक्ष भोग तन्त्र मन्त्र नहिं मुझे ब्रह्मज्ञान चाहिए।।८।।

मैं तो आश्रम की सुरभित बगिया का पक्षी हूँ,
मैं तो स्वामी के चरणों का सेवक दरवाजे का रक्षी हूँ।
मुझको तो बैठक बगिया श्रीमुख उपनिषद् पाठ चाहिए,
मुझको श्री चरण चाप अनन्तश्री का श्री शब्द चाहिए।।९।।

हो मौन बिना बताए चले गये कैसी बैराग्य तपस्या थी,
छोड़ अकेला सिन्धु पद पखारन चले गये कौन समस्या थी।
हे करुणानिधि! अब मेरी पुकार-करो स्वीकार,
अन्यथा अश्रुधार से भर दूंगा अपार सागर,
तुमको तो आना ही होगा यहां एक बार,
श्री चरणों में यह पुष्पांजलि रख दूंगा।।१०।।

ले निज चरणों में तुमने मुझ पापी को अपनाया,
कारण है ज्ञात मुझे अब क्यों नहिं साथ लगाया।
इस बार जब आओगे श्री चरण जकड़ पकड़ कर बैठूंगा,
नहिं छोडूंगा किसी भांति मैं निशदिन उनमें ही लेटूंगा।।११।।

पाप अधर्म की दुनिया में भवतारक बन तुम आये थे,
भूले भटके पीड़ित मानव को ब्रह्म संदेशा लाये थे।
पद्य पुष्प की यह श्रद्धांजलि पदपद्मों में हो स्वीकार,
हे परमेश्वर, हे सर्वेश्वर!
'सिंह' दास के इष्ट-मंत्र-गुरु साकार।।१२।।

***

महान् विभूति का दिव्य प्रयाण

– अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव
भू. पू. सहायक संचालक सूचना प्रकाशन,
भोपाल (म.प्र.)

लगभग दो वर्ष पूर्व जब मैं श्रीचरणों में नमन कर बैठ गया था, तब उन्होंने कहा था – मेरा काम पूरा हो चुका है। अब मुझे कुछ करना शेष नहीं है, मैं निर्निमेष उनकी ओर देखता ही रहा। उन्होंने फिर कहा – अब मैंने लिखना-पढ़ना भी बंद कर दिया है। जो काम करना था, वह काम पूरा हो चुका है। उस समय मैं इन शब्दों का अर्थ नहीं समझ सका था, किन्तु आज यह स्पष्ट हो रहा है कि ब्रह्मलीन होने की दिशा में वह अपना पग उठा चुके थे। परकाया प्रवेश पर भी एक दो बार चर्चा हुयी थी, किन्तु इसे उन्होंने कदाचित् स्वीकार नहीं किया। स्वामीजी महाराज पीताम्बरापीठ के रूप में एक ऐसा महापुरुष धरती से उठ गया है, जिसके बिना मानव समाज कलश-बिहीन मंदिर के शिखर के समान रह गया है।

भगवान के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए आज अनेक पुरुष इस दौड़ प्रतियोगिता में शामिल दिखाई देते हैं। जिन्दगी की परेशानियों से छुटकारा पाने के लिए छटपटाते मनुष्यों की भीड़ उनका शिष्यत्व स्वीकार करती है, किन्तु वे सभी लोग पूर्ववत बिलविलाते ही रह जाते हैं। पीताम्बरा पीठस्थ स्वामीजी महाराज ने शिष्यों की भीड़ एकत्र करने में कोई रुचि नहीं ली। लोग वर्षों तक उनके चरणों में बैठकर उपदेश प्राप्त करने के लिए अनुनय विनय करते रहे, किन्तु वे सबसे पहले व्यक्ति की पात्रता को परखते थे। धन, संपत्ति, पद, प्रतिष्ठा को उन्होंने किंचित भी महत्व नहीं दिया। बड़े से बड़े लाट साहब को भी एक सामान्य व्यक्ति की भांति ही उनके आश्रम से लौट आना पड़ा है। श्रद्धा और विवेक ही उनके मानदण्ड थे। जिनसे व्यक्ति की पात्रता को परखा जाता था। पीताम्बरापीठ के आश्रम में सभी अतिथियों के लिए समान रूप से केवल धरती के फर्श की आसन रही है, और अनेक राज्यपाल, मुख्यमंत्री, केन्द्रीय मंत्री आदि सामान्य व्यक्तियों की पंक्ति में बैठकर ही वापिस लौट आये हैं।

स्वामीजी महाराज लगभग ५० वर्ष पहले दतिया आये थे। वे कहां से आये थे? तथा उनके जन्म-जीवन के संबंध में आज तक किसी को कुछ भी ज्ञात नहीं हो

सका। संन्यास प्रक्रिया में उन्होंने केवल घर परिवार ही नहीं, वरन् नाम ही त्याग दिया था। यदि व्यक्ति का नाम रहता है तो उसकी कीर्ति लिप्सा कभी समाप्त नहीं हो सकती। यश को चिरस्थायी बनाने के लिए ही लोगों को स्वयं अपने विषय में सबसे अधिक बातों को बार-बार उजागर करना पड़ता है। पूर्ण संन्यास की दृष्टि से स्वामी जी महाराज के समान कोई दूसरा उदाहरण कठिनाई से मिलेगा। आश्रम में आये हुये किसी संन्यासी से यदि कभी किसी व्यक्ति ने उसका परिचय जानना चाहा तो भी स्वामीजी उसे रोककर कहा करते थे – संन्यासी से कभी उसका नाम, ग्राम आदि नहीं पूछना चाहिये। यह परिचय गृहस्थों का ही होता है। संन्यासी तो इन सब का परित्याग कर देता है।

इस बात को मैं पूरे दावे के साथ बार-बार दुहरा देना चाहता हूँ कि वर्तमान में पीताम्बरा पीठस्थ स्वामीजी महाराज के समान न तो साधना के गुह्य रहस्यों का कोई मर्मज्ञ ही हुआ है और न विद्या का ऐसा पारंगत ही दिखाई देता है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाणी के वे पूर्ण मर्मज्ञ थे। बैखरी वाणी पर उनका पूर्ण अधिकार था। समस्त दर्शन शास्त्रों को समझ बूझ कर उनसे भी परे पहुँच गये थे। सभी साधना प्रणालियों के चिन्तन और व्यवहार पक्ष उनके लिए हस्तामलकवत थे। उनका स्मरण ही आज सरस्वती का वरदान है। स्वामी जी के समाधिस्थ हो जाने से देश में तन्त्र और मन्त्र शास्त्र का शायद ही कोई ज्ञाता बचा हो। इस सन्दर्भ में दो एक घटनाओं का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा –

एक बार एक रमते हुये संन्यासी पीताम्बरा पीठ आश्रम में स्वामीजी के पास पहुँचे। इसके पूर्व वे देश के अनेक भागों में बड़े बड़े साधकों से मिल चुके थे। उन्होंने स्वामी जी महाराज से कहा – महाराज! मैंने मूलाधार, मणिपुर और स्वाधिष्ठान चक्रों के भेदन की क्रिया तो प्राप्त कर ली है, किन्तु अनाहत का भेदन नहीं हो रहा है, मैं सब जगह भटक चुका हूँ, किन्तु कोई भी यह क्रिया बताने में समर्थ नहीं। मुझे आपकी शरण में आने का परामर्श दिया गया है। स्वामी जी महाराज पहले तो कुछ मुस्कराये फिर उस संन्यासी को आश्रम में ठहरने का निर्देश दे दिया। कुछ ही दिनों में वह सभी चक्रों के भेदन की क्रिया सीख कर वहाँ से चला गया था।

इसी प्रकार एक बार बीज मंत्रों के एक जिज्ञासु पंडितजी स्वामी जी के पास पहुँचे थे। बीज मन्त्रों की रचना और प्रयोग विधि के संबंध में स्वामी जी ने दो-चार प्रारंभिक बातें ही कही थी। इतने में ही उनको अनुभव हो गया कि वे अपने विशाल अध्ययन के पश्चात् भी स्वामी जी के चरणों में बैठ कर प्रश्न करने के पात्र नहीं हैं। इसके पश्चात् वे प्रायः मौन बैठकर केवल उपदेश सुनते रहे थे।

साधना की दृष्टि से यद्यपि स्वामी जी शक्ति तन्त्रों को वरेण्य मानते थे, तथापि न्याय, वेदांतादि, षड्दर्शन एवं धर्म सिद्धान्तों पर उनका पूर्ण अधिकार था। भारत की सभी भाषाओं पर उनका अधिकार तो था ही अनेक विदेशी भाषाओं के भी वे अच्छे ज्ञाता थे। व्याकरण, छन्द-शास्त्र, काव्य, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत आदि किसी भी विषय पर बड़े से बड़े पंडित उनसे बात करने का साहस कठिनाई से ही कर पाते थे। भारत के प्राय: सभी राज्यों से अनेक प्राध्यापक अपने विषय का अध्ययन करने के लिए स्वामीजी के आश्रम में बने रहते थे। इसके बाद भी यह एक दु:खद संयोग ही रहा कि हजारों श्रद्धालु के पहुँचते रहने पर भी ऐसा कोई व्यक्ति वहां नहीं पहुँच सका जो साधना की गुह्य और व्यावहारिक प्रक्रिया का ज्ञान प्राप्त करता।

अनेक दर्शन ग्रन्थों, तन्त्र ग्रन्थों और उपनिषद भाष्यों का प्रणयन स्वामी जी महाराज की ऐसी देन है, जिसे जिज्ञासुओं और विद्वानों के लिए वरदान कहा जा सकता है। ईश, कठ, केन, मुण्डक, माण्डूक्य और प्रश्नोपनिषद पर शक्तिपरक भाष्यों की रचना कर उन्होंने दर्शन को एक नई दिशा में मोड़ दिया। आचार्य शंकर के बाद उपनिषदों का ऐसा भाष्यकार कोई दूसरा नहीं हुआ। इसी प्रकार वेद भाष्य, बगलामुखी रहस्य, घेरण्ड संहिता, शिव सूत्र भाष्य, लेख संग्रह 'महात्रिपुर सुन्दरी पूजा पद्धति' आदि अनेक ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना इनके द्वारा की गयी है, जो तांत्रिक दर्शन की बेजोड़ निधि है। सौन्दर्य लहरी के भी दो ऐसे भाष्य उनके द्वारा प्रकाशित कराये गये हैं जो अभी तक अनुपलब्ध रहे हैं।

दतिया में पीताम्बरा पीठ की स्थापना कर श्री स्वामी जी महाराज ने उसे साधना का एक प्रमुख केन्द्र बना दिया था, आश्रम में एक पुस्तकालय की स्थापना उनके द्वारा ही की गयी थी, इस पुस्तकालय की यह विशेषता है कि धर्म दर्शन, तंत्र और मंत्र शास्त्र पर ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ इसमें उपलब्ध हैं, जिनकी प्रतियाँ अन्यत्र किसी पुस्तकालय में देखने को नहीं मिलती, अध्येताओं और साधकों के लिये एक विशाल धर्मशाला भी आश्रम के सन्निकट ही बना दी गई है।

स्वामी जी महाराज साधक की स्थिति को पार कर उससे बहुत ऊँचे पहुँच गए थे, किन्तु उन्होंने अपने आपको सामान्य व्यक्ति की पहुँच के बाहर नहीं किया। दर्शन और धर्म विषयक भ्रांतियों को दूर करने, पाखण्ड और आडम्बरों से दूर रह कर लोगों को सही मार्ग पर चलाने में ही उन्होंने अपना पूरा जीवन खपा दिया।

यद्यपि वे (स्वामीजी) अपने आश्रम से कभी बाहर नहीं निकले किन्तु छात्रों, शोध-विद्यार्थियों, जिज्ञासु साधकों और भक्तों की आश्रम में भीड़ लगी रहा करती थी। उनकी दर्शन की शिक्षा देने में अधिक आनंद आता था, षड़दर्शन बौद्ध और जैन, तांत्रिक दर्शन तथा संस्कृत व्याकरण, ज्योतिष, पाली प्राकृत अपभ्रंश, गुजराती, बंगाली,

मराठी भाषाओं के सैकड़ों छात्र आश्रम में बने ही रहते थे, जिन व्यक्तियों को स्वामी जी महाराज के चरणों में बैठकर कुछ भी सुनने या सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे सचमुच धन्य हैं और यह उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि बनी रहेगी।

स्वामी जी महाराज के समाधिस्थ हो जाने से केवल पीताम्बरा पीठ ही नहीं, समूचा देश सूना हो गया है, मानव जाति की यह एक ऐसी क्षति है, जिसको न तो कभी भुलाया जा सकेगा और न उसकी पूर्ति ही संभव होगी। गीता के अनुसार **''धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे''** ऐसे महापुरुषों का जन्म युगों के अंतराल से होता है, स्वामी जी महाराज के रूप में ऐसा ही युग पुरुष जन्मा था, उन्होंने अंधेरी दिशाओं को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर दिया और उनकी स्मृति ही हमें सही रास्ते पर चलने का आधार होगी।

***

–: वैदिक उपदेश :–

यह संसार एक बड़ा भारी युद्धक्षेत्र है। इनमें सदा से ही सत्-असत् प्रवृत्ति वालों का युद्ध छिड़ा हुआ रहता है। दैवी आसुरी सम्पदावाले देव असुर के नाम से लड़ते हुए आ रहे हैं। यह युद्ध कभी बन्द नहीं होता है। इन्हीं का स्थूल रूप एक-दूसरे राष्ट्रवालों पर आक्रामक शक्तियों द्वारा एक दूसरे को परास्त करने का उद्योग करते रहे हैं। जो साधक या देश सत्य, पराकम, धैर्य और न्याय का आश्रय लेते रहते हैं, उनकी विजय होती है। यह युद्ध आध्यात्मिक एवं बाहरी दोनों प्रकार का है।

– *श्रीस्वामीजी*

मनीषी के चरणों में ...!

– प्रेमशंकर सिंह, प्राचार्य,
रायपुर

अरे! यह क्या हुआ?
सहसा गंगा की दिव्य,
पावनधारा–मणिकांचन,
स्रोतस्विनी–स्वर्गभूमि!
दतिया से विलुप्त!
कहाँ हो गयी?
हा देव!

यह क्या हो गया?
अजा, अज्ञेया, अवन्ता!
अलक्ष्या, एका–अनेका!
निर्द्वन्द्वा! भावातीता! शुद्धातीता!
के मूर्धन्य मनीषी!

ज्ञानगम्य, सर्वेश्वर, ईश्वर स्वरूप,
गुरु का पार्थिव शरीर!
परमात्म तत्व में मिल गया!
राष्ट्रगुरु! राष्ट्र रक्षक!
दशमहाविद्या के अनन्य,
प्रबोधा का!
अचानक तिरोभाव हो गया!
किन्तु, अरे!

जैसे अनन्त चिन्मय सत्य सत्य है,
वैसे ही अनाम ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध,
तपःपूत, ऋषि का तिरोभाव दिव्य तत्व में
आज भी प्रणम्य है!

उस दिव्य विभूति के चरणों में,
श्रद्धा-पुष्प समर्पित हैं!
'माँ' के अनन्य चिंतक को,
मेरा शत-शत प्रणाम!
युग-स्वर से –

उस शुद्ध-बुद्ध-प्रबुद्ध, श्रीकृष्णरूप,
मनीषी के चरणों में
'प्रेम' अश्रु की
कोटि-कोटि, श्रद्धांजलि!

***

–: वैदिक उपदेश :–

गौ को अमृत की नाभि बताया गया है, अमृत ब्रह्मतत्व को कहते हैं जो कभी भी मृत्यु के पास में नहीं आता, यह गाय उसका हेतु है इसीलिए उसे अदिति कहते हैं। प्रजापति परमात्मा की दो शक्तियाँ हैं जिन्हें दिति एवं अदिति कहते हैं। दिति से दैत्य शक्ति का प्राकट्य होता है और अदिति से देवता उत्पन्न होते हैं; इस लिए अदिति को देवमाता भी कहते हैं। अदिति ही इस लोक में गौ रूप से प्रकट होती है, इसी लिए इसे भी लोक में गौमाता कहते हैं। जैसे माता अपनी सन्तान का सर्वथा हित करती है, ऐसे ही गौ ही जगत के हित के लिए प्रकट हुई है।

– श्रीस्वामीजी

श्री पीताम्बरापीठाधीश्वर स्वामीजी महाराज

– बेणी शंकर शर्मा
भू. पू. संसद सदस्य, कलकत्ता

दतिया पीताम्बरा पीठ के स्वामी जी महाराज के समाधिस्थ होने से देश की एक महान आध्यात्मिक बिभूति उठ गई। वे आश्रम में रहते हुये अपनी आध्यात्मिक तरंगों से अपने भक्तों, आश्रितों एवं जनसाधारण के कल्याण में रत रहते थे। समुद्र की तरह गंभीर, जाह्नवी की तरह पवित्र एवं अन्त:सलिला फल्गू की तरह दयार्द्र। वे वास्तव में एक सिद्ध पुरुष थे।

उनके पूर्वाश्रम का क्या नाम था? तथा उनकी क्या आयु थी? यह किसी को पता नहीं। मुझे उनके दर्शन का दो बार ही सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे परम मित्र और अब संबंधी पं. रामनारायण जी शर्मा बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के संचालक के साथ, जो उनके बड़े भक्त थे मुझे वहां ले गये थे। उनकी आयु के संबंध में जब मैंने पंडित जी से पूछा तो उनका सरल उत्तर था कि चालीस-पचास वर्षों से मैं उनके सम्पर्क में हूँ, और मैंने जैसा उन्हें प्रथम मुलाकात में देखा था, वैसा आज भी पा रहा हूँ।

मेरी पौत्री रेणु और जामाता शिवनाथ उनके विशेष कृपा पात्र हैं। उन पर उनकी अहैतुकी कृपा थी। यद्यपि आश्रम में शिवालय बनाने के लिए बहुत से धनी मानी भक्तों ने अनुरोध किया था, पर सभी के अनुरोध को उन्होंने ठुकरा दिया और मेरे जामाता शिवनाथ को उन्होंने अंत में इस पुण्य कार्य की आज्ञा दी।

इतने बड़े महान तपस्वी, तांत्रिक एवं सिद्ध पुरुष होते हुये भी वे बालक की तरह सरल थे। जब मैंने प्रथम बार पं. रामनारायण जी के साथ उनके दर्शन किये तो उन्होंने इस प्रकार मुझसे वार्तालाप किया, जैसे मैं उनका चिर-परिचित अभिन्न मित्र हूँ। उनकी सरलता से मैं मुग्ध हो गया। आध्यात्मिकता के उच्चतम सिंहासन से उतर कर वे मुझसे मेरी रुचि के सांसारिक विषयों की बातें करने लगे। मेरी पुस्तक – "स्वामी विवेकानन्द : उनके जीवन का एक भूलाबिसरा अध्याय" का शायद उन्होंने अवलोकन किया था। मुझसे पूछने लगे – 'अरे पंडित! तुमने यह तो लिखा ही नहीं कि राजा अजीत सिंह कौन से ठाकुर थे? मुझे फिर बताना।' पर मेरी मूर्खता समझिए कि मैं उनके इस छोटे प्रश्न का उत्तर उनके जीवन काल में नहीं दे सका।

कहाँ तो इतना बड़ा आध्यात्मिक जगत् गुरु और कहाँ मेरी तुच्छ कृति, और कहाँ उससे भी छोटा एक प्रश्न। बताइये अजीत सिंह कौन से ठाकुर थे? उन्हें उससे क्या लेना-देना?

उनके शिष्यों में बड़े बड़े राजा रानी से लेकर सामान्य पुरुष तक हैं। सभी पर एक सी ही दृष्टि थी। महारानी सिंधिया उनकी अनन्यतम भक्तों में से एक भक्त हैं। प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी जी भी उनकी एक भक्त हैं। उनके तिरोधान के पश्चात् वे भी उनके आश्रम पर अपनी श्रद्धा के दो फूल चढ़ाने गईं थीं।

इधर कई वर्षों से उनकी किडनी ने काम करना बन्द कर दिया था। नश्वर शरीर को छोड़ने के लिए कोई प्राकृतिक कारण तो होना ही चाहिये। वे चाहते तो अपनी आध्यात्मिक शक्ति से इस बीमारी से छुटकारा पा सकते थे, किन्तु परमहंस स्वामी रामकृष्ण की तरह उन्होंने इस नश्वर शरीर के लिये अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं किया।

परमहंस स्वामी रामकृष्ण को केंसर हो गया था। जिसके कारण उन्हें यंत्रणा होती थी, खाँसी के कारण वे रात भर सो नहीं पाते थे। जब उनके शिष्यों से उनका कष्ट नहीं देखा गया तो उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि ठाकुर तुम दूसरों के कष्ट का निवारण करते हो, पर स्वयं इतना कष्ट क्यों भोग रहे हो? तो उन्होंने कहा कि शरीर को तो शारीरिक दण्ड भुगतना ही है। उसी प्रकार दतिया के स्वामी जी महाराज ने अपने शरीर को स्वच्छंद छोड़ दिया और उनके शिष्य उपचार में लग गये। महारानी सिंधिया और शिवनाथ ने प्रयत्न कर 'डाइलेसिस' मशीनें भी विदेशों से मंगायी किन्तु उनका उपयोग होने के पहले ही वे समाधिस्थ हो गये। वे जीवन मुक्त तो थे ही, मृत्यु के पश्चात् उनकी सायुज्य मुक्ति स्वाभाविक है। परमात्मा के जिस अंश से उनका प्रादुर्भाव हुआ, वह अंश उसी परमात्मा में जाकर विलीन हो गया।

परमात्मा उनके भक्तों को सत्यपथ पर रखते हुए शक्ति प्रदान करे।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जब तक शक्ति का आविर्भाव न हो तब तक संगठन अधूरा ही है। इसी अभिप्राय में मध्यम चरित्र सप्तशती का महाशक्ति का आविर्भाव मार्कण्डेय पुराण में बताया गया है। संगठन शक्ति का ऐसा उदाहरण कदाचित् ही कहीं प्राप्त हो।

– *श्रीस्वामीजी*

शिवरूप श्री स्वामी जी

– *मनमस्त त्रिपाठी*, दतिया

कर है कृपा कोर जान जात शरणागत जो।
तोको मन मोद सो समोद मोद भर है।।
भर है गुण गरिमा गुणावलि श्री अम्बा की।
जाते लिखे भाग्य के कुअंक शीघ्र टर है।।

टर है न रिद्धि सिद्धि सकल समृद्धि सुख।
दुख कौन लेश शत्रु अपडर ही डर है।।
डर है न, मस्त हैं, सहारौ बड़ो भारी एक।
मेरे तो संरक्षक श्री स्वामी शंकर एक है।।

श्री चरणों का दाता सब दर्शन।
दाता के द्वार पै सब है अर्पण।
दया की दान धारा दिव्य।
दर्श दीन पालती श्री पीताम्बरा माता के।।
माता की भक्ति चित्त परम पवित्र मात्र।
मंत्र कल्पतरु से वेद मूरत विख्याता के।।

ख्याता के प्रमाण देश और विदेश जान।
मान लेत अपनो निर्भय स्वच्छ नाता के।।
नाता के सहारे ही मस्त मन मस्त सदा।
बंदौ चरणारविंद दतिया के दाता के।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जिस प्रकार सोना आग में तपाने से शुद्ध होकर चमकने लगता है उसी प्रकार ईश्वर-भक्ति, सन्तोष, द्वन्द्वसहन, तितिक्षा, सत्यभाषण, अहिंसा आदि तपों से मनुष्य की शुद्धि होती है।

– *श्रीस्वामीजी*

श्रद्धा-सुमन

— *देवकीनन्दन मिश्र*
टीकमगढ़

यही उत्तराखण्ड है जहाँ, वेदों के मंत्र लगाये।
ऋषि मुनियों की यज्ञ वेदिका, घन नभ में मंडराये।।

भ्रमित पथक अवलम्बन लकुटी, बने स्वामी जब आये।
ज्ञान विटप पल्लवित हुआ औ, सुमन गंध भर लाये।।

तंत्र मंत्र से मानव की, सोयी हुयी शक्ति जगायी।
अवचेतन की डोर खींचकर नभ में ज्योति चढ़ायी।।

श्रद्धा सुमन आज 'नन्दन' के, स्वीकारो तुम स्वामी।
यह पीताम्बर-पीठ ज्ञान का, सतत रहे अनुगामी।।

***

—: वैदिक उपदेश :—

समस्त शक्तियों का आधार शब्द है। जहाँ पर तोप, बन्दूक, ऐटम आदि लौकिक अस्त्र-शस्त्र हार जाते हैं, वहाँ पर शब्द बड़ा काम करता है। लोक में जो कार्य अशक्य होते हैं वे मीठे शब्दों के द्वारा सरलता से बन जाते हैं। कटु या घोर शब्दों के द्वारा बने बनाये काम बिगड़ जाते हैं। जैसे द्रौपदी ने दुर्योधन को यह कहा था कि "अन्धे के लड़के अन्धे होते हैं।" जिससे महाभारत का युद्ध होकर भारत का संहार हुआ।

— *श्रीस्वामीजी*

श्री स्वामीजी के साथ सत्संग के क्षण

– *डॉ. राधेश्याम द्विवेदी*, एम. ए. डी. लिट्,
शिवपुरी

उन दिनों जब मैं श्रद्धेय स्वामी जी के श्रीचरणों में आया, तब मैं करैरा में १९५५-५६ ई. में नगर पालिका का सर्वसम्मति से अध्यक्ष वरण किया गया था और मेरे विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव की तैयारी चल रही थी। लगभग दो तिहाई सदस्य विरोध में थे। पहिले आकर स्वामी जी को प्रणाम किया। चलते समय स्वामी जी ने कृपा पूर्वक आदेश दिया – "आते रहो!"

उत्सुकता बढ़ती जा रही थी। फिर आ पहुँचा। कदाचित फिर आने को कहा कि हरिद्रा की माला बना लाना। मैं हरिद्रा की माला बना ले गया। स्वामी जी ने मंत्र दिया और कहा कि किसी चीज के चाहने की आवश्यकता नहीं। यह रुपया में एक आना भर दे रहा हूँ। लेकिन इससे कोई चीज अड़ेगी नहीं और असंभव, संभव हो सकता है। मैं कभी अकेला, कभी सपरिवार करैरा से दतिया पहुँचता रहा। एक बार स्वामी जी ने कहा– "आते रहोगे तो यह पावर हाऊस है।"

स्वामी जी की कृपा और मुस्कान की छाया में मैं बढ़ता गया। भीतर दर्शन करने भी जा पहुँचता था, और स्वामी जी के निर्देश पर अनेकों बार प्रसाद व भोजन भी उनके सान्निध्य में पाया। एक बार महापूजा में भी स्वामी जी ने भीतर बुला लिया। लेकिन कदाचित मुझे स्मरण है कि अंतरंग अर्चन वालों में से किसी के कुछ कहने पर मैं वहाँ नहीं रहा।

स्वामी जी की विभिन्न समयों में विभिन्न मुद्राएं मिलीं। किसी काम या विशेष अनुष्ठान आदि में संलग्न काल में दर्शन के समय चरण स्पर्श करने वालों से कहते थे – 'अच्छा साहिब! जाइए। हम विशेष काम में लगे हैं।' कभी बिल्कुल अपने पास बिठाकर कंधा स्पर्श करते हुए शास्त्रों पर चर्चा किया करते थे। कभी वेद पर भाष्य पढ़वाते, कभी उसे सुनते और कभी प्रश्न करके उसे समझाने लगते।

आश्रमवासियों से मेरा परिचय कराते हुये कहते – "तुम इन्हें जानते हो?" स्वामी जी प्रचार-प्रसार पसन्द नहीं करते थे। कभी समाचार पत्र में कुछ लिख लिखा दिखाई देता तो कहते – "क्यों? हमारी बिना मर्जी के तुमने ऐसा क्यों छपाया?" कभी अपने आगमन से पूर्व की चर्चाएँ करने लगते, और बताते कि यहाँ क्रिश्चियन

विदेशी महिला ने आकर भी ज्ञान प्राप्त किया है और इस्लाम के अनुयायियों ने भी मंत्र लिया है।

राजा, रंक, गरीब और अमीर सभी एक समान भाव से, एक सी बिछावन पर स्वामी जी के चरणों में बैठा करते थे। गरीबों की सुनवाई होती थी। 'ज्योतिष्मति' दवा भी शुभ बार, शुभ नक्षत्र में देते थे। उनका निर्मित किया हुआ विशेष पंचाङ्ग था। जिसे विशेष खगोल विद्या का जानकार ही समझ सकता था। महाराज जी ने अनेकों दुर्लभ ग्रन्थों का भाष्य करके उद्धार किया। संस्कृत वाङ्मय का कलेवर स्पष्ट किया। उनके दुर्लभ ग्रंथ, वेद और वेदाङ्ग आज भी लायब्रेरी में उपलब्ध हैं।

स्वामी जी ने फिर बीज मंत्र भी दिया। उसकी क्रिया बताई। स्वामी जी की कृपा से मैं पढ़ता गया। पी. एच. डी. तथा डी. लिट उनकी कृपा-कोर से ही संपन्न हुयी।

जब मैं पी. एच. डी. की मौखिक परीक्षा में जाने से पहले उनके दर्शन करने गया तो उन्होंने मुझे पास बुलाया और मेरे माथे पर एकदम विशेष प्रकार से हाथ का दबाव देकर कहा – "जाइये!" और उन क्षणों में मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे मेरे अंदर विशेष शक्ति आ गयी हो। उसी शक्ति के सहारे मैं मौखिक परीक्षा में सफल रहा।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सत्य के स्वरूप का निर्णय विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से किया है। जो वस्तु जिस रूप से ही, उसको उस रूप से जानना, व्यवहार करना और कहना, इसे ही सत्य कहा गया है। सामान्यतः सत्य के दो स्वरूप मान गये हैं। एक व्यावहारिक दूसरा वास्तविक। व्यावहारिक सत्य का स्वरूप उक्त प्रकार का है। वास्तविक सत्य केवल अद्वैत ब्रह्म है। जिसे **"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या"** वाक्य द्वारा कहा गया है।

– ***श्रीस्वामीजी***

श्रद्धाञ्जलि

– *मथुरादास मुदगल,* व्याख्याता, दतिया

हे अमर ज्योति! हे अमर धाम!
हे पीठ! तुम्हें शत् शत् प्रणाम।।

जो अमित ज्वाल जागी जग में,
बन प्रभा पुंजमय रग-रग में,
उसके हाथों से समर समर,
तुम हुए आज इतने ललाम।
हे अमर ज्योति! हे अमर धाम।।१।।

सँभल गये मंत्रों के मन,
हो गये सुधन्य विपुल जीवन,
बदले तन-उनके इन्द्रिय गण।
हो गये प्रफुल्लित पूर्ण काम।
हे अमर ज्योति! हे अमर धाम।।२।।

हो उदित प्रकाश प्रकाश्य उठे,
वेदों पर भाषित भाष्य उठे,
यह धरा और आकाश उठे।
बन गये अखिल आराम राम।
हे अमर ज्योति! हे अमर धाम।।३।।

जागे देवी और देव अमर,
बन गये पीठ! तीर्थों के घर।
मरु के तन में उभरे नन्दन,
बनखण्ड बने बैकुण्ठ धाम।
हे अमर ज्योति! हे अमर धाम।।४।।

ओ अमर प्रयाण दिवस आओ।
उस अमर दीप्ति की दरसाओ,
भक्तों का तन मन सरसाओ,
ले लो अनन्त ये नमन ग्राम।
हे अमर ज्योति! हे अमर धाम।।५।।

***

पूज्यपाद की कृपा

– प्रो. एन. एल. वैद्य
भोपाल

सन् १९७१, सात दिसम्बर की श्याम। आकाशवाणी पर सुना कि पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। मैं और मेरी श्रीमती मन में कम्पित हो गये, क्योंकि हमारा पुत्र हवाई दल में था। दो दिन के बाद सुना कि छम्ब क्षेत्र में घोर युद्ध चल रहा है। यह सुनकर पत्नी तो बेसुध हो गयी, कारण हमारा पुत्र छम्ब क्षेत्र में ही था। मैंने पत्नी को धैर्य दिया, चिन्ता मत करो! भगवती की कृपा है, पूज्यपाद का आशीर्वाद है, घबराने की जरूरत नहीं। मैं अभी दतिया जाता हूँ और पूज्यपाद के चरण स्पर्श करके आता हूँ। मैं भोपाल स्टेशन पर आया। अमृतसर मिल गई। सभी आम गाड़ियाँ बेवक्त जाती थी। प्रात: ४-३० पर दतिया स्टेशन पर आया। खूब अंधेरा तथा एकदम सन्नाटा था। स्टेशन से पीताम्बरापीठ दूर है, किन्तु कोई भी वाहन प्राप्त न होने से बैग कन्धे पर लाद कर मैं पैदल चल पड़ा। मंदिर में आया। पूज्यपाद दो शिष्यों के साथ घूमने गये थे। मैं अंधेरे में बैठा रहा। पांच दस मिनट में पूज्यपाद आये और आसनाधिष्ठित हुए। मैंने उनके चरणों में मस्तक झुका दिया। अभी भी काफी अंधेरा था। अत: पूज्यपाद मेरा चेहरा नहीं देख पा रहे थे। पूछा– "कौन?" मैं गद्गद् हो गया। आँखों में आँसू थे। कुछ बात भी नहीं कर सका। उनके पवित्र चरण कमलों पर अश्रुसिंचन करता रहा। फिर पूछा– कौन है? मैंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा– 'बैद्य, भोपाल'। पूज्यपाद ने पूछा– "कैसे आये?" ५-१० मिनट के बाद मैंने निवेदन किया। पूज्यपाद गम्भीर हो गये। १५ मिनट बाद कहा– "सब ठीक है, चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें आज एक और मन्त्र दूँगा। स्नान करके भगवती के सामने दिन भर जप करो।"

पूज्यपाद ने अपने हाथों से मेरी नोट बुक पर मन्त्र लिखा। उसका जप मैं भगवती के सामने दिनभर करता रहा। दूसरे दिन पूज्यपाद की आज्ञा लेकर भोपाल के लिए रवाना हो गया। रात को घर पहुँचा तो श्रीमती ने मेरे हाथों में फौजी अंतर्देशीय देकर कहा – पूज्यपाद का आशीर्वाद – पुष्कर का पत्र आज ही आया। पत्र में केवल दो पंक्तियाँ थीं– 'मैं कुशल हूँ, चिन्ता नहीं करना'। युद्ध समाप्ति के बाद चि. पुष्कर पूज्यपाद के चरण स्पर्श करके आया।

स्वामी जी के बारे में, मेरी क्षुद्र बुद्धि क्या लिख सकती है? मैं पं. सूर्यदेव शर्मा का अत्यन्त ऋणी हूँ कि वे मुझे दतिया ले गये। स्वामी जी का दर्शन कराया, और उनका अनुग्रह भी। जीवन में मैंने देश विदेश की बहुत यात्राएँ की हैं, कर रहा हूँ, बहुत देखा भी है। अत: मेरे दिमाग पर किसी सामान्य व्यक्ति का प्रभाव नहीं होता। स्वामी जी का दर्शन होते ही मैं उनके सामने नम्र हो गया। यह एक अलौकिक विभूति है।

महासागर के बारे में क्या लिख सकते हैं? परमात्मा का वर्णन हम क्या कर सकते हैं? वैसे ही पूज्यपाद के बारे में हम अपने को पावन करने के लिए कुछ भी लिख सकते हैं। उनका दर्शन होते ही क्षुब्ध मन शांत होता था, किन्तु हम सब महास्वार्थी थे। निजी स्वार्थ के लिये उनके पास जाते थे, वैयक्तिक कठिनाइयां लेकर। जिनके पास बहुत पैसा है, वे बहुत होम, हवन करते थे, अपना वैभव अन्य साधकों को बताते थे। स्वामी जी सब समझते थे, एक बहुत बड़े घर की बहू सिनेमा एक्ट्रेस जैसे शृंगार एवं पोशाक करके आयी। कीमती साड़ी, लिप्स्टिक, बड़े नाखूनों पर गहरा रंग इत्यादि। वह भगवती के दर्शन करने जा रही थी। स्वामी जी ने कहा – "भगवती के दर्शन के लिये यह पोशाख।"

जिन छोटे-छोटे बालकों को देख कर मेरे मन में घृणा पैदा होती थी, उन्हें स्वामी जी बड़े प्यार से बुलाते थे। मिठाई देते थे। स्वामी जी जितेन्द्रिय थे। मुझे कई बार कहा – परमात्मा दर्शन देता है। अत्यन्त कठिन दार्शनिक प्रशन अत्यन्त सरलता से समझा देना स्वामी जी के लिये सामान्य बात थी। अपने ग्रन्थों में गहन विषयों पर उन्होंने अत्यंत बोधगम्य भाष्य किया है।

श्री स्वामी जी महाराज का अलौकिकत्व हमारी अल्पबुद्धि, समझ से परे था। जिसका अन्त:करण शुद्ध, निर्मल, पवित्र तथा नि:स्वार्थ था, वही उन्हें कुछ अंश तक समझ सकता था, किन्तु ऐसे व्यक्ति इस धरती पर कहाँ? कुबेर के पास जाकर एक नया पैसा की याचना करना, जितना हास्यास्पद है, उतना ही हास्यास्पद था हमारा क्षुद्र समस्याओं को लेकर पूज्यपाद के पास जाना। किसी को लोक सभा का सदस्य बनना है, किसी को विधान सभा का। किसी को राजनीति में नेता पद चाहिये, किसी को पुत्र चाहिये, किसी को पदोन्नति या स्थानान्तरण या बीमारी का इलाज ... बस्स! इससे अधिक हमारी दृष्टि ही नहीं जाती थी। स्वामी जी की महिमा इतनी उच्च कोटि की थी कि सबको उसका अभीष्ट प्राप्त होता था, परन्तु स्वामी जी के पास जो बहुमूल्य चीजें थी वह कोई नहीं मांगता था। स्वार्थ से परे जाने की इच्छा किसी व्यक्ति की नहीं थी, और पारलौकिक ज्ञान, आध्यात्मिक उन्नति, महाभूतों पर

विजय, ध्यान, चिंतन आदि दैवी सम्पत्तियों से हम वंचित ही रहे। इसमें हमारा दोष भी नहीं है। हरेक नदी गंगा नहीं हो सकती, बहुत सी नहरें भी होती हैं।

हमारा कर्तव्य यही है कि जिस अद्वितीय विभूति का दर्शन हमें हुआ, उन्होंने जो पथ प्रदर्शन किया है, उस पथ पर अग्रसर होने की चेष्टा करें। यही पूजनीय श्री स्वामी जी महाराज की स्मृति का यथार्थतः संजोना होगा।

***

–: वैदिक उपदेश :–

मन्त्र में गौ की रक्षा करने की आज्ञा दी गई है। गौ शब्द गम गतौ धातु से बना है, जिसका अर्थ गति, प्राप्ति, ज्ञान और मोक्ष है, जिससे इन चारों अर्थो की प्राप्ति हो उसे वेद में गौ कहा गया है। इसके अतिरिक्त गौ का अर्थ वाणी, किरण, पृथ्वी, प्राणी, विशेष इन्द्रिय आदि भी किये जाते है। मनुष्य के लिए कल्याणकारी होने से भारतवर्ष में इसका स्थान पूज्य रूप में माना गया है।

– *श्रीस्वामीजी*

भारतीय विद्याओं के महामनीषी

– डॉ. सुवालाल उपाध्याय शुकरत्न
व्याख्याता, केन्द्रीय विद्यालय, ग्वालियर

ज्ञान और साधना की प्रज्ज्वलित निर्धूम ज्योति शिखाओं से प्रदीप्त, अनन्त श्री विभूषित दतिया पीताम्बरा पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज उन असाधारण दिव्य महान् आत्माओं में थे, जो सदियों में अपने आविर्भाव द्वारा इस धरती को धन्य बनाते हैं, और जिनका लोकोत्तर सहज आचरण ही शास्त्रों का स्रोत बन जाता है –

''या स्तेषां स्वैरकथास्ता एवं भवन्ति शास्त्राणि''

अपनी ही जीवन-दृष्टि के अवमूल्यन से आंतरिक नैतिक शक्ति का ह्रास होता है उससे जो ग्रंथियाँ पैदा होती हैं, वे कभी भी पूरी जाति के लिये घातक बन सकती हैं। मानो, इस तथ्य को अपनी पारदर्शी वेधक दृष्टि से देखकर ही उन्होंने भारतीय-साधना, भारतीय जीवन मूल्य और भारतीय विद्याओं के प्रचार में ही अपना सम्पूर्ण अनमोल जीवन हवन कर दिया। उनके निर्देशन में सैकड़ों साधक तो विभिन्न साधना-पद्धतियों का अनुष्ठान करते ही थे, राष्ट्ररक्षा परक तथा अन्य वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान विभिन्न विलक्षण देव मूर्तियों की प्रतिष्ठा, साधकावास तथा यज्ञशाला का निर्माण, पीताम्बरा-संस्कृत परिषद् की स्थापना तथा उसको निमित्त एवं माध्यम बना कर साधना-परक अमूल्य साहित्य का प्रकाशन, भारतीय-योग विद्या का प्रायोगिक प्रशिक्षण, ज्योतिष विद्या तथा तांत्रिक पंचाङ्ग का मुद्रण, उपनयन आदि वैदिक संस्कारों का प्रचार भारतीय वेश भूषा के प्रति गौरव-भावना आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, कितना ही बड़ा विद्वान उनके विराट ज्ञान और अनुभव के आगे अपनी सीमाओं को समझकर चकित होता हुआ उनका शिष्यत्व स्वीकार करने के लिये उत्साहित हो उठता था। महायोगियों जैसा कितना विलक्षण व्यक्तित्व था उनका?

परम शक्तिशाली पदार्थ की शक्ति भी यदि विकेन्द्रित होकर अनेक धाराओं ने प्रवाहित होने लगे, तो वह पदार्थ अपनी सारी शक्ति खो देता है। उसकी शक्ति तभी बढ़ती है, जब इस शक्ति को संयत और केन्द्रित रखा जाय हमारे मन और इन्द्रियों में जो अदम्य शक्ति है, उसका विकेन्द्रित होना ही हमें निर्बल बनाता है, यदि उस शक्ति को केन्द्रित करके आत्मा की ओर उन्मुख किया जाये तो वह शक्ति

अत्यधिक विकसित हो जायेगी, क्यों कि मन इन्द्रियाँ और उनकी सभी शक्तियाँ स्वत: जड़ हैं। वे जब बाह्य पदार्थों के सम्पर्क में आती हैं, तब उनमें जड़ता या क्षीणता का अधिक संचार होता है, और वे ह्रासोन्मुख होती हैं। इनके विपरीत मन और इन्द्रियों की सम्पूर्ण शक्तियाँ यदि चेतन आत्मा की ओर उन्मुख होती रहेंगी तो आत्म-चैतन्य से वे जगमगा उठेंगी और अधिक आनन्द, अधिक उल्लास तथा अधिक शक्ति का अनुभव होगा।

समूचे विश्व के बाह्य सुखों को हम राशिकृत कर लें, फिर भी वे शुद्ध चैतन्य के स्पन्दनों की तुलना में नगण्य हैं। सामान्य मनुष्य ऊर्जा को अधोगामी करना ही जानता है, ऊर्ध्वगामी करना नहीं जानता, उसकी चेतना नाभि के आसपास या उसके नीचे के केन्द्रों में ही उलझी रहती है। श्री स्वामी जी शुद्ध-चैतन्य के स्पन्दनों के जैसे मूर्तिमान आकार ही थे, उनके पास पहुँच कर साधक के आनन्द केन्द्र जैसे खिलने लगते थे। साधना का वह महान सूर्य अब कहाँ है? उनकी ही रोशनी से प्रदीप्त साधकों के छोटे-छोटे दीप ही संगठित होकर यदि विनम्रता से आश्रम का प्रकाश चारों ओर फैलाते रहें, और पुनः उसे प्रकाश पिण्ड बनाने की ओर प्रयत्नशील रहें तो यही उनके जीवन की चरम सार्थकता होगी।

***

–: वैदिक उपदेश :–

दानी लोग संसार में अपने दान के प्रभाव से त्याग की महत्ता का आदर्श रखते हैं, जिनसे धर्म के सिद्धान्त की शुद्धता प्रकट होती है। जिसका अनुकरण करके अन्य जीव भी पुरुषार्थ का ज्ञान करते हैं। शिव, दधीच आदि महापुरुषों की कथायें पुराणों में इसी अर्थ में लिखी गई है।

— *श्रीस्वामीजी*

१७ दिसम्बर सन् १९७८ की वह रात

– राजन साजन मिश्र
सुप्रसिद्ध ध्रुपद गायक

१७ दिसम्बर, १९७८ की बात है। हम लोग तानसेन संगीत समारोह में भाग लेने हेतु ग्वालियर गये हुये थे। मंच पर हमारा गायन प्रारंभ था। माँ सरस्वती के चरण कमलों में हम अपना विनम्र निवेदन राग शुद्ध सारंग से अर्पित कर रहे थे। कार्यक्रम के मध्य ही चार-पांच सज्जन पीछे की पंक्ति से उठकर बिल्कुल आगे की पंक्ति में विराजमान हो गये। उन सज्जनों के संगीत प्रेम ने सहसा हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। हमें भी अत्यंत आनंद की अनुभूति हो रही थी।

कार्यक्रम समाप्त हुआ। ढेर सारे व्यक्तियों के बीच उन चार व्यक्तियों के समूह से भी हम लोग मिले। प्रशंसा के लिये धन्यवाद ज्ञापन किया। कृतज्ञता जाहिर की परन्तु उन लोगों ने मुझ से अकेले में बात करने की इच्छा व्यक्त की। मैंने मान लिया। सर्वप्रथम एक सज्जन ने एक दूसरे सज्जन का परिचय श्री सागर बाबू के रूप में कराया तथा श्री सागर बाबू ने अपना परिचय कराने वाले सज्जन का परिचय श्री रेवाराम तिवारी के रूप में कराया। परिचय की औपचारिकता के पश्चात् ही श्री तिवारी जी ने दतिया के श्री पीताम्बरा पीठ में कार्यक्रम देने को कहा, और संक्षिप्त रूप में पूज्य स्वामी जी के विषय में बताया। हम लोग कार्यक्रम देने के लिए तैयार हो गये और सागर बाबू की मोटर गाडी में बैठकर ग्वालियर से दतिया पहुँचे।

श्री पीताम्बरा पीठ के मुख्य द्वार में प्रविष्ट होते ही हमें जो आन्तरिक परिवर्तन का अनुभव हुआ, उसे मैं लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं कर पाऊँगा। सचमुच वह दिन हमारे जीवन के सबसे प्रमुख दिनों में एक रहा। माँ पीताम्बरा देवी के दर्शन के पश्चात् हम लोगों को श्रद्धेय स्वामी जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य स्वामी जी आसन पर विराजमान थे। हम लोगों ने चरण स्पर्श कर प्रणाम किया, फिर बैठे। वह तेजस्वी चेहरा, स्नेहपूर्ण रूप और सरल स्वभाव के महापुरुष को आज भी मन नहीं भूल पाया है। कुछ सांगीतिक चर्चा, फिर कुछ हमारे पूर्वजों की चर्चा और फिर ज्ञात हुआ कि हमारे दादा-परदादा को स्वामी जी सुन चुके हैं। काशी के स्वर्गीय पंडित बड़े रामदासजी, स्वर्गीय पं. छोटे रामदासजी और स्वर्गीय पण्डित सुरसहायजी आदि प्रमुख संगीतज्ञों की चर्चा पूज्य स्वामी जी ने की, जिससे हम लोग तो बिल्कुल ही

विचलित हो गये कि अब हमलोग किस प्रकार अपनी संगीत श्रद्धांजलि स्वामी जी के चरणों में अर्पित करेंगे?

सायंकाल संगीत का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ और आश्चर्य की बात तो यह है कि उपयुक्त साजबाज के बगैर भी हमारा कार्यक्रम बहुत ही सफल रहा। रहस्य बाद में ज्ञात हुआ कि पूज्य स्वामी जी ने ही हमें गवाया, उन्हीं के आशीर्वाद से कार्यक्रम सफल हुआ। स्वामी जी का बहुत ही प्रिय राग ''बागेश्वरी' भी हम लोगों ने उनके आदेशानुसार सुनाया। उनका आदेश प्राप्त हुआ कि प्रात: भैरवी का भी आयोजन होगा। प्रात: हम लोग तैयार होकर स्वामी जी के चरणों में पहुँचे। कार्यक्रम का प्रारंभ 'गुणकली' में निबद्ध ''डमरू हरकर बाजै'' से हुआ जो पूज्य स्वामी जी को बहुत ही अच्छा लगा। फिर कार्यक्रम का समापन भैरवी के भजन – ''विनती करत भरत हूँ लाज'' सूरदास जी की रचना से हुआ। सौभाग्यवश स्वामी जी अत्यंत प्रसन्न हुये और आशीर्वाद स्वरूप एक एक फल हमें देकर हम दोनों की पीठ पर अपने दोनों हाथ रख दिये, जो वहाँ बैठे लोगों के बीच एक अभूतपूर्व घटना थी। पूज्य स्वामी जी के आशीर्वाद में हम लोगों ने संगीत के कठिनतम मार्ग पर यात्रा की है, और आगे दिशा की खोज में समर्पित हैं। उसके पश्चात् हम लोग कई बार दतिया जा चुके हैं, परन्तु पूज्य स्वामी जी के दर्शन का वह प्रथम और अंतिम दिन था, जो जीवन भर स्मृति में उसी रूप में विद्यमान है और रहेगा।

हम लोग उसी दिन से अपने को श्री पीताम्बरा पीठ परिवार का सदस्य समझते हैं, और प्रसन्नता इस बात की है कि पीठ के सभी गुणी जन, कार्य संचालक हमें उतना ही प्यार व स्नेह देते हैं। पीठ में कार्यक्रम देकर हम लोग अपने को धन्य समझते हैं और पूज्य स्वामीजी हमेशा हमारे कार्यक्रम में विराजमान रहते हैं, ऐसी अनुभूति हमें हमेशा होती है। अंतिम श्वास तक हम लोग श्री पीताम्बरा पीठ की सेवा करें, ऐसी ही इच्छा है। परम पूज्य स्वामी जी के चरण कमलों में निश-दिन का प्रणाम।

***

–: वैदिक उपदेश :–

कोई जलाशय कितना भी पूर्ण भरा हो तथापि उसमें छिद्र होने से उसका जल जैसे बह जाता है, इसी प्रकार मनुष्य का शरीर प्राप्त हो गया है तथापि इसमें कोई भी छिद्र या दोष हो तो इसका वास्तविक उपयोग मनुष्य को नहीं हो सकता।

– *श्रीस्वामीजी*

राजत अब स्वामी हैं

– जगदीशशरण बिलगइयाँ
मधुप

बड़े नामधारी किन्तु, नाम से अनामी रहे,
दक्ष-मार्ग गामी किन्तु, लोग कहें वामी हैं।

कामनायें पूर्ण करीं, विपदा अनेक हरीं,
याचकी न वृत्ति "मधुप" पूरण अकामी हैं।।

"पीता" के उपासी, अभिलाषी ब्रह्मविद्या के,
देशिकेन्द्र राशी मनु, सत्य अभिरामी हैं।

दतिया से स्वामी लसे, स्वामी से दतिया लसी,
दिव्य-देह धारण कर, राजत अब स्वामी हैं।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

संसार के सभी कार्यों की सिद्ध करने वाली शक्ति को मन्त्र में आकूति या संकल्प शक्ति कहा गया है। दृढ़ रूप से उसका प्रयोग करने से समस्त कार्यों की सिद्धि होती है, उसे की आजकल की भाषा में (will) कहते हैं। योगमार्ग एवं तान्त्रिक साधना में इसका प्राधान्य है।

– श्रीस्वामीजी

ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री स्वामीजी

– डॉ. (रविशंकर दीक्षित)
आचार्य, शा.म.वि., दतिया

पूज्यपाद श्री स्वामीजी के दिव्य चरित्र के विषय में कुछ भी कह पाना बड़ा ही कठिन है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भगवान राम के मुख से कहलाया है –

''मुनि सुन साधुनि के गुन जेते। कहि न सकहिं शारद श्रुति तेते।।''

माँ शारदा और भगवती श्रुति जिन साधु-सन्तों के गुणों का वर्णन नहीं कर सकती, उनके विषय में यह पार्थिव बुद्धि भला क्या कर सकती है, फिर भी एक श्रद्धालु होने के नाते मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने के मोह का संवरण नहीं कर पा रहा हूँ अत: पूज्यपाद श्री स्वामी जी की दीप्ति के प्रति जो श्रद्धा भाव है, उसे गीता एवं रामचरित मानस के आधार पर व्यक्त कर रहा हूँ।

ब्रह्मलीन श्री स्वामीजी स्थितिप्रज्ञ साधु थे, वह स्थिर बुद्धि के थे, क्योंकि वे संपूर्ण कामनाओं को त्याग कर आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट रहते थे। मन की कामनाओं एवं सांसारिक आकर्षणों से सर्वथा परे आत्मतत्व में स्थित अपने आप को अपने-आप में सदा डुबोये और निकट में आये हुये श्रद्धालुओं को भी उस आत्म सरोवर में गोते लगाने के लिए सहज भाव से प्रेरित करने वाले श्री स्वामी जी का आत्म-केन्द्रित व्यक्तित्व कितना स्वाभाविक एवं गंभीर प्रभाव डालता था, वह अनुभूति की बात है, अभिव्यक्ति की नहीं।

दु:खों में अनुद्विग्न, सुखों में विगतस्पृह एवं राग, भय तथा क्रोध से मुक्त श्री स्वामीजी के दर्शन वास्तव में प्रेरणा दायक थे। उनके अवस्था प्राप्त शरीर की स्थिति दर्शनार्थियों की दृष्टि में कभी-कभी कष्टदायक प्रतीत होती थी, किन्तु उस अनुभूति की पुष्टि श्री स्वामी जी की मन:स्थिति की भाव भंगिमाओं से किसी भी रूप में नहीं होती थी। उनको सहज तेजस्वी मुख मुद्रा से ऐसा कोई भाव प्रकट नहीं होता था, कि जिसे अनुभव कर दर्शक उनके शारीरिक कष्ट की चर्चा कर सके।

इसी प्रकार श्री स्वामी जी सांसारिक सुखों की स्पृहा से सर्वदा मुक्त थे। उनकी यश-कीर्ति, चतुर्दिक व्याप्त थी और उस यश की छाया में प्राय: प्रत्येक छोटा-बड़ा पहुँचने का उद्यम करता था। बिना उनकी इच्छा के ही न जाने कितने लोग सहज

भाव से श्रद्धा के साथ सांसारिक सुखसमृद्धि की सामग्रियाँ श्री स्वामी जी के चरणों में समर्पित करते थे। उनके प्रति भरपूर आदर, सम्मान प्रकट करते थे, किन्तु श्री स्वामीजी पर उन सबका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था, क्यों कि उन्होंने तो अपनी स्पृहा को आराधनामय बना लिया था।

श्री स्वामी जी के दिव्य चरित्र का स्मरण तथा उनके द्वारा स्थापित साधना-स्थली दिव्य पीताम्बरा पीठ दोनों ही भारतीय जीवन, धर्म, संस्कृति और संस्कार का निरंतर कल्याण करने वाले अमोघ साधन हैं। यही कारण है कि उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम सभी ओर से मंगल की प्राप्ति के लिये श्रद्धालु जन इस पुण्य स्थान पर आते हैं और शांति प्राप्त कर सही दिशा ग्रहण करते हैं। आज पीताम्बरा पीठ व ब्रह्मलीन श्री स्वामीजी परस्पर पर्याय बन गये हैं। ज्ञान भक्ति कर्म की साधना का और तपस्या का केन्द्र पीताम्बरा पीठ श्री स्वामीजी के प्रताप का पुंज है। यह वह साधना स्थली है, प्रेरक केन्द्र है, जहाँ पर दर्शक साधक पहुँच कर श्री स्वामी जी के चरणों में लीन होकर पीताम्बरामय हो जाता है। उसे साधना-शक्ति की सहज अनुभूति होती है, और आत्मालोक प्राप्त करता है। पीठ में पहुँच कर ऐसा कुछ नहीं लगता कि श्री स्वामी जी का अभाव है। पीताम्बरा पीठ एक देवस्थली है, स्वर्गस्थली है, दिव्यस्थली है और श्री स्वामी जी का दिव्य आलोक पीठ में सदा आलोकित रहता है। उन दिव्य स्वरूप श्री स्वामीजी के पावन चरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का परिणाम होता रहता है। सत्व गुण के परिणाम विवेक, बुद्धि, विचार आदि रूप से व्यक्त होते हैं। क्रियायोग रजोगुण से होता है। आलस्य प्रमाद आदि तमोगुण से निकलते हैं। प्रमाद के होने पर विवेक-विचार पर आवरण छा जाता है जिनसे वृथा ही आयुकाल चला जाता है।

– *श्रीस्वामीजी*

कविरा संगति साधु की

– डॉ. शिव मन्दिर प्रधान
अभियन्ता, दिल्ली

महात्मा कवीरदास ने लिखा है, **''कविरा संगति साधु की, ज्यों गंधी का वास''** अर्थात् एक साधु के सत्संग में वर्णनातीत अप्रतिम आनन्दरूपी गंध होती है। सभी उम्र के लोग, चाहे वे अमीर हो या गरीब, शिक्षित हो या अशिक्षित, जिन्होंने पूज्यपाद के एक बार भी दर्शन किये हों, उन्होंने उनके व्यक्तित्व में इसी प्रकार के एक असाधारण आकर्षण एवं सान्निध्य में अलौकिक आनन्द तथा शान्ति की अनुभूति अवश्य की होंगी। क्या कारण था इस चमत्कारी प्रभाव का? इस रहस्य को स्पष्ट करने के लिये कुछ ऐसे प्रसंगों का वर्णन समीचीन होगा जो पूज्यपाद के अलौकिक रूप का प्रतिपादन तथा उनकी सरलता, महानता, हास्य, विनोद-प्रियता आदि को प्रकाशित करते हैं। पूज्यपाद की सारी बातें सरल एवं बोधगम्य होती थीं। गूढ़ से गूढ़ विषय को भी पूज्यपाद विशिष्ट विद्वान या जन साधारण को, उनके बौद्धिक स्तर एवं भाषा में परस्पर बहुत भिन्नता रहते हुए भी – समान रूप से बोधगम्य कराने में अद्वितीय थे। पक्षान्तर में उनकी सरल बातों का आध्यात्मिक रूप मेरे मस्तिष्क के परे है। अत: इन किंचित संस्मरणों को लिखने में यदि मैं छोटे मुँह बड़ी बातें कहूं तो विद्वान क्षमा करें।

भारत का विशद् ज्ञान –

बाहर से आने वाले दर्शनार्थियों के परिचय हेतु महाराज जी के कुछ विशेष प्रश्न होते थे। कौन हो? कहाँ से आये हो? इन दो प्रश्नों के उत्तर के साथ ही पूज्यपाद के मुखारविन्द से उस व्यक्ति के कुल एवं स्थान से संबंधित तथा सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक मान्यताओं, विशेषताओं का विवरण इस भांति निकल पड़ता था जैसे कि उस व्यक्ति से वे पहले से भलीभाँति परिचित हो तथा उस विषय की उनको पूर्ण जानकारी हो। वह व्यक्ति भारत के किसी भी कोने का क्यों न हो, स्वामी जी उसे उसके स्वयं के बारे में इतनी जानकारी दे देते थे जो वह कभी जानता ही न होगा। स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत भ्रमण तो किया ही था, परन्तु सारी बातों को, छोटे से छोटे स्थानों की विशेषताओं को, देश की जाति, उपजाति, धर्मादि को कई दशाब्दियों के

पश्चात् भी स्वामी जी किस प्रकार स्मरण रखते थे, यह एक रहस्यमयी वस्तु है तथा उनके देवत्व का स्पष्ट परिचायक है।

मुझे पूज्यपाद के दर्शन का प्रथम अवसर मेरी शादी के बाद सन् १९६८ में मिला। उन्होंने मेरा नाम पूछा। जब मैंने अपना नाम शिव मंदिर बताया तो वह बोल उठे कि "टेम्पल ऑफ शिव"। तब से पूज्यपाद मुझे "टेम्पल ऑफ शिव" ही पुकारते थे। बाद में यह बताने पर कि मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ता हूँ, स्वामी जी ने विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मालवीय जी को देशभक्ति एवं समाज कल्याण के आदर्शों के आधार पर भारत का एक अद्वितीय नेता बताया। फिर मेरा जन्म स्थान पूछा। मैंने अपना जिला गाजीपुर (उ.प्र.) बताया। इसके बाद एक नई बात महाराज जी ने बताई जिससे मैं तथा गाजीपुर के ९९ प्रतिशत लोग आज भी अनभिज्ञ होंगे। उन्होंने पूछा कि "जमनियां गये हो (जमनियां गाजीपुर जिले की एक तहसील है) वहां पर जमदग्नि ऋषि का आश्रम था। परशुराम जी का मंदिर है। बड़ी ही पवित्र एवं तांत्रिक भूमि है"। मैं गाजीपुर का होते हुए भी जमनियां नहीं गया था तथा पूज्यपाद के द्वारा बताये गये विवरणों को उसके पहले नहीं जानता था।

मन्त्रों का प्रभाव –

स्वामी जी मेरी पत्नी को पकोड़ी चुराने वाली दुर्गा कहा करते थे। कारण यह था कि जब मेरी पत्नी मात्र ३ साल की थी और स्वामी जी का दर्शन करने अपने पिता श्री सूर्यदेव शर्मा जी के साथ पीताम्बरा पीठ आयी थी, तो बाल स्वभावानुकूल उन्होंने एक खोमचे वाले से पकोड़ी उठाकर फ्राक में रख लिया तथा स्वामी जी के पूछने पर उत्तर दिया कि यह पकोड़ी नाना ने दी है। यह घटना स्वामी जी को कुछ इस प्रकार से याद हो गई थी कि दर्जनों बार जब भी हम लोग उनके दर्शन करने जाते थे तो वे सभी उपस्थित सज्जनों से बड़े विनोद पूर्ण ढंग से बताते थे कि इस दुर्गा ने बचपन में पकोड़ी चुरायी थी। साथ ही लगभग २० साल से यह पुरानी बात भी उन्हें याद थी कि मेरी पत्नी को पहले जहाँ गणित में शून्य अंक मिलते थे स्वामी जी से मन्त्र ग्रहण के पश्चात मन्त्र-प्रभाव से शत प्रतिशत अंक पाने लगी। इतनी ही बातों में लोक व्यवहार, प्रेम एवं ज्ञान का ऐसा समन्वय था जो आत्म-विभोर कर देता था।

आषाढ़, सन् ७८ ई. की बात है, गुरुपूर्णिमा पर मेरे पिताजी गाजीपुर से दतिया पहुँचे। शिव भक्त होने के कारण श्रावण माह में शिव पूजन करने के लिये गाँव वापिस जाने की स्वामी जी से आज्ञा मांगी। स्वामी जी ने तुरन्त शिव मंत्र पिता जी को देते हुए कहा कि तुम्हारे रुके हुए सब कार्य पूर्ण होंगे तथा बाधायें दूर होंगी। मन्त्र जप करने पर खेती की फसल तिगुनी हो गयी, जिसे अगली गुरु पूर्णिमा पर पिताजी ने

पूज्यपाद के चरणों में

– *नरसिंह जोशी*

श्री पीताम्बरा पीठाधिपति दतिया के पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने ज्येष्ठ शुक्ल ७ शनिवार सं. २०३५ को ब्रह्मरन्ध्र से प्राणोत्क्रमण कर देह त्याग किया। योगिराज योगनिद्रा में लीन हो गये और ज्येष्ठ सुदी अष्टमी की दुर्गाष्टमी को वह लौकिक देह समाधिस्थ हुई। शाक्त तन्त्र में जिस तन्त्र के स्वामी जी **'शाब्दे परे च निष्णात'** थे, उस तन्त्र की प्रक्रिया में सप्तमी और अष्टमी अत्यन्त महत्वपूर्ण तिथियाँ हैं।

यद्यपि पूज्य. श्री स्वामी जी के चरणों में बैठने का अवसर मुझे केवल ३-४ बार ही मिला, परन्तु वे इने गिने क्षण मेरे लिये अत्यधिक मूल्यवान हैं। उन चन्द क्षणों में मैंने श्री स्वामीजी की प्रतिभा और पांडित्य की अविस्मरणीय झलक देखी। स्वामी जी ने बताया कि दैत्य गुरु शुक्र महान तांत्रिक थे और 'काबा' शुक्र की साधना स्थली रही। शुक्राचार्य का प्रभाव इस्लाम पर अति स्पष्ट है। हरा रंग ऐश्वर्य और सौभाग्य का प्रतीक है, और उस हरे रंग के ध्वज पर अर्धचन्द्र है। सप्तशती में उल्लेख है **''नमः सोमार्धधारिणे''** अर्धचन्द्र धारण करने वाली को नमस्कार। इसी सन्दर्भ में स्वामीजी ने बताया कि इस्लाम में पीर, जुमेरात और जुम्मा – अर्थात् सोम, गुरु और शुक्र का महत्व विचारणीय है।

मैं महाराष्ट्रीयन ब्राह्मण हूँ यह विदित होने पर स्वामी जी ने पूछा कि क्या आप कोकणस्थ हैं? और जब मैंने कोकणस्थ होना स्वीकार किया तो फिर भगवान परशुराम के मन्त्रपूत जल के सिंचन से कोकणस्थ ब्राह्मणों की चित्पावन विरादरी के जन्म होने की कथा स्वामी जी ने विस्तार से सुनाई। फिर प्रत्येक बार जब मैं उनके दर्शनार्थ पहुँचता तो वे मुझे कहते कि आप कोकणस्थ हैं।

एक बार समर्थ रामदास के सन्दर्भ में स्वामी जी ने सहज उल्लेख किया कि समर्थ रामदास शाक्त थे। यह सुनकर मैं आश्चर्यचकित हुआ। कारण रामदास तो तुलसीदास जी महाराज के समान अनन्य रामोपासक के रूप में विख्यात हैं, परन्तु स्वामी जी का अभिमत भी अयथार्थ नहीं है। यह कुछ विचार करने के पश्चात् सहज ही ध्यान में आता है। तुलजापुर स्थित तुलजा भवानी ही समर्थ स्वामी रामदास की कुलदेवता हैं, और यह राम वरदायिनी माता है। इस कारण रामदास को विशेष प्रिय है। इस तुलजा भवानी की प्रशंसा और प्रार्थना करने वाले अनेक शक्तिस्तोत्र समर्थ

रामदास स्वामी ने लिखे हैं। सज्जनगढ़ पर समर्थ रामदास ने महिषासुर मर्दिनी भवानी के विग्रह की प्रतिष्ठापना भी की है, और संभव है कि श्री स्वामी जी अपने भारत भ्रमण के क्रम में कभी सज्जनगढ़ पर श्री भवानी के दर्शन हेतु गये हों।

ये स्मृतियां लेखबद्ध करने का एक विशेष कारण है कि स्वामीजी के भक्तों और शिष्यों की संख्या बहुत बड़ी है। न जाने कहाँ-कहाँ से आर्त और जिज्ञासु साधक और सिद्ध श्री स्वामी जी के दर्शनार्थ आते रहे हैं। हरेक के पास स्वामी जी की स्मृतियाँ बिखरी हुई हैं। वे स्मृतियाँ काल चक्र के फेरे में नष्ट होने के पूर्व ही संकलित होना परम आवश्यक है।

पूज्यपाद को स्मृत्यंजलि!

***

–: वैदिक उपदेश :–

निष्काम रूप से देव-आराधन करने से अविद्या दूर होती है। तब यथार्थ ज्ञान होता है और चित्त की निर्मलता प्रकट होती है। तब जीवात्मा को यह ज्ञान होता है कि हमारा ज्ञान अभिमान पूर्वक जो था वह एक अज्ञान का ही रूप था। वास्तविक ज्ञान तो परमात्मा का ही है। **"सर्वं खल्विदं ब्रह्म"** - सब कुछ परमात्मा ही है ऐसा बोध होता है तब ईश्वर की प्रियता या भक्ति प्रकट होती है और जीव कृतार्थ होता है।

– ***श्रीस्वामीजी***

श्रीचरणों का स्मरण

– डॉ. शिव शरण शर्मा
एम.ए.,पीएच.डी., प्राध्यापक, ग्वालियर

पीताम्बरा-पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु पूज्य श्री स्वामीजी महाराज को ब्रह्मलीन लिखते हुये मेरा हृदय कांपने लगता है। अभी-अभी कल तक जो दिव्य विभूति अपने पावन दर्शन से मानस-नयनों को आल्हादित किया करती थी, वह दिव्यविभूति आज हमारे बीच से ओझल हो गयी है। निरन्तर बीस वर्षों तक इन पंक्तियों के लेखक को भी पूज्यपाद के सान्निध्य में रहने तथा उनसे मार्गदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता रहा है। इस लेखक को देखते ही, उसकी प्रकृति पहिचान कर पूज्यपाद ने उसे सारस्वत मंत्र लेने का आदेश दिया तथा स्नेहपूर्वक मंत्र भी प्रदान किया। ऐसे अकारण-करुणामय गुरु का वियोग भला किस हृदय को व्याकुल न करेगा।

सन् १९६१ में जब पीठ के कुछ संस्कृतज्ञों ने मिलकर 'पीताम्बरा संस्कृत परिषद्' प्रारंभ करने की बात पूज्यपाद के समक्ष रखी तो उन्होंने उस बात का सहर्ष अनुमोदन किया तथा इन पंक्तियों के लेखक को ही उसके संचालन करने को आदिष्ट किया। उसके बाद तो पीठ के संस्कृतज्ञों में ऐसी स्फूर्ति आयी कि अनेकों गोष्ठियों तथा सभाओं के आयोजन होने लगे। ग्रन्थ-रचना तथा अनुवाद कार्य प्रारंभ हुये। इसी क्रम में इस लेखक को वेदान्त प्रबोध का अनुवाद करने हेतु आदेश हुआ, जिसे पूज्यपाद के चरणों में बैठकर पूर्ण किया गया। कितने सुखद थे वे क्षण! उन्हें कैसे लिखा जाय!

जब कोई विद्वान व्यक्ति चर्चा के लिये पूज्यपाद के समक्ष प्रस्तुत होता था तो फिर वह चर्चा श्रवणीय बन जाती थी। एक-एक शब्द पर घण्टों तक चर्चा चलती। पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पण्डित किशोरी दास बाजपेयी तथा डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री आदि विद्वानों की उपस्थिति में होने वाली विद्वतापूर्ण चर्चाओं का साक्षी यह व्यक्ति भी है। अमुक शब्द कहाँ प्रयुक्त हुआ है? ऐसा प्रश्न सुनते ही ग्रन्थ का नाम तथा अध्याय तक बता देने वाली दिव्य प्रतिभा आज अदृश्य हो गई है। संस्कृत और संस्कृतज्ञों से अपार स्नेह करने वाली विभूति से हम वंचित हो गये हैं।

पूज्यपाद के विषय में आज कुछ लिखते नहीं बनता। बड़े से बड़े विशेषण भी उनके लिये छोटे हैं। इसके अतिरिक्त हृदय इतना बोझिल प्रतीत होता है कि कुछ भी कहते नहीं बन पा रहा। पूज्यपाद ब्रह्मलीन तो हो ही गये, परन्तु इतना निश्चित है कि अदृश्य होने पर भी उनकी ज्योति सहस्रावधि भक्तों को कल्याण-पथ का प्रदर्शन निरन्तर करती रहेगी।

अत्यन्त श्रद्धा और विनतीपूर्वक उस महाज्योति के सम्मुख नत-मस्तक होकर मैं पूज्यपाद को अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि समर्पित करता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

ये मन की प्रवृत्तियां तमोगुण एवं रजोगुण से बनी हैं। इनसे वास्तविक सत्य नहीं मिलता है, वास्तविक सत्य तो योगाभ्यास से ही जाना जाता है; क्योंकि सात्विक वृत्तियों का प्रवाह योग से ही होता है। योग में भी कई प्रकार है; तथापि कोई भी प्रकार अपनाकर चलने पर वास्तविकता को मनुष्य जान सकता है। तभी यथार्थ शान्ति एवं सुख मिल सकता है। पूर्ण सत्य एक अद्वैत ब्रह्मतत्त्व है। सुख-शान्ति का प्रवाह जगत् में उसी से हो रहा है। विषयों में उसी का कण प्रतिबिम्बित हो रहा है, जिसमें ही सारा संसार लगा हुआ है। ये सांसारिक सुख क्षणिक हैं। इसमें तृप्ति कहाँ?

– श्रीस्वामीजी

पूज्यपाद का संगीत प्रेम

— सुषमा सिंह भू.पू. विधायक
ग्वालियर

पूज्य गुरु महाराज का संगीत के प्रति विशेष अनुराग तो था ही, साथ ही उन्हें संगीत कला का पूर्ण ज्ञान भी था। यही कारण है कि भारत के चोटी के संगीतज्ञ पीताम्बरा पीठ पर पधार कर महाराज जी के सामने अपनी कला का प्रदर्शन कर चुके हैं, संगीतकार के लिये यहाँ का आडम्बरहीन सात्विक वातावरण इतना अनुकूल आता है कि वह यहां आकर आत्म-विभोर होकर माई के सामने अपनी कला का प्रदर्शन करता है और आश्रम के भक्त भी सात्विक संगीत का रसास्वादन करते हैं।

संगीत के देवता महाकाल भैरव की मूर्तिप्रतिष्ठा भी श्री महाराज जी द्वारा करवाई गयी है, जहां सप्ताह में एक दिन रसिकजन एकत्र होकर संगीत गोष्ठी का आनंद लेते हैं, इससे देवता के प्रति आस्था के साथ कला की साधना भी होती जाती है। श्री महाराज जी का कथन था कि साधना के मार्ग में एकाग्र चित्त होना, तथा नियमित अभ्यास करना मोक्ष प्राप्ति के मार्ग में सहायक होते हैं। संगीत की साधना मोक्ष प्राप्ति का सबसे सरल साधन है। यह ऐसी कला है जिससे परमात्मा की प्राप्ति होती है, और मनोरंजन भी होता है।

पूज्यपाद को संगीत संबंधी अच्छे शास्त्रीय ग्रन्थों की पूरी जानकारी थी। वाराणसी के पंडित लालमणि मिश्र अपनी पुस्तक पर श्री महाराज जी की सम्मति चाहते थे। सम्मति देने से पूर्व महाराज जी ने ग्रंथ को पढ़वा कर सुना था। दतिया के ही विद्वान का लिखा संगीत पारिजात भी उन्होंने पढ़ा था। संगीत के प्राय: सभी पुराने ग्रन्थ संस्कृत में होने के कारण श्री महाराज जी को उन्हें सुनने में बड़ा आनन्द आता था।

पीताम्बरा पीठ पर जिन-जिन संगीत विद्वानों के कार्यक्रम हुये हैं, उनमें क्रमश: डॉ. कृष्णराव शंकर पंडित, निखिल बैनर्जी, कुमार गंधर्व, नासिर अहमद खान, डागर बन्धु, पवार बन्धु, सियाराम तिवारी, रामचन्द्र माधव अग्निहोत्री, अप्पा जलगांवकर, मालिनी राजुरकर, एकनाथ सारोलकर, बालासाहब पूंछवाले, छत्रपति सिंह जू देव विजना, गुंदई महाराज और सुलोचना यजुर्वेदी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, सभी महाराज के संगीत प्रेम और कला ज्ञान से आश्चर्यचकित थे।

डागर बंधुओं ने तो ऐसा समा बांधा कि महाराज जी प्रशंसा किये बिना न रह सके। स्वयं डागर बंधुओं से जब आश्रम के संबंध में मेरी बात हुयी तो उन्होंने कहा – "सुषमा जी! आश्रम में गा कर कितना आनंद मिलता है? यह शब्दों के द्वारा वर्णन नहीं कर सकते।" श्री नासिर अहमद साहब का कहना था कि महाराज जी का संगीत प्रेम और यहां का रसमय वातावरण देख मैंने बड़ी तबियत से गाया। श्री सियारांम तिवारी तो कई बार अपना कार्यक्रम दे चुके हैं। महाराज जी को ध्रुपद गायन से विशेष लगाव रहा है। आचार्य वृहस्पति तो महाराज जी से इतने प्रभावित थे कि समय-समय पर अपनी पत्नी श्रीमती सुलोचना यजुर्वेदी सहित आश्रम पर आकर कई दिनों तक ठहरते थे। उन्हीं के साथ आये आकाशवाणी के कलाकार श्री पन्नालाल चौरसिया का कहना था– "सुषमा जी। आप लोग बहुत भाग्यशाली हैं, जो ऐसे संगीत प्रेमी गुरु का आप लोगों को आशीर्वाद प्राप्त है। श्री रामचन्द्र माधव अग्निहोत्री का कथन था कि दतिया जाकर गाने से मन को बड़ी शांति मिलती है। इतने बड़े महात्मा के सामने गाना और उनका दर्शन प्राप्त करना, दोहरा लाभ होता है। जब हम लोग श्रीमती मालिनी राजुरकर के पास बसन्त पंचमी के कार्यक्रम के लिये गये, तो कहने लगीं – "मैं तो स्वयं ही वहां जाने को इच्छुक थी। जब से उनके विषय में सुना है, तब से उस महान आत्मा के सामने, जो भी थोड़ा बहुत सीखा है, उसे सुनाने की इच्छा रही है।" मालिनी के गुरु जी का रचा अभागी का 'देव देव महादेव' तो महाराज जी को बहुत भाया, और उन्होंने मुक्त कंठ से मालिनी की सराहना की थी। एकनाथ जी तो कई बार गा चुके हैं।

कैसा चमत्कार है? सिद्ध पीठ में आकर वैसे ही लोगों को बड़ी शांति प्राप्त होती है, साथ ही इतनी श्रेष्ठ कला को बिना हो-हल्ला, मनोयोग से सुनने का स्वर्णिम अवसर भी प्राप्त होता है। इतने बड़े-बड़े संगीतज्ञ जिनका कार्यक्रम सुनने के लिए कितनी भीड़ लग जाती हैं, वही महाराज को संगीत सुना कर अपने आप को धन्य भाग्य समझते हैं।

महाराज जी का लगाव यूं तो ध्रुपद-धमार से ही विशेष था, परन्तु ख्याल, ठुमरी और गजल भी वे बड़े रस से सुनते थे। कई बार महाराज व्यथित होकर कहते सुने गये – "ध्रुपद धमार का प्रचलन तो समाप्त ही समझो। लोगों में उतना धैर्य और लगन नहीं है कि पर्याप्त समय इस कला को दें। यह तो रियाज की चीज है, जिसने जितना किया उतना पाया"।

मुझ अकिंचन पर भी महाराज की विशेष दया दृष्टि रही है। कई बार कार्यक्रम सुना और सराहा, अपने वाचनालय से एक पुस्तक भी मुझे प्रसाद रूप में दी थी, जिस पर उन्होंने अपने हाथ से लिखा था – 'संगीताचार्या श्रीमती सुषमा देवी को भेंट',

उस समय गुरुजी ने कहा था – "यह पुस्तक हम सबको नहीं देते हैं, जो इसके अधिकारी हैं, उन्हें ही हम देते हैं, तुम संगीत की सेवा कर रही हो, इसलिये यह पुस्तक तुम्हारे काम की है"।

श्री महाराज को वैसे तो सभी राग अच्छे लगते थे, परन्तु राजेश्वरी और वागेश्वरी को वे मां सरस्वती का पर्यायवाची होने के नाते हर कार्यक्रम पर अवश्य सुनते थे, आज श्री गुरु महाराज सशरीर तो हमारे सामने नहीं हैं, पर उनका वरदहस्त हर समय हम भक्तों पर है, अभ्यास करने बैठती हूँ तो लगता है महाराज जी सामने बैठे सुन रहे हैं, और वही चिर परिचित प्रशंसात्मक भाव सिर हिलाना, सम पर 'वाह' करना सभी कुछ आँखों के सामने से गुजरता जाता है, महाराज जी के समय आश्रम में हुई गोष्ठियों की स्वर लहरी आश्रम पहुँचते ही कानों में झंकृत होने लगती है, उस समय कलाकारों द्वारा गाये गये राग मानो सामने साकार खड़े दिखाई देने लगते हैं।

उनका स्मरण करते ही अपने में कितना आत्मविश्वास जाग उठता है? एक अनोखी प्रेरणा मिलती है, आप से आप अनोखा सांगीतिक वातावरण पैदा हो जाता है, एक बार प्रसिद्ध उद्योगपति श्री दुर्गा प्रसाद मंडेलिया ने पूछा था– "तुम्हारा व्यक्तिगत क्या अनुभव है?" मैंने निवेदन किया– "जब से गुरु महाराज की शरण में आयी हूँ एक अनोखा आत्मविश्वास पैदा हुआ है, कठिन से कठिन समय में गुरु स्मरण ही पार लगाता रहा हैं। मेरे पति श्री धर्मेन्द्र बहादुर सिंह काफी परेशान थे, उन्हें भी गुरु महाराज के श्री चरणों में शरण मिली और वे भी आत्मविश्वास की अनुभूति प्राप्त करके चिन्तामुक्त हुए"। पूज्यपाद कहा करते थे – "कर्मों का फल तो अवश्य प्राप्त होता है, परन्तु जप तप करने से उनसे सरलता से पार पाया जा सकता है"।

श्री महाराज जी के चरणों में मेरा शत-शत प्रणाम।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जो लोग अज्ञ और कम ज्ञानी हैं, ज्ञानी को चाहिए कि उन्हें मिलाकर चलें तथा बुद्धिभेद पैदा न करें, क्यों कि सभी समान मनवाले बनाये गये हैं। सभी जीव एक न एक दिन पूर्ण विकास को प्राप्त होंगे इसलिए परस्पर मधुरभाषी और सुन्दर मन वाले बनो।

– ***श्रीस्वामीजी***

असाधारण चमत्कार – साधारण रूप में

– भगवान स्वरूप सक्सैना
अभियन्ता, लखनऊ

लगभग नौ वर्ष पूर्व की बात आज भी स्पष्ट रूप से याद है। जब मैंने पूज्यपाद के प्रथम दर्शन किए थे। मैं अपने एक संबंधी को लेकर महाराज जी के पास पहुँचा था। वह एक भयंकर रोग से पीड़ित था। मुझे उस समय ईश्वर में तो विश्वास था, पर साधू-महात्माओं में तनिक भी विश्वास नहीं था। पर चूँकि इस रोग का कोई निदान नहीं था, इसलिये लोगों के द्वारा महाराज जी के बारे में सुनकर हम लोग उसे यहाँ लाये थे। या, यूँ कहिये कि मेरे संबंधी लाये थे, मैं तो केवल साथ देने के लिए आया था। जिस समय पीताम्बरा पीठ के मुख्य द्वार से प्रवेश कर रहा था, उस समय मन में विचार आया कि यदि इनमें वास्तव में शक्ति है तो इसको ठीक कर देंगे, और यदि ऐसा हुआ तो मैं पूर्ण समर्पण कर दूंगा। मेरे संबंधी का रोग किस प्रकार तिरोहित हो गया? यह आश्रम में आने वाले अधिकतर व्यक्तियों को भलीभाँति ज्ञात है।

दोबारा भी मैं तब आया, जब मैं एक भयानक विपत्ति में फंस गया था। लखनऊ में एक होटल में ठहरा था। तब मैंने अपनी पत्नी को इस विपत्ति की सूचना दी। उनको महाराज जी पर वास्तविक श्रद्धा थी। वह महाराज जी के फोटो के सामने रोने लगी। उसके बाद हम लोग महाराज जी के पास गये। मैं महाराज जी के पास गिड़गिड़ा कर रोने लगा। पर महाराज जी ने कहा – "मुझे आडम्बर पसंद नहीं है"। अब मैं सोचता हूँ कि बिना पूर्ण विश्वास के मेरा यह रोना गिड़गिड़ाना आडम्बर नहीं तो और क्या था? पर कृपा की मूर्ति महाराज जी हम लोगों की प्रार्थना पर पसीज गये और कहने लगे – "मुझ से औरतों का रोना देखा नहीं जाता।" ध्यान योग्य बात है कि मेरी पत्नी महाराज जी के सामने नहीं रोयी थी। वह तो रोयी थी महाराज जी के फोटो के सामने, वह भी लखनऊ के एक होटल में। इसके बाद इस विपत्ति ने महाराज जी के पास बार-बार आने को विवश कर दिया। किसी शायर ने ठीक ही कहा है –

'गमे दुनिया जिसे यह मौत कहते हैं,
न मिलती मौत यह, तो मर गये होते!'

बार-बार आने पर अनेक चमत्कारिक अनुभव हुये, पर कलुषित हृदय और विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण हर बार यह संशय हो जाता कि ऐसा संयोगवश हो गया होगा! जब और लोग आपबीती चमत्कारिक घटनाएँ सुनाते थे तो लगता था कि वे अन्धविश्वास में तो नहीं कह रहे, क्योंकि –

'जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी'।

महाराज जी को विज्ञापन से अत्यधिक घृणा थी। एक बार उन्होंने रुष्ट होकर मुझसे कहा था कि तुम लखनऊ में मेरा विज्ञापन करते हो। क्या संसार में ऐसा मनुष्य हो सकता है जो भलाई करने के बदले में धन या कोई वस्तु न चाहे, और ऊपर से अपना नाम भी न चाहे। क्या यह गुण मनुष्योपरि नहीं था? पर आज मेरी अंतरात्मा महाराज जी के कुछ चमत्कारों को लोगों को प्रेरणा देने हेतु व्यक्त करने के लिए व्याकुल है, चूँकि मैं अच्छे ध्येय से ऐसा कर रहा हूँ। इसलिये महाराज जी से प्रार्थना है कि मुझे इसके लिए क्षमा कर दें।

इतना सामर्थ्य तो मुझमें नहीं है कि हर चमत्कार को लिख सकू। पर कुछ घटनाएँ अवश्य उद्धृत करूँगा।

एक बार मैंने महाराज जी से निवेदन किया कि मैं आश्रम पर एक कमरा बनवाना चाहता हूँ। महाराज जी ने आज्ञा दे दी। अगले दिन जब मेरी पत्नी महाराज जी को प्रणाम करने गयी तो उन्होंने पूछा कि तू कमरा बनवाना चाहती है। इस पर मेरी पत्नी ने कहा– 'अगर आपकी कृपा हो तो; इस पर महाराज जी ने कहा कि तेरे पास पैसा कहाँ है? वास्तव में उस दिन कैश के नाम पर दो-चार सौ रुपयों से अधिक हम लोगों के पास न था। मैंने तो यह सोचकर आज्ञा ली थी कि सब संबंधी मिलकर कमरा बनवाएँगे। दतिया से मैं सीधा धौलपुर गया – अपने संबंधी के यहाँ। लखनऊ में सही मकान न मिलने के कारण वहां मेरा सामान रखा हुआ था। मैं केवल मिलने गया था और चलने को था कि बारिश होने लगी। मेरे संबंधी ने कहा कि अपना सा सामान देख लो। मैने मना किया, पर वह नहीं माने। अचानक एक ड्रम का ढक्कन खोल डाला। उसमें बच्चों के पढ़ने की एक छोटी सी अटैची रखी थी। उसे खोला तो ऊपर ही पैंसठ रुपये रखे थे। जिज्ञासावश और कागज पलटे तो तीन हजार रुपये के नोट निकले। मैं महाराज जी के पास गया और कमरा बनाने के लिए रुपये उनके चरणों में रक्खे तो पूछने लगे – "यह रुपये कहाँ से आये हैं?" मैंने उत्तर दिया– "आपने दिये हैं," वह पीताम्बरा माँ की ओर संकेत करके कहने लगे– "मैंने नहीं, इन्होंने दिये हैं।" इनके बाद तो रुपया आने का ऐसा क्रम बंधा कि कमरा बन कर तैयार हो गया।

एक दिन महाराज जी से लखनऊ जाने के लिए आज्ञा लेने पहुँचा। महाराज जी ने कहा – लखनऊ में हनुमान सेतु के किनारे बना हुआ हनुमान जी का मंदिर सिद्धस्थान है। अगले दिन जब मैं लखनऊ पहुँचा तो इसी पुल पर सबेरे पांच बजे चार बदमाशों ने मुझे घेर लिया। निर्जन स्थान और एक बदमाश के हाथ में रिवाल्वर। समझ में आ गया कि संसार के दोस्त-रिश्तेदार इस समय काम नहीं आ सकते। महाराज जी का ध्यान लगाते ही प्रेरणा जागी कि रिवाल्वर छीन लो। मैंने प्रयास किया, पर बदमाश के पीछे हट जाने के कारण रिवाल्वर हाथ नहीं लगी। तभी मेरे हाथ से दूसरे बदमाश ने ब्रीफकेस खींचना चाहा। तब मुझे ध्यान आया कि मेरे हाथ में ब्रीफकेस भी है, और मैंने उसे घुमाना शुरू कर दिया। बहुत समय तक ऐसा चला। अंत में बदमाश भाग गये। मुझे खरोंच तक भी नहीं आयी। फिर जैसे ही रिक्शा चला, एक व्यक्ति धुंधलके में घूमते हुये निकला और पूछने लगा – "क्या बात थी?" मैंने कहा – "बदमाश थे," उसने साधारण भाव से कहा – "अच्छा!" और उधर ही चला गया जिधर बदमाश मिले थे। 'अच्छा' कहने का ढंग महाराज जी की तरह निर्विकार भाव से था। बाद में ध्यान आया कि ब्रीफकेस में महाराज जी का फोटो भी था।

एक बार मेरा लड़का लखनऊ में भयंकर रूप से बीमार था। किसी डॉक्टर की दवा से लाभ नहीं हो रहा था। अपितु दवा देने से हालत खराब ही होती जा रही थी। मैं दतिया आया। महाराज जी ने एक कागज में कुछ लिख कर कपड़े में बांध कर दिया। और कहा– कि जाकर इसको लड़के के गले में बांध दो। यह कपड़ा मुझे महाराज जी ने सुबह के लगभग नौ बजे दिया था। जो ज्वर चढ़ने का समय होता था। जब घर पहुँचा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मुझे पता चला कि बुखार ठीक उसी समय से उतरना प्रारंभ हो गया था, जिस समय महाराज जी ने मुझे वह कपड़े में बंधा कागज दतिया में दिया था।

एक बार महाशिवरात्रि पर हम लोग दतिया में थे। मेरी छोटी लड़की को स्वप्न में महाराज जी ने एक मंत्र दिया, जो उसे जागने पर भी याद रहा। उसने महाराज जी को बताया और पूछा कि मैं वह मंत्र बताऊँ जो स्वप्न में आपने मुझे दिया था। उन्होंने उसे चुप कर दिया और कहा– "किसी को मत बताना। यह मंत्र तुम्हें महादेव जी ने दिया है।"

महाराज जी क्या थे? इसको बड़े-बड़े नहीं समझ पाये। यदि उन्हें पूर्ण कहा जाये तो उन्हें सीमा में बांधना होगा। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, उनका आकलन करना मेरी क्षमता से परे है। यह उसी प्रकार है, जैसे एक मेंढ़क महासागर के विस्तार के आकलन का प्रयास करे। क्षुद्रतम का महानतम को शत-शत प्रणाम।

***

श्रद्धाञ्जलिः

– स्वामी सत्यमित्रानन्द गिरि
(निवृत्त जगद्गुरु शंकराचार्य)

पीताम्बरा पीठाधिपति राष्ट्रगुरु श्री स्वामी जी महाराज अनुपम विभूति थे। उनकी सन्निधि व्यक्ति को अव्यक्त चिन्मयी परमात्मशक्ति की ओर सहजभाव से अग्रसर कर देती थी। जो कार्य पचासों व्यक्ति निरंतर भ्रमण करके हजारों प्रवचनों द्वारा नहीं कर सकते, वह महाराजश्री ने एक स्थान पर बैठे बैठे बिना बोले ही सम्पन्न कर दिया। **'महापुरुष सत्यसंकल्प होते हैं'** इसके आधुनिकयुग में पीताम्बरापीठाधिपति स्वयं प्रमाण हैं।

संस्कृतभाषा, तंत्र, ज्योतिष, मन्त्रादि के प्रति लोकाभिरुचि जाग्रत कराने में पूज्य स्वामी जी के अनुपम योगदान को कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता। आत्मस्थ, कूटस्थ निजानन्द में तल्लीन महायोगी ने भारतराष्ट्र का विस्मरण नहीं किया। भारत विजय हेतु यज्ञ का आयोजन और यज्ञान्त में राष्ट्र की विजयस्वरूप संधि ऐतिहासिक घटनाएं हैं जो सदा प्रेरणा देती रहेंगी।

अध्यात्मसिद्धि एवं राष्ट्रसेवा जैसे तत्त्वद्वय का समन्वय महाराजश्री जैसे समर्थ संत ही कर सकते थे।

उनके प्रति मेरी शतशः श्रद्धांजलियां समर्पित हैं।

***

–: वैदिक उपदेश :–

अज्ञानरूपी नदी में सारा संसार डूबा हुआ है, शास्त्र का अध्ययन एवं उसके अनुसार आचरण ही उसके पार पहुँचा सकता है। इस लिए शास्त्र को तीर्थ कहा गया हैं। गीता में कहा गया है- "तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य व्यवस्थितौ"। क्या करना चाहिए, क्या नहीं करना चाहिए - इस विषय में सत् शास्त्र ही प्रमाण है।

– श्रीस्वामीजी

पूज्यपाद के दर्शन

– श्रीकृष्ण राय हृदयेश
सम्पादक, गाजीपुर

– कहां से आये?

– गाजीपुर से।

– गाजीपुर में गंगा के बाएं तट पर बनारस से लगभग ५० मील पूरब, आगे लगभग ५० मील की दूरी पर दांयी ओर बक्सर, गाजीपुर-जमानियां, सबके सब प्रसिद्ध स्थान हैं। काशी और बक्सर के बीच बराबर कोई न कोई सिद्ध सन्त गंगा तट पर रहता है। इस समय भी जमानियां के पास एक सन्त हैं। अच्छा, यहाँ कैसे आये?

– आपके दर्शन करने।

– इस स्थान को कैसे जाना?

– गाजीपुर के जिला जज ने, जो साधुसेवी हैं, इस स्थान की जानकारी दी थी।

– अच्छा, जज साहब ने! जज साहब के बाद भी तो किसी ने इस स्थान को बतलाया था?

– जी हाँ, दतिया से विधानसभा के सदस्य सूर्यदेव शर्मा ने।

– (एक सज्जन से) देखो जी! ग्वालियर से मुद्‌गल जी आये हुये हैं, उनको बुला लाओ!

मुदगल जी आये। स्वामी जी ने कहा – ये तुम्हारे साथी सूर्यदेव शर्मा के बड़े भाई हैं। पीताम्बरापीठ देखने आये हैं, इनका बिस्तर बाहर पड़ा हुआ है, उठा ले आओ और जब तक ये यहाँ रहें, इनकी सेवा करो। इनको कोई कष्ट न होने पावे।

उनके प्रथम दर्शन से लेकर मुद्‌गल जी को आदेशित करने तक की अल्पावधि के बीच श्री पीताम्बरापीठ के स्वामी जी ने मुझसे जो बातें की, उनसे मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। गाजीपुर का प्रत्यक्षदर्शी जैसा वर्णन, यहाँ के प्रसिद्ध संत नागा बाबा की ओर संकेत, जज साहब तथा जज साहब के बाद श्री सूर्यदेव शर्मा का श्री पीताम्बरा पीठ की मुझे जानकारी देना – मैं सूर्यदेव का बड़ा भाई हूँ यह जान लेना तथा मेरा बिस्तर बाहर पड़ा है, यह मुद्‌गल को बताना, ये कुछ ऐसी बातें थीं जिनसे मेरी

समझ में अजान होते हुए भी स्वामी जी ने पूर्ण जानकर की भांति बतलाया। मैं पांच दिन तक साधकाश्रम में रहा। वहां का कण-कण स्वामी जी की उपस्थिति से पूत बना हुआ था। प्रतिदिन जगदम्बा पीताम्बरा के दर्शन करने, दुर्गासप्तशती का पाठ और स्वामी जी के सान्निध्य में बैठ कर उनके उपदेशों का श्रवण– ये मेरे जीवन के ऐसे अविस्मरणीय अंग हैं जो लगभग एक युग के बाद मेरे मानस पटल पर उभर आये हैं, जबकि स्वामी जी का पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं रह गया है।

स्वामी जी के असीम उदात्त व्यक्तित्व का सर्वांग चित्रण मुझे सीमित जानकारी वाले अल्पज्ञ के लिये संभव नहीं। मेरी दृष्टि में जितनी क्षमता थी उतनी उनके व्यक्तित्व की झांकी मुझे मिली। अगाध विद्वान, जिसने बात ही बात में वृन्दावन संस्कृत महाविद्यालय के दो आचार्यों की एक वेद-मंत्र संबंध की शंका फूंक मार कर उड़ा दी, मासूम बच्चे जैसी बात करें-कितना कौतूहलजनक था। उनकी बातों में पुण्यसलिला गंगा के निर्विकार जल की स्वच्छता स्पष्ट थी। 'सहज स्वभाव, छुआ छल नहीं' यदि आज के युग में मुझे कहीं देखने को मिला तो वह पूज्य श्री स्वामी जी में ही। इलाहाबाद हाईकोर्ट के दो वकील-नाम याद नहीं है – एक बाजपेयी और एक अग्रवाल स्वामी जी से मिलने आये। बातों से स्पष्ट हो गया – बाजपेयी जी काम से आये थे। उनका लड़का अमेरिका में कही इन्जीनियर था। बाजपेयी जी विवाह के लिए उसे बुला रहे थे – वह नहीं आ रहा था। बाजपेयी जी को आशंका थी कि कहीं अमेरिका में ही वह किसी लड़कीं से शादी न कर ले। उसके चित्त में उचाट हो जाये – वह किसी अमेरिकन लड़की से शादी न करे और यहाँ आकर बाजपेयी जी द्वारा तय किये गये संबंध को स्वीकारे-इस समस्या के समाधान के लिये बाजपेयी जी का स्वामी जी से निवेदन था। देर तक इस विषय पर चर्चा होती रही। फिर दोनों वकील साहब घूमने चले गये। उनके अलग होते ही स्वामी जी ने बाल सुलभ भोलेपन से मुझसे इस तरह बातें की जैसे अपने किसी अत्यन्त विश्वसनीय जन से किसी गंभीर रहस्य का उद्घाटन कर रहे हों – "समझे! वकील लोग है, बड़े चतुर होते हैं। साधुओं को मूर्ख समझते हैं। चाहते है – स्वामीजी अपनी कमाई इनको दे दें, इनका काँम बन जाय। मैं अपनी कमाई इनको क्यों दे दूंगा। मन्त्र दे दूँगा। तुम स्वयं कमाओ और अपना काम बनाओ। क्यों ठीक है न? सब को स्वावलंबी होना चाहिये"। सचमुच ही स्वामी जी ने बात-बात में एक उपयोगी रहस्य का उद्घाटन किया था, और वह था – स्वावलंबन, किन्तु स्वामीजी के भोलेपन की स्निग्धता ने मेरे विचारों को स्नेहिल कर दिया था। मैं उनकी सांकेतिक भाषा को पकड़ न सका। काश, मैं भी स्वामी जी के प्रसाद से स्वावलंबी बना होता।

निश्चय ही श्रद्धेय स्वामी जी एक सिद्ध सन्त थे। उनकी सिद्धियों के संबंध में मेरे लिये कुछ कहना, जिसका मैं अधिकारी नहीं हूँ, कोरी अटकलबाजी होगी।

इस संबंध में उनके निकटतम भक्त ही कुछ प्रकाश डाल सकते हैं। हाँ, उनकी सिद्धियों के संबंध में मुझे अनेक बातें बतलायी गई, जिनमें मेरे लिये अविश्वास का कोई कारण नहीं। उनका सान्निधि की अल्पावधि में मैंने जो कुछ समझा उसके अनुसार स्वामी जी बहुविज्ञ के साथ-साथ बहु भाषाविद् भी थे। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के कुरान की टीका के प्रशंसक तो बहुतेरे होंगे, किन्तु उसकी सूक्ष्मतम विशेषताएँ स्वामीजी की अपनी खोज थी। बाइबिल और कुरान की तुलनात्मक समीक्षा ऐसे करते थे, जैसे किसी मिशनरी ने जीवन भर उनको मांजा हो। संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी आदि साहित्यिक भाषाओं के तो पंडित थे ही, आंचलिक बोलियों के भी पूरे सम्पर्क में थे। अपने अंचल की भोजपुरी, मैंने स्वयं उनके मुँह से सुनी। ऐसा लगा जैसे कि भोजपुर के ही मूल निवासी हों। वे सचमुच ही विद्या बारिधि थे।

आवरण हटाकर किसी ऊँचे पाये संत को सिद्धियों की परिधि में झांकना और उनका अवमूल्यन करना जितना दुरूह होता है, उतनी ही सरल उनके जीवन की पकड़ होती है, जो खुले पन्ने के समान होता है। 'समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति न प्रिय' वाला ईश्वरीय गुण सन्त में भी होता है, जो पूज्यपाद स्वामी जी के व्यावहारिक जीवन में पग-पग पर लक्षित था। तभी तो उनकी समाधि पर पथ के भिखारी के साथ-साथ ग्वालियर की राजमाता की श्रद्धा के आंसुओं की एकरूपता थी। स्वामी जी युग स्रष्टा सन्त थे, जिनकी स्मृतियां भविष्य के भौतिकवादी समाज के बीच अध्यात्म की लौ को धूमिल न होने देगी। ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं इस महान आत्मा को जिसने अनेक भूले-भटकों को सत्पथ् का निर्देशन किया था, अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जो लोग अपने छोटे परिवार में सत्धर्म को आचरण में लाते हैं वे ही ग्राम, जनपद्, प्रदेश, राष्ट्र और विश्व में भी ला सकते हैं। जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है। आध्यात्मिक रामसाधना करने वाले की उक्त व्यावहारिक रूप को आचरण में लाने पर ही वास्तविक रामभक्ति की सिद्धि मिल सकती है।

– ***श्रीस्वामीजी***

श्री स्वामी जी महाराज

– बाबूलाल गुप्त

श्री स्वामी जी महाराज को निशदिन करूं प्रणाम।
जिनकी चरणसरोजरज, पूर्ण करत सब काम।।१।।

स्वामी जी के नाम से जानत सब संसार।
बगला तारा पीठ से, खुला तंत्र का द्वार।।२।।

मीठे वचनों से सदा दे सबको उपदेश।
दीक्षा देकर मंत्र की, काटे उनके क्लेश।।३।।

जीवन भर 'जीता' रहे, मान मोह नहिं लेश।
रक्षा करके राष्ट्र की, किया अभय निज देश।।४।।

मन्त्रतंत्र विज्ञान के, लिख गये ग्रन्थ महान।
प्रमुदित होकर लौटते, बड़े बड़े विद्वान।।५।।

हाथ रख दिया शीश पर दिया अभय वरदान।
सब संकट उसके कटे, किया हृदय जो ध्यान।।६।।

राग द्वेष फटके नहीं ब्रह्म ध्यान तल्लीन।
मोह न माया चल सकी, चली न तेरह तीन।।७।।

जनम जनम के फेर को, गुरु बिन काटे कौन।
वरद हस्त रखते रहे, अब क्यों साधा मौन।।८।।

दतिया तीरथ बन गया, वनखण्डी शुभधाम।
बगला माँ बैठी जहाँ, शतशत करू प्रणाम।।९।।

तिमिर हटाया हृदय का, बने सूर्य भगवान।
सुमिरन हिय जिसने किया, श्रीचरणों का ध्यान।।१०।।

याद रहेगी जनम भर, कहां गये हे नाथ।
अपने हाथ उबार लो, अन्य न कोई साथ।।११।।

* * *

ब्रह्मलीन श्री स्वामी जी महाराज

– *राजेन्द्र शर्मा*
सम्पादक 'स्वदेश' ग्वालियर

व्यक्ति को सामान्यत: उसके नाम से जाना जाता है, किन्तु कोई अनाम रहकर भी ऐसा काम करे कि उसका काम ही उसका नाम बन जाये, ऐसे लोग इस दुनिया में बहुत कम होते हैं। अगर कहें कि इस दुनिया में होते ही नहीं – जितने भी होते हैं – इस पुण्य भूमि भारत में ही होते हैं, तो गलत नहीं होगा। दतिया के पीताम्बरपीठ के पूज्य स्वामी जी ऐसे ही विरले लोगों में से एक थे। वे माँ शक्ति के उपासक थे, तेज के पूजक थे, पराक्रम के प्रशंसक थे और पुरुषार्थ के प्रतीक थे, वे स्वयं साधक थे, तपस्वी थे, संत थे, विद्वान और वेद तथा विविध धर्मशास्त्रों के ज्ञाता थे। वस्तुत: उनका समग्र जीवन इतना तेजोमय, इतना पावन, इतना प्रेरक और इतना प्राणवान था कि जो भी उनके सम्पर्क में आता, उसके जीवन में भी चैतन्य का संचार होता था, उसे नई जीवन दृष्टि प्राप्त होती थी। आज वे नहीं है, इस बात की कल्पना करना भी उन लोगों के लिये कठिन हैं – जिन्होंने स्वामी जी के सान्निध्य में बैठकर उनका मार्गदर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। वैसे भी किसी व्यक्ति को सच्चा गुरु भाग्य से ही प्राप्त होता है, और सचमुच वे लोग बहुत भाग्यशाली हैं – जिन्हें उनके जैसा गुरु प्राप्त हुआ। दतिया और उसके निकटवर्ती क्षेत्रों के निवासियों का किन्ही संचित पुण्यों का ही फल था कि रमतेराम से स्वामी जी ने वहां रहकर अपनी साधना की, सिद्धि प्राप्त की, और अन्त में उसी भूमि में अपने आपको अर्पित कर दिया उनका व्यक्तित्व कितना साहसी और दृढ़ संकल्पवान रहा होगा – इसकी कल्पना भी इसी बात से की जा सकती है कि वनखण्डेश्वर जैसे स्थान को जो कि श्मशान रहा हो – उन्होंने रचना, सृजन और जीवन में चैतन्य समाविष्ट कर देने वाले केन्द्र के रूप में प्रतिस्थापित कर दिया। पीताम्बरा पीठ मां बगलामुखी का यह पावन और तेजस्वी स्थल अनन्तकाल तक स्वामी जी की यश पताका को फहराता रहेगा। जिनके प्रयत्नों से न केवल मां बगलामुखी के आराधकों में नई प्रतिष्ठा प्राप्त हुयी, अपितु वैदिक ज्ञान और शक्ति की विस्मृत कड़ियों को स्वामी जी ने अपने अथक प्रयासों से जोड़कर एक महान धर्म की सेवा की है।

वेद ज्ञान के वे भण्डार हैं, वे प्रेरणा के महान स्रोत हैं – स्वामी जी ने उसी स्वरूप को हमारे समक्ष रखा। अपनी पुस्तकों के माध्यम से उन्होंने वैदिक श्लोकों को

इस ढंग से प्रस्तुत किया कि वे जहाँ जन सामान्य को बोधप्रद लगे, वही उनका मूल अर्थ भी प्रगट हो। आजादी के बाद जिन सन्तों और महात्माओं ने केवल अपनी उपासना पद्धति के अनुसार ईश्वर आराधना करते हुये ही अपने जीवन को समर्पित न करते हुये, धर्म, संस्कृति, साहित्य, वेद, मन्त्रों और उपासनाओं के वैदिक और शास्त्रीय स्वरूप की प्रतिस्थापना के लिए भी अपने जीवन का समर्पण किया हो, उसमें स्वामी जी महाराज का नाम अग्रणी रहेगा। उन्होंने अपने समग्र जीवन भर जो कुछ किया, अपने लिए नहीं, समाज के लिए किया। संस्कृत और संस्कृति के लिये किया, वेद और वेद विज्ञान के लिए किया। अगर कहा जाए कि आज देश में उनसा वेदज्ञान मर्मज्ञ शायद ही कोई दूसरा हो तो वह गलत नहीं होगा। दतिया जैसे छोटे से स्थान पर बैठकर उन्होंने अपने आप में जिस ज्ञान के भण्डार को एकत्रित किया – वह कितना व्यापक और गहरा रहा होगा? इस बात की कल्पना इसी से की जा सकती है कि जिन शंकराचार्यों के कन्धों पर वैदिक धर्म की रक्षा एवं संवर्धन का भार ही एवं जिनके शब्दों को धर्म में प्रमाण समझा जाता हो, वे भी स्वामी जी के मार्गदर्शन को अनिवार्य समझते थे। उनसे विविध विषयों पर शास्त्रार्थ चर्चा करने के लिए स्वयं चलकर उनके पास पहुंचते थे। केवल विद्वान ही नहीं सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लोग उनके चरणों में प्रणाम करते। छोटे बड़े सभी उनसे समान स्नेह पाते। राजनैतिक या अन्य क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न विचार रखने वाले लोग भी उनके पास पहुँचते थे तथा प्रत्येक को उनसे सुयोग्य मार्गदर्शन मिलता था।

देशभक्ति स्वामी जी के अन्त:करण में कूट-कूट कर भरी थी। चीनी आक्रमण के समय कराया गया विराट यज्ञ इसका साक्षी है, जो कि इस जगत में कभी कभी ही हुआ करते हैं। वह ज्योति पुंज अनन्त ज्योति में लीन हो गया, किन्तु उनकी ज्योति से प्रज्ज्वलित अनेकों दीप टिमटिमाते हुये ही क्यों नहीं, अंधकार से सदा लड़ते रहें, यही उस महान और महावीर सन्त को उनके शिष्यों और अनुयायियों की ओर से सच्ची श्रद्धांजलि होगी। उनके इस निधन पर इतना ही कहा जा सकता है। आज जबकि संसार पुन: भारत के आध्यात्मिक रूप में आशा की नई किरणें देख रहा है, उस समय धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप को संसार के समक्ष रखकर जिज्ञासुओं को पूरी तरह संतुष्ट करने की क्षमता रखने वाले स्वामी जी जैसे सिद्ध और सन्तों की इस जगत को महती आवश्यकता थी, किन्तु उसी समय भगवान ने इस तेजपुंज को हमसे छीन कर अपने आप में विलीन कर लिया। शायद धर्म ग्लानि के इस युग में उसके भी तेज में कमी आने लगी होगी। अत: उस तेज की पूर्ति के लिए उसने हमारे यहाँ से एक तेजोमय पुरुष को उठा लिया।

उनके व्यक्तित्व से भगवान की अनन्त ज्योति अनेकविध जगमगा उठेगी, वहाँ पहुँचकर भी उसका प्रकाश हमें सदैव मिलता रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

***

पूज्य स्वामीजी महाराज : एक श्रद्धाञ्जलि

– डॉ. रामकृष्ण त्रिवेदी
आयुर्वेदाधिकारी, भोपाल

पूज्य स्वामी जी के प्रथम दर्शन मई १९४९ में हुए थे। मैं काशी हिन्दू विश्व विद्यालय के आयुर्वेद कॉलेज में प्रथम वर्ष में था। कॉलेज में प्रथम वर्ष में विन्ध्य प्रदेश की कुछ सीटें आरक्षित थीं। एम.एल.ए. के प्रमाण पत्र पर प्रदेश का निवासी मान लिया जाता था। पूज्य पिताजी स्व. पं. राम गोपाल शास्त्री, झांसी का पत्र लेकर मैं दतिया महाराज जी के पास आया। भयंकर गर्मी व लू में अकेला आश्रम में गया। वहाँ महाराज जी जप से उठकर भोजन पर बैठे ही थे। पूर्ण एकान्त, नमस्कार के उपरान्त मैंने उन्हें पत्र दिया। आज्ञा हुयी कि गर्मी बहुत है, पहले पानी पी लो। बाहर रखे घड़े से मैंने पानी पिया। फिर आज्ञा हुयी कि वह काम सूर्यदेव करते हैं। बैठो थोड़ी देर में आते हैं। "भूख लगी है क्या?" मैंने पूर्ण औपचारिकता दिखाते हुये कहा – "झांसी से खाकर आया हूँ" फिर भी अन्दर पास बुलाकर दो-तीन मालपुये दिये। मैंने संकोच से लेते हुये खाये और पुन: ठंडा पानी पिया। कुछ देर इधर-उधर की चर्चाएँ होती रही – स्मरण नहीं है। थोड़ी देर बाद सूर्यदेव शर्मा आये। पिताजी का पत्र दिया। इसी बीच महाराज जी ने कुछ कहा, तुरंत प्रमाण पत्र लिख कर दे दिया। मैं प्रणाम कर झाँसी चला आया।

सन् १९६० में शासकीय सेवा में स्थानांतरित होकर दतिया आया। इस बीच घर में कठोर धार्मिक नियंत्रण व धर्म के नाम पर काशी के साधू संन्यासियों व पण्डों द्वारा हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का दु:शोषण देखा व मार्क्स लेनिन पढ़ा तो धर्म के नाम पर नास्तिकता आ चुकी थी। पूज्य पिताजी व पं. रामनारायण जी (बैद्यनाथ) ने महाराज से एक बार निवेदन भी किया था कि यह कट्टर शैव घराने का बालक है और नास्तिकता की ओर बढ़ गया है। उत्तर में केवल महाराज जी ने मुस्करा कर कहा – सब ठीक हो जायेगा, और यही हुआ। अपने कार्य के अतिरिक्त महाराज जी के पास शाम को जाकर बैठकर कथाएँ, परिचर्चा, संस्मरण, धार्मिक, राजनीतिक व सामाजिक चर्चाएँ सुनने में आनन्द आने लगा। अक्सर शाम को उनके सान्निध्य की तीव्र इच्छा होने लगी थीं।

महाराज जी ने आश्रम में ही निरंतर कठोर साधना कर अपनी तपस्या से मंदिर को जागृत किया। कठोर अनुशासन कर इस युग में विज्ञापन से दूर रखा फिर भी दतिया अपने आप में दतिया के बाहर केवल महाराज जी के कारण ही आकर्षण का बिन्दु बनी रही। इस स्थान पर दूर-दूर से भक्तगण, सामान्य स्थिति के व्यक्ति, राजनेता, वरिष्ठ व वरिष्ठतम् अधिकारी, उद्योगपति, मंत्री, प्रधानमंत्री तक आकर इस संत के सम्मुख माथा टेकते व माई के दर्शन कर अपने को धन्य करते। महाराज जी की सभी पर समान दृष्टि थी। एक निर्धन साधक व करोड़पति, उद्योगपति दोनों ही महाराज की निगाह में एक ही स्थान पर थे। एवं वहाँ पर जाने वाले हर व्यक्ति को यही अनुभूति होती थी कि महाराज की उन पर पूर्ण कृपा है।

हजारों भटके हुये लोगों को जीवन दर्शन का सही मार्ग प्रशस्त कर उन्हें सही मार्ग पर चलना सिखलाया। भौतिकवादी इस युग की खोखली जीवनपद्धति में ईश्वराराधना से लौकिक एवं पारलौकिक मार्ग प्रशस्त किये। संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार किया। सैकड़ों शिष्यों को संस्कृत व वेद, भाष्य, उपनिषद आदि धर्म की प्रारंभ से लेकर अन्त तक शिक्षा दी। पठन-पाठन का कार्यक्रम अन्त तक चलता रहा। सन् १९७४ में ३६ दिवस का चारों वेदों के पाठ का यज्ञ शुरू हुआ, जो अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना है।

प्राचीन भारतीय सन्त व मनीषियों की पूर्ण परंपरा का निर्वाह करते हुये अपने स्वयं के बारे में जीवन पर्यन्त किसी को कुंछ नहीं बताया और न ही पीठ से प्रकाशित किसी साहित्य में ही कुछ लिखा। निश्चित ही भविष्य में आने वाली पीढ़िया महाराज जी जैसी महान आत्मा पर शोध ग्रन्थ लिख कर पी.एच.डी. की उपाधियाँ प्राप्त करेंगी।

अक्सर सरल व विनोदपूर्ण मुद्रा में महाराज जी कहा करते थे कि हम लोग जीवन भर आखरी दिन की तैयारी करते हैं। अंत में यह महान् योगी जीवन भर साधनारत रहकर तमाम प्राणियों का कल्याण करते हुए ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी तदनुसार २ जून सन् १९७९ को ब्रह्मलीन हो गये।

* * *

–: वैदिक उपदेश :–

जिस देश के मनुष्य तप एवं दीक्षा से युक्त होते हैं, उनका राष्ट्र समुन्नत होता है तथा धनधान्य आदि जीवन की उपयोगी वस्तुओं से पूर्ण रहता है। उनके बल और ओज के सामने शत्रु भी नतमस्तक होते हैं और उनसे मैत्री रखने के इच्छुक रहते हैं।

– *श्रीस्वामीजी*

गुरुदेव की कृपा की कोर रहे

गीत

— *हरिसिंह 'हरीश'*

गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।
इस ओर रहे, उस ओर रहे।।
गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।

हम दीन-हीन जन तेरे हैं।
हम पर दुःख-दर्द घनेरे हैं।।
चहुं-ओर असीम अँधेरे हैं।
आशा के दूर सवेरे हैं।।

दुःख-द्वन्द्वों की आँधी-झंझा –
किस तरह यहाँ झकझोर रहे।
गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।।

हम चरण पकड़कर पड़े हुए।
आशा को लेकर खड़े हुए।।
गुरुदेव! दया पर अड़े हुए।
मुंह पर हैं ताले जड़े हुए।।

हो तुम सबके जीवन-दाता–
हम तुमको नाथ निहोर रहे।
गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।।

हर तरह दास हम चरनों के।
हर तरह पास हम चरनों के।।
बस, देव कृपा पर जीते हैं।
हर तरह खास हम चरनों को।।

हर तरह कृपा हम पर देवा–
हां, तेरी यह पुरजोर रहे।
गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।।

गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।
इस ओर रहे, उस ओर रहे।।
गुरुदेव! कृपा की कोर रहे।

***

संगीत प्रिय पूज्यपाद श्री अनन्त श्री स्वामीजी महाराज

– एम. डी. श्रृंगीऋषि
आकाशवाणी, लखनऊ

नाद ब्रह्म के अनन्य उपासक दृष्टा एवं सृष्टा पूज्यपाद जी सदा संगीतमय ही रहते थे। सदा प्रसन्नचित्त, आनंदमय एवं प्रेम की वर्षा करते रहना इसका लक्षण है, लोक-परलोक के सभी धर्म के सदस्य स्थान पर आते और आनंदमय संगीत को प्राप्त कर प्रसन्नचित्त हो जाते। पुस्तक एवं वीणा के साधक ही उच्च कोटि की साधना कर जगत का कल्याण करते हैं।

आज के प्रगतिशील संसार में हमारा भारतीय शास्त्रीय संगीत प्रायः लुप्त हो रहा हैं। श्री पूज्यपाद जी कहा करते थे, 'हमारे अखाड़े में विद्या होने के नाते ही संगीत को स्थान है। अन्यथा हम लोग इससे दूर ही रहते।'

भारत वर्ष के ख्याति प्राप्त संगीतज्ञ स्थान पर आकर अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं और पूज्यपाद का प्रसाद पाकर संतुष्ट होते हैं। किस कलाकार का कैसा संगीत था? श्री पूज्यपाद जी इसको सप्रमाण बताते थे, एवं राग-रागिनियों को समझाते थे। पीलू, बागेश्वरी, भैरवी, जौनपुरी, आसावरी, बिहाग एवं कान्हड़ा इनके प्रिय राग थे। पूज्यपाद ध्रुपद-धमार के विशेष प्रेमी थे। संगीतज्ञों से विशेष प्रेम रखते थे। संगीत सुनते समय आनंद के वह क्षण उनमें देखने को मिलते थे, जिनको समाधिष्ठ क्षण कहा जा सकता है।

संगीत एवं अध्यात्म का क्या संबंध है? किस राग-रागिनी का क्या प्रभाव है? किस समय कौन सा राग क्यों गाना चाहिए? इसकी जानकारी पूज्यपाद को थी। संगीत एवं योग का वर्णन करते समय पूज्यपाद कहा करते थे कि योग स्वरज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है, इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के द्वारा प्राप्त होता है। स्वरों को जानकर जो इस महाविद्या को प्राप्त कर लेता है वही मोक्ष का द्वार खोल सकता है।

यह जगत संगीत पर आधारित है। संगीत लय पर आधारित है। बेलय हुआ कि प्रलय आई, बेसुरा हुआ कि अशांति के दर्शन हुये। आज के इस युग में संगीत खाने-कमाने का एक साधन मात्र रह गया है, जबकि यह विद्या शुद्ध ईश्वरीय

ज्ञान के लिये है। चारों वेदों में एक वेद की रचना ही संगीत के विषय में है। पूज्यपाद ने नारदीय शिक्षा की रचना उच्च कोटि के संगीत दर्शन के लिये की। यह रचना संगीत जगत के लिये अद्वितीय सिद्ध होगी।

घटना सन् १९३६-३७ की है, भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्वान एवं संगीत संत उस्ताद अलाउद्दीन खाँ राजा दतिया के यहाँ सरोद वादन के लिए पधारे। स्टेशन पर सवारी गाड़ी न मिलने के कारण पैदल ही महल की ओर चल दिये। रास्ते में ही पीताम्बरा पीठ का आश्रम है, खाँ साहब को स्थान के कुएं ने आकर्षित किया। नमाज का समय हो गया था, बजू की ओर नमाज अदा करके जो सामने देखा तो पूज्यपाद प्रसन्न मुद्रा में खड़े थे। पूज्यपाद तो अंतर्यामी थे ही, पूज्यपाद ने उनसे पूछा – 'कौन हो?' खाँ साहब बंगाली मुसलमान थे, और हिन्दू धर्म में भी अपार श्रद्धा रखते थे, उत्तर दिया। उनके उत्तर से पूज्यपाद गद्‌गद् हो गये। बड़े प्रेम से खाँ साहब को अंदर ले गये, पूछा – 'यह क्या है?' उस्ताद बोले – 'सरोद है', आज्ञा हुई – कुछ सुनाइये। उस्ताद जी भी उस समय तक संसार भूल चुके थे। आदाब करके मुल्तानी राग का आलाप प्रारंभ किया, उसके पश्चात् बिहाग राग सुनाया। इतने ही में आधी रात व्यतीत हो गयी। पूज्यपाद का भजन करने का समय हो गया था, पूज्यपाद ने कहा – 'कुछ भोजन कर लीजिये: तब खाँ साहब को होश आया कि मुझे तो राजा के यहाँ जाना था। पूज्यपाद से निवेदन किया, उत्तर मिला – "प्रात: चले जाना" प्रात: खाँ साहब आज्ञा लेने पहुँचे, आज्ञा हुई – और ऐसी हुई कि जब तक संगीत-संसार है, खाँ साहब महकते ही रहेंगे।

पूज्यपाद का जीवन संकल्पमय एवं कठिन तपस्या का जीवन था। उनकी दिनचर्या से प्रेरणा प्राप्त होती थी। उन्होंने राष्ट्र को कल्याणकारी बनाने में अपना जीवन समर्पित कर दिया।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जो वीर एवं महापुरुष धर्म एवं अपने राष्ट्र के कल्याण के लिए अपनी आहुति या अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान कर देते हैं जिनसे धर्म की अग्नि उनके अन्दर प्रदीप्त रहती है उसका कारण श्रद्धा ही है। वेदान्त शास्त्रों में - **"गुरुवेदान्त वाक्येषु विश्वासः श्रद्धा"** - श्री गुरु और वेदान्त अर्थात् उपनिषद् वाक्यों में जिसकी अटूट श्रद्धा हो उसे ही वेदान्त का प्रतिपाद्य ब्रह्म का साक्षात्कार होता है।

– ***श्रीस्वामीजी***

संत सद्गुरुदेव स्वामी जी

– आचार्य भागवतानन्द वेदान्तचार्य

मोहध्वान्तमदान्धता ग्रहवतां चक्षूंषि चोन्मीलयन्।
यश्चक्रे रुचिराणि तानि दयया ज्ञानाञ्जनाभ्यञ्जनैः।।
व्याप्तं यन्महसा जगत्त्रयमिदं तत्वप्रबोधोदये।
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थ सिद्धिप्रदम्।।

संतों का स्वरूप वही है जो भगवान् का है। इसी से कोई लक्षण बतलाया नहीं जा सकता है। जिसमें सब है, जो सब है, जो सब से अलग है और जिसमें सबका अत्यन्ताभाव है वही संत है। उसे चाहे ब्रह्म, चाहे ईश्वर, चाहे गुरुदेव कहो, कुछ भी नाम रख सकते हो। जैसे प्रतिमा में भगवद्भाव किया जाता है वैसे व्यवहार में गुरुदेव में भी संतत्व की भावना की जाती है, किन्तु परमार्थः वही सच्चिदानन्द है। इनको पहिचानना बहुत कठिन है। कहा है–

क्वचिच्छिष्टाः क्वचिद्भ्रष्टाः क्वचिद्भूतपिशाचवत्।
नाना रूप धरा योगी विचरन्ति महीतले।।

हमारे पूज्य संत सद्गुरुदेव पूर्ण रूप से व्यास भगवान के ही अवतार थे। उनके साहित्य के पाठक जानते हीं हैं, किन्तु इतना अपने को छिपाते ही रहे कि इतनी ज्ञान राशि अतल जलधिवत् थाह पाना असंभव रहा। उनके विषय में कुछ लिखना मात्र **'नमः पतन्त्यात्मसमः पतत्रिणः'** कहावत है पक्षी अपनी-अपनी शक्ति सामर्थ्य भर अनन्त आकाश में विचरण कर लेते हैं। हाँ उनकी इसी बहाने स्मृति आने से मन बुद्धि स्वयं की ओर प्रवाहित होगी। यही महिम्न स्तोत्र में कहा है –

मधुस्फीता वाचः ... पुनाभीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथनयस्यायुधधियः।

अतः संत सद्गुरुप्रसाद से ही उन्हीं में अवगाहन निष्ठा –

१. अवगाहन निष्ठा

असन्नेव सम्भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद संतभेर्न ततो विदुः।।

– तैत्तिरीय ब्रह्म त्रिकालबाध्य ब्रह्म है। यह जानने वाले संत हैं। उनकी निष्ठा अहर्निश ब्रह्ममय थी। **'दृष्टि ब्रह्ममयीं कृत्वा पश्येद् ब्रह्ममयं जगत्'** की घोषणा प्रायः किया करते थे। शंकराचार्य भगवान् की प्रायः प्रश्नोत्तरी मुझे समझाते थे। तथा **'कस्तरति मायामरयः सङ्गांस्त्यजति'** पर बहुत बल देते थे। इसी से वे नारी जाति से दूर रहना ही सिखाते थे। मातृ शक्ति रूप से आदर तो करना है, किन्तु सङ्ग त्याज्य है। हमेशा उपनिषद् वाक्यों का ही मनन करते रहते थे। उनका लिखा पञ्चोपनिषद् पर प्रकाशभाष्य उनकी ब्रह्मनिष्ठा का द्योतक है। 'माण्डूक्योपनिषद्' की भूमिका में सभी दर्शनों का अति मार्मिक चित्रण किया है। अन्त में **''अद्वैताख्य मोक्ष एवं परम प्रयोजनम्''** पृष्ठ १३२ से। मुण्डक में ११३ पृष्ठ में **''मायया भेद प्रतीतिर्विद्ययाऽद्वैतरूपया सर्वेषु पदार्थेषु ब्रह्म बुद्धिः मायां विनाश्य जायते इति वेद पदेन प्रदर्शितम्''** स्थान स्थान पर उनके ऐसे संकेत ब्रह्म निष्ठा के द्योतक हैं।

२. अगाध पाण्डित्य

ईशावास्य की योगपक्षीय टीका अद्वितीय पाण्डित्य की परिचायिका है। कितना शास्त्रस्मरण, कितना व्याकरण शास्त्र पर अधिकार देखते ही बनता है। यों तो सभी शास्त्र उन्हें करामलकवत् थे, किन्तु **''मुखं व्याकरणं स्मृतम्''** के आधार पर विलक्षण प्रतिभा दिखाई दी। मैं तो पण्डितों से अनुरोध करता हूँ कि उनकी उपनिषदों की तथा वेद पर की गई टीका अवश्य देखकर स्वाद लें।

वैदिक उपदेश में गणेश का अर्थ 'गणानांत्वा' मन्त्र में, सरस्वती देवयन्तो मन्त्र में व्याख्या, **'अन्तः सलिलां सरस्वतीमिव'** दृष्टान्त उनका साहित्य शास्त्र का गंभीर अध्ययन बतला रहा है। **'समानो वः आकृती'** मंत्र में पञ्चतन्त्र के दृष्टान्त प्राप्त होते हैं। इन १०० मन्त्रों में उनकी व्याख्या में सामाजिक एकता, तत्वदृष्टि पर निष्ठा, राष्ट्रहित या लोक कल्याण की भावना जीती जागती उभर रही है।

दर्शनशास्त्र संग्रह ग्रन्थ में गागर में सागर भरा है। सभी दर्शनों के तल में बैठकर ऐसा अद्भुत सार निचोड़ा है देखते ही बनता है। देखिए ईश्वर कारणवाद। योग का तात्विक सिद्धान्त में व्यास वचन **'भोक्तुः स्वाम्यावधारणमपवर्गः'** वैष्णव दर्शन, वेद प्रतिपादित अद्वैत सिद्धान्त, तथा युक्ति विचार पर १७८ पेज पर श्री राधाकृष्णन् की उक्ति To realise the supreme spirit a certain Purification of mind is necessary कह कर **'ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः'** की सिद्धि विलक्षण है। ज्योतिष शास्त्र में उनका पञ्चाङ्ग देखें। शाक्त दर्शन के तो उन्हें हृदय कह सकते हैं। पू. स्वामी करपात्री जी महाराज मुझे हरिद्वार में मिले, उनके संसार छोड़ने के कुछ दिन बाद ही। उन्होंने कहा ''श्री पीताम्बरा पीठ के स्वामी जी माँ के अनन्य भक्त तो थे ही साथ ही वे मंत्र-तन्त्र शक्तिदर्शन के विशेषज्ञ थे। चिद् विलास में 'प्रत्यभिज्ञा हृदय' तथा वरिवस्या रहस्य में पञ्चमकार का विशेष अर्थ उनकी प्रतिमा को अद्वितीय बतला रहा है।

३. साधना

प्रारम्भिक जीवन का विषय उनका कुछ भी नहीं मिलता है। कभी कभी अपने आप आबू पहाड़, सिद्ध नाथ, उत्तरी भारत की हिममण्डित गुफाओं का विशेष परिचय दिया करते थे। जिस वार्ता में ही ऐसा लगता था कि इन स्थानों में रह कर पर्याप्त दिन साधना की है। वे चमत्कार पर न तो विश्वास करते थे और न अपने में कुछ विशेषता समझते थे। माई करती है यही कहा करते थे। चाहे गूंगी कन्या ठीक हुई चाहे कैंसर रोग ठीक हुआ, चाहे फांसी की सजा से मुक्ति हो गई हो। कितने पोलियो उनकी अचूक दुवा, दवा से ठीक हुए, पर, माई ठीक करती है यह निरभिमानता सरलता बालवत् स्वभाव उनका अवर्णनीय है। एक ही साथ गिलहरी, बिल्ली, कुत्ता, कौआ उनके चरणों में प्रात: आ जाते तथा प्रसाद लेकर निर्भय रहते थे। यही **''वैर विहाय चरहिं इक संगा''** **''अहिंसा प्रतिष्ठायां वैर त्याग:''** का प्रयोगात्मक रूप उनमें दिखाई देता था।

दतिया आने पर उन्होंने १८ घण्टे एकासन पर बैठ कर नित्य लगातार जप स्वयं करके भक्तों को अद्‌भुत प्रेरणा दी। सभी को जप में लगाए रहते थे। **'जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः'** उनका नारा ही था। अष्टाङ्ग योग तो सिद्ध था ही, हठ योग का प्रयोग स्वयं किया करते थे। नेती, धोती प्राय: करते ही रहते थे।

मेरे दुर्भाग्य से मैं उनके विद्यालय का सबसे छोटा अल्प वयस्क लघु छात्र था। इतने थोडे समय में ही उन्होंने न जाने कितना दे दिया, साधन बता दिया, अल्प बुद्धि के कारण पकड़ भी न सका। उनके पास बैठते ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि मण्डल, अक्षर विन्यास, सभी चक्र, विन्दु अर्धचन्द्र नाद, नादान्त समनादि का तुरंत प्रयोगात्मक रूप दिखाने लगते थे।

योग विज्ञान दोनों भागों में जो भी लिखा गया है उनमें सभी उनके प्रयोग में देखा जाता रहा है। उनके दर्शन करते ही मुझे तो उनमें योग, उपासना, ज्ञान, भक्ति तथा वैराग्य की स्पष्ट झलक भगवान् शंकरजी की साक्षात मूर्ति ही साकार दिखाई देती थी। सदा शाम्भवी मुद्रा, लक्ष्य पर दृष्टि, स्वाध्याय व जप का अभ्यास उनमें विशेष था।

४. स्वभाव

सन्तोऽनपेक्षा मच्चिता: प्रशान्ता: समदर्शिन:।
निर्ममा निरहंकारा निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहा:।।

उनमें यह श्लोक चरितार्थ था। चाहे कमलापति आवें चाहे राजमाता, उन्हें कोई उनसे चाह नहीं, प्रयोजन नहीं। मैंने स्वयं देखा है, अहङ्कार शून्यता तो तब दिखाई

देती थी जब छोटे छोटे बच्चों से बात करते हुए, या मौज में हास्य कथानक कहते हुए होते थे। उन्होंने स्वयं संक्षेपशरीरक का तथा विवेक चूडामणि के दो श्लोक लिखाए थे। उन्होंने अर्थ भी समझाया मुझे तो उन्ही में वे श्लोक चरितार्थ लगते हैं।

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि।।

जैसे जैसे पुरुष सांसारिक पदार्थों से निवृत्त होता है वैसे वैसे दुःखों से मुक्त होता है। **'त्यागएव हि सर्वेषां मोक्ष साधनमुत्तमम्।।** उनकी वाणी का उपदेश मिला है। **''शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो, वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः। तीर्णाः स्वयं भीम भवार्णवं जनाः, न हेतु नान्यानपि तारयन्तः।। (विवेक चूड़ामणि।।)** वसन्त-ऋतु के समान निःस्वार्थ लोक कल्याण करने वाले उदार हृदय स्वयं भव सागर से पार उतरते ही हैं, दूसरों को भी पार उतारने वाले संत सद्गुरु में लक्षण थे। उनमें अडिग साधना तथा अतुल औदार्य था। यद्यपि भगवान् एवं संत विना लक्षण प्रयोजन के देखे गए हैं तथापि उनमें जो अपने को दिखता है – उनकी करुणा, दया, क्षमा, प्राणि मात्र के सुहृद होना ही संतत्व है। संत शब्द सत् **(सन् साधौ धीर शास्त्रयोः मान्ये सत्ये विद्यमाने)** कोष से बना है। **'त्रिकालावाध्य सद्रूप परिज्ञानात्रिजात्मनः सन्तः'।** त्रिकालबाह्य ब्रह्म को अपना स्वरूप जानने वाले को ही संत कहते हैं। ऐसी निष्ठा उनकी निम्न घोषणा में देखिए। उनकी दृष्टि सदा अपने में रहने का दृष्टान्त उन्हीं के शब्दो में –

कहते जिसे उदू थे समझे थे जिसे दुश्मन।
पर्दा उठा के देखा तो खाशो रवाश मेरा।।
हल हो गया है आखिर जो था सवाल मेरा।
समझे थे गैर जिसको वो था खयाल मेरा।।

इस समय वे आत्मा रूप से हृदय में हैं उन्हीं प्रभु से प्रार्थना है सद् बुद्धि दें।

''सन्तो वसन्तु सकले जगतीतलेऽस्मिन्''।।

श्रद्धाञ्जलिः

आस्तिकता, परमार्थ सत्ता पर अडिग विश्वास, अपने इष्ट देव के प्रति अटूट श्रद्धा-प्रेम एवं पूर्ण समर्पण, सत्शास्त्र साहित्य श्रवण, मनन, लेखन का व्यसन, यम नियमादि का कठोरता से पालन, अखण्ड जप श्वास धारा से करते रहना, तत्व दृष्टि में एकता, चित्त में एकाग्रता, व्यवहार में समता का दर्शन, नदी सी करुण धारा, सूर्य सी उदारता, पृथ्वी सी क्षमा, व्याकरण, न्याय, वेद के अगाध पाण्डित्य के साथ-

साथ साहित्य, कला, संगीत पर पूर्ण अधिकार आदि गुणों का एक साथ दर्शन जिनमें प्रत्यक्ष देखा है वे हैं पूज्यनीय गुरुदेव पीताम्बरा-पीठाधीश श्री स्वामी जी महाराज। कहा गया है –

शतेषु जायते शूरः सहस्त्रेषु च पण्डितः।
वाग्मी दशसहस्त्रेषु त्यागी भवति वा न वा।।

– किन्तु उनसे परिचित जन उनमें चारों एक साथ देखते रहे हैं। उन श्रीचरणों में उन्हीं का रटाया हुआ तोता क्या कहे, क्या अर्पित करे? "**त्वदीयाभिर्वाग्भिर्जननि तव वाचा स्तुतिरियम्**" की बात याद आती है। अथवा गर्भ में जीव स्तुति करता है –

स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः।
को नाम तत्प्रति विनाञ्जलिमस्य कुर्यात्।।

(भागवत् ३।३१।१८।)

जैसे शिशु कभी माँ के मुख में खिलाने लगता है तो माँ प्रसन्न हो जाती है। अथवा जीव कहता है हे प्रभो! मेरा उद्धार रूपी कार्य करके ही आप ऐसे स्वयं प्रसन्न हो जायें जैसे कीचड़ में फंसी गाय को खींचने वाला स्वयं प्रसन्न हो जाता है। – मेरे पास समर्पित करने को अपना क्या है? हाथ जोड़ने के सिवाय। इसी प्रकार इस अपने जन को उद्धार करके ही समर्पण को शक्ति की याचना करते हुए भावस्तुति, पुष्पाञ्जलि, सप्रेम समर्पित की जा रही है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जब तक पूर्ण सत्य नहीं मिलता, तब तक दौड़ धूप बनी ही रहती है। आज एक नदी यहाँ बह रही है तथापि अन्त में उसे समुद्र में ही मिलना है। जब तक समुद्र प्राप्त नहीं होता तब तक प्रवाह स्थगित नहीं होता। समुद्र के मिलने पर प्रवाह बन्द हो जाता है।

– *श्रीस्वामीजी*

शास्त्रीय संगीत के मर्मज्ञ पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज

— पं. रेवाराम तिवारी
संगीत विभागाध्यक्ष, पीताम्बरा पीठ, दतिया

पूज्यपाद सद्गुरुदेव भारतीय संगीत के अद्वितीय विद्वान थे। भारतीय संगीत की शास्त्रीयता एवं स्वरों के गूढ़ मर्मो की उन्हें पूर्ण जानकारी रही है। संगीत के प्रति उनकी प्रारंभ से रुचि थी। पीठ के पुस्तकालय में भारतीय संगीत के अनेकों दुर्लभ ग्रन्थ आज भी मौजूद हैं। जिनका उन्होंने गहन अध्ययन किया था।

पूज्यपाद महाराज जी सुनाया करते थे कि उन्होंने तत्कालीन बड़े-बड़े महान धुरंधर कलाकार जैसे श्री विष्णु दिगम्बर, फैयाज खां साहब, नारायणरावजी व्यास, दिलीप कुमार राय, मनहर बर्वे का गायन एवं श्री इनायत खाँ (सितार वादक), श्री अलाउद्दीन खाँ साहब (सरोद), कण्ठे महाराज, श्री कुंदरूं सिंह जी के प्रधान शिष्य लाला झल्ली (मृदंग), आदि का वादन सुना है। अपने विद्याध्ययन काल में काशी तथा आसपास, जो अखिल भारतीय स्तर के संगीत सम्मेलन आयोजित होते थे, वहाँ संगीत सुनने हेतु जाया करते थे। उस समय का कोई भी ऐसा कलाकार अछूता नहीं रहा, जिसका गायन या वादन उन्होंने न सुना हो। पूज्यपाद प्राय: पीठ पर आने वाले विद्वान संगीत कलाकारों से चर्चा में कहा करते थे कि भारतीय संगीत एक जिन्दा जादू है तथा परमात्मा की प्राप्ति का एक प्रमुख साधन है। संगीत यौगिक साधना है, जिसका संबंध नाद साधना से है। संगीत शास्त्र अपार सागर की तरह है। माँ सरस्वती भी इसमें पूर्ण पारंगत नहीं है। इस संबंध में वे निम्नलिखित श्लोक सुनाया करते थे –

''नादाम्बुधेः परं पारं नोपेयाय सरस्वती।
अतो निमज्जनभियः तुम्बीं वहति सर्वदा।।''

दतिया रियासत के समय में जो भी संगीत कलाकार राज दरबार में आता था, उसको दतिया के महाराजा गोविन्दसिंह जी उसका कार्यक्रम सुनने से पूर्व पूज्यपाद के

पास पीठ पर भेजा करते थे। राजा साहब कहा करते थे, कि पहले श्री पीताम्बरा पीठ पर जाकर महाराज जी को अपना संगीत सुनाओ, यदि उन्हें पसन्द होगा तो तुम्हारा गाना दरबार में सुना जावेगा। पूज्यपाद के श्री चरणों में संगीतज्ञ अपनी हाजरी देने में अपने को कृतार्थ समझते थे। महाराज जी भी छोटे बड़े सभी कलाकारों का कार्यक्रम प्रेम से सुनते थे।

पूज्यपाद् कभी-कभी स्वयं भी गाते थे। मुझे जैसे कुछ सेवकों को उनके श्रीमुख से भैरवी, भैरव, यमन, बागेश्वरी, बिहाग, देश, केदार, झिंझौटी, जय-जयवन्ती, मल्हार आदि रागों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अपने कण्ठ के द्वारा कभी कभी वह राग की बहुत, अलाप, स्वर प्रस्तार, मीड़, सूत निकालकर मुझे संगीत के मर्मों को सिखाते थे। कभी-कभी वह विनोद में कहा करते थे कि 'क्या तुम ही गा सकते हो? क्या मैं नहीं गा सकता? नजले के कारण मेरा गला खराब हो गया है, इसलिये धीमे स्वर से गाता हूँ।' पर्व के समय पीठ पर आयोजित संगीत गोष्ठियों में जो संगीतज्ञ आते थे, उनसे संगीत शास्त्र संबंधी चर्चा ही महाराज किया करते थे। उनके श्री मुख से शास्त्रीय चर्चा को सुनकर वे लोग भी आश्चर्य चकित हो जाते थे एवं श्रद्धा से श्री चरणों में साष्टांग हो जाते थे।

पीठ पर आयोजित कार्यक्रमों के माध्यम से अनेकों ख्याति प्राप्त अखिल भारतीय स्तर के संगीतज्ञों का गायन-वादन सुनने का सौभाग्य पूज्यपाद की कृपा से दतियावासियों को प्राप्त हुआ। जिनमें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त श्री निखिल बनर्जी (सितारवादक), श्री शान्ता प्रसाद गुंदई महाराज (तबला वादक), श्री सियाराम तिवारी (ध्रुपद गायक), डागर बन्धु (ध्रुपद गायक), श्री महाराजा साहब क्षत्रपति बिजना (मृदंग वादक), श्री नसीर अहमद खां (गायक), श्री लताफत हुसैन, श्री राजन-साजन मिश्र, श्रीमती निर्मला देवी, श्री कुमार गंधर्व (गायक), श्री कोगजे (गायक), श्री सलिल शंकर (सितार वादक), श्री कृष्णाराव शंकर पंडित, श्री के. आर सुरंगे (वायोलिन वादक), शरद शितवणे (गायक), अशोक कुमार (सरोद वादक) आदि प्रमुख हैं।

सभी संगीतज्ञ अपनी हाजरी श्री चरणों में देने के पश्चात् गुरुदेव से आशीर्वाद पाने हेतु प्रार्थना करते थे। जिस कलाकार पर उनकी निगाह हो गयी, वह निहाल हो गया। पीठ पर डागर बन्धुओं ने कई बार अपना गायन प्रस्तुत किया। उनकी यह अभिलाषा थी कि उन्हें विदेशों में अपना कार्यक्रम देने हेतु गाने का अवसर मिले। पूज्यपाद की कृपा से श्री डागर बंधु एवं सलिल शंकर जी अपना संगीत-कार्यक्रम देने हेतु विदेशों को जाने में सफल हुए।

अभिमान अथवा पैसा लेने की दृष्टि से जो कलाकार पीठ पर आया, उसका कार्यक्रम कभी सफल नहीं हुआ। इसी संदर्भ में एक घटना है कि एक बार बसन्त पंचमी के पर्व पर रात्रि में संगीत का कार्यक्रम चल रहा था। उसमें अखिल भारतीय स्तर के ख्याति प्राप्त कलाकार अपना सरोद वादन का कार्यक्रम दे रहे थे। अभिमान के कारण सरोद बजाते-बजाते तार टूटने लगे। कुछ क्षणों बाद उनका सरोद अपने आप बन्द हो गया। उनका कार्यक्रम पूरी तरह असफल हो गया। उनके स्थान पर पीठ के एक सेवक को वायोलिन वादन करने का निर्देश गुरुदेव ने दिया। उस दिन उन्होंने ऐसा वायोलिन बजाया कि सभा में बैठे सभी श्रोता आत्मविभोर हो गये।

बुन्देलखण्ड झांसी के प्रसिद्ध संगीत कलाकार उस्ताद आदिल खाँ को पीताम्बरा पीठ पर लाने का श्रेय उपन्यास सम्राट स्व. बाबू वृन्दावन लाल वर्मा को है। एक बार उनका गला अचानक खराब हो गया। उन्हें अपना संगीत कार्यक्रम देने हेतु लखनऊ जाना था। उस्ताद बहुत दु:खी थे। बाबू जी उन्हें लेकर पीठ पर आये, फिर उन्होंने श्री महाराज जी से निवेदन किया। पूज्यपाद ने उस्ताद को मातंगीमाई का मंत्रोपदेश दिया। महाराज जी की कृपा से उस्ताद का गला ठीक हो गया और वे निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार लखनऊ गये, जहाँ उन्हें यथेष्ट सम्मान मिला।

पूज्यपाद को सूफी संतों की आध्यात्मिक मार्फत् की हुई शायरी बहुत प्रिय थी। उन्होंने अनेको सुन्दर सुन्दर गजलें उर्दू भाषा में अपनी डायरी में लिखकर संकलित की थी। वह डायरी आज भी पीठ के पुस्तकालय में सुरक्षित है। वह जब कभी अपने 'मूड' में होते थे तो मुझे वे ग़ज़लें धुन बनाकर गाने हेतु देते थे।

एक बार पीताम्बरा पीठ पर श्री बटुक भैरव जी और श्री गणेश जी के मंदिर बीच रिक्त स्थान पर किसी देवता की मूर्ति स्थापित होने की चर्चा चली। मैंने पूज्यपाद के चरणों में विनम्र निवेदन किया कि अब की बार नाद ब्रह्मस्वरूप संगीत विद्या के आदि अधिष्ठाता श्री महाकाल भैरव जी की स्थापना करायी जावे। मेरी प्रार्थना स्वीकार हुयी। इसके बाद पीठ पर महाकाल भैरव की स्थापना करायी गयी। पूज्यपाद ने स्थापना कराने हेतु मुझे यजमान बनने का आदेश दिया। स्थापना के पश्चात् उन्होंने कहा कि अब हर रविवार को महाकाल भैरव जी के सामने संगीत होना चाहिए, तभी से हर रविवार के दिन रात्रि में संगीत-कार्यक्रम आयोजित किया जाता है।

मेरे पूज्य पिताजी स्व. पं. नर्मदा प्रसाद तिवारी पूज्यपाद के दतिया आगमन से पूर्व ही परिचित थे। वह धौलपुर रियासत में राजगायक थे। पूज्यपाद के धौलपुर प्रवास में वह उनके दर्शनार्थ सेवा में पहुँचते थे, तथा भक्ति संगीत सुनाया करते थे।

मुझे पीठ पर संगीत-कार्यक्रमों के आयोजन की व्यवस्था श्री गुरुदेव की आज्ञा से सौपी गयी है। बैद्यनाथ आयुर्वेद संस्थान के प्रबन्ध संचालक श्री शिवनाथ शर्मा पीठ पर संगीत-कार्यक्रम आयोजित करने हेतु हर प्रकार का सक्रिय सहयोग देते हैं।

श्री गुरुदेव की मेरे ऊपर बचपन से ही असीम कृपा रही है। उन आत्मीय अनुभवों का वर्णन करना संभव नहीं है। यह मेरे पूर्व जन्मों का संस्कार है कि मुझे महाराज जी जैसे महान सर्वज्ञ सिद्ध गुरु का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनके श्री चरणों में कोटिशः नमन।

***

–: वैदिक उपदेश :–

इस देश में अध्यात्म तत्व के बताने वाले अनेक गुरु समय-समय पर प्रगट हुए हैं, जिन्होंने परमात्मा के एक ही स्वरूप की भिन्न-भिन्न व्याख्या करके ईश्वर की प्रियता का उपदेश दिया है, वास्तव में उनमें कोई भेद नहीं है। वे सम्प्रदाय परस्पर विरोधी नहीं है। उन्हें भी परस्पर द्वेष नहीं करना चाहिए क्यों कि गुरुतत्व एक ही है, इस लिए सभी धार्मिक सम्प्रदाय गुरुभाई हैं।

– ***श्रीस्वामीजी***

गुरु – कृपा

– *प्रेम नारायण त्रिवेदी*
अतिरिक्त जिलाधीश, जबलपुर

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

इसी गीता वाक्य की पूर्णता हुयी परम तेजोदीप्ति श्री अनन्त स्वामी जी के आविर्भाव में। जनमानस के मोहांधकार के विनाशार्थ तथा सतत ज्ञान के प्रकाश हेतु महामाया के कृपा कटाक्ष से ही महामानव पूज्यपाद दतिया तपोभूमि को अपनी साधना स्थली बनाकर विराजमान हुए।

सन् १९६६ की जुलाई की २०, २१ तारीख मेरे जीवन की काल रात्रि थी। उस दिन जो घटित हुआ, अवर्णनीय दुःखान्त वृत्त था, आन्दोलित मन लिये मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक कलकत्ता की पुरानी ज्ञान वाणी तांत्रिकों की प्रसिद्ध गली में भटकते-भटकते हरिद्वार ऋषिकेश के आश्रमों तक घूमा। शांति नहीं मिली, गुरु न मिला। तब मैं कटनी (म.प्र.) में जज था। जहाँ भी गया, चाहे वह स्वामी शिवानन्द आश्रम ऋषिकेश हो, चाहे महामहोपाध्याय रमेश चन्द्र भट्टाचार्य कलकत्ता का विशाल आवास। मेरे पद नाम से लोग सहज प्रभावित दिखे। मन ने कहा– यहाँ अपूर्णता है, चलो आगे चलें।

अघट घटना पटीयथी माता के कृपा कटाक्ष से दतिया आया। श्री चरणों में आत्म निवेदन किया। महाराज जी की गुरु गंभीर वाणी गूंजी– "तुम योग्य नहीं हो! हम योग्य को ही बताते हैं, जाओ चले जाओ।" न पद नाम का किंचित प्रभाव, न धन इत्यादि से लगाव! मन ने कहा – 'ठीक स्थान पर आये हो, जमे रहो, यह भर्त्सना गुरु की परीक्षा की शैली है।'

तदनुसार जमे रहे, एक बार नहीं पांच बार भर्त्सना हुयी। प्रत्येक बार मन दृढ़ हुआ। अंततोगत्वा नवरात्र में गुरु कृपा हुयी, दुर्लभ मंत्र प्राप्त हुआ। महाराज के नेत्रों से अपार करुणा बरस रही थी। महाराज परम प्रसन्न थे। उनकी कठोर परीक्षा में उनका एक शिष्य सफल हुआ था। फिर तो वायुयान की गति से प्रगति बढी, प्रति वर्ष महाराज की कृपा से अनेकानेक जटिल विधान सरल हुए। मेरी पत्नी, पुत्र एवं पुत्रियों

पर महाराज कृपालु हुये। सभी को योग्य मंत्र दीक्षा प्राप्त हुयी। प्रयाण से दो वर्ष पूर्व महाराज जी ने यंत्र संस्कार करवाने तथा संपूर्ण विधि से भगवती बगलामुखी की नित्य सपर्या करने का अधिकार व आज्ञा दी। मेरा परम सौभाग्य है कि अनेकों के लिये दुर्लभ इस पूजन विधि को मैं नित्य प्रति करता हूँ।

आज मैं सुख के शिखर पर हूँ। भगवती बगलामुखी के उपासक के शत्रु भी उत्पन्न होते हैं। उनका विनाश होकर माता की महिमा का प्राकट्य होता है। ऐसा ही एक प्रसंग है– एक बार अचानक मुझसे वरिष्ठ पदाधिकारी ईर्ष्या द्वेषवश शत्रुता कर बैठे। 'अनर्गल' शब्द बोल बैठे। मेरे मन में क्रोध का संचार हुआ, ब्राह्मणत्व को ललकार थी। उच्चाटन प्रयोग कर दिया, दूसरे दिन शत्रुता करने वाले विक्षिप्त से हो उठे, देखकर दुःख हुआ, कुछ शमन के उपाय भी किये, परन्तु प्रभाव जो होना था, हो गया। एक माह में वे पदावनत होकर चले गये। मैंने दतिया प्रवास पर महाराज श्री से अपराध निवेदन किया। महाराज गंभीर हुये, कहे– 'समझदार हो! विवेक से काम लिया करो।' तब से यह बदले की वृत्ति यथा संभव दूर कर दी है।

महाराज को वाक्सिद्धि थी, उनसे न आशिर्वाद मिलता था, न श्राप। कहते थे– "यह निकृष्ट साधुओं का काम है" परन्तु, मेरी छोटी पुत्री को प्रेत बाधा हुयी, उसे देख महाराज ने उपाय बताये व बोले ठीक हो जायेगी। निश्चित रूप से पूर्ण स्वास्थ्य लाभ हुआ, उपाय पूर्ण सफल रहा। महाराज जी की कृपा से जीवन में अनेक लाभ प्राप्त हुये। एक बार मैंने पद वृद्धि की कामना से पुरश्चरण किया, फलस्वरूप प्रथम श्रेणी में राजपत्रित अधिकारी हो गया।

महाराज से दिल्ली में अंतिम भेंट आयुर्विज्ञान संस्थान में बड़ी प्रसन्न मुद्रा में हुयी, वहाँ पर छोटा पुत्र मेरे साथ था। पूज्यपाद बहुत देर तक ज्ञानोपदेश देते रहे। महाराज का लीला संवरण भी उतना ही रहस्यपूर्ण है, जितना उनका जीवन प्रसंग। भगवान कृष्ण के समान अपना कार्य पूर्ण कर महाराज निस्पृह रूप से ब्रह्मलीन हो गये। उनका पथ प्रदर्शन हम सब का सतत मंगल करता रहेगा।

***

–: वैदिक उपदेश :–

यथार्थ ईश्वरज्ञान होने पर अज्ञान हट जाता है। विषमता ईश्वर की बनाई हुई नहीं है, यह तो अविद्या के वशीभूत होकर मनुष्य ने बनाई है। इसका परिणाम भी मनुष्य ही भोगता है। यह वैषम्य-दोष एवं निर्दयता का दोष ईश्वर पर नहीं है। जो लोग सद्धर्म, सदाचार और न्यायमार्ग पर चलते हैं उन पर उसकी दया का भाव प्रत्यक्ष होता है।

– *श्रीस्वामीजी*

मेरी उनकी प्रीति पुरानी

— किशोरी शरण चउदा
दतिया

जब मैं अपने पूर्व जीवन का आरंभ से सिंहावलोकन करता हूँ, पहले मैं क्या था और अब क्या हो गया हूँ? तब यह निश्चय दृढ़ हो जाता है कि पूज्यपाद का दतिया नगर में आगमन मेरे ही कल्याण के लिए हुआ था। पूज्यपाद के दतिया निवास से एक बहुत बड़े समुदाय का कल्याण हुआ है, एवं उनकी शिक्षाओं से बहुतों का जीवन सुखमय बना है। इसके अतिरिक्त उनसे राष्ट्र के वह कार्य सिद्ध हुये हैं, जिन्हें कोई महापुरुष सिद्ध नहीं कर सका है।

जब पूज्यपाद का दतिया में पदार्पण हुआ, तब मैं नववी कक्षा का छात्र था। उस समय पढ़ने में मेरी अधिक रुचि नहीं थी, तथा बुरे विचारों वाले साथियों के साथ रहकर मेरी धर्म से आस्था समाप्त हो गयी थी और घोर नास्तिकतावादी विचारों को मैं संजोया करता था। एक बार मैं पिताजी के साथ दर्शन करने के लिये पूज्यपाद के पास गया। मेरे पिताजी पूज्यपाद के विचारों से तथा उनके मधुर व्यवहार से बहुत प्रभावित हुये। पूज्य पिताजी ने मुझे भी पूज्यपाद के पास में उनकी सेवा सहित सत्संग करने की प्रेरणा दी। इस प्रेरणा के अनुसार मैं पूज्यपाद के पास प्रतिदिन जाने लगा। पूज्यपाद की कृपा से मेरी अधार्मिक और नास्तिक प्रवृत्ति समाप्त हो गयी। उन्होंने बड़े मधुर तर्कसंगत विचारों से मेरा समाधान पूरी तरह से किया जिससे मुझे बड़ी शांति मिली। इसके पश्चात् पूज्यपाद ने आश्रम पर भगवत गीता का प्रवचन बहुत समय तक किया। पूज्यपाद ने गीता का महत्व बताया और गीता को भारतीय संस्कृति का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ निरूपित किया। उन्होंने गीता को भारतीय संस्कृति के ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रथम पुस्तक बताया तथा उसे अंतिम ग्रन्थ भी निरूपित किया। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय संस्कृति के समस्त सिद्धान्तों का मूल गीता में आपको मिलेगा, जिनसे समस्त अध्यात्म एवं व्यवहार जीबन की साधनाएँ सिद्ध होती हैं।

इसके बाद मैं पूज्यपाद से नियमित अध्ययन करने लगा। पूज्यपाद ने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन कराया। इस अध्ययन क्रम में मेरे साथ बहुत से स्थानीय एवं बाहर के साधक भी सहपाठी रहे हैं। पूज्यपाद ने शास्त्रों के तमाम गूढ़ रहस्यों को समझाने का प्रयास किया, परन्तु यह तो मेरी अल्प बुद्धि की पात्रता है कि मैं उस ज्ञान सागर से कितना ले सका। पूज्यपाद भारतीय वैदिक संस्कृति के पूर्ण समर्थक थे।

वे हमारी हिन्दू संस्कार पद्धति को मानव के लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुखमय बनाने का साधन बताते थे। मानव को अशुभ से छुड़ा कर उसे शुभ में बैठाने का प्रयास ही हमारी संस्कार पद्धति है। इन संस्कारों में उपनयन संस्कार को अनिवार्य माना गया है। इस संस्कार में गायत्री मंत्र प्राप्त होता है। इसकी साधना के बिना कोई वैदिक पौराणिक एवं तान्त्रिक साधना इच्छित फल देने में समर्थ नहीं है – पूज्यपाद के अनुसार प्राकृतिक विधान के अनुरूप संस्कार की हुई पद्धति का नाम ही संस्कृति है। अनुभवजन्य ज्ञान नित्य होता है तथा बुद्धिजन्य ज्ञान परिवर्तनशील होता है। इसके कारण संस्कृति नित्य और सभ्यता परिवर्तनशील है। किसी देश की सभ्यता किसी अन्य देश के लिये हितकारी या अहितकारी भी हो सकती है, परन्तु संस्कृति सर्वदेश, सर्वकाल के लिये मानव मात्र का हितकारी भाव है। संस्कृति का आदर तथा उसका पालन हमारी उन्नति का हेतु है तथा उसका निरादर हमारे पतन का हेतु है। संस्कृति रूपी वृक्ष में फल, फूल, पत्ते, शाखा अपने मूल धर्म विज्ञान से पोषित रहते हैं। इसी प्रकार संस्कृति के मूल धर्म विज्ञान से पोषित एक वृक्ष के अंगों के समान उसके सभी संप्रदाय व्यक्ति की भिन्न-भिन्न योग्यता के अनुसार अपने अभीष्ट को पाते हैं। हमारे पूज्यपाद इसीलिये सभी संप्रदायों को ठीक मान कर उनके साधकों को प्रोत्साहन देते थे और मार्ग दर्शन करते रहते थे। उनका कथन था कि ब्रह्म जिसका लक्षण निष्क्रिय, निरंजन आदि है, वह तो उस संसार का हेतु हो नहीं सकता। यह तो केवल उसकी अभिन्न शक्ति ही है जिसमें यह विश्व वर्तमान होकर उदय स्थिति और संहार के क्रम में चलता रहता है। अत: हमें उस शक्ति संवलित पराभाव की माता भाव से उपासना करके उसकी शरण में जाना चाहिए तभी हम अपने अभीष्ट को पा सकते हैं। इस प्रकार सारा विश्व ही शक्तिमय दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार वह शक्ति साधना को पूर्ण साधना बताते थे। विश्व की सारी साधनाएँ शक्ति की ही भिन्न-भिन्न प्रकार की साधनाएँ है। यह शक्ति साधना मानव के लोक और परलोक दोनों अंगों का समान रूप से पोषण करके उनको सफल बनाती है। व्यवहार में भी अशक्त कुछ नहीं कर सकता। शक्तिमान ही सब जगह सफल रहता है। पूज्यपाद के उपदेश और शिक्षाओं के विकल्प ही सत्य की कसौटी है जिनसे हम अपने आकार को मांप सकते हैं। पूज्यपाद के अनुसार आचरण संबंधी विचार ऐतरेयोपनिषद् में वर्णित हैं।

पूज्यपाद ने आगम और निगम का सामंजस्य ही बताया है। इसी के अनुसार आश्रम में पूजन पद्धति का प्रचलन है जिसमें वैदिक पद्धति के साथ ही तांत्रिक पूजन का भी क्रम चलता है। उनके विचार से आगम और निगम ये दो भारतीय धर्म की सहोदर धाराएँ आदि काल से चली आ रही हैं जो एक दूसरे की पूरक हैं। पूज्यपाद से एक आगुन्तक पुरुष ने प्रश्न किया कि हमारी तांत्रिक साधनाएँ पूर्ण रूप से सिद्ध क्यों नहीं होती है, तथा अन्य धर्मों में साधनाओं की सिद्धि हो जाती है इसका क्या

कारण है? पूज्यपाद ने इसके उत्तर में कहा कि हमने अपने आधारभूत संध्या वंदन के साथ गायत्री साधना को छोड़ दिया है। जबकि अन्य धर्मों के लोग अपनी मूल साधना के साथ ही अन्य साधनाएँ करते हैं। इसलिये तांत्रिक साधनाओं की सफलता के लिये गायत्री जप आदि मूल साधना भी करना चाहिए।

पूज्यपाद ने समस्त आचरणीय विचारों की रूप रेखा सिद्धान्त रहस्य तथा वैदिक उपदेश नामक ग्रन्थों में कर दी है, जिन्हें प्रत्येक भारतीय को जानना आवश्यक है। पूज्यपाद ने उपनिषद की टीका में शाक्त धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन किया है। शंकराचार्य ने इन सिद्धान्तों को सौन्दर्य लहरी आदि ग्रन्थों में बताया है। पूज्यपाद ने शंकराचार्य के अधूरे कार्य को पूरा किया है। पूज्यपाद के अनुसार हमारे देश में प्रवृत्ति प्रधान धर्म को मानना चाहिये। निवृत्ति प्रधान विचारों ने हमको दुर्बल बना दिया है। यद्यपि हमारी संस्कृति प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का समर्थन करती है, परन्तु प्रवृत्ति धर्म प्रधान ही वैदिक संस्कृति का मूल विचार है। गृहस्थ आश्रम ही सब आश्रमों का मूल है। वही सब का पोषक है। अन्य आश्रमियों को सदैव गृहस्थ के हित का चिंतन करना चाहिए। हमारे महापुरुषों ने गृहस्थ आश्रम को ठीक रखने का उपदेश किया है। पूज्यपाद ने स्वयं संन्यास धर्म का विधिवत पालन किया, परन्तु वह किसी को भी इसकी सलाह नहीं देते थे। वह मानसिक त्याग के साथ गृहस्थ धर्म के पोषक थे।

पूज्यपाद ने समय समय पर हमारी तथा परिवार की बड़ी रक्षा की। एक बार एक जन्मजात बीमारी के कारण मृत्यु शैया पर पहुँच गया। तब उन्हीं ने मेरे प्राणों की रक्षा की। पूज्यपाद हमारे सच्चिदानंद रूप भगवान हैं। हम सत्य के जितने निकट हैं उतने ही उनके पास है, तथा जितने सत्य से हम दूर हैं, उतने ही हम उनसे दूर हैं। वह तो पहले से ही हमारे पास थे, परन्तु अनुपस्थिति के भ्रम के निवारण के लिये उन्होंने विग्रहवान होकर हमारे अज्ञान को दूर किया, और समस्त शिक्षा तथा दीक्षाओं की योजनाएँ चलायी। फिर उसी भाव में स्थित होकर वह हमारे साथ हैं। हमारी सारी उपासना उनके द्वारा संपादित होकर उन्हीं के लिये समर्पित हो रही है।

***

स्वामीजी महाराज की अनुपम कृपा

– माणिक चन्द्र शर्मा
अधिवक्ता, उरई

भारत वसुन्धरा की गोद में समय समय पर ऐसे महापुरुष सदैव अवतीर्ण होते रहे हैं, जिन्होंने अपने पावन ज्ञान के प्रकाश द्वारा मानव समाज को धर्माचरण एवं कर्तव्य मार्ग का दर्शन कराया है, तथा तप:पूत अपने आदर्श चरित्र के द्वारा मानव जीवन भोगासक्ति के लिये नहीं है, साधना के लिये है, यह प्रेरणा प्रदान की है।

दतिया के पीताम्बरा पीठस्थ पूज्यपाद श्री अनन्त स्वामीजी महाराज उन्हीं महाविभूतियों में से एक थे। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व पूज्यपाद किसी अज्ञात दिशा से दतिया पधारे थे। उन्होंने अपने जन्म के द्वारा किस भू भाग को पावन बनाया यह पूर्णत: किसी को विदित नहीं है। साथ ही स्वामी जी के जन्म से कौन जाति और वंश धन्य हुआ यह भी आज तक किसी को प्रमाणित रूप से विदित नहीं है। आपने दतिया पधार कर पीताम्बरा पीठ आश्रम को तपस्थली बनाकर महाप्रयाण के समय तक निरंतर निवास किया है। दतिया आने के बाद लगभग दस वर्ष पूज्यपाद ने एकान्त साधना और गंभीर अध्ययन में व्यतीत किये, फिर आपने हस्तलिखित प्राचीन दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों का संग्रह करना प्रारंभ किया। यह संग्रह कार्य पूज्यपाद का निरंतर चलता रहा। इसके परिणाम स्वरूप आश्रम में एक विशाल संस्कृत पुस्तकों का संग्रहालय हो गया है।

पूज्यपाद सनातन धर्म एवं भारतीय संस्कृति के साक्षात् प्रतिमूर्ति थे। उनके द्वारा हम लोगों को अपनी संस्कृति के मूल सिद्धान्तों के पालन की सतत प्रेरणा मिलती रहती थी। आप किसी भी अधिकारी अथवा ऐश्वर्यशाली व्यक्ति के प्रति कभी भी किसी प्रकार की अपेक्षा नहीं रखते थे। आपने सदैव अन्याय का दमन एवं राष्ट्र हित में अपने अमूल्य स्वार्थों के त्याग का पाठ हमको पढ़ाया है। आद्याशक्ति भगवती महामाया की कृपा से भक्त के हृदय में जागृत होने वाला अखण्ड ज्ञान का प्रकाश सम्पूर्ण दिशाओं में व्याप्त हो कर कुण्डलिनी शक्ति के रूप में षट्चक्रों का भेदन करता हुआ, भक्त को ब्रह्मस्वरूपिणी शिवशक्ति में विलीन कर देता है। उस अखण्ड ज्ञान के प्रकाश एवं कुण्डलनी शक्ति के मध्य हमारे आराध्य गुरुदेव निरंतर विचरण किया करते थे।

मैंने अपने जीवन में पूज्यपाद की कृपा से असाधारण संकटों से मुक्ति पाई है, और मेरे प्राणों की रक्षा हो सकी है। सन १९६९ में एक बार मैं स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। उस दिन सहज बैठक में ही उन्होंने मुझे यह संकेत दिया कि यह दुर्घटनाओं का साल है, परन्तु इतना कहने के बाद ही अपनी वार्ता को विषयांतर में मोड़ दिया। मै क्या जानता था कि आगामी समय में दुर्घटना का शिकार मुझे भी होना पड़ेगा। कुछ दिनों बाद मुझे अपने एक बीमार रिश्तेदार को देखने लखनऊ जाना पड़ा। हमारा परिवार भी साथ था। बीमार को देखकर दूसरे दिन हम लोग लखनऊ से कार द्वारा वापिस घर आ रहे थे। कानपुर लखनऊ के बीच में हमारी कार की एक ट्रक से भिड़न्त हो गयी। फिर मुझे होश नहीं रहा कि आगे क्या हुआ। जब होश आया तो उन्नाव के अस्पताल में मैंने अपने को मरिजों की चारपाई पर लेटा हुआ पाया। इसके बाद पूज्य पिताजी लखनऊ से मेरा समाचार सुनकर आये तथा हम लोगों को लखनऊ के बलराम पुर अस्पताल में उपचार हेतु भर्ती कराया। दो तीन दिन बाद ही मुझे अस्पताल से अवकाश मिल गया। लोगों का कहना था कि दुर्घटना में कार को ऐसी ठोकर लगी थी जिससे किसी के बचने की आशा नहीं थी।

एक बार मैं कार द्वारा सपरिवार लखनऊ से कालपी आ रहा था। उस समय कालपी में यमुना नदी का पुल न होने से कार को नाव में चढ़ा कर हम लोगों ने नदी पार की। इस बार जब मैं उतर रहा था तो अकस्मात मेरा पैर फिसला और मैं गहरे पानी में गिर गया। पानी बहुत गहरा था। अकस्मात मुझे जल के भीतर पीले प्रकाश का आभास हुआ, थोडी ही देर में नीचे से ऊपर उछल आया और रस्सी डालकर पकड़ लिया गया। मुझे अब तक खूब स्मरण है कि वह जल में दिखलाई देने वाला प्रकाश पूज्यपाद के पीताम्बर जैसा था। यहाँ पर भी मेरी रक्षा पूज्यपाद की कृपा से ही हुयी।

सन १९७५ में आपात कालिन स्थिति में मीसा के अन्दर मुझे गिरफ्तार करने के लिये पुलिस ने मकान घेर लिया और ऊपर आकर तमाम कमरों में मुझे तलाश किया। मैं एक कमरे में बैठा था, परन्तु पुलिसवालों ने मुझे देखा ही नहीं, मैं उसी दिन सायंकाल दतिया गया। पूज्यपाद ने अपने हाथ पर हाथ रखकर हथकडी लगने का अभिनय करते हुये कहा – कि गिरफ्तारी से डर गये क्या? मैंने कहा – नहीं महाराज, पिताजी ने गिरफ्तारी की अनुमति नहीं दी थी और अब आपसे आज्ञा लेने आये हैं। पूज्यपाद ने कहा – माई का भजन करो। यहाँ तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं होना चाहिये। इससे भी बड़ा स्थान कोई संसार में है?

पूज्यपाद की अस्वस्थता के समय मैंने दिल्ली में कई बार उनके दर्शन किये। दिल्ली से लौटकर जब ग्वालियर वापस आये तो मैं भी वहाँ उनके साथ था। बाद

में पूज्यपाद को चिकित्सा के लिये मुम्बई ले जाया गया। मुम्बई में पूज्यपाद की स्थिति गंभीर चल रही थी मेरे बम्बई पहुँचने के दूसरे ही दिन पूज्यपाद भौतिक शरीर को छोड़कर ब्रह्मलीन हो गये। यह बात मैं कभी नहीं भूल सकता कि पूज्यपाद ने अपने महाप्रयाण से कुछ समय पूर्व ही **'मातृका चक्रविवेक'** नामक पुस्तक प्रकाशित करवाने का शुभ अवसर प्रदान किया। यह पुस्तक पीताम्बरा संस्कृत परिषद द्वारा प्रकाशित पुस्तकमाला में एक मणि की भाँति गुंथित होकर चिरकाल तक देदीप्यमान होती रहेगी। इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ।

पूज्यपाद की कृपा से मैं पीताम्बरा पीठ न्यास मंडल का एक सदस्य हूँ, तथा मेरी आकांक्षा है कि पूज्यपाद ने अपने समय में पीताम्बरा माई की पूजा की जो पद्धति डाली थी और अन्य देवताओं की जो पूजन पद्धति प्रचलित कराई थी, वह क्रम निरंतर चलता रहे। आश्रम में मनाये जाने वाले अन्य पर्व भी अच्छी प्रकार मनाये जायें।

अंत में मैं भगवती पीताम्बरा माई एवं ब्रह्मलीन गुरुदेव के चरणों में नतमस्तक होकर लेखनी को विराम देता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जो द्वेष का बीज मनुष्यों में बोते हैं वे कभी खड़े नहीं रह सकते, यह भी एक ईश्वरीय नियम है। धार्मिक सम्प्रदाय वाले ईसाई, मुसलमान, हिन्दु, आर्य आदि धर्म ने ईश्वर के नाम से सम्प्रदाय बनाकर स्वार्थवश एक-दूसरे को गिराने के लिए द्वेष फैलाकर मनुष्यों को सत्यपथ से बहुत ही दूर कर रक्खा है। उन्हें एकत्व से सिद्धान्त को समझना चाहिए।

— ***श्रीस्वामीजी***

गुरु-महिमा

— *मदन मोहन शर्मा 'गौड़'*
अवकाशप्राप्त, एस.डी.ओ., मथुरा

परमपूज्य श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज की स्मृति में पीताम्बरा पीठ के शिष्यगणों के विचार से एक स्मृति ग्रन्थ लिखने की योजना उसी समय से थी, जब वे ब्रह्मलीन हुये थे। यह विचार स्वाभाविक ही था, क्योंकि पूज्यपाद की असीम कृपाओं से हम सभी लाभान्वित हुये हैं। वास्तव में तो कोई भी व्यक्ति श्री चरणों के व्यक्तित्व एवं कृपाओं का उल्लेख करने को सामर्थ्य नहीं रखता है। इसका कारण हम सभी जानते हैं, कि पूर्ण के बारे में अपूर्ण कदापि वर्णन नहीं कर सकता। फिर भी सभी मित्रों की यह इच्छा है कि किसी प्रकार प्रयास करके एक स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जाये।

पूज्यपाद दतिया में तो बहुत पहले से विराजमान थे, परन्तु मुझे पूज्यपाद का दर्शन करने का सौभाग्य सन् १९६४ में प्राप्त हुआ था। जब मैं झाँसी में निलंबित अवस्था में था तब हमारे छोटे भाई डाक्टर तेज प्रकाश भारद्वाज आये और उन्होंने कहा – आप इतने कष्ट में है, कभी दतिया जाकर पूज्यपाद के दर्शन कर आओ। फिर मैं उन्हीं के साथ दतिया आया। पहुँचते पहुँचते दिन अस्त हो चुका था। पूज्यपाद उस समय भीतर बगिया में विराजमान थे। छोटा भाई उनके पास चला गया। मैं बाहर रुक गया, और वहीं से प्रथम बार दर्शन किया। मैं यदा कदा श्री चरणों की ओर देख लेता था और बैठा रहा। इसके बाद पूज्यपाद बगिया से बाहर आने लगे तो मैंने यही अनुभव किया कि कोई दिव्य महात्मा मस्त गज की भाँति आ रहे हैं। वे मेरे पास आकर रुके। मैंने प्रणाम किया। पूज्यपाद ने पूछा – आप कौन है? मैं ने उत्तर दिया – ब्राह्मण हूँ। दूसरा प्रश्न किया – कैसे आये हो? मैंने निवेदन किया – बहुत कष्ट में आया हूँ। इस पर उन्होंने कहा "फिर"? मैंने उत्तर दिया कि अब आप जाने। पूज्यपाद ने एक तिरछी दृष्टि से मेरी ओर देखा। मुझे लगा कि कोई अदृश्य वस्तु मेरे शरीर को जैसे चीर रही है। मैं खडा न रह सका और बैठ गया। कुछ क्षण पश्चात् मुझमें साहस आया और पुनः खड़ा हो गया। पूज्यपाद ने भीतर से लाकर एक स्तोत्र मुझे दिया तथा आज्ञा दी कि इसका पाठ करना और आते रहना। इसके पश्चात् मै प्रति मंगलवार को आश्रम पर पहुँच जाता था। कुछ समय पश्चात् पूज्यपाद ने कहा इस स्तोत्र की इतनी संख्या करना है। संख्या जानकर मैं एकदम घबड़ा गया। क्योंकि मुझमें अधिक देर बैठने का सामर्थ्य नहीं था। मैं पूज्यपाद का स्मरण कर उस स्तोत्र का पाठ करने लगा।

एक बार रात्रि में मुझे कमरे में कुछ विचित्र घटनायें दिखाई दी। तीन दिन तक भयावनी चीजें दिखलाई दीं। मैंने जोर से पुकारा तो मकान मालिक उठकर आया और वह भी देखकर भयभीत हुआ। मकान मालिक ने घर खाली करने को कह दिया। इसके बाद मैं दतिया पहुँचा और पूज्यपाद के दर्शन किये। पूज्यपाद ने मेरी ओर देखकर कहा – जाओ स्नान करके तुरंत आओ। मैं आज्ञानुसार स्नान करके पूज्यपाद के समीप बैठ गया। पूज्यपाद ने अन्य बैठे हुये व्यक्तियों को बाहर जाने का आदेश दिया। जब सब लोग बाहर चले गये तो स्वयं ही कहा – क्यों, तीन दिन से ऐसा हो रहा है? मैं ने निवेदन किया कि हाँ महाराज मै इसी कारण यहाँ आया हूँ। पहले तो इन सब घटनाओं का कारण समझाया और फिर एक मंत्र दिया कि इसका जाप करो। इसके पश्चात् फिर कभी विक्षेप नहीं आया। हमारे अन्य गुरुभाईयों को भी इस बात का अनुभव है कि पूज्यपाद अपनी ओर से ही घटित बातों को बताकर भविष्य के लिये मार्गदर्शन करते रहते थे।

आश्रम पर पूर्ण रूप से अनुशासन रहता था, सभी लोग डरते थे, कि कोई गल्ती न हो जावे, नहीं तो आश्रम पर आना बन्द हो जायेगा। यह सब इसी कारण था कि आने वाले व्यक्ति अपना भजन करे तथा व्यर्थ अनर्गल बातें न करें। पूज्यपाद केवल इसी बात से प्रसन्न होते थे कि उनकी आज्ञानुसार प्रत्येक व्यक्ति भजन करे। उनकी विशेष कृपाओं को प्राप्त करने का केवल यही एक माध्यम था। मैं एक बार की बात बतला रहा हूँ – गुरुपूर्णिमा का समय था, मैं पंक्ति में प्रसाद लेकर खड़ा हुआ था। मैंने अन्य लोगों की ओर देखा तो पाया कि वे लोग काफी फल-वस्त्र आदि साथ में लिये पूजन के लिये खड़े है। मेरे मन में विचार आया कि मैं भी कुछ अधिक ला सकता था, परन्तु पंक्ति में खड़ा विवश था। मैंने विधिवत पूजन किया। अगले दिन जब प्रातःकाल पूज्यपाद के पास गया, तो वे कहने लगे – मुझे सर्वप्रिय वह व्यक्ति है, जो मेरे आदेशानुसार भजन करते है। ऐसे व्यक्तियों को मैं प्रथम श्रेणी देता हूँ। दूसरा स्थान उन व्यक्तियों के लिये हैं, जो आश्रम पर शरीर से कार्य करते हैं, तथा धन से सेवा करने वाले तृतीय श्रेणी के सेवक हैं। मुझे यह समझने में देर न लगी कि पूज्यपाद ने यह बात कल हमारे मन में उत्पन्न भ्रम को दूर करने के लिये की है।

प्रत्येक शिष्य के मन में यह बात पायी जाती थी कि पूज्यपाद उन्हें ही सर्वाधिक प्रेम करते हैं। पूज्यपाद के यहाँ न कोई सिफारिस कर सकता था और न चापलूसी से कोई वस्तु प्राप्त कर सकता था। मैं तो यही समझ पाया हूँ कि वह दीनदयालु थे। जो इस संसार में जन साधारण में धर्म प्रेरित करने के लिये अवतार स्वरूप आये थे। वे ब्रह्मलीन हैं परन्तु उनकी कृपा पूर्ववत हम सब पर है और अब भी मार्गदर्शन कर रहे हैं।

***

पूज्य श्री स्वामीजी का जीवन परिचय

– बदनसिंह, रायभा
आगरा

"कह रहा है सूर दरिया से समन्दर का सुकूत।
जिसमें जितना जर्फ है वह उतना ही खामोश है।।"

अपने जीवन परिचय के विषय में ब्रह्मलीन राष्ट्रगुरु श्री अनन्त श्री श्रीपीताम्बरा पीठाधीश्वर श्रीस्वामी जी महाराज सदैव मौन रहे। किसी शिष्य के द्वारा अधिक हठ किए जाने पर वे प्राय: यही उत्तर देते थे कि संन्यासियों से इस विषय में प्रश्न नहीं करने चाहिए क्योंकि वे यह सब कुछ त्यागकर ही संन्यास ग्रहण करते हैं। यह खोज का विषय होता है और संन्यासियों के शरीर न रहने के पश्चात् इस दिशा में खोज कर सब ज्ञात हो जाता है। वास्तव में यह मौनावृत्ति में उनकी महानता का दिग्दर्शन था। संसार में दुर्लभ समय का प्रारम्भ हो चुका था। चारों ओर महामारी, दुर्भिक्ष, उत्पीडन और नाना प्रकार के भौतिक एवं दैवी प्रकोप मुंह बाए खड़े थे। सन् १९१४ ई. में होने वाले प्रथम विश्वयुद्ध के कारण भी सूक्ष्म एवं अदृश्य रूप से अंकुरित हो रहे थे। भारतवर्ष में आदिगुरु श्री शंकराचार्य जी के सम्बल के आश्रय पर चलते चलते वैदिक धर्म तथा उनके द्वारा प्रतिपादित सर्वमत समन्वय एवं अद्वैतवाद के सिद्धान्त लड़खड़ाने लगे थे। तभी देश तथा धर्म को सही दिशा प्रदान करने हेतु प्राची का श्रीस्वामी बालपतंग उदय हुआ।

सन् १८९९ ई. में चन्द्र की वृष राशि के रोहिणी नक्षत्र पर श्रावण मास में वाराणसी जनपद के रामनगर की उत्तर दिशा में स्थित गंगा तटीय 'रामपुर' ग्राम के एक सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में काशी विश्वनाथ ने श्री स्वामी जी के रूप में अवतार लिया। यह परिवार अत्यन्त सम्भ्रान्त तथा उच्च कोटि के विद्वानों का परिवार था। इनके पिता ज्योतिर्बिद पण्डित हरिप्रसाद जी (अभी स्थल पर जाकर प्रमाणित नहीं किया जा सका है) श्री स्वामी जी के जन्म से कुछ ही काल पश्चात् स्वर्गवासी हो गए थे तब इनकी स्नेहमयी माता जी के ही कन्धों पर इनके पालन पोषण का भार रहा। स्वामी जी के जन्म समय से ही उनके उच्च ललाट पर अर्द्धशशाङ्क सुशोभित था और इस कान्तिमय बालक में प्रारम्भ से ही देवगुण परिलक्षित थे। श्री स्वामी जी की देवी माता ने बड़े लालन और चाव से इनका पालन-पोषण किया। बाल्यावस्था में

ही श्री स्वामी जी ने विद्यालय जाना प्रारम्भ किया। श्री स्वामी जी का घर का नाम श्री महावीर प्रसाद था। श्री महावीर प्रसाद अत्यन्त ही मेधावी छात्र थे। इनका शरीर भी अत्यन्त बलिष्ठ था और ये कोकिलाकण्ठी तथा रूप लावण्य की खान थे। श्री महावीर प्रसाद जी व्यायाम, मल्लयुद्ध, सङ्गीत, तैराकी तथा केवटी विद्याओं के प्रारम्भ से ही प्रेमी थे और आगे चलकर इन सभी विद्याओं के महान ज्ञाता बन गए। सरस्वती उन्हें जन्म से ही सिद्ध होने के कारण बड़े बड़े ग्रन्थ उन्हें एक ही आवृत्ति में कण्ठस्थ हो जाते थे। छात्रावस्था में ही सभी साथी श्री महावीर प्रसाद जी के बल-पौरुष तथा मेधा का लोहा मानने लगे। हिन्दू धर्म के प्रति उनमें सदैव से ही अटूट श्रद्धा और उसके उत्थान के लिए बलिदान की भावना समाविष्ट थी। बाल्यावस्था में वे हनुमानोपासक थे। वे सर्वदा हवेली की प्रकार के बने हुए रामनगर के किले के वाम पार्श्व में स्थित श्री हनुमान जी की विशाल एवं प्रतिभामयी मूर्ति की सेवा करते थे। यह विचित्र मूर्ति जिसमें रोम रोम दिखाई देते हैं आज भी विद्यमान है। श्री महावीर प्रसाद जी रामलीला देखने के प्रेमी थे क्योंकि रामनगर की रामलीला आज भी प्रसिद्ध है। वे अपने सहपाठियों को बहुधा यह रामलीला दिखाने रामनगर ले जाते और उस हनुमान जी की मूर्ति के भी सभी को दर्शन कराते। ऐसे ही अवसरों पर वे अपनी केवटी कला का भी प्रदर्शन कर सहपाठियों का मनोरञ्जन किया करते थे।

श्री स्वामी जी महाराज की सम्पूर्ण शिक्षा काशी जी में हुई। ये काशी विद्यापीठ के विद्यार्थी थे। उस समय बिहार प्रदेश में दरभङ्गा जनपद के मैथिल निवासी श्रीयुत पण्डित ब्रह्मानन्द झा काशी विद्यापीठ के प्राचार्य थे और वाराणसी निवासी डा. भगवानदास इनके प्रोफेसर थे। राजा बलदेवदास बिड़ला काशी विद्यापीठ से विशेष स्नेह रखते थे और वे बहुधा अपनी टम टम गाड़ी में फल भरकर लाते और विद्यार्थियों को वितरित करते थे। श्री महावीर प्रसाद जी (श्री स्वामी जी) की कक्षा में सात विद्यार्थी थे। इनके अन्य साथियों के नाम क्रमशः सर्व श्री रामकृष्ण शर्मा (भाण्डेर-ग्वालियर-म. प्र.), रामानुज जी, बद्रिप्रसाद जी, निर्भयराम जी (बहराइच-उ. प्र.), तथा सुखदेव प्रसाद जी (बलिया-उ. प्र.) इत्यादि थे। सभी विद्यार्थी ब्राह्मण थे। श्री स्वामी जी व्याकरण का अध्ययन करते थे। वे लघु सिद्धान्त कौमुदी के पश्चात् सिद्धान्त कौमुदी, किरातार्जुनीय महाकाव्य, रघुवंश आदि अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करते रहे। काशी विद्यापीठ में अध्ययन करते समय ही श्री स्वामी जी महाराज ने संन्यास ग्रहण किया था। काशी विद्यापीठ के निकट ही दो-ढाई सौ कदम के अन्तर पर भारत माता मन्दिर के समक्ष गिरनार स्वामी श्री तारानन्द जी का संन्यास आश्रम था। और स्वामी श्री तारानन्द जी से ही संन्यास की दीक्षा लेकर श्री महावीर प्रसाद जी स्वामी श्री देवानन्द जी हो गए। इस प्रकार हमारे गुरुदेव श्री स्वामी जी महाराज का श्री स्वामी देवानन्द जी संन्यास दीक्षानाम था। अध्ययन काल में श्री स्वामी जी के एक अग्रज और इनकी

विधवा माँ, जिनकी उस समय अवस्था ४०-४५ वर्ष की रही होगी और जो सफेद साड़ी पहनती थी, बहुधा श्री स्वामी जी से मिलने आया करते थे। डा. सम्पूर्णानन्द, परिपूर्णानन्द तथा लालबहादुर शास्त्री काशी विद्यापीठ के ही विद्यार्थी थे इसीलिए श्री स्वामी जी महाराज से इन सभी का बड़ा आत्मीय सम्बन्ध था।

श्री स्वामी जी महाराज ने १५ वर्ष की अवस्था में ही सम्पूर्ण पढ़ाई समाप्त कर संन्यास ग्रहण कर लिया था। वे कहा करते थे कि उस समय आजकल की भाँति लिखित परीक्षाएँ नहीं होती थी। सारी परीक्षाएँ मौखिक हुआ करती थी और उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को अलग पंक्ति में खड़ा कर गुरु जी उन्हें अग्रिम परीक्षा में अध्ययन हेतु आशीर्वाद देते थे। विश्व में प्रथम विश्व की विभीषिका जल रही थी, धर्म को लोग भूलते जा रहे थे तभी सन् १९१४ ई. के अन्त में श्रीस्वामी जी ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत लेकर घर-बार त्याग दिया और साधु, ब्राह्मण, धर्म और देश को बचाने की भीष्म प्रतिज्ञा की। सन् १९१४ से सन् १९२६ ई. तक श्री स्वामी जी महाराज दण्ड-कमण्डलु लिए उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, आसाम, पंजाब राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, काश्मीर तथा नेपाल आदि देश प्रदेशों का भ्रमण करते रहे और धर्म के अनेक अति दुर्लभ ग्रन्थों का भी अध्ययन करते रहे। अब तक श्री स्वामी जी महाराज एक दण्डी स्वामी थे परन्तु सन् १९२६ ई. में भ्रमण काल में घटित कुछ घटनाओं ने उनकी साधना को एक नयी दिशा प्रदान की। वे सन् १९२६ ई. में घूमते घूमते पंजाब में पट्टी नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ पर उस समय तन्त्रशास्त्र के मर्मज्ञ श्री स्वामी ब्रह्मानन्द नाथ जी का आश्रम था। ये गुजरात के रहने वाले थे और तन्त्र की दीक्षा देते थे। इस स्थान पर श्री स्वामी जी महाराज ने अनेक तान्त्रिक चमत्कार सुने और प्रयोग देखे, परन्तु वे दण्डी स्वामी थे इसलिए इस ओर उनकी अभिरुचि नहीं हुई। पंजाब के पश्चात् गुजरात और राजस्थान का भ्रमण करते हुए अपने अस्थायी प्रवास स्थान धौलपुर (राजस्थान) की ओर आते हुए वे बयाना जिला भरतपुर (राजस्थान) पहुँचे, जहाँ पर उन्होंने एक अद्‌भुत घटना देखी। जहाँ श्री स्वामीजी महाराज ठहरे हुए थे वहाँ पड़ोस में ही एक सज्जन के घर चोरी हो गई। प्रचुर मात्रा में द्रव्य चुराया गया था अतः व्यथित व्यक्ति चोरी का पता लगाने हेतु हर सम्भव प्रयत्न कर रहा था। उसने बयाना के पास के ही व्यावर कस्बे से एक ब्राह्मण को बुलाया, वह तान्त्रिक था। उस ब्राह्मण ने आकर मिट्टी की एक हँड़िया में कुछ उड़द भरवाए और फिर एक कागज पर कुछ मन्त्र लिखकर उसे रात्रि समय उन उड़दों में गाड़ देने का निर्देश देकर उस व्यथित व्यक्ति को दिया। उस ब्राह्मण ने आगे कहा कि ऐसा करने से उन उड़दों के ऊपर प्रातः चोर का नाम लिखा हुआ मिलेगा। यह सुनकर सभी लोगों के हृदय में तन्त्र की सत्यता जानने के लिए कौतूहल जागा। प्रात:काल हुआ, बर्तन को निकाल कर देखा गया तो उड़दों के

ऊपर बढ़िया काली स्याही में चोर का नाम अङ्कित था और इसी घटना के सहारे उन ग्रसित सज्जन का समस्त द्रव्य पुनः प्राप्त हो गया। उपर्युक्त घटना ने श्री स्वामी जी के साधक जीवन में भारी मोड़ ला दिया। वे अब तन्त्र विद्या के जिज्ञासु बन गए।

तन्त्रशास्त्र के अध्ययन एवं साधन की तीव्र उत्कण्ठा लिए गुरुदेव सन् १९२७ ई. में पुनः पट्टी पहुँचे और उन गुजराती स्वामी जी से हृदय की बात कही। श्री स्वामी ब्रह्मानन्द नाथजी ने स्वामी जी को बताया कि बिना तन्त्र शास्त्र का अवलम्बन लिए साधना में आगे बढ़ना अत्यन्त दुर्लभ कार्य है, प्रायः असम्भव सा ही है। तभी श्री स्वामी जी ने दण्ड का विसर्जन कर तन्त्रशास्त्र की दीक्षा ली। अब श्री स्वामी देवानन्द जी श्री स्वामी ब्रह्मानन्द नाथ जी से तान्त्रिक दीक्षा लेकर श्री स्वामी दिव्यानन्द नाथ जी बन गए। गुजराती स्वामी जी ने उन्हें बटुक भैरव, महा मृत्युञ्जय तथा श्री पीताम्बरा जी के मन्त्र दिए और सिद्धनाथ (मध्यप्रदेश) में नर्मदा के किनारे बैठकर इनको पुरश्चरण करने की आज्ञा दी। अब क्या था, श्री स्वामी जी ने नर्मदा की नाभि में आसन लगाकर महामृत्युञ्जय का मन्त्र ४५००० जप कर, बटुक भैरव का मन्त्र केवल तीन दिन जप कर और श्रीपीताम्बरा जी का मन्त्र केवल २० दिन में ही सिद्ध कर लिए। बीस दिन के पश्चात् जब श्री पीताम्बरा जी का मन्त्र सिद्ध हुआ तो श्री स्वामी जी महाराज के शरीर से पीले द्रव की धारा बहने लगी और जगदम्बा ने साक्षात दर्शन देकर आशीर्वाद दिया। मन्त्रशास्त्र की दीक्षा देते समय श्री स्वामी जी महाराज के परमगुरुदेव ने चार आज्ञाएँ दी थीं। प्रथम श्री पीताम्बरा जी का ही खूब प्रचार करना, द्वितीय किसी स्थान पर आश्रम बनाकर न रहना, तृतीय स्त्रियों को प्रवेश न देना, चतुर्थ किसी को भी संन्यास की दीक्षा न देना और अपना उत्तराधिकारी न बनाना। श्री स्वामी जी महाराज ने अपने गुरुदेव की सभी आज्ञाओं का सदैव पालन किया, केवल द्वितीय आज्ञा का वे पालन न कर सके क्योंकि उनका जन्म ही लोक कल्याण के लिए हुआ था और उसमें एक स्थान पर बैठ कर ही लोक कल्याण किया जा सकता था।

९ जुलाई सन् १९२९ ई. के श्रावण मास में मंगलवार के दिन उन्होंने प्रथम बार दन्तवक्रनगरी (दतिया) म.प्र. में पदार्पण कर महाभारत कालीन, महात्मा अश्वत्थामा की साधनास्थली, वनखण्डेश्वर शिवालय परिसर को अपनी साधना स्थली बनाया। हर युग में इस स्थान पर कोई न कोई तान्त्रिक साधक निवास करता आया है। आज भी यहाँ पर साधकों को प्रायः महाभारतकालीन किसी सिद्ध पुरुष के जो कि विशालकाय लगभग १२-१३ फीट लम्बे हैं, सूक्ष्म शरीर में दर्शन हो जाते हैं। इन्हीं सिद्ध पुरुष ने ही प्रथम बार श्री स्वामी जी महाराज के इस स्थान पर आगमन को शुभ बताते हुए यहीं रहने का आग्रह किया था। इस स्थान पर रह कर उन्होंने कठिन तपस्या की। महान कष्ट उठाए और लोक कल्याण करते रहे। साधना की चरमावस्थापर परमहंस वृत्ति वाले गुरुदेव ने अपने सारे नाम आदि त्यागकर

लोकोपदेश के लिए केवल 'स्वामी' नाम से सम्बोधित करने के लिए कहा। त्याग, ज्ञान और वैराज्ञ की पराकाष्ठा पर पहुँचा हुआ श्री स्वामी जी जैसा परम पुरुष अब इस संसार में आने वाले कई युगों तक आविर्भूत होना दुर्लभ है।

श्री स्वामी जी महाराज के दरबार में प्रत्येक धर्मावलम्बी को समान स्थान था। प्रत्येक मनुष्य अपने धर्म के विषय में खुलकर शंका समाधान कर सकता था। सन् १९६२ ई. में भारत चीन युद्ध के समय हुआ राष्ट्रानुष्ठान, यज्ञशाला, विशाल आश्रम, साधकावास, श्री सरस्वती जी, श्री पीताम्बरा जी, श्री धूमावती माई, श्रीमाई, श्री परशुराम जी, श्री गणेश, श्री बटुकनाथ, श्री महाकाल भैरव, शिवालय का पुनरुत्थान तथा पञ्चमहादेव की प्रतिष्ठाएँ एवं लोक कल्याणार्थ उनकी पूजा एवं साधनाएँ और विशालतम दुर्लभ पुस्तकालय युग युगान्तर तक जनमानस के हृदय पटल पर श्री स्वामी जी महाराज, हमारे पूज्य गुरुदेव की कीर्तिपताकाएँ लहराती रहेंगी। उनके शब्द अक्षुण्ण हैं और जिन्होंने उनको श्रवण किया है वे तो सृष्टि पर्यन्त भी उनसे उऋण नहीं हो सकते। जून २, सन् १९७९ ई. को मध्यान्ह १ बजे गुरुदेव ने मुम्बई नगर में रत्नाकर तट पर असम्प्रज्ञात समाधि ले ली और अपने शिष्यों का निरीक्षण एवं मार्गदर्शन करने हेतु दतिया स्थित आश्रम में आकर जून ३, सन् १९७९ ई. को पूर्वाह्न में आत्मा के जीर्ण आवरण को त्याग कर निर्वाण प्राप्त किया। श्री गुरुदेव के मुखारविन्द से निकला एक शेर याद आता है:–

"बढ़ा है आगे को रोज रोशन, हटी है पीछे को रात काली।
बिछुड़ गया आसमां का मेला, हुई सितारों से बज्म खाली।।"

उन गुरुदेव के पद पद्मों में मेरे इन गद्य पुष्पों की पुष्पाञ्जलि सादर समर्पित है।

(प्रस्तुत लेख में वर्णित तथ्यों के सत्यापन का दायित्व लेखक का है। सम्पादक मण्डल या पीताम्बरा पीठ न्यास इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। सं.)

***

श्री गुरुदेव का आशीर्वाद

— *श्याम सुन्दर छापड़िया*
प्रशासक, सिमको, ग्वालियर

ॐ श्री गुरवे नमः – एक बार उनसे पूछा था कि महाराज ध्यान में मन नहीं लगता, जप करने बैठता हूँ तो नाना प्रकार के विचार एवं समस्याएँ मन के एकाग्र होने में व्यवधान पैदा करती हैं, उन्होंने तुरंत आशीर्वाद दिया – "तुम तो लगातार जप किये जाओ, बाकी सब ठीक हो जायेगा। किसी को दतिया से कलकत्ता जाना हो तो निश्चय कर गाड़ी में बैठ जाये, रास्ते में कई स्टेशन आयेंगे, मन में कई प्रकार के विचार भी उठते रहेंगे, भूले काम भी याद आयेंगे, किन्तु, यदि यात्री रास्ते में बिना उतरे गाड़ी में चलता ही रहे तो समय पर अपने गन्तव्य स्थान कलकत्ता पहुँच ही जायेगा। इसी प्रकार साधक यदि अन्य बातों पर बिना ध्यान दिये दृढ़ निश्चय के साथ नियमपूर्वक जप करता रहे तो अन्ततोगत्वा सिद्धि को प्राप्त कर लेगा"।

साधक को श्री गुरु, गुरु मंत्र एवं इष्टदेव में पूर्ण विश्वास एवं श्रद्धा रखकर प्रेमभक्ति से, जप व ध्यान करना आवश्यक है, ये तीनों एक ही तत्व (परब्रह्म शिव) हैं। सभी भगवत्स्वरूपों एवं अन्य संत महात्माओं में अपने इष्ट गुरु की ही झाँकी देखनी चाहिये। एक बार श्री रामचन्द्र जी ने हनुमान जी से पूछा– "तुम कौन हो?"

देह दृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
वस्तुतस्तु त्वेमवाहमिति में निश्चिता मतिः।।

अर्थात् देह दृष्टि से तो मैं आपका दास हूँ और जीव दृष्टि से आपका अंश हूँ, किन्तु वस्तु दृष्ट्या मैं आप का ही स्वरूप हूँ। यह मेरा निश्चित मत है – **'सोऽहं तत्त्वमसि'**– अर्थात् आत्म तत्त्व की दृष्टि से विचार करने से यही निश्चय होता है कि आत्मा और परमात्मा में अभेद है। जिस माला से जप करते हैं, उस माला में भी एक प्रकार की शक्ति पैदा हो जाती है और वह भी भगवतस्वरूप है। गुरु, मन्त्र, इष्ट एवं माला कभी बदले नहीं जाते। पूजन, भजन, जप और ध्यान स्वान्तः-सुखाय होना चाहिए न कि प्रदर्शन हेतु। अभ्यास गुरु के निकट हो तो सर्वोत्तम है।

पूज्य गुरुदेव ने अल्प समय में ही मुझ अकिंचन पर अत्यंत कृपान्वित होकर अपनी शरण में लिया, यह मेरा परम सौभाग्य है। उन्होंने कहा था, तुम आते नहीं

हो, यहाँ आया करो, किन्तु मैं गूढ़मति उनके सन्देश को नहीं समझ सका। कुछ दिनों के पश्चात् ही उन्होंने अपनी लाला का संवरण कर लिया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी कृपा सदैव मुझ पर रहेगी और व्यक्त, अव्यक्त रूप से वे सदा मार्गदर्शन व कल्याण करते रहेंगे।

श्री गुरुदेव की जय! ॐ नमः

***

–: वैदिक उपदेश :–

देवता, ब्राह्मण, गुरु, विद्वान पुरुषों का पूजन, शुद्धता आदि तथा ब्रह्मचर्य, अहिंसा- इतने शरीर के तप कहे गये हैं। सत्य-प्रिय हित, स्वाध्याय का अभ्यास- ये वाणी के तप कहे गये हैं। मन की प्रसन्नता, सौम्यभाव, मौन और मन का निग्रह, भाव की शुद्धता- ये मानस तप कहे गये हैं। इन तीनों प्रकारों के तपों के आचरण करने वाले ही वास्तविक तपस्वी हैं।

– *श्रीस्वामीजी*

पूज्यपाद की स्मृति का प्रभाव

— वीरेन्द्र कुमार कुढ़रा
कहानीकार, दतिया

उन दिनों में बहुत छोटा था, लेकिन वह घटना अभी भी स्मृति में ताजी रहती है। मेरी बड़ी बहन कमला बचपन में एक बार बहुत ही गंभीर रूप से बीमार पड़ी, काफी इलाज के बाद भी कोई फायदा नहीं हुआ। उस समय मेरे बाबा तथा दाऊ श्री रघुवीर शरण कुढ़रा पूज्यपाद के दर्शनार्थ आश्रम पर जाया करते थे। एक दिन बड़े अस्पताल के डॉक्टरों ने मेरी बहन की जीवन रक्षा में शंका जाहिर कर दी, और उनको वापिस लेकर घर लौट आये। बहन मरणासन्न अवस्था में थी और उनके बचने की डॉक्टरों की राय के मुताबिक कत्तई उम्मीद शेष नहीं थी।

उसी शाम दाऊ जी ने पूज्यपाद स्वामी जी से कमला की हालत बतायी। उस समय महाराज जी के सामने आयुर्वेद चिकित्सालय के डॉ. श्री त्रिवेदी जी (जो वर्तमान में पूज्यपाद की कृपा से आयुर्वेद चिकित्सा सेवा के सं. संचालक है) वहाँ मौजूद थे। वे भी दर्शनार्थ आया करते थे। पूज्यपाद ने त्रिवेदी जी से कहा – "त्रिवेदी, बच्ची का इलाज करो।" इस पर त्रिवेदी जी ने उत्तर दिया – महाराज जी! मैं तो पहले ही पूरी कोशिश कर चुका हूं, सामर्थ्य से बाहर की बात है, उसका बच पाना संभव नहीं है।" इस पर महाराज जी ने फिर त्रिवेदी जी से कहा – "एक बार फिर इलाज शुरू करो। देखो, क्या होता है?"

अगली सुबह ही डॉ. त्रिवेदी ने स्वयं घर आकर मेरी बहन कमला को कुछ दवाइयाँ दी। जिसका परिणाम महाराज जी की कृपा का ही चमत्कार था, मृत्यु के मुंह में समाती मेरी बहन अल्प काल में ही भली चंगी हो गयी। और नया जीवन पाने के बाद स्वामी जी की कृपा से संपन्न घराने में ब्याही गयी। सन् १९७१ में वे हम सभी को छोड़कर अल्प आयु में स्वर्गवासी हो गयीं। उनका लगभग दस वर्ष अधिक का सान्निध्य महाराज जी की असीम कृपा का ही फल था।

पूज्यपाद के बारे में जानने की मेरी स्वाभाविक इच्छा बचपन से ही रही, परन्तु कतिपय कारणों से नियमित संपर्क एवं उनके प्रत्यक्ष आशीर्वाद से मुझे दुर्भाग्यवश ही वंचित रहना पड़ा। जब भी मैं पीताम्बरा पीठ जाता, स्वामी जी को हमेशा ही भजन करते देखा करता था। मेरी हार्दिक इच्छा होती थी कि जाकर सीधे चरणों में

मस्तक रख दूँ। मैं चाहता था कि महाराज जी का आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो, लेकिन उनके भव्य और तेजोमय व्यक्तित्व के समक्ष मैं स्वयं को प्रस्तुत न कर सका। बस, मन-ही-मन कह लेता – 'आप अंतर्यामी हो, सभी के मन की बात जानते हो।'

महाराज जी के प्रति मेरी अगाध श्रद्धा थी और मुझे ऐसा लगता था, यदि महाराज जी का आशीष मुझे मिल गया तो मेरी सृजनात्मक लेखन की रुचि को दिशा और बल दोनों ही मिल जायेंगे। यदा कदा मैं पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ, लेख, रेडियो के लिये नाटक लिखा करता। पूज्यपाद स्वामी जी ने मेरी अन्तरात्मा की आवाज को सुना। मैं इसे महाराज जी की असीम कृपा मानता हूँ कि उन्होंने मुझे लेखन-संबंधी मार्ग में सेवा का अवसर सुलभ कराया।

ब्रह्मलीन स्वामी जी की ही प्रेरणा कहना चाहिए कि एक दिन इस स्मृति ग्रंथ के सहायक संपादक श्री ललिता प्रसाद शास्त्री जी ने मुझसे कहा – "श्री पीताम्बरा पीठ से पूज्यपाद श्री स्वामी जी की स्मृति में एक ग्रंथ का प्रकाशन होना है। लेख वगैरह सब आ गये हैं, उनको संपादित करना है, और प्रेस कॉपी तैयार करना है। अगर तुम्हें समय हो तो बताओ?"

मेरे लिये तो यह परम सौभाग्य का समय था। अगले ही दिन से श्री शास्त्री जी के साथ काम शुरू कर दिया।

लगभग दो माह ही यह कार्य चला। प्रतिदिन पूज्यपाद से संबंधित लेख व चर्चाएँ पढ़ने सुनने को मिलती। इन दो माहों में मुझे स्वयं में काफी परिवर्तन महसूस हुआ। मेरी अनियमित दिनचर्या स्वतः ही नियमित सी होने लगी। शारीरिक स्वास्थ्य लाभ के साथ ही मानसिक प्रसन्नता भी मिली। यह सब पूज्यपाद की स्मृति का ही प्रभाव था। उनकी स्मृति से काफी बल मिलता था और मन में निश्चिन्तता सी आ जाती है, लेखन संबंधी कार्य के माध्यम से पूज्यपाद ने मुझे आशीष दिया है – ऐसा मुझे लगता है। मेरी एक चिरपरिचित अभिलाषा की पूर्ति की। पूज्यपाद की स्मृति से मुझे और भी अनेकों शुभ फल मिले। अपनी एक किताब को प्रकाशित कराने के लिए मेरी एक प्रकाशक से पिछले पांच महीने से बात चल रही थी। यह भी मात्र पूज्यपाद की ही स्मृती का प्रभाव है कि दिल्ली के उन प्रकाशक ने मेरी कहानियों के संग्रह को प्रकाशित करना सहज ही स्वीकार लिया।

पूज्यपाद की स्मृति मात्र से ही मुझे काफी साहस और प्रेरणा मिलती है। उनकी स्मृति मात्र का प्रभाव भी मैंने महसूस किया। सदैव ही पूज्यपाद श्री स्वामी जी के आशीर्वाद और कृपाकांक्षा की कामना करते हुये मैं उनके चरण कमलों में विनम्र नमन करते हुये श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

***

एक संस्मरण

– ब्रजवल्लभ सिंह चौहान
आई.पी.एस., इन्दौर

स्वामी जी महाराज को सशरीर देखने का व उनसे वार्तालाप करने का मेरी पुलिस अधीक्षक दतिया की तैनाती के समय कई बार मुझे सुअवसर व सौभाग्य मिला। दतिया आने से पूर्व ही उनके बारे में इतना सुन रखा था कि, पहुँचने पर उनके दर्शन की प्रबल इच्छा व उत्सुकता हुयी। पहली बार तो ऐसा लगा कि वे एक साधारण पुरुष हैं, क्योंकि उनमें महात्माओं का प्रतीक समझी जाने वाली नाटकीयता, चमत्कारिकता शायद नहीं थी, परन्तु अनेकों वी. आई. पी. के साथ (जिनमें भूतपूर्व गवर्नर श्री सत्यनारायण सिंह एवं उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर तथा आंध्र प्रदेश के वर्तमान मुख्य मंत्री श्री चेन्ना रेड्डी प्रमुख हैं) तथा और भी त्योहारों के अवसर पर अक्सर उनके दिव्य दर्शन होते रहे और फिर वे मेरे नाम से भी परिचित हो गये।

शीघ्र ही मुझे उनके सम्पर्क से विलक्षण आत्म शांति और दैव्य प्रेरणा का अनुभव होने लगा। उनसे बातचीत कर मुझे लगा कि मेरा धार्मिक ही नहीं, बल्कि सांसारिक ज्ञान कितना सीमित है, क्योंकि शायद ही कोई स्थान या विषय था, जिसे वे धार्मिक व ऐतिहासिक परिवेश सहित नहीं जानते थे। एक दिन अचानक उन्होंने मुझसे 'चौहानों' की उत्पत्ति पूछ डाली, मेरी अनभिज्ञता जाहिर करने पर उन्होंने सविस्तार बताया कि माऊंट आबू के अग्निकुण्ड से चौहान व अन्य क्षत्रिय का क्या इतिहास जुड़ा है।

उनके अंग्रेजों के विषय में कहे गये कुछ विचार मुझे याद हैं, वे कहा करते थे कि अंग्रेजों में केवल दो खूबियाँ थीं– समय की पाबन्दी और वतन की वफादारी। हम भारतवासियों ने अंग्रेजों की सारी बुराइयां अपना ली केवल अच्छाइया छोड़ दी।

उनकी विद्वत्ता, महानता, अलौकिक शक्ति, ऐश्वरीय ज्ञान, वेदान्तिक अध्ययन तथा अथाह गूढ़ दिव्य आत्मिक अंत:करण को पहिचानने का न मुझमें सामर्थ्य है और न ही उस पर टिप्पणी करने योग्य हूँ।

स्वामी जी के प्रति पुन: हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए मैं पीताम्बरा पीठ न्यास मण्डल को उनकी स्मृति अमर बनाने की दिशा में सदैव काम करते रहने की कामना करता हूँ।

***

गुरु के चार आदेश

– हरिराम सांवला
कोषाध्यक्ष, श्री पीताम्बरा पीठ दतिया

श्री पीताम्बरा-पीठाधीश्वर राष्ट्र-गुरु अनन्त श्री स्वामी जी महाराज का शरीर अब हमारे बीच नहीं है लेकिन उनके आदेश, उपदेश, विचार और अनुभूतियाँ हमेशा ही पीताम्बरा पीठ पर एवं उनके भक्तों में गुञ्जरित होती रहेंगी।

परम पूज्य के श्री चरणों में मुझे बहुत समय तक बैठने का अवसर मिला तथा उनकी कृपा से स्थान का कुछ कार्य भी करता रहा हूँ। हम कुछ कार्य कर्त्ताओं के साथ स्थान की व्यवस्था सम्बन्धी बात जब महाराज जी से करने पहुँच जाते तो महाराज जब कभी विनोद में होते तो कहने लगते कि 'तुम लोग स्थान सम्बन्धी बातें हमसे क्यों पूछते हो? यह प्रपञ्च तुम्ही लोगों ने बढ़ाया है, तुम्ही लोग सम्भालो'।

हम लोग प्रार्थना करने लगते कि महाराज आपकी आज्ञा से सभी कार्य निर्विघ्नता से पूर्ण हो जाते हैं। फिर महाराज कहने लगते कि 'हमारे गुरु ने हमें चार आदेश दिये थे, जिनका हमें पालन करना है।'

(१) शास्त्र का अध्ययन करते रहना (२) स्त्रियों के बीच में न रहना (३) स्थान न बनाना (४) सन्यासी चेला न बनाना।

इन चारों आदेशों का स्वामी जी ने जीवन भर पालन किया। **पहले आदेश** के पालन में, महाराज जी प्रातः सायं जब भी बाहर विराजते, शास्त्र और साधना सम्बन्धी ही चर्चा होती थी। महाराज की दिनचर्या नियमित थी और सभी कार्य वे समय से करते थे। जप और नित्य क्रिया के अतिरिक्त शेष समय शास्त्र अध्ययन में ही बीतता था जिसका ही परिणाम है कि पूज्य महाराज जी द्वारा रचित एवं प्रकाशित ग्रंथ की संख्या लगभग ५० से ऊपर है।

दूसरे आदेश के पालन में, महाराज जी ने पीठ पर स्त्री मात्र को अभी इस साल के पूर्व तक ठहरने की अनुमति नहीं दी। अब भी अकेली स्त्री को ठहरने की अनुमति नहीं है। मन्त्रोपदेश भी महाराज जी स्त्री को उसके पति द्वारा ही कराते थे तथा स्त्रियों से चरण स्पर्श तो वे कभी कराते ही नहीं थे। यदि भूल से कोई स्त्री चरण स्पर्श कर ले तो नाराज होते थे और कहते थे कि "हमारे यहाँ स्त्रियों का दर्जा बड़ा है"।

तिसरे आदेश के पालन में स्थान सम्बन्धी चर्चा में वे कहते थे कि यह सब अपने आप श्री पीताम्बरा माई की इच्छा से हुआ है। हमें किसी से कुछ कहना नहीं पड़ा, हमारी वृत्ति अयाचित रही है। एक महात्मा ने शक्ति-साधना का मार्ग बताया था। इससे हमको एक जगह बैठना पड़ा, बिना बैठे यह कार्य हो नहीं सकता था। हमें न स्थान बनने की चिन्ता रही और आगे बिगड़ भी जाये तो दुःख नहीं, लेकिन कर्तव्य के रूप में इसकी व्यवस्था करना है। यदि व्यवस्थापक अच्छे लोग निकले तो स्थान बहुत समय तक चलेगा अन्यथा नाशवान तो दुनिया की सभी वस्तुयें हैं।

गुरु का चौथा आदेश है, उसके बारे में सभी जानते हैं। महाराज जी ने शिष्य या चेले के रूप में किसी भी संन्यासी को दीक्षा नहीं दी, न ही कोई उत्तराधिकारी बनाया। स्थान की व्यवस्था हेतु एक ट्रस्ट जरूर बना दिया है जिसे स्थान का कार्य-भार सौंप दिया।

महाराज जी ने अकेले ही हिन्दू-धर्म की बहुत बड़ी सेवा की, शाक्त-धर्म को उन्होंने एक नवीन दिशा दी। शक्ति के आराधन में सामान्य मनुष्य जहाँ डरते थे, वहाँ उन्होंने सरलता पूर्वक सभी को बिना किसी भेदभाव के इसमें प्रविष्ट किया। ईश्वर प्राप्ति के तीन साधनों में वे ज्ञान में अहंकार, कर्म में पाखण्ड और उपासना में भेद के विरुद्ध थे तथा इनको पतन का कारण मानते थे।

पूज्य महाराज जी ने अपने शुद्ध और सात्विक जीवन में आडम्बर तथा पाखण्ड को पास नहीं फटकने दिया। दतिया में पचास वर्ष रहते हुए भी अपने गुरु के आदेशों का दृढ़ता से पालन किया। उन्होंने निःस्पृह रूप से जीवन दूसरों के लिए जिया, अपने लिये नहीं। सन्त कबीरदास की उक्ति **''ज्यों की त्यों घर दीनी चदरिया''** का महाराज जी ने अक्षरशः पालन किया। ऐसे सद्‌गुरु को हमारे कोटि कोटि प्रणाम।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सच्ची कमाई से ही निर्वाह करो क्योंकि विश्वम्भर की इस सृष्टि से मनुष्य को निर्वाह करने की व्यवस्था की गई है परन्तु लोभ-लालच वश अनीति पर चलने से सब लोग दुःखी हो रहे हैं। सन्तोष से ही सुख मिलता है, लोभ-लालच से नहीं। लोभ-लालच से तृष्णा की वृद्धि होती है। तृष्णा में सुख कहाँ?

– *श्रीस्वामीजी*

संस्मरण

– **श्रीप्रकाश शर्मा, शास्त्री,** एम.ए.
दतिया

४-५ वर्ष पूर्व एक दिन एक सज्जन पूज्यपाद के दर्शनों के लिए आए। वे किसी महाविद्यालय में गणित के प्राध्यापक थे। पूज्यपाद ने वार्तालाप के मध्य कहा – "प्रोफेसर साहब! क्या आपको पता है कि गणित शास्त्र की उत्पत्ति कैसे हुई?" प्रोफेसर साहब इस विषय में कुछ पाश्चात्य कहानियाँ बताने लगे। तब पूज्यपाद ने पुनः कहा – "यह सब तो कृत्रिम बातें हैं, सत्यता नहीं है। संसार के सम्पूर्ण शास्त्रों का जन्म आगम और निगम से हुआ है। निगम की गायत्री का ही तान्त्रिकरूप आगम की श्रीविद्या है जिसका स्थूल शरीर श्रीचक्र है। इस श्रीयन्त्र से ही आपके गणितशास्त्र की उत्पत्ति हुई है जिसमें ज्योतिष, ज्यामित, अङ्कगणित, बीजगणित और त्रिकोणमिति इत्यादि गणित के सभी विषय आ जाते हैं। इस सब की व्याख्या अत्यन्त लम्बी है, परन्तु उदाहरण स्वरूप हम तुम्हें गणित में प्रयुक्त होने वाली 'पाई' (π) पद के विषय में बतलाते हैं।" पूज्यपाद की इन नवीन, ओजस्वी एवं अन्वेषक बातों को सुनकर प्रोफेसर साहब ने अपना सम्पूर्ण ध्यान उनकी ही ओर केन्द्रित कर लिया और प्रवचनों को बड़ी तन्मयता से सुनने लगे।

पूज्यश्री स्वामीजी ने आगे कहा – "तन्त्र की उत्पत्ति 'सूत्रत्रय' अर्थात् तीनसूत्रों के संयोग से हुई है। इन तीन सूत्रों में सर्व प्रथम 'बिन्दु-सूत्र' (इनीखहपीस्वराः) और फिर 'नादसूत्र' (स र ग म प ध नि) की उत्पत्ति हुई। तब बिन्दु शुक्लबिन्दुरूप और नाद रक्तबिन्दुरूप में परिणत होकर इन दोनों बिन्दुओं के परस्परानुप्रवेश से एक अन्य मिश्रबिन्दु बना। इनकी आगे व्याख्या करने से ज्ञात होता है कि धन, ऋण, गुणा और भाग आदि के चिन्ह और क्रियाओं का उत्पत्तिमूल यहीं है। अब 'पाई' के विषय में विचार करने के लिए पुनःबिन्दु पर ही आते हैं। बिन्दु का जब प्रसार होता है तो वृत्त का रूप धारण होता है और वृत्त का जब संकुचन होता है तो बिन्दु का रूप धारण होता है। इस प्रकार बिन्दु और वृत्त में सिद्धान्तः कोई भेद नहीं है। वृत्ताकार वायुतत्त्व का सूचक होता है और वायु (प्राण-अपान-धनञ्जय आदि) दश प्रकार की होती है। मूल प्रकृति ऋणात्मक है क्योंकि विमर्शरूप है। मूलप्रकृति का सूक्ष्म रूप $(\sqrt{-१})^२$ होता है। इसकी भी एक पृथक् व्याख्या है। मूलप्रकृति को सगुणरूप में

आने के लिए पृथ्वीतत्त्व का आश्रय लेना पड़ता है जिसका सूचक समचतुर्भुज अर्थात् वर्गाकार होता है। अत: मूलप्रकृति का सगुणरूप

$$= \{ (\sqrt{-१})^{२} \}^{२} = (\sqrt{-१})^{२} \times (\sqrt{-१})^{२} = -१ \times -१ = १ ।$$

इस प्रकार वायुतत्त्व के दस भेदों में एक का और योग करने पर १०+१=११ का अङ्क बनता है जो कि प्रकृति का सगुण रूप है। इसी प्रकार पुरुष का सूक्ष्मरूप भी $\sqrt{१}$ होता है, और पुरुष का सगुण रूप भी ११ ही होता है। अत: प्रकृति और पुरुष को द्वन्द्वमूर्ति ११+११=२२ होती है। फिर वृत्ताकार बिन्दुसूचक होने से बिन्दु में "इनिखहपीस्वरा:" सूत्र के अनुसार सात वर्ण (रङ्ग) विद्यमान् रहते हैं। प्रकाश के विज्ञान में ये ही रङ्ग इन्द्रनील (Violet), नील (Indigo), खकिरण (Blue), हरित् (GREEN), रक्त (Red), स्वर्ण (Orange) और पीत (Yellow) रंग कहलाते हैं। अत: द्वन्द्वमूर्ति सूचक अङ्क (२२) को सात (७) से भाग देने से वृत्त के क्षेत्रफल आदि को ज्ञात करना होता है। इस प्रकार (२२/७) की संख्या एक स्थिर (अचल) पद बनता है जो कि आधुनिक गणित शास्त्र में 'पाई' (π) अक्षर से निर्देशित किया जाता है"।

'पाई' पद की इस गूढ़ और अद्भुत् व्याख्या को सुनकर हम सभी लोग दङ्ग रह गए। हम लोगों के हाथ सूत्र की सच्चाई लगी और इससे पूज्यपाद के गणित शास्त्र विषयक गुढ़तम ज्ञान का भी उद्घाटन हुआ। यह एक अविस्मरणीय संस्मरण है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

परमात्मा सबसे बड़ा बुद्धि-चातुर्य वाला है तथा अपने अद्वैत स्वरूप को छिपाकर नाना प्रकार से प्रगट होने वाला सबसे बड़ा मायावी है। जीव उसके अधीन है। जीव कितना भी ज्ञान प्राप्त करके चतुर हो जाय, परन्तु महेश्वर से अधिक नहीं हो सकता। इसे बताने के लिए अनेक व्याख्यान पुराणों में बताये हैं - हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, मारीच, कालनेमि आदि असुर अन्त में उस महेश्वर से पराजित ही हुए हैं।

– *श्रीस्वामीजी*

श्री स्वामी जी महाराज

— श्री लक्ष्मणकिशोर गोस्वामी
भू. पू. न्यायाधीश

दतिया नगर का अतीत महान गौरवशाली रहा है। यहां के नागरिकों को परम यशस्वी वीर बुंदेला नरेशों की गुणग्राहकता एवं विद्या तथा कला प्रेम के फलस्वरूप भारत के उच्च कोटि के सुविख्यात विद्वानों, शास्त्रीय गायकों, चित्रकारों तथा वास्तुकला विशेषज्ञों के चमत्कार एवं कलापूर्ण प्रदर्शनों के अवलोकन, श्रवण तथा मनन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ करता था, और इसी उदार गुणग्राहकता एवं उन्मुक्त राज्याश्रय का यह परिणाम था कि भारत के सुदूर प्रदेशों से आने वाले विद्वान एवं कलाकार दतिया के प्रति अपना सम्मान प्रकट करने के लिये "दतिया गले का हार" कह कर सदैव इस नगर का नाम अपने हृदयों में धारण किये रहते थे।

परन्तु वर्तमान में दतिया का नाम केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में प्रसारित करने का महत्वपूर्ण श्रेय श्री स्वामी जी महाराज, पीताम्बरा पीठ, दतिया को ही प्राप्त हुआ है।

श्री स्वामी जी ने अपनी अखण्ड तपस्या एवं असीम विद्वता के प्रभाव से श्रीवनखण्डेश्वर स्थान को दतिया का काशी ही प्रसिद्ध नहीं किया अपितु इस स्थान पर श्री पीताम्बरा पीठ की स्थापना कर, इसको महर्षि वाल्मीक, भारद्वाज एवं वशिष्ठ के आश्रमों के समान संस्कृत विद्या एवं हिन्दू संस्कृति का परमपावन केन्द्र बना दिया है।

संस्कृत एवं हिन्दी प्रेम

आपने जहाँ संस्कृत विद्या के प्रचार एवं प्रसार में अपना जीवन लगाया है, वहाँ हिन्दी के प्रति भी आपका प्रगाढ़ प्रेम था और हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर पूर्ण रूपेण स्थापित करने के लिये आप हिन्दी भाषा के प्रबुद्ध विद्वानों एवं कुशल लेखकों को हिन्दी साहित्य का भण्डार मौलिक रचनाओं के सृजन एवं प्रणयन से भरने के लिये सदैव प्रोत्साहित करते रहते थे। इसी भावना से प्रेरित होकर आपने स्वयं भी हिन्दी में कई ग्रन्थ लिखे हैं और जन साधारण को वेद मंत्रों तथा अन्य धार्मिक संस्कृत ग्रन्थों और सदुपदेशों के महत्व से अवगत कराने के लिये उनका हिन्दी में अनुवाद किया है। इस उपकार एवं कृपा के लिये हिन्दी जगत श्री स्वामी जी का सदैव ऋणी रहेगा।

उपासना

श्री स्वामी जी महाराज उपासना भेद से शाक्त सम्प्रदाय के प्रकाण्ड पंडित एवं आचार्य थे, परन्तु आपकी अनन्यता अन्य सम्प्रदाय अथवा मतावलम्बियों के आराध्य देवों के प्रति समुचित सम्मान प्रकट करने में कभी बाधक नहीं होती थी। आप अपने पास आने वालों को सदैव उनकी निजी उपासना एवं श्रद्धा के अनुसार उपदेश देते थे। बाहर से आनेवाले विद्वान एवं अन्य धर्मावलम्बी तथा उपासक आपकी इस उदारता, धार्मिक सहिष्णुता, विशाल हृदयता एवं समन्वयवाद की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

महान तपस्वी एवं संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित होते हुये भी आप बड़े दयालु एवं संत हृदय थे। दूसरों के दुख, कष्ट अथवा आपत्ति को सुनकर आपका हृदय द्रवित हो जाता था और आप अविलम्ब उनके कष्ट निराकरण हेतु आध्यात्मिक उपाय– जप, पाठ, पूजा आदि बताकर करते थे और सहस्त्रों आर्तजन श्रद्धा एवं विश्वास के साथ उस आध्यात्मिक उपाय एवं उपचार का विधिवत पालन कर अपनी मनचाही मुराद प्राप्त कर रहे हैं।

राष्ट्र प्रेम

आपकी महानता एवं सहृदयता का सबसे बड़ा प्रमाण प्रत्यक्ष रूप से यह भी दिखाई दे रहा था कि आपके पास सभी वर्ग के लोग-अमीर-गरीब, धनी-मानी, राजा-रानी, मंत्री, जन साधारण तथा अन्य विभिन्न राजनैतिक दलों के नेता अपनी व्यक्तिगत समस्यायें लेकर आते थे और उनको हल करने के लिये आध्यात्मिक उपाय यथेष्ट एवं संतोषजनक ढंग से प्राप्त करते थे। इस प्रकार आपका विश्वास कांग्रेसियों, जनसंघियों, हिन्दू महासभाओं आदि विभिन्न राजनैतिक दलों के व्यक्तियों को समान रूप से प्राप्त था। चीन के आक्रमण के समय राष्ट्र प्रेम से ओतप्रोत स्वामी जी का हृदय द्रवित हो गया था और तत्काल राष्ट्र रक्षा और शत्रु पराजय का संकल्प लेकर यज्ञ प्रारंभ करवाया। इस का यह परिणाम हुआ कि चीन की सेनाओं का आगे बढ़ना रुक गया और जिस दिन पीठ पर इस यज्ञ की पूर्ण आहुति का विधान चल रहा था, उसी दिन समाचार सुना गया कि चीन की सेनायें पीछे हट गई हैं। भारतीय महात्माओं में आजकल यह विशेष भावना अन्यत्र कदाचित ही कहीं मिल सके।

हिन्दू संस्कृति के समर्थक आप हिन्दू संस्कृति और सनातन धर्म के पूर्ण समर्थक एवं पक्षपाती थे, परन्तु आप धार्मिक कट्टरता अथवा धर्मान्धता से कोसों दूर थे। आज भारत को विशेष कर हिन्दुओं को ऐसे ही महात्माओं और संत हृदयों की आवश्यकता है जो उनको हिन्दू धर्म का वास्तविक अर्थ समझाने में समर्थ हों और हिन्दुओं को उनके वास्तविक स्वरूप और धर्म का बोध करा सकें।

***

शिव-स्वरूप श्री स्वामी जी महाराज

'कुल-भूषण' पं. रमादत्त शुक्ल, एम.ए.
सम्पादक, 'चण्डी', इलाहाबाद

"श्री पीताम्बरा-पीठ," दतिया के संस्थापक प्रातः स्मरणीय 'राष्ट्रगुरु' श्री अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी महाराज को हम लोग सदा साक्षात् 'शिव-स्वरूप' ही मानते रहे। उनके इस गुप्त स्वरूप का परिचय हमें अपने पूज्य पिता जी 'कौल-कल्पतरु' पं. देवीदत्त शुक्ल से मिला था। बाद की घटनाओं से दिन-प्रतिदिन पूज्य श्री स्वामी जी के इस विशेष स्वरूप का प्रतिपादन ही होता गया। न केवल उन्होंने शिवोक्त 'कौल'-धर्म की प्रतिपादिका एकमात्र मासिक पत्रिका 'चण्डी' को अपना पूर्ण संरक्षण प्रदान किया, अपितु, शाक्तधर्म की प्रसिद्ध दश महा-विद्याओं में से भुक्ति-मुक्तिदायिनी श्री बगला महाविद्या की उपासना के देश-व्यापी प्रचार के उद्देश्य से देश के केन्द्र-स्थान 'दतिया' में "श्रीपीताम्बरा-पीठ" की स्थापना का सफल प्रयास भी किया। यही नहीं, उन्होंने लुप्त-प्राय गुप्त तान्त्रिक साधना के उद्धार के लिए श्री बगलामुखी-रहस्य, शरभ तन्त्रम्, पुरश्चरण पद्धति, श्रीमातृका-चक्र-विवेक, महाविद्याचतुष्टयम्, तान्त्रिक पञ्चाङ्ग, चिद्-विलास, श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दरी-पूजा-पद्धति, सप्त-विंशति-रहस्यम्, तारा-कर्पूरराज स्तोत्रं, श्रीछिन्नमस्ता-नित्यार्चन, रेणुका-तन्त्रम्, श्रीबगला-नित्यार्चन, सांख्ययन तन्त्र, वैदिक बगला पूजा पद्धति जैसी अनेक पुस्तकों का प्रकाशन 'पीठ' एवं चण्डी कार्यालय प्रयाग द्वारा करवाने का महद् कार्य सम्पन्न किया। इन पुस्तकों में शिवोक्त साधना के गूढ़-से-गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन हुआ है, जिन्हें अध्ययनशील विज्ञ पुरुष सहज ही जान सकते हैं।

भगवान् शिव द्वारा निगमागम शास्त्र में शक्ति-साधना पर विशेष बल दिया गया है, जो सब प्रकार से वेद-सम्मत रही है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए वेदों की प्रमुख ऋचाओं की शक्ति-तत्त्व-परक व्याख्या परम पूज्य स्वामी जी ने विशेष रूप से की, जो उनके 'वैदिक उपदेश' नामक ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध है।

'गोपनीयता' के सिद्धान्त के अनुसार पूज्य स्वामी जी महाराज ने "श्री पीताम्बरा-पीठ" में 'समय-मत' पर आधारित उपासना को ही प्रचलन किया, किन्तु 'कौल-मत' के प्रचार में सर्वदा यत्न-शील रहे। शिवोक्त कौल-साधना के अधिकारीजनों को वे 'चण्डी' पत्रिका के सदस्य बनने को उत्साहित ही नहीं किया करते थे, अपितु

स्वयं भी अपने लेखों द्वारा 'चण्डी' की गौरववृद्धि में तत्पर रहा करते थे। उनके ऐसे लेखों का संग्रह आज भी 'लेखसंग्रह' नामक ग्रन्थ में देखा जा सकता है। दो बार वे प्रयाग पधारे थे और 'चण्डी' पत्रिका के प्रवर्तक पूज्य शुक्ल जी को अपने दर्शनों से कृतार्थ किये थे। इन दोनों ही अवसरों पर लेखक भी उपस्थित था और उसे आज भी स्मरण है कि पूज्य स्वामी जी की गूढ़ प्रेरणा से किस प्रकार शुक्ल जी ने उक्त सत्सङ्गों में साधना में 'पञ्च-तत्त्वों' की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला था। निस्सन्देह इस सत्सङ्ग की आवश्यकता पूज्य स्वामी जी को नहीं थी, अपितु किन्ही विशिष्ट महानुभाव को उद्‌बोधित करने के लिए उन्होंने यह लीला की थी। वे महानुभाव भी दोनों ही अवसरों पर पूज्य स्वामी जी के साथ हमारे यहाँ उपस्थित हुए थे और 'पञ्च-तत्त्वों' की ऐसी महिमा का वर्णन इतने बलपूर्वक करते हुए किसी कुलीन ब्राह्मण आचार्य को कदाचित् पहले-पहल ही उन्होंने सुना था और सुनकर वे चकित रह गये थे। अस्तु।

"पीठ" में भी जो दर्शनार्थी आते थे, उन्हें प्रायः पूज्य स्वामी जी के इस 'शिव-स्वरूप' के दर्शन हुआ करते थे। विशेष कर जब कोई कान्यकुब्ज ब्राह्मण "पीठ" में पहुँचता था, तब वे दाहिने हाथ से खड्‌ग-मुद्रा बनाकर बाएँ हाथ की हथेली पर प्रहार करके बड़े ही उल्हास के साथ उससे परिहास करते थे कि 'तुम्हारे यहाँ तो यह चलता होगा।' उस समय पूज्य स्वामी जी के मुख-मण्डल पर एक विलक्षण आभा दिखाई पड़ती थी, जिसका रहस्य केवल साधक ही समझ सकते थे और फिर वे गम्भीर होकर उपस्थित लोगों को बताने लगते थे कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण कट्टर शाक्त होते है। इसी प्रसङ्ग में वे 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी का उल्लेख करते थे और प्रशंसा करते थे कि 'चण्डी' पत्रिका निकालकर शुक्ल जी ने बड़ा भारी काम किया है। वैसे तो सम्पूर्ण भारतीय समाज की विशेषताओं से पूज्य स्वामी जी भली प्रकार परिचित थे, किन्तु कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की कुल-परम्परा की एक-एक बात को वे अच्छी तरह जानते थे। यहाँ तक कि लोग अनुमान करते थे कि कदाचित् पूर्वाश्रम में वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार से ही सम्बन्ध रखते थे। इस प्रकार अन्य जाति वाले लोग अपनी जाति की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों से उन्हें परिचित पाकर विस्मित रह जाते थे।

"श्री पीताम्बरा-पीठ" के निर्माण में भी पूज्य स्वामी जी का मुख्य उद्देश्य शिवोक्त साधना के प्रचार का ही था। 'साधकावास' के नाम से अनेक कमरों का निर्माण करवाना उनकी मौलिक सूझ थी और "पीठ" में नियमित रूप से आनेवाले लोगों से अधिक-से-अधिक 'मन्त्र-जप' करवाने का उनका अनुशासन तो देखते ही बनता था। स्वयं पूज्य स्वामी जी महाराज नियमित रूप से जप कर लोगों को प्रभावशाली ढंग से निरन्तर प्रेरणा दिया करते थे। "पीठ" में भगवान् परशुराम की प्रतिमा की स्थापना

करवाने में भी उनका विशेष उद्देश्य था। साधकों से छिपा नहीं है कि भगवान् परशुराम 'वीर-भाव' के साक्षात स्वरूप ही हैं। श्री विद्या के उपासकों में उनका विशिष्ट स्थान है, जो शाक्तोपासक व्यक्तियों को विदित ही है। 'परशुराम कल्पसूत्र' ग्रन्थ साधना के रहस्यों से परिपूर्ण है। इसी प्रकार "पीठ" में भगवती धूमावती की स्थापना का अपना विशेष महत्त्व है। साधक भले प्रकार जानते ही हैं कि इन महा-विद्या की उपासना कितनी रहस्य-मयी है।

भगवती पीताम्बरा श्री बगला का स्वरूप तो पहले ही शिवोक्त कौलोपासना की ओर सङ्केत करता है। फिर मन्त्रोपदेश को प्राप्त कर ऐसा कौन साधक है, जिसमें वीर-भाव का आवेश न होगा। इस सबके अतिरिक्त "पीठ" के अन्तरङ्ग कक्ष में 'श्रीयन्त्र' की स्थापना और केवल अधिकारी साधकों को उसके दर्शन-पूजन की अनुमति देना पूज्य स्वामी जी के 'शिव-स्वरूप' की ओर ही इङ्गित करता है।

"श्रीपीताम्बरा-पीठ" की स्थापना जिस पवित्र स्थान में हुई है, मूलतः वह श्रीवनखण्डेश्वर महादेव का स्थान रहा है। पूज्य स्वामी जी ने जिस समय इस स्थान को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए चुना था, उस समय वनखण्डी दतिया का यह स्थान भयावह-सा था। रात्रि में कोई विरला व्यक्ति ही वहाँ ठहर सकता था। श्रीवनखण्डेश्वर महादेव का प्राचीन मन्दिर भी जीर्ण दशा में था, केवल एक प्राचीन शिवलिङ्ग वहाँ प्रतिष्ठित था, किन्तु पूज्य स्वामी जी ने इस मूल मन्दिर का जीर्णोद्वार करवा कर उसे ऐसा रूप दिया है कि अब वहाँ मूल शिव-लिङ्ग के अतिरिक्त भगवान् शिव के प्रसिद्ध पाँच स्वरूपों– १ ईशान, २ तत्पुरुष, ३ अघोर, ४ वामदेव और ५ सद्योजात के भी दर्शन भक्तजनों को सुलभ हैं।

इतना वृहत् आयोजन करने पर भी पूज्य स्वामी जी को अन्त तक इस बात का क्षोभ रहा कि "पीठ" में पहुँचनेवाले प्रायः सभी व्यक्ति अपनी-अपनी व्यक्तिगत भौतिक कामना से ही प्रेरित होकर उनकी कृपा पाने को उत्सुक होते थे। वे प्रायः कहा करते थे कि 'जिस वस्तु को देने के लिए हम यहाँ बैठे हैं, उसे लेने के लिए तो कोई आता ही नहीं।' इस सम्बन्ध में 'चण्डी' पत्रिका में एक सम्पादकीय टिप्पणी भी प्रकाशित की गई किन्तु कलि-काल का प्रभाव कहिए या भारत की विगत राजनैतिक पराधीनता का दुष्प्रभाव मानिए, भारतीय जनता का आध्यात्मिक स्तर इतना गिर चुका है। कि 'शिव-स्वरूप' स्वामी जी से उनकी अभीष्ट शिक्षा को ग्रहण करने को कोई अधिकारी व्यक्ति आगे नहीं आया और वह दिव्य विग्रह भी "श्री पीताम्बरापीठ" रूपी अपने कृतित्व को स्मृति-रूप में छोड़कर अपने मूल स्वरूप में अन्तर्लीन हो गया।

आज पूज्य स्वामी जी जैसे प्रत्यक्ष 'शिव-स्वरूप' के दर्शन दुर्लभ हैं किन्तु उनके भव्य स्वरूप की छबियों, उनकी अनूठी साहित्यिक कृतियों, श्रीपीताम्बरापीठ में उनके द्वारा प्रतिष्ठित दिव्य विग्रहों और उनके नैष्ठिक शिष्य-भक्तों को देखकर उस दैवी स्वरूप की झलक कोई भी सहृदय भक्त सहज ही प्राप्त कर सकता है, इसमें सन्देह नहीं।

***

–: वैदिक उपदेश :–

परमात्मा का बाह्यरूप विष्णु एवं आन्तरिक रूप महादेव है। ये दोनों रूप मायावी असुरों को मोहरूप में डालकर उनका विनाश करते हैं। बुद्धि के चातुर्य द्वारा उनके हराने का स्वरूप विष्णु हैं। तन्त्र-मन्त्र द्वारा प्राप्त कर अज्ञान अभिमान द्वारा अन्याय करने वाले असुरों को विनाशोन्मुख करना शिव का कार्य है, क्यों कि वास्तविक अद्वैत का बोध आसुरी योनि में नहीं होता। इसका वास्तविक ज्ञान तो सज्जन साधकों को ही होता है।

– श्रीस्वामीजी

योगी चिर निद्रा में

– रघुवीर शरण नाहर
प्राचार्य, दतिया

भारत देश अवतारों, ऋषियों-मुनियों और योगियों का प्राचीन काल से ही देश रहा है। हिमालय की तराई में अनेक महापुरुषों ने जन्म लेकर देश एवं समाज का कल्याण किया है। आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व दरभंगा जिले के कपिलवस्तु नामक राज्य के राजकुमार बुद्ध ने राजपाट त्याग, संन्यास ग्रहण कर अनन्त की खोज स्वीकार की थी, उसी प्रदेश का एक बालक आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व बाल्यावस्था में ही सब कुछ त्याग ब्रह्म की खोज में घर से चल पड़ा। एक दिन एक अबोध ग्यारह वर्षीय बालक अपने घर से भाग खड़ा होता है। किसी प्रकार उसकी माँ पकड़ कर उसे घर वापिस लाती है, किन्तु बालक का मन तो परम सत्य की खोज के लिये आतुर था। वह अपनी माँ से कहता है – माँ मुझे आज्ञा दे कि मैं जाऊँ, तेरे तो अनेक पुत्र हैं। माँ अपने पुत्र को कैसे छोड़ सकती थी? और एक दिन रात्रि में माँ को सोती छोड़ वह बालक अनन्त की खोज में चल पड़ा।

काशी संस्कृत विद्यापीठ में दीक्षित होने के पश्चात् शंकराचार्य के मार्ग का अनुकरण करते हुए दण्डी स्वामी का वेष स्वीकार किया। बाद में वह देश-भ्रमण पर निकल पड़े। जिनके पास अपने एक कमंडल, कम्बल और वस्त्र के सिवाय कुछ नहीं था। ब्रह्म की खोज में वे अनेक स्थानों पर गये, अनेक यातनाये सहीं, कई दिनों तक भूखा रहना पड़ा, किन्तु मन में तो लगन ही दूसरी थी। इसी संदर्भ में श्रीपाद के द्वारा कहे हुये यह शब्द अत्यन्त उल्लेखनीय हैं कि मुझे कई दिन तक भोजन नहीं मिला, तो एक दिन एक बुढ़िया ने आकर एक कटोरे में मुझे खीर दी। यह बुढ़िया स्वयं अन्नपूर्णा माई थीं। यह कटोरा सदैव महाराज जी के पास रहा है। नर्मदा तट के किनारे सिद्धनाथ स्थान पर कई माह व्यतीत किये और यहीं पर 'सिद्धान्त रहस्य' नामक ग्रन्थ लिखा। बाद में उत्तराखण्ड का भ्रमण करते हुये अनेक सिद्ध स्थानों पर गये, किन्तु शांति प्राप्त न हो सकी। पंजाब से लौटते हुये रास्ते में एक महात्मा से भेंट हुयी, उन्होंने पूज्यपाद को शाक्त मार्ग में प्रवृत्त होने हेतु उपदेश दिया। यहीं से शाक्त जीवन का लक्ष्य बना कर वे उस पर चल पड़े।

इसी प्रकार एक दिन यही योगी धौलपुर के समीप एक पुलिया पर बैठे हुये मिले। कुछ लोग आग्रह कर उन्हें वहाँ से ले गये और पूज्यपाद ने नरसिंह मंदिर में रह कर कुछ काल व्यतीत किया। इस काल में वाड़ी में एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। यहाँ पर उनके अनेक शिष्य बन गये, किन्तु मन अशांत था, कुछ करने की तीव्र इच्छा थी। उस प्रेरणा से वे आगे बढ़ गये और ९ जुलाई १९२९ को दतिया में पधारे। कुछ लोगों ने उन्हें शहर के अंदर मड़िया के महादेव नामक स्थान पर ठहरा दिया, बाद में पूज्यपाद ने वनखण्डेश्वर जैसे निर्जन स्थान को अपनी कर्मभूमि बनाया और ब्रह्म प्राप्ति, देश, समाज, संस्कृत एवं संस्कृति की सेवा में निरंतर लगे रहे। उसी संदर्भ में पूज्यपाद के द्वारा कहे गये ये बचन उल्लेखनीय हैं उनके गुरु द्वारा तीन प्रतिज्ञाएँ करायी गयी थी। प्रथम कोई स्थान मत बनाना, द्वितीय महिलाओं से दूर रहना, और तृतीय कभी अध्ययन मत छोड़ना। अंतिम दो प्रतिज्ञाओं का उन्होंने अपने जीवन पर्यन्त पालन किया, किन्तु जहाँ तक स्थान बनाने का प्रश्न है, उसका एक मात्र कारण यही बतलाते थे कि बगैर एक जगह बैठे काम पूरा नहीं होता। इसलिये उन्होंने इस आश्रम को बनाया। पूज्यपाद के इस आश्रम पर रुकने के कई कारण थे। वे कहाँ करते थे कि यहाँ पर आकर मुझे कुछ विशेष शाँति मिली। यह स्थान पूर्वकाल में किसी एक महात्मा का रहा है, जिनके दर्शन पूज्यपाद को कई बार हुये। दतिया नगरी के वासियों का कोई पूर्व जन्म का संस्कार होगा, जिसके कारण इस पुण्य आत्मा ने इस निर्जन आश्रम में लगभग पचास वर्ष तक वास कर इसे अपनी कर्मस्थली बनाया। पूज्यपाद स्वामी जी महाराज मात्र एक योगी ही नहीं थे, वे भारत की ही नहीं, संसार की एक महानतम विभूति थे। दार्शनिक, तान्त्रिक, विचारक, महान विद्वान, समाज सुधारक तथा लेखक आदि के रूप में इन महापुरुष के दर्शन होते है। यदि उन्हें अवतार की संज्ञा दी जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। वेद, उपनिषद, पुराण आदि धार्मिक ग्रन्थों का जितना ज्ञान पूज्यपाद को था, वह शायद ही किसी अन्य को हो, चलते फिरते एक विश्वकोष थे। अन्य धार्मिक ग्रन्थों का भी उनको बहुत ज्ञान था, कोई भी धर्मावलम्बी जब उनकी शरण में आता था, तो वे उसके ही धर्म की चर्चा करते थे और उस धर्म के गुढतम रहस्यों को बतलाते थे। वे अनेक भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं के ज्ञाता थे, जब कोई भी अन्य प्रान्तीय व्यक्ति उनके पास आता था, तो उसकी ही भाषा में बात करते थे। अनेक विदेशी भी समय-समय पर उनके समीप रहकर धार्मिक ग्रन्थों की शिक्षा ग्रहण करते थे।

श्री चरणों में ऊँच-नीच, धनी-निर्धनी, जाति-पाँति आदि का कोई भेद-भाव नहीं था। वे सभी से प्रेम करते थे। बालक तो उनकी कृपा के विशेष पात्र थे। उनके हृदय की सरलता एवं सहृदयता तो अच्छी तरह वही जान सकते हैं, जिन्हें उनके सामीप्य में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। पूज्यपाद अनुशासन के प्रति बहुत ही

कठोर थे। आश्रम में सभी व्यक्ति पूर्ण अनुशासित रहते थे। किसी के लिये भी नियमों का उल्लंघन नहीं किया जाता था। पूज्यपाद ने अपने अंतिम समय में धूमावती माई की स्थापना कराई। जब राष्ट्र पर या व्यक्ति पर कोई विशेष संकट हो तो उनकी आराधना करने से समस्त संकट दूर होते हैं। महाराज जी से इनकी स्थापना के समय कुछ शंकाएँ उत्पन्न की गयीं कि यह श्मशान की देवी हैं और जहाँ वे रहती हैं वहाँ श्मशान ही हो जाता है। इस संबंध में महाराज जी ने यह उत्तर दिया कि माँ अपने बच्चों का कभी भी अनर्थ नहीं करती, वह तो बड़ी दयालु हैं। सदैव भला ही करती हैं।

पूज्यपाद जनहित के लिये सब कुछ करने को सदैव तत्पर रहते थे। दतिया का सन् १९४६ का जन आन्दोलन पूज्यपाद के ही कारण सफल रहा। इस आन्दोलन से अँग्रेजी सरकार के पैर भारत से उखड़ गये। जनहित में दूसरा अनुष्ठान चीन के युद्ध के समय कराये थे। १९७३ में ब्रह्म-यज्ञ का आयोजन अपूर्व ही था। सच्चे महात्मा पंचतत्व से बने हुये शरीर में न रहते हुए भी जगत का कल्याण करते रहते हैं। वे मृत्यु से परे हैं। इसलिये मृत्यु का भय उन्हें जरा भी सिद्धान्त से विचलित नहीं कर सकता। पूज्यपाद स्वयं कहा करते थे कि 'मुझे उसका कोई डर नहीं है, मैं सदैव तैयार हूँ। वह जब भी चाहे मुझे ले जाये'। इसी संदर्भ में यह घटना भी उल्लेखनीय है कि जिन महात्मा ने पूज्यपाद का इस स्थान पर आने पर स्वागत किया था, उन्हीं महात्मा ने एक दिन स्वयं पूज्यपाद से कहा, कि अब तुम्हारा काम पूरा हो चुका है। चलने की तैयारी करो। पूज्यपाद के मन में एक टीस सदैव रहा करती थी। वे कहा करते थे कि 'लाखों लोग मेरे पास आये। कोई धन माँगता है, कोई लड़का माँगता है, कोई किसी से परेशान है आदि आदि, किन्तु जिस बात की यह दुकान है उसका एक भी ग्राहक आज तक मेरे पास नहीं आया। राम की सेवा में बंदर अनेक थे। उन्होंने अंगूठी केवल हनुमान को ही दी थी। हर एक को हर चीज नहीं दी जा सकती। मेरा तो जितना काम था मैं ने पूरा कर लिया। सब कुछ लिख कर रख दिया है। जब किसी को आवश्यकता पड़ेगी तो उठाकर देख लेगा। माँ की जैसी इच्छा है, वैसा ही होगा'।

पूज्यपाद के श्री चरणों में सादर नमन।

***

पूज्यपाद की कृपा

— वैद्य प्रजानाथ शास्त्री
धौलपुर (राजस्थान)

लगभग कई वर्ष पूर्व की बात है जब पीताम्बरा पीठ के संस्थापक स्वामीजी महाराज संस्कृत पाठशाला वाड़ी के भवन निर्माण हेतु पधारे थे। उस समय मेरी आयु लगभग १६ वर्ष थी। मेरे पिताजी पाठशाला कमेटी के मंत्री थे। पिताजी के साथ मैं भी पूज्यपाद के पास गया। उस समय मैं बहुत ही उच्छृंखल एवं पढ़ाई से जी चुराने वाला था। पिताजी को मेरी इस स्थिति से बड़ी चिन्ता रहती थी। पिताजी ने पूज्यपाद से हमारे विषय में निवेदन किया। पूज्यपाद ने कृपा कर मुझे मंत्रोपदेश दिया इसके बाद मुझ में बड़ा परिवर्तन आया। मेरी उच्छृंखलता समाप्त हो गयी और मैं नियमित रूप से अध्ययन करने लगा।

मैं निरंतर पूज्यपाद के समीप पीताम्बरा पीठ पर जाता रहा, और पूज्यपाद के निर्देशानुसार साधना में तल्लीन रहा। एक बार मकान के संबंध में परिवार वालों से झगड़ा हो गया और केस न्यायालय में पहुँच गया। मैं परेशान हालत में पूज्यपाद के समीप गया। पहुँच तो गया परन्तु पूज्यपाद से कुछ भी कहने का साहस मुझे नहीं हुआ। किन्तु वे तो अंतर्यामी थे बोले, क्यों आया है? पूज्यपाद के पूछने पर मुझमे साहस आया और मैंने अपनी समस्या के संबंध में निवेदन किया। पूज्यपाद ने एक स्तोत्र दिया और कहा– इसके छः हजार पाठ कर लेना। मैंने निर्देशानुसार पाठ किये। पाठ होते ही बड़ा प्रभाव दिखाई दिया। सभी परास्त हो गये और हमसे समझौता कर लिये। ऐसे थे कृपानिधान अंतर्यामी पूज्यपाद।

मुझे स्वप्न में अनेक बार कई मंत्र प्राप्त हुए। मैं मन्त्र प्राप्ति के बाद पूज्यपाद के पास जाता रहा और पूज्यपाद की आज्ञानुसार वे मंत्र हमारे साधना क्रम में समाहित हो गये। मैं नहीं जानता कि मुझ जैसे अकिंचन पर पूज्यपाद ने कैसे कृपा की। मुझे गुणहीन पर उन्होंने पितृवत स्नेह किया। यह सब प्रारब्ध का ही खेल है। मैं साक्षात शिव तुल्य गुरुदेव के चरणों में श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ नतमस्तक हो श्री चरणों में प्रार्थना करता हूँ कि इस अकिंचन पर सदैव कृपा बनी रहे।

***

पूज्यपाद की आराधना

— रतन सिंह परमार
दतिया

दतिया में श्री पीताम्बरा पीठ के संस्थापक पूज्यपाद स्वामी जी महाराज अपनी साधना में रत तथा ग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन में ही सदा व्यस्त रहते थे। उनकी इस व्यस्त दिनचर्या में प्रातः-सायं दोनों समय लगभग एक-एक घंटे का समय आश्रम पर आने वाले भक्तजनों से मिलने, उनकी विभिन्न समस्याओं को सुनने और अपने उपदेशामृत द्वारा उनके निदान करने के लिये नियमित रूप से निर्धारित था।

एक दिन की बात है, मैं पूज्यपाद के पास गया और प्रणाम कर बैठ गया। अनायास ही पूज्यपाद ने मेरी ओर देखा और मुझे अपने समीप में मूढे के निकट बैठने का संकेत किया। थोड़ी ही देर बाद पूज्यपाद ने मधुर शब्दों में मेरी ओर देखते हुये एक प्रश्न पूछा कि– 'क्या तुम्हारी माता है'? मैंने अपनी दृष्टि नीचे कर अपने भरे गले से उत्तर में कहा– "भगवन! जब मैं अबोध बालक था, तभी मेरी माताजी का स्वर्गवास हो गया था।" इस करुण व उदास उत्तर को सुनकर पूज्यपाद ने मेरे सिर पर अपना वरद हस्त रखकर वात्सल्य से मधुर शब्दों में कहा– "उधर देखो! मंदिर में पीताम्बरा माँ की जो प्रतिमा है वही तेरी सच्ची माता है। जन्म देने वाली माता तो किसी के जीवन पर्यन्त साथ नहीं देती है और जो जगत माता हैं, वह सदैव संसार में रहती हैं तथा अपने जनों का सदा ध्यान रखती हैं"। ऐसे मधुर अमृत बचन सुनकर मेरा हृदय गदगद हो गया। फिर पूज्यपाद ने आगे कहा कि "मैं ने तो १५ वर्ष की आयु में अपनी जन्मदात्री माँ का साथ छोड़कर संन्यास ग्रहण किया था और इन्हीं पीताम्बरा माता का आश्रय लिया है, यह तो पूरे विश्व की माता हैं। इसी से तुम भी इस सच्ची माता का स्मरण सदैव जीवन में करते रहना। यह अपने प्रियजनों और भक्तों की सदा रक्षा करती है"। पूज्यपाद ने कहा– "मैंने अपनी जन्म देने वाली माता की सेवा न कर जो साथ छोड़ा है व उन्हें परित्याग का कष्ट पहुँचाया है, उसी के फलस्वरूप मुझे भी श्री पीताम्बरा माता की सेवा में निरंतर तत्पर रहना है। इन्हीं की आराधना व उपासना करते रहने से ही मेरी जन्मदात्री माँ को शांति मिलेगी।" सच्चे मन से जगत माता की शरण में जाने वाले व्यक्ति का अभ्युदय सुनिश्चित है।

सन् १९४७ में पूज्यपाद ने श्रावणी कर्मकाण्ड के समय मेरा यज्ञोपवीत संस्कार कराकर मुझे गुरुदीक्षा प्रदान की थी। तभी से मैं उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चल रहा हूँ। कुछ वर्ष पूर्व मुझे गुरुदेव ने एक सावर मंत्र तिल्ली झारने के लिये प्रदान किया। इस मंत्र का ऐसा प्रभाव है कि अनेक व्यक्ति जो तिल्ली के मरीज थे, जिन्हें कई चिकित्सकों द्वारा असाध्य कह कर लौटाया गया था वे सभी इसी मंत्र के द्वारा असाध्य बीमारी से छुटकारा पा गये हैं। यह सब गुरु कृपा का ही फल है। परम पूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने अपनी तपस्या के द्वारा शाक्त धर्म की रक्षा की है, एवं हिन्दू संस्कृति की तथा देववाणी संस्कृत की अविस्मरणीय सेवा की है। उनकी उज्ज्वल कीर्ति इस संसार में सदा रहेगी। परम पूज्य गुरुदेव के श्री चरणों में कोटिशः नमन।

***

–: वैदिक उपदेश :–

अश्रद्धा ही मनुष्य की कार्य-सिद्धि नहीं होने देती, इस लिए मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने श्रद्धा को मुख्य बताया है। श्रद्धाहीन योगी अपने पद से च्युत हो जाता है। श्रद्धाहीन ज्ञानी अज्ञानी हो जाता है। श्रद्धाहीन देशभक्त अराष्ट्रीय हो जाता है। श्रद्धाहीन पुत्र अपने माता-पिता की सेवा से पराङ्मुख हो जाता है। इस लिए इस महान विनाशकारी दोष से बचना चाहिए।

– ***श्रीस्वामीजी***

पूज्यपाद और संन्यास आश्रम

– रामनाथ श्रोत्रिय
धौलपुर

पूज्यचरण एक साकार रूप में अधिकारियों के कल्याणार्थ प्रादुर्भाव हुये थे और उन्होंने अधिकारियों को यथावत मार्ग का दर्शन कराया। समयानुसार वास्तविक मार्ग के इच्छुक व्यक्तियों को बहुत कुछ प्रकाश में लाने का प्रयत्न किया। मैं भी उन सेवकों में हूँ। सन १९२४ में पूज्यचरण हमारे सत्संगी एक सदस्य कारागार अधिकारी के निवास स्थान पर धौलपुर में ठहर गये। दूसरे दिन मैं प्रात: ८ बजे वहाँ पहुँच गया। पूज्यचरण ध्यान में स्थित थे। कुछ क्षण के पश्चात् ध्यान भंग होने पर उन्होंने पूछा 'कब के आये हो? क्या अधिक समय हो गया'? इसके बाद पूज्यपाद मुझे वेदान्त दर्शन का नियमित अध्ययन कराने लगे और मुझे पारमार्थिक विद्या का उपदेश दिया।

दर्शन ग्रन्थों को समझाने की पूज्यपाद की बुद्धि का विशेष चमत्कार देखा। बड़े-बड़े जटिल ग्रन्थों को अनायास ही सुलझा देते थे। मेरे मस्तिष्क में प्राय: यह बात उठती थी कि इतनी सी अल्प आयु में यह बुद्धि की महानता कहाँ से प्राप्त हुयी? परन्तु, भगवान शंकराचार्य जी की १६ वर्ष की आयु का चमत्कार याद आने पर उपर्युक्त मेरा विचार विलीन हो जाता था। पूज्यपाद का अखण्ड ब्रह्मचर्य था। विद्वत्ता के विषय में तो उनकी थाह लेना दुरूह था। वे वैदिकमार्ग के दृढ़ पथिक रहे। सनातन धर्म के दृढ़स्तंभ थे। यह सब उसी प्रकार रहा जैसा भगवान श्रीकृष्ण का व्यवहार। जिस समय कि युधिष्ठिर ने अंतिम अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया था, उस अश्वमेध के अश्व के साथ अर्जुन गये हुये थे। वह अश्व जब जयद्रथ के राज्य में पहुँचा तो साथ में अर्जुन को आया हुआ सुनकर ही जयद्रथ का बालक प्राण खो बैठा। वह अर्जुन से अति भयभीत था। उस बालक की विधवा माता विलाप करते हुये अर्जुन के समक्ष गिर गयी। अर्जुन बड़े दु:खी हुये और भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण करने लगे। भगवान तुरंत ही वहाँ आये और उन्होंने कहा कि यदि मेरा महाभारत युद्ध में कुछ भी संबंध न हो तो इसी सत्यता से यह बालक जीवन प्राप्त करे। बालक तुरंत ही उठ बैठा। इसी प्रकार पूज्यपाद का व्यवहार था। उनको यथार्थ समझने के लिये इतना ही पर्याप्त होगा। पूज्यपाद चतुर्थ तुर्यावस्था से आगे तुर्यातीत थे। वे संन्यास आश्रम से आगे थे। उनको वास्तविक श्रद्धांजलि है।

***

गुरु बिन भव-निधि तरै न कोई

– केदारनाथ शर्मा
उरई

पूज्यपाद श्री गुरुदेव गहन ज्ञान और तन्त्र शास्त्र के प्रकाण्ड ज्ञाता थे, उनके सभी कृत्य उनकी विलक्षण साधना की पुष्टि करते थे। उन्होंने बनखण्डेश्वर जैसे प्रशान्त, कोलाहल से दूर, पवित्र एवं प्राचीन स्थान पर ध्येय की प्राप्ति हेतु उच्च कोटि की साधना की और भगवती पीताम्बरा की स्थापना की। महाराज जी परमोच्च कोटि के विद्वान होने के साथ-साथ महानतम योगी तथा विशुद्ध संत थे। संयम नियम की अप्रतिम क्षमता रखते थे। ग्रीष्म ऋतु की तपती हुयी लू में भी माँ पीताम्बरा के मंदिर में एकान्त में पद्मासन पर विराजे हुये उनके दर्शन करने के कई सुअवसर मिले। सतत् साधना के द्वारा उन्होंने वह विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था, जो अति दुर्लभ था। वे प्रचार की जगह आचरण पर बल देते थे। पीताम्बरा पीठ पर पहुँचने वालों से वे अधिकाधिक समय जप-साधना में व्यतीत करने की अपेक्षा करते थे। अंतिम वर्षों में तो महाराज जी कभी-कभी स्वयं भी लोक हित में कह देते थे– "मैं ने अपना काम पूरा कर लिया। आप लोग तो यहाँ अपने काम से आते हैं, मेरे काम से नहीं।"

मेरे लिये वह सचमुच सौभाग्यशाली दिन था, जब मुझे दीक्षित किया गया। वे जिह्वा पर नियंत्रण आवश्यक मानते थे। मैं तो अपने आपको इतने में ही भाग्यशाली मानता रहा कि मुझे स्वयं को तथा मेरे साथ में जाने वाले मेरे आत्मीय जनों को शुभ वाणी सुनने तथा दर्शन करने का लाभ मिलता रहा। महाराज श्री का द्वार तो सभी के लिये खुला था, वहाँ तो पवित्र गंगा जल की धारा थी। जिसके पास जैसा पात्र था, उसने उतना धारण किया। वे सदैव अनुशासन युक्त एवं नियमबद्ध काम को प्रोत्साहित करते थे। देवभाषा संस्कृत से अगाध प्रेम था और विश्व हित में उसका व्यापक प्रचार-प्रसार चाहते थे।

राष्ट्रहित में चिन्तनशील रहने वाले पूज्यपाद श्री स्वामी जी का व्यक्तित्व महान था और मुखाकृति बड़ी तेजस्वी थी। दर्शन मात्र से दर्शक के हृदय में स्वाभाविक नमन की भावना स्वत: ही घर कर जाती थी।

महाराज श्री सही अर्थों में कर्मशील थे। वे प्रेरणा दायक क्षण जब याद आते हैं तब हृदय श्रद्धा से भर जाता है। पूज्यपाद वृद्धावस्था में भी कुछ समझाते समझाते बड़ी स्फूर्ति से सिंह की भाँति उठ कर तत्संबंधित प्रामाणिक ग्रंथ उठाते थे तथा उसमें इच्छित संदर्भ निकालने में क्षण भर भी देर नहीं लगाते थे।

पूज्यपाद श्री गुरुदेव ने महानिर्वाण प्राप्त कर लिया है। उनका भौतिक शरीर यद्यपि हमारे मध्य में उपस्थित नहीं है, परन्तु उनकी कृपा आज भी विद्यमान है। मंगलमयी मां भगवती पीताम्बरा अपनी कृपा की सदा सर्वदा अजस्र वर्षा करतीं रहें यह विनम्र प्रार्थना है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

क्रियामय इस जगत में चराचर सभी प्राणी अहर्निश कुछ न कुछ व्यापार करते ही रहते हैं। अपने प्राचीन कर्मों के अनुसार कोई कुछ करता है, तो कोई कुछ। सभी का उद्देश्य वास्तविक सत्य क्या है? इसे प्राप्त करना है। तथापि सत्य के स्वरूप निश्चय में सब का ही मत एक-सा नहीं है। अपनी-अपनी वृद्धि के अनुसार ही यह निश्चय किया जाता है।

– *श्रीस्वामीजी*

श्री स्वामीजी महाराज की जय

— *डी. एस. कोठारी*, नागपुर

परमपूज्य प्रातः स्मरणीय श्री अनन्त श्री स्वामीजी महाराज के विषय में कुछ भी लिखना मेरे लिए बहुत ही कठिन कार्य है क्योंकि उनकी अनुमति प्रचार के लिए कभी नहीं रही। पूज्यपाद अपने कार्यों का प्रदर्शन बहुत कम करते थे। ऋषि-मुनियों के आश्रम जैसी व्यवस्था और नियमों की झलक श्री पीताम्बरापीठ पर दिखाई देती थी। यहाँ न कोई आडम्बर था, न प्रचार, फिर भी जीवों के कल्याण का बहुत बड़ा कार्य यहाँ पर होता रहता था। इस घोर कलियुग में यहाँ सतयुग का प्रकाश था। स्वयं पूज्यपाद तो नियमानुसार साधना में मग्न रहते ही थे, दूसरे व्यक्ति भी यहाँ आने पर साधना-मग्न हो जाते थे।

मन में कुछ शंका, कुछ असन्तोष, कुछ दुःख लेकर जो कोई आते थे, वे सभी पूज्यपाद के प्रभाव से निःशंक, प्रभावित और सुखी होकर अपने घर जाते थे। जिसके भाग्य के द्वार खुलते वही व्यक्ति यहाँ आता था। किसी को बुलाने की जरूरत नहीं थी। भगवती की प्रेरणा से अनेक जीव यहाँ आकर अपना कल्याण मार्ग पा जाते थे। यहाँ सभी बराबर रहते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कार्य में दत्त-चित्त रहता था। यहाँ पर माया का साम्राज्य नहीं चलता था। माई का राज्य चलता था। कोई सांसारिक बातचीत यहाँ नहीं होती थी। सब लोग भक्ति रस में मस्त होकर अपना-अपना जप करते रहते थे।

जैसे परमात्मा सब के हृदय में बैठकर सब का कल्याण करते हैं। इसी प्रकार महाराज श्री सब का कल्याण सहज में ही प्रच्छन्न रूप से करते रहते थे। शंका समाधान भी आने वालों को उनके हृदय में ही हो जाता था। चाहे कोई भी प्रश्न लेकर आये, उसको उत्तर मिल जाता था, मुँह से बोले बिना ही महाराज श्री उसको उत्तर दे देते थे। बाहर में वाणी से जितना बताते थे, उससे बहुत ज्यादा हृदय के अन्दर में बता देते थे। यह अनुभव यहाँ आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को होता था।

अभी भी महाराजश्री कहीं गये नहीं हैं। हम सबके हृदय में विराजमान हैं। वे सब देख रहे हैं, और सब जानते हैं। अभी भी प्रत्येक प्रश्न का उत्तर प्राप्त हो जाता है, विशेष रूप से पीताम्बरा माई के पीठस्थान और महाराजश्री के समाधि-

स्थान पर आज भी महाराजश्री का मानसिक सान्निध्य प्राप्त हो सकता है। इसलिये प्रत्येक साधक को चाहिए कि वह इसकी पवित्रता और स्वच्छता को बनाए रखें। यहाँ का वातावरण पवित्र रहे और पूजन आदि चलता रहे, इसी बात की परम आवश्यकता है।

पूज्यपाद के चरणों में विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

प्राण सदैव जागता रहता है। इसलिए आने-जाने वाली दोनों क्रियाओं वाले प्राण को मन्त्र द्रष्टा ने नमस्कार किया है। बाहर वाली गति को अपान एवं अन्दर वाली को प्राण संज्ञा दी गई। "प्राणापानगतीं रुद्ध्वा प्राणायाम परायणः" - प्राण-अपान की गति के निरोध को ही गीता में प्राणायम बताया गया है।

– श्रीस्वामीजी

पूज्यपाद की सहजता

– दीनबन्धु पाराशर
मथुरा

वह हमारे जीवन की स्वर्णिम बेला थी जब हमारे परिवार को पीताम्बरा पीठ दतिया में पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के चरणों में दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कौन जान सकता है कि यही वह स्थान है, जहाँ भाग्य रेखा बदल जाती है। सर्व प्रथम परिचय में ही पूज्यपाद का सर्व साधारण के लिये एक प्रश्न – कौन है तू? दर्शनार्थी के बुद्धि विवेक का परिचायक होता था। जिसके उत्तर में सभी दर्शनार्थी अपना नाम एवं पद इत्यादि को प्रस्तुत करते थे। जिससे कि उनके प्रश्न का कोई संबंध नहीं होता था। जो भक्तजन तन्मयता एवं शुद्ध हृदय से श्री चरणों में अपने को समर्पित कर देते थे, चाहे वह जन्म जन्मान्तर के अपराधी ही क्यों न हों, उनको श्री चरणों में अवश्य ही शरण मिल जाती थी, जिससे उनके जीवन का ही नहीं, अपितु पुरे परिवार का कल्याण हो जाता था।

प्रथम परिचय में जैसे ही हमने पूज्यपाद के दूसरे प्रश्न के उत्तर में अपने निवास स्थान का परिचय दिया कि हम राधाकुण्ड (मथुरा) के निवासी हैं, तब श्रीमुख से यह बचनामृत पान करने को मिला कि– 'हाँ हमने देखा है, हम वहाँ गये थे, वहां राधा कुण्ड एवं कृष्ण कुण्ड-दो कुण्ड है, बीच में संगम है। वहीं किनारे पर महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य की बैठक है। सम्पूर्ण गोवर्धन तलहटी साधना स्थली हैं। मीरा बाई ने वहाँ साधना करके श्री गिरिराज के रूप में भगवान श्री कृष्ण के दर्शन प्राप्त किये थे और वह उन्हें अपने स्नेह बाहन पर बैठा कर श्री नाथ जी लिवा ले गयीं।' हमारा यह अनुभव है कि जिन बुराइयों के कारण हम सिद्ध पीठ पर जाने से झिझकते हैं, उन बुराइयों को वह अपने आप बता देते थे और कह देते थे कि इन्हें छोड़ दो। पूज्यपाद की कृपा से मनुष्यों के मन की मलिनता दूर हो जाती थी। और हृदय शुद्ध हो जाता था। एक बार पूज्यपाद ने प्रसंगवश कहा– 'अंग्रेज हमारे यहाँ दो सौ वर्ष राज्य कर गये। उनमें दो गुण विशेष हैं। एक तो वे समय के पाबँद होते हैं। दूसरे वे अपने देश के लिये अपना सब कुछ त्याग देते हैं, किन्तु भारतवासी दो सौ वर्ष के सम्पर्क के बाद भी उनसे यह गुण ग्रहण न कर सके, बल्कि उनके खाने व पहिनने की नकल में लगे हैं।'

अंतिम समय में मैं उनके दर्शन करने के लिये दिल्ली गया, उस समय पूज्यपाद ने कहा– 'बहुत हो गया है'। कुछ साधक निवेदन करने लगे कि महापुरुष लोग तो अत्यधिक समय तक जन कल्याण करते रहते हैं। पुनः श्रीमुख से वाणी हुई– 'अरे नहीं अब बहुत हो चुका है। अस्सी पूरा हो गया है'। यह महाराज के अंतिम वाक्य थे, जो मैं ने श्रवण किया। पूज्यपाद का वात्सल्य प्रेम, बच्चों को भी आदर्श सूचक संबोधन, विनोद, शांति आदि गुण स्मृति पटल पर सदा अंकित रहेंगे और उनकी कृपा से हमेशा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहेगा।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सरस्वती को ही विद्या भी कहते हैं क्यों कि ज्ञान और विद्या दोनों पर्यायवाची हैं। "विद्ययामृतमश्नुते" – विद्या ही मोक्ष प्रदान करती है। अन्त में अविद्या की निवृत्ति भी इसी का कार्य है। इससे विद्वान् संसाररूपी महान् समुद्र से पार हो जाता है। ज्ञान के शुद्ध स्वरूप के लिए सरस्वती को शुक्ल स्वरूप में ध्यान करना बताया गया है। प्रत्येक प्राणी में सरस्वती बुद्धि के प्रेरकरूप में विद्यमान हैं। उसे जानकर मनुष्य को अपना विकास करना चाहिए।

– *श्रीस्वामीजी*

गुरुवाच

– *हरनारायण नाहर*
दतिया

मैं अल्पज्ञ व्यक्ति पूज्यपाद के विषय में कुछ भी लिखने में असमर्थ हूँ। समय-समय पर पूज्यपाद जो उपदेश देते थे, उन्हीं में से कुछ प्रस्तुत लेख में उद्धृत कर रहा हूँ। पूज्यपाद कहा करते थे – 'मनुष्य को व्यर्थ की बातों में अपना अमूल्य समय नहीं गवाना चाहिए। कटु और निरर्थक शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए, पीताम्बरा माई एक हाथ से जीभ पकड़े हैं, उसका अर्थ ही वाणी के संयम से है। भारतीयों नें अंग्रेजों के दुर्गुणों को तो ग्रहण किया, किन्तु उस जाति के दो विशेष गुण – समय की पाबंदी एवं राष्ट्रभक्ति को नहीं सीखा। जिस दिन भारतीयों में राष्ट्रीयता जागृत हो जायेगी तभी प्रजातंत्र पूर्ण रूप से सफल होगा।' शिक्षकों के लिए पूज्यपाद कहते थे कि जिस देश का शिक्षक ईमानदार नहीं होगा, वह देश कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है, अतएव शिक्षकों को ईमानदारी से अपना कार्य करना चाहिए। पूज्यपाद छात्रों के विषय में कहा करते थे कि छात्रों को ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए, प्रत्येक कार्य की सिद्धि ब्रह्मचर्य पर ही अवलंबित है, वीर्य की पुष्टि ब्रह्मचर्य से होती है। ब्रह्मचर्य से अशक्य कार्य भी किए जा सकते हैं। हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द आदि इसके उदाहरण है।

पूज्यपाद गुरु-शिष्य के विषय में एक कथानक सुनाया करते थे, एक शिष्य गुरु के आश्रम में पहुँचता है और गुरु से ब्रह्मविद्या सिखाने हेतु निवेदन करता है। गुरु उसको आश्रम में रख लेते हैं और बहुत समय तक उससे शारीरिक परिश्रम के कार्य कराते रहते हैं। एक बार आधी रात के समय शिष्य को जगाया और उससे कहा जंगल में जाकर कुंए से पानी लाओ! शिष्य घड़ा लेकर कुएँ पर गया, वहाँ उसके मन में विचार आया – अब यहाँ से भाग जाना चाहिए, क्योंकि गुरु विद्या का उपदेश तो करते नहीं है, केवल सेवा कराते रहते हैं। वह घड़े को कुएँ पर छोड़ कर चल दिया। तभी घड़े में से आवाज आयी – तुम तो ब्रह्म-विद्या सीखने आये थे, और इतने में ही बिचलित हो गए। मेरी आत्मकथा को तो सुनो – मैं मिट्टी का घड़ा हूँ। घड़े की स्थिति में आने से पूर्व मुझे क्या-क्या सहना पड़ा, मेरे ऊपर गेंती-फावडे चलाये गये, फिर गधे की पीठ पर बिठा कर मुझे कुम्हार अपने घर ले गया।

बाद में मुझे अपने पैरों से रोंदा, चक्के पर चढ़ाया, घुमाया, ठोका-पीटी की और बाद में मुझे आग पर तपाया गया। इन परीक्षाओं से निकलने के पश्चात आज मैं इस स्वरूप में हूँ, और तू इतनी जल्दी हताश हो गया। घड़े की बात शिष्य को चुभ गयी, और वह लौट पड़ा। बाद में गुरु कृपा से उसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो गयी।

इस प्रकार पूज्यपाद अपने शिष्यों को विभिन्न प्रकार के उपदेश दिया करते थे, जिन पर चलकर अनेकों ने उन्नति प्राप्त की। पूज्यपाद के चरणों में शत-शत् प्रमाम।

***

–: वैदिक उपदेश :–

इस जगत को व्यक्त करने वाला परम सत्यतत्त्व है जो सदैव एकरूप में रहता है। उसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। उसमें रही हुई उसकी शक्ति ही नानारूप से परिणत है। मुख्यरूप से आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथ्वी रूप से यह विस्तृत जगत् बना है। मनुष्य का शरीर भी इन्ही वस्तुओं से बना है। जगत् की सभी वस्तुएँ इसमें विद्यमान है, परन्तु परिमित होने से मनुष्य शरीर में अविद्या (अज्ञान) का सम्बन्ध आ गया है।

– *श्रीस्वामीजी*

तात सुनहु यह अकथ कहानी

—हेमचन्द्र मिश्र
व्याख्याता, उज्जैन

पूज्यपाद का जन्म संभवत: काशी के समीप किसी गांव में ब्राह्मण परिवार में हुआ था। **''जाति न पूंछै साधु की पूंछ लीजिये ज्ञान''** – देश की सांस्कृतिक परंपरा के अनुरूप नाम, रूप, समय की चिन्ता उन्हें न थीं। उनका विषय 'आत्मानं विद्धि' 'तत्वमसि' था। बचपन से ही विलक्षण प्रतिभा थी– एक बार में ही हर बात याद हो जाती। कक्षा में अध्यापक भी आपकी बात की प्रामाणिकता स्वीकार करते। आचार्य की सीढ़ी चढ़ते चढ़ते एक दिन जंगल में पुस्तकों का ढेर रखे अध्ययन कर रहे थे कि एक साधु मिले, उन्होंने कहा कि इस प्रकार संस्कृत की विपुल ज्ञान राशि का अध्ययन कैसे कर पाओगे? मंत्र के द्वारा आगे बढो और उन्होंने अनायास ही सरस्वती मंत्र दिया। पूज्यपाद के पास गुरु आकर स्वयं दीक्षा दे गये। **''बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता''** जगदम्बा उनसे विशिष्ट कार्य करवाना चाहती थीं। पूज्यपाद दृढ़व्रती थे, ज्ञान की तीव्र पिपासा थी, घर में संस्कृत का वातावरण था, सरस्वती के साधक को सरस्वती का साक्षात्कार हुआ। ज्ञान से वैराग्य हुआ। २० वर्ष के पूर्व ही घर त्याग दिया। आत्मोन्नति के दिव्य मार्ग पर आरूढ़ हो, देश सेवा और धार्मिक जागरण का लक्ष्य लेकर आगे बढ़े।

काशी से हरिद्वार की दिशा, अतीत से संतों के बीच जुड़ी है। हरिद्वार की ओर चरण चले, मार्ग में जहां भी दुर्लभ संस्कृत ग्रन्थों का पता चलता, वहीं उनका पारायण करते। भोजन मिला तो ठीक, नहीं मिला तो ठीक। देश की गरीबी, दासता, पतन का साक्षात्कार किया। संतों का साथ रहा। ब्रह्मचर्य के उस व्रत में जो पूज्यपाद ने लिया था, कितने महान उद्देश्यों की पूर्ति की क्षमता छिपी थी। जो जीवन के चौथे प्रहर में अंगीकार किया जाये, उसे पहले ही प्रहर में ग्रहण कर लिया जाये, तो उसकी शक्ति की सीमा नहीं। ब्रह्मचर्य और संन्यास-लगभग दस वर्ष हरिद्वार की पावन भूमि में एकांतिक साधना की। व्यक्तिगत सत्य से साक्षात्कार, ज्ञान की अनवरत साधना, इसके पश्चात् नर्मदा की दुर्गम घाटियों में भ्रमण किया। आँधी, बिजली, पानी, अँधेरा, नदी के किनारे जप, प्राणायाम, योग, यहाँ एक दण्डी स्वामी से दीक्षा ली। मेरा अनुमान है कि कुण्डलिनी योग की साधना का क्रम हरिद्वार में प्रारंभ हुआ और नर्मदा के किनारे पूर्ण हुआ।

पूज्यपाद की कुण्डलिनी पूर्णतया जागृत थी। प्रत्येक विषय के ऋषियों को समझने के लिये उसी विषय के सिद्धान्तों से आंका जा सकता है। अध्यात्म विज्ञान में भी यही बात है। पीताम्बरा पीठ आश्रम के जड़ पेड़ पौधे व चेतन आगन्तुकगण तथा सेवकगण एक विशेष दिशा की ओर नमन करते थे। एक विशेष आध्यात्मिक प्रकाश से आलोकित थे। सब कुछ एक ही लय में बंधा था, वह लय थी गुरु की लय। महान संत के आश्रम के समीप से ही उसकी ऊँचाई का आभास हो जाता है। उनके पास लोग क्यों जाते थे? उनके पास कौन सा दण्ड था कि पूरे वातावरण में शांति रहती थी। उन्हें कुछ नहीं चाहिए था। फिर भी वैभव, प्रसाद, वस्त्र आदि चरणों में अर्पित होते रहते थे। जो वे बोलते वह इतिहास बन गया। जो वे करते वह प्रमाण था, जो वह आज्ञा देते वह शास्त्र वचन था। सिद्धियों के स्वामी थे किन्तु प्रचार से दूर। उनके चरण कमलों में बैठकर वह सब कुछ मिलता, जिससे समस्त लौकिक चीजें संचालित हैं।

पूज्यपाद के समक्ष सभी बराबर थे। सभी लोग पूज्यपाद के श्री चरणों में आकर नियम से बंधकर ही कुछ प्राप्त कर सकते थे। वे कहा करते थे कि 'जो अपने रंग में रंगा है, वह यहाँ से क्या लेगा? हिन्दुओं में समय और देश भक्ति का अभाव है, ये दो बातें अंग्रेजों से सीखनी चाहिये। एक अंग्रेज बुढ़िया आती थी ठीक सात बजे सुबह। एक माह रही, जो बात उसने पूछी वह किसी ने नहीं पूछी। ये दरवाजे के पास का फर्श उसी ने लगवाया है।' वे कहा करते थे –

"हर फनकार ने अपने ही फन से जाना मुझे,
नेक ने नेक और बद ने बद माना मुझे!"

वे जीवन भर लोगों को देते ही रहे। उन्होंने अयाचित जीवन जिया। मूढ़ा, दण्ड, कमण्डल, माला, आसन तथा गेरुआ वस्त्र ही जिनकी भौतिक पूंजी थी। एक बार अंग्रेजों की टोली घूमती आयी, एक ने पूछा – "Gyani is like a dead log" पूज्यपाद ने कहा– **"सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञानं परिसमाप्ते।"** (गीता ४/३३) अर्थात् सभी कर्मों की सीमा ज्ञान में है, ज्ञानी का ही कर्म, कर्म है। वे लोग घण्टे भर शांत चित्त बैठे रहे। पूज्यपाद की अमृतवाणी से लाभ लेते रहे, और अन्त में नतमस्तक होकर चले गये।

जिस काम के लिये ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है, वह संत महात्मा अपनी दिव्य शक्तियों को जनहित में प्रयोग कर पूरा करते हैं। यदि ऐसा न हो तो सामान्य रूप से दुःख, संघर्ष संसार में बढ़े, भारत में वर्ग संघर्ष रोकने का श्रेय, सर्व धर्म समन्वय को व्यावहारिक रूप देने का श्रेय और स्वतंत्रता आन्दोलन के पूर्व की सांस्कृतिक क्रान्ति का महत्त्वपूर्ण योगदान, संतों के तप का फल है। पूज्यपाद स्वामी जी

महाराज को हम लम्बी भारतीय संत परंपरा की किस कोटि में रक्खें? उनकी साधना, विशद ज्ञान, निगम-आगम, योग विषयों पर पुस्तकों का प्रणयन, जैन, बौद्ध, हिन्दू, मुस्लिम तथा अंग्रेजी, तन्त्र, मंत्र साहित्य पर एकाधिकार, सिद्धान्त व प्रयोग, वाम व दक्षिण तन्त्र के सभी मार्गों पर अधिकारिक ज्ञान होते हुये भी सदैव दक्षिण परक, भक्ति परक, तन्त्र की ओर ही उनका बल रहा। ये सब बातें अन्वेषण का विषय हैं। उनकी चिंतन धारा में शंकर का अद्वैत, नाथ संप्रदाय का योग, रामानन्द के भक्ति आन्दोलन, दक्षिणामूर्ति के तन्त्र परक दर्शन, पुनर्जागरण काल के धर्म और समाज सुधार की एकरूपता का समावेश, हमें सहज ही दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न मतों, सम्प्रदायों, दर्शनों में पूज्यपाद सदैव एकरूपता देखते थे। उनका निश्चित था, जैसा देखा, परखा, अनुभव किया वैसा ही पन्थ बन गया। वे शैव वैष्णव के साम्य पर बल देते थे। उनकी दृष्टि समन्वय परक थी। पर शाक्त-अद्वैत दर्शन उनका प्रिय विषय था।

पुनर्जागरण काल के पावन पुरुष होने के नाते समाज में व्याप्त गरीबी, अंध विश्वास, दासता की हीन भावना की ओर वे जागरूक थे, मात्र व्यक्तिगत मुक्ति से क्या होगा? धर्म के प्रवर्तकों ने धार्मिक आन्दोलनों द्वारा धर्म में क्रांतिकारी परिवर्तन किये और समाज को दिशा दी। प्रत्येक गुरु धर्म प्रवर्त्तक क्रान्तिदर्शी होता है, क्यों कि वह वर्तमान को अपूर्ण देखता है। चाहे वह शंकर हों या रामानुज, गुरु गोविन्दसिंह हो या कबीर, विवेकानन्द हों या पूज्यपाद! वे महान समाज सुधारक थे। गरीब, अमीर, हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध सभी एक फर्स पर आश्रम में उनके चरणों में बैठते, सभी बराबर स्नेह प्राप्त करते, दतिया के राजनैतिक आन्दोलन को एक सूत्र में पिरोना और उसे नेतृत्व देना उन्हीं का कार्य था। चीनी आक्रमण के समय राष्ट्र रक्षा अनुष्ठान उन्हीं के आशीर्वाद से सफल हुआ।

पूज्यपाद ने अनेकों शंकाओं के समाधान प्रस्तुत कर अध्यात्म विज्ञान को आगे बढाया। उनके मत से शंकर सिद्धान्त नागार्जुन का अनुकरण नहीं है। देवी भागवत पुराण है, आर्यों का मूल भारत ही है, आचार्य भगवत्पाद् ने स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर के प्रसिद्ध क्रम का परिवर्तन सांभव मतानुसार किया है आदि, विशेष उल्लेखनीय हैं। आदि शंकराचार्य और पूज्यपाद प्रारंभ में अद्वैतवादी थे, बाद में दोनों भगवती राजराजेश्वरी के सान्निध्य में आये। एक बार पूज्यपाद ने मुझसे कहा था कि मेरे गुरु ने मुझे तीन बातों के लिये कहा था। (१) गृहस्थ को उपदेश देना (२) भ्रमण करते रहना (३) उत्तराधिकारी न बनाना। दो बातों का तो मैंने पालन किया है किन्तु पीताम्बरा माई की सेवा के लिये मुझे एक स्थान पर बैठना पड़ा है। पूज्यपाद के श्री चरणों में शत्-शत् प्रणाम।

***

हमारे गुरु महाराज

– *फकीर चन्द्र*
आई.ए.एस., भोपाल

"कौन हो?" यह चिरपरिचित शब्द दतिया स्थित श्री पीताम्बरा पीठ में दर्शन करने हेतु आनेवाले किसी भी ऐसे व्यक्ति को संबोधित किये जाते थे, जो कि वहाँ पर पहली बार या कभी-कभी जाता था। पीताम्बरा माई के संबंध में मैंने देवास में १९५९ में, जबकि वहाँ मैं कलेक्टर पद पर कार्यरत था, कुछ लोगों से जानकारी प्राप्त की थी। उस समय मालूम हुआ था कि पीताम्बरा माई अपने भक्तों की शत्रुओं से रक्षा करती हैं। सन् १९६८ में जब मैं रीवाँ में अतिरिक्त आयुक्त के पद पर कार्यरत था, तब मैं ग्वालियर जाते हुये दतिया रुका। मैं आश्रम में पहुँचा और पहली बार "कौन हो"? शब्द सुनने को मिले। गर्मी का मौसम था। सायं लगभग ४ बजे होंगे। महाराज जी बाहर ही बैठे थे। उनके द्वारा इस प्रश्न के पूछने पर मैं समझ नहीं पाया कि इन शब्दों से क्या तात्पर्य था, और महाराज जी इन शब्दों के द्वारा मेरे बारे में क्या जानना चाहते थे? इस प्रकार कितने ही लोग असमंजस में पड़ते होंगे और उत्तर में अपने व्यवसाय, कहाँ से आये हैं, किस उद्देश्य से आये हैं यही बताते रहे होंगे। मैंने भी यही किया, ऐसा लगा कि महाराज जी संतुष्ट हो गये थे। इसी भेंट के दौरान मैंने महाराज जी से यह शिकायत भी की कि उन्होंने मेरे पत्र का उत्तर नहीं दिया। महाराज जी ने कहा कि किसी भी ऐसे गूढ़ विषय पर पत्र व्यवहार बहुत उपयोगी नहीं होता। समक्ष में ही मार्गदर्शन प्राप्त करना होता है। लगभग एक वर्ष पश्चात् फिर महाराज जी के दर्शन करने हेतु दतिया गया। उस समय महाराज जी बड़े दुःख के साथ यह कहते सुने गये कि "हिन्दू धर्म के प्रति रुचि कम होती जा रही है। हिन्दू न तो यह जानता है कि हिन्दू धर्म क्या है, और न ही यह जानने के लिये वह उत्सुक है"। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह बात भी बड़े दुःखी स्वर में कही कि 'हमारे पास विद्याओं का भण्डार है। कितना ही ज्ञान हम किसी भी उपयुक्त जिज्ञासु को दे सकते हैं, परन्तु कोई हम से सीखने को तैयार नहीं है'। इसके बाद मैं फिर आश्रम गया, परन्तु दुर्भाग्य देखिये, महाराज जी के दर्शन तक नहीं हुये, उन्होंने भीतर से ही कहला भेजा – "स्वास्थ्य कुछ ठीक नहीं है।" उसके पश्चात् ऐसे अवसर महाराज जी से सम्पर्क करने और उनसे निकट होने के आये, परन्तु भाग्य ने साथ नहीं दिया। शायद समय नहीं आया था।

फरवरी १९७६ में, प्रात: करीब ११ बजे मैं ग्वालियर से दतिया पहुँचा और प्रणाम कर महाराज जी के निकट बैठ गया। मैंने महाराज जी से उपदेश के लिए निवेदन किया, परन्तु महाराज जी बिल्कुल सहमत नहीं हुये। मेरे आग्रह करने पर उन्होंने कहा कि "फौज में सिपाही, जिसको रायफल चलानी हो भर्ती करने के पूर्व क्या यह नहीं देखते कि वह उसके उपयुक्त है? वह बंदूक अथवा रायफल लेकर चल सकता है? चलाना सीख कर मर्यादाओं के अन्दर रह कर उसका उपयोग कर सकता है?" उपयुक्त परीक्षण करने के पश्चात् ही, जैसे सिपाही फौज में भर्ती होता है, उसी प्रकार उन्हें मेरी उपयुक्तता के बारे में परीक्षण करना होगा, और उसमें समय लगेगा, परन्तु मैं अधीर था और प्रतीक्षा करने के लिए तैयार नहीं था। फिर भी महाराज ने मेरे आग्रह को अस्वीकार किया और मुझे चले जाने का निर्देश दिया।

इसके पश्चात् मैं पुन: गया और पूज्यपाद ने मुझे दीक्षा दी। तब से मैं पूज्यपाद द्वारा दिये गये मंत्र के सहारे ही चल रहा हूँ। महाराजजी ने उसके पश्चात् और भी कृपा की, बड़ा स्नेह मुझे दिया और लगता है कि उनकी कृपा अभी भी बनी है। यह कहना कि महाराज जी ज्ञान के भण्डार थे और माँ सरस्वती की पूर्ण कृपा उन पर थी, किसी भी प्रकार की अतिशयोक्ति न होगी। कभी भी किसी भी परिस्थिति में कोई भी महाराज जी से कितना ही कठिन प्रश्न पूछे, वे बिना किसी सोच विचार के और बिना विशेष प्रयत्न के अत्यंत सहज भाव में बहुत उपयुक्त एवं पूर्ण उत्तर देते थे।

महाराज जी सभी प्रकार की योग विद्याओं में भी निपुण थे। वे न केवल योग विद्याओं के बारे में जानते थे बल्कि यौगिक क्रियाओं की व्यावहारिक प्रक्रिया भी उनको ज्ञात थी और किसी भी प्रकार की क्रिया आसन, प्राणायाम इत्यादि साधक की इच्छानुसार बताते एवं सिखाने के लिये सदैव तैयार रहते थे। आवश्यकता केवल इस बात की थी कि साधक उपयुक्त हो और सीखने के लिये तैयार हो। महाराज जी में आगे की घटना को भी देखने की शक्ति थी। वे महान ज्ञानी और विज्ञानी थे और मुक्त हाथ से ज्ञान बाँटने की इच्छा शक्ति उनमें थी। उपयुक्त साधक सामने आने पर उसे सब कुछ देने के लिये तैयार रहते थे। किसी भी प्रकार का अहंकार उनको छू भी नहीं गया था, कोई बड़ा है अथवा छोटा, धनी अथवा निर्धन, महाराज जी के लिए सब बराबर थे।

महाराज जी के पूर्व जीवन के बारे में किसी को जानकारी नहीं है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि महाराज जी को अपनी माता से अत्यधिक लगाव था, उन्होंने बचपन में ही घर छोड़ दिया था और विरक्त होकर जगह-जगह गुरु और ज्ञान की तलाश में घूमते रहते थे, परन्तु मातृप्रेम उन्हें कष्ट दे रहा था, माता जी की उन्हें बहुत याद आती थी। उसी अवधि में उनकी एक संन्यासी से भेंट हुयी और महाराज जी के

मातृ-प्रेम को देखकर उन्होंने महाराज जी से कहा कि माता से ही प्रेम है तो जगत माता की आराधना करो। कहते हैं तभी से महाराज जी शक्ति उपासना की ओर झुके और इसमें पूर्णता प्राप्त की।

पूज्यपाद जनहित का कार्य अथवा कोई निर्माण कार्य करने के लिए शासन से वित्तीय सहायता लेने के विरुद्ध थे। इतने बड़े आश्रम का उन्होंने निर्माण किया, परन्तु शासन से किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं लिया। उन्होंने यह भी बताया था कि दतिया में हिन्दू राजा थे, राजा की ओर से कई बार महाराज जी के समक्ष सहायता का प्रस्ताव रखा गया, परन्तु उन्होंने हर बार अस्वीकार किया। हाँ, उपयुक्त साधक से किसी भी प्रकार का सहयोग महाराज जी स्वीकार कर लेते थे। महत्व धन अथवा अधिकार का नहीं था, महत्व था साधक की लगन और प्रयत्न का।

महाराज जी की स्मरण शक्ति विलक्षण थी, पिछले पचास वर्षों की घटना को भी वे इतने विस्तार से बताते थे कि जैसे वह घटना उनके समक्ष अभी घट रही हो। कौन सा मंदिर कैसा था? कितना पुराना था? किसने उसे स्थापित किया? किस-किस देवता की मूर्ति वहाँ स्थापित थी? वहाँ गाव कितना बड़ा है? वहाँ किस सम्प्रदाय और जाति के लोग रहते हैं? इत्यादि सब बातें अपने ढंग से बड़े विस्तार से वे बताया करते थे।

किसी से भी महाराज जी धन इत्यादि भेंट की अपेक्षा नहीं करते थे, न ही किसी व्यक्ति द्वारा कुछ लाये जाने पर उनकी कृपा निर्भर रहती थी। कोई कुछ लेकर आये अथवा खाली हाथ आये इसका महाराज जी पर कोई प्रभाव नहीं होता था। यदि आप कुछ लगन लिये हुये हैं, हिन्दू धर्म के बारे में कुछ चर्चा करना चाहते हैं, कोई साधना करना चाहते हैं या अध्ययन करना चाहते हैं तो महाराज जी के प्रिय हैं। अन्यथा आपका संबंध महाराज जी को नमन करने तक ही सीमित रहेगा। पूज्यपाद किसी साधु सन्त के बारे में आलोचनात्मक बात नहीं करते थे, उनमें ईर्ष्या नाम मात्र की नहीं थी। वे तो संसार की माया से बहुत पहले ही दूर हो गये थे।

यह हम लोगों का सौभाग्य है कि उनके समीप बैठने, उनसे चर्चा करने, वार्तालाप करने और उनकी कृपा प्राप्त करने का सुअवसर हमें मिला। कहने को तो उनका पार्थिव शरीर अब किसी ओर में रम चुका है, परन्तु अपरोक्ष रूप से वे अभी भी आश्रम में मौजूद हैं और हमारी इच्छा, लगन और आवश्यकतानुसार मार्गदर्शन कर रहे हैं।

***

श्रद्धा सुमन

– जे. के. राव
जिलाधिकारी, आदिम जाति कल्याण विभाग, दतिया

वर्ष १९६८ की शारदीय नवरात्रि की अष्टमी का दिन परम सौभाग्य का था, जब पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज ने मुझे तथा मेरे पूरे परिवार को अपनी शरण में लिया। श्री चरणों में कई प्रसंगों पर अच्छी-अच्छी शिक्षाप्रद बातें रोचक ढंग से सुनने का मौका मिला। जिसमें, जहाँ संस्कृत के श्लोक होते थे, वहीं उर्दू, फारसी के शेर भी होते थे। कुछ शेर वे विभिन्न प्रसंगों पर सुनाया करते थे। प्राय, दर्शनार्थी लोगों को यह जानने की उत्सुकता रहती थी कि महाराज जी कौन है? कहाँ के हैं? तब वे बड़े विनोदपूर्ण भाव से कहते थे –

"कोई नामोनिशाँ पूछे, तो कासिद यों बता देना।
तखल्लुस दाग है, और आशिकों के दिल में रहते हैं।"

उस समय ऐसा लगता था कि मानव देह धारण किये साक्षात् शिव ही सम्मुख हैं, इस बात को हमने अपने जीवन में अनुभव भी किया, जिसका वर्णन करना असंभव है। व्यर्थ के बाहर आडम्बर या शब्द जाल की अपेक्षा वे गंभीर हार्दिक भक्ति को ही महत्व देते हुये कहते थे –

"जिन्हें है इश्क सादिक से वे कब फरियाद करते हैं।
लवों पर मुहर-ए खामोशी, दिलों में याद करते हैं।।"

उनका निवास भक्तों के हृदय में ही है। सच्चे भक्त, उन्हें हृदय में ही याद करते हैं, तथा गुरुदेव उनकी बात को बिना कहे ही समझकर उसका निदान भी करते हैं। व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में भी दृढ़ श्रद्धा से साधना में अडिग रहना चाहिये, तभी वह बांछित उन्नति प्राप्त कर सकता है।

"शिकायत दर्द की करना, यह तौहीने मोहब्बत है।
उन्हीं को दर्द देते हैं, जिन्हें अपना समझते हैं।।"

उक्त शेर गुरुदेव ने तब कहा था – जब मेरा स्थानांतरण दतिया से टीकमगढ़ होने पर मैंने पूज्यपाद से निवेदन किया था कि टीकमगढ़ में मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, आप मुझे दतिया बुला लीजिये।

पूज्य गुरुदेव धर्म की बड़ी सरल व्याख्या करते थे कि धर्म कोई घण्टे भर में करने की चीज नहीं है। व्यक्ति के जन्म से मृत्यु पर्यन्त लगातार उसका धर्म से सम्बन्ध रहता है। यह जीवन में हर क्षण व्यक्ति को याद रखना चाहिये। धर्म को छोड़ने पर मनुष्य पशु बन जाता है –

"छोड़ो न तुम धरम को, चाहे जान तन से निकले,
अग्नि का धरम जब तक रहता है उसमें कायम,
शेर की क्या है हस्ती? जो पास हो के गुजरे"

अग्नि का धर्म जलना है। जब तक वह जलती है शेर भी उससे डरता है। परन्तु जैसे ही अग्नी बुझ जाती है और अपना धर्म छोड़ देती है, तब नन्ही चीटी भी उस पर चढ़ जाती है। पूज्य गुरुदेव हमेशा हम सब लोगों को, इस दुर्लभ मानव जीवन को सत्कार्यों में लगाने के लिये प्रेरित किया करते थे। उनका कहना था कि इस मानव जीवन में विवेक से संसार धर्म को करते हुये भी मानव जीवन के प्रमुख लक्ष्य परम पद को प्राप्त करना चाहिये, वह परम पद सच्चे प्रयत्नों के बाद असंभव नहीं है –

"बहुत दिनों में विछी है चौपर, संभल के खेलो ये चाल क्या है?
फैकूं जो पाशे तो छुटे छक्के, दलों-दमन की मजाल क्या है?"

आज का व्यक्ति स्वार्थी और मिथ्यावादी बन गया है। कोई एक दूसरे की मदद नहीं करता, दु:ख दर्द में मात्र संवेदना प्रगट कर अपने कर्तव्य की इतिश्री मान लेता है। इस संबंध में पूज्यपाद यह शेर कहते थे –

"साहिल के तमाशाई, हर डूबने वाले पर,
अफसोस तो करते हैं, इमदाद नहीं करते।"

पूज्यपाद गुरुदेव सभी को एक दूसरे को सहयोग देने के लिये प्रेरित करते रहते थे। आश्रम पर आने वालों की संख्या हमेशा ही बढ़ती रही और लोग अपने शंका समाधान हेतु सांसारिक दु:खों से छुटकारा पाने के लिये अपनी स्वार्थ बुद्धि से श्रीचरणों में आते थे। पूज्यपाद कहा करते थे कि स्थान पर कोई भी व्यक्ति मुझसे जो सीखना चाहिये, उसको सीखने की इच्छा लेकर नहीं आता। सभी लोग पहले से ही निश्चय कर स्वार्थ बुद्धि से मेरे पास आते हैं। इसलिये मेरी बात कैसे समझ में आ सकेगी। कपड़े की दुकान पर लोहे का भाव पूछते हैं, उस समय पूज्यपाद यह शेर कह कर उठ जाते थे –

"तुम्हें गैरों से कब फुर्सत? हम अपने गम से कब खाली?
चलो अब हो चुका मिलना, न तुम खाली न हम खाली।"

काल्पनिक जीवन की अपेक्षा, वास्तविक सुख की खोज हमें करनी चाहिये, और इसी में हमारा कल्याण होगा। पूज्यपाद ने धर्म के लिये ही, अपना पूर्ण जीवन पीताम्बरा माँ के चरणों में अर्पित कर दिया। पूज्यपाद ने सभी सांसारिक सुखों को त्यागकर, संबंधीजनों का मोह भुलाकर, अपनी जन्मदात्री माँ से दूर रहकर घोर तपस्या की तथा पीताम्बरा माँ की स्थापना पीठ पर करवा कर उनकी गोद में ही पूर्ण समय व्यतीत किया तथा पठन-पाठन, ग्रन्थों का लेखन और प्रकाशन करवाया। पूज्यपाद को सनातन धर्म के प्रति दृढ़ विश्वास, राष्ट्रप्रेम तथा संस्कृत भाषा के प्रति अटूट रुचि थी, वे सादगी का जीवन पसंद करते थे तथा सभी को समान रूप से स्नेह देते थे।

समाधिस्थ होने के एक वर्ष पूर्व पूज्यपाद ने स्थान की व्यवस्था-संचालन के लिये न्यासमण्डल की स्थापना कर दी थी। वे अप्रत्यक्ष रूप से सभी सेवकों से हमेशा कहने लगे थे। कि हम जिस काम के लिये वहाँ बैठे थे वह पूरा हो गया। दिल्ली अस्पताल में जब मैं पूज्यपाद के दर्शन करने गया तो पुत्रवत स्नेह देकर कहने लगे कि अब हमारा कार्य पूर्ण हो गया है, स्थान बना दिया, पुस्तकों का प्रकाशन करा दिया, सब कुछ करके भी बता दिया कि जो लिखा है वह झूठा नहीं है। अगर कोई सच्चा साधक है तो उसे कर सकता है। स्थान की व्यवस्था हेतु ट्रस्ट बना दिया है। ये लोग बहुत पहले से आते है, सभी ट्रस्टी अच्छे लोग हैं और ईमानदार हैं। मुझे संतोष हो गया है कि ये लोग स्थान की भलाई के लिये कार्य करेंगे। पूज्यपाद अंतर्यामी थे और सबके मन की बात वे आप ही आप जान जाते थे।

स्थान की व्यवस्था वर्तमान में उसी प्रकार चल रही है, जैसी पूज्यपाद के समक्ष चलती थी। आज भी प्रतिदिन प्रातः बच्चों को प्रसाद वितरण तथा अन्य लोगों को आवश्यकतानुसार दवा वितरित की जाती हैं। श्री पीताम्बरा माई और अन्य देवताओं की पूजा, आरती सुबह-शाम नियमित होती है। रविवार को श्री महाकाल भैरव के समक्ष संगीत-कार्यक्रम होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पूज्यपाद हमारे बीच हैं–

"न थी उम्मीद दरिया-ए-सहादत, तैर निकलेंगे।
खुदा को आबरू रखनी थी, बेड़ा पार होना था।।"

पूज्यपाद के श्री चरणों में शत्-शत् प्रणाम।

***

मेरे गुरुदेव, जैसा मैंने समझा

– *शिव दत्त दुबे*
दतिया (म.प्र.)

लगभग ५० वर्ष पूर्व दतिया के भाग्याकाश में एक देदीप्यमान नक्षत्र सहसा ही उदित हुआ, जिसने कालान्तर में भारतवर्ष के जनमानस को चमत्कृत किया। वह तेजोमय नक्षत्र पीताम्बरापीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज थे। तन्त्र एवं साधना के संबंध में उसकी गहराइयों से परिचित विशिष्ट विद्वान ही कुछ उल्लेख कर सकेंगे। यहाँ तो इतना ही कहा जा सकता है कि पूज्यपाद ने तन्त्र का सरलतम रूप मन्त्र-जप सामने रखते हुये साधकों को तन्त्र-मन्त्र की ओर उन्मुख किया। जिस प्रकार आज का कृषि वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में देश भर की मिट्टी के नमुने इकट्ठे करके उनमें उन्नत बीजों को डालकर परीक्षण करता है, ठीक वैसे ही श्री चरण साधकों को दस महाविद्याओं के मंत्रों को साधक की सामर्थ्य के अनुसार प्रदान करके उनकी प्रगति पर बराबर दृष्टि रखते थे। उनके विचार में समस्त धर्म एवं संप्रदायों में मूल रूप में शक्ति एवं तंत्र अवस्थित हैं, इसी समभाव के कारण उनके शिष्य-मंडल में ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, वैष्णव, आर्य समाजी सभी सम्मिलित हैं।

पूज्यपाद वेदान्त दर्शन के आचार्य होने के साथ ही कर्मकाण्ड के प्रबल पोषक थे। उपाक्रम यज्ञोपवीत आदि संस्कारों के साथ-साथ यज्ञ अनुष्ठान आदि पर विशेष जोर देते थे। तर्क की प्रतिष्ठा स्वीकार करते हुये भी वे तर्क की कुतर्क की सीमा तक घसीटने के विरुद्ध थे। पूज्यपाद कहा करते थे– खूब साधना करो! जप करो, तप करो! इससे समस्त ज्ञान अपने आप प्रगट होता है। पूज्यपाद के अनुसार मोक्ष कोई अलग अवस्था का नाम नहीं, वह मरने के बाद मिलने वाली वस्तु नहीं, वह तो इसी शरीर में जीवन काल में ही प्राप्त की जाती है।

साधना एवं सिद्धि के प्रबल समर्थक होते हुये भी श्री चरण चमत्कार प्रदर्शन एवं सांसारिक कार्यों में उसके प्रयोग के विरुद्ध थे। इस संबंध में वे एक दृष्टान्त सुनाया करते थे – एक महाशय बारह वर्ष तप करने के बाद अपने गाव लौटे। गाव वालों से बोले कि मैंने सिद्धि प्राप्त कर ली है। मैं पानी के ऊपर चलकर नदी पार कर सकता हूँ। दूसरे दिन प्रदर्शन का आयोजन किया गया। सिद्ध पुरुष पानी पर चले, साथ ही उनके भाई एक नाव में गाव वालों को बैठाकर नदी पार करने लगे।

जब उस पार पहुँचे तो लोग सिद्ध की प्रशंसा करने लगे, परन्तु उनका भाई बोला– 'भैया! तुमने इस छोटी सी बात के लिये बेकार ही बारह वर्ष खोये, मैंने तो नाव पर बैठ कर ही नदी पार कर ली'।

पूज्यपाद जहाँ उपासनागत विभिन्न मार्गों के पोषक थे, वहीं एकान्त निष्ठा के प्रबल पक्षधर भी थे। उनके मतानुसार प्रबल एकनिष्ठा से ही जीवन साफल्य संभव है। पूज्यपाद कहा करते थे, जो दुकान (आध्यात्मिक) मैंने लगाई है, उसके ग्राहक तो यहाँ विरले ही आते हैं। अधिक तो दुनियादारी के ग्राहक हैं। किसी को धन चाहिये, किसी को पुत्र। किसी को मुकदमे में जीत तो किसी को मंत्रीपद। मैं न किसी को आशीर्वाद देता हूँ न शाप! वह देवी बैठी हैं, जाओ– उनसे जो चाहो मांग लो।

जिज्ञासुओं को तृप्ति एवं समाधान करने में उन्हें विशेष आनंद आता था। सभी देशी एवं विदेशी मुमुक्षियों के लिये उनका दरबार हमेशा खुला रहता था। ऐसे दिव्य पुरुषों के समाधान हेतु शास्त्र-चर्चा के समय उनके मुखमण्डल पर जो आभा होती थी, वह तो वही जान सकते हैं, जिन्होंने ऐसे अवसरों पर उनके दर्शन किये हैं, वह लिखने में नहीं आ सकता। उस समय मुख का रंग गहरा लाल सा हो जाता था और आँखों में एक विशिष्ट चमक। लगता था अब प्रभामण्डल प्रगट होने को ही है। चेष्टा ऐसी जैसे सारा ज्ञान उँड़ेल रहे हों। एक बार कहा कि विदेशी लोग मार्गदर्शन हेतु नहीं आते, वे बड़ी तैयारी से आते हैं। ऐसी ही एक विदुषी जो स्थान पर प्राय: आती थीं, उनका नाम था– मिस ऐलिस बोनर। वे स्विस महिला थी, और काशी में रहती थी। एक बार जब वे आयी तो उनके साथ बंगाली महाशय भी थे। वे लोग दतिया के सर्किट हाउस में ठहरे थे। एक दिन अस्वस्थ हो जाने के कारण वे पीठ पर न आ सकी और उन्होंने सूचना भिजवा दी। पूज्यपाद का आदेश हुआ कि वे हमारे अतिथि हैं। उनका कुशल क्षेम पूछना हमारा कर्तव्य है। मैं सायंकाल सर्किट हाउस गया, कुशल क्षेम के बाद चर्चा होने लगी। स्विस महिला ने तंत्र-मंत्र से संबंधित कई प्रश्न पूछे– मैं उनका उत्तर न दे सका। इसके बाद मैडम ने एक सीधा प्रश्न पूछ दिया– महाराज जी मंत्र-जप पर क्यों जोर देते हैं? साहस करके मैंने श्रीमुख से सुनी बात दुहरा दी– तंत्र के दूसरे मार्ग वायुयान की यात्रा के समान है, उनमें सिद्धि की शीघ्रता के समान दुर्घटना का खतरा भी है, पर, जप-साधना बैलगाड़ी की सवारी की तरह निश्चित निष्कंटक है। इस उत्तर से मैडम के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित आनंद-भाव दिखाई पड़ने लगे।

पूज्यपाद मानव मात्र की हित-चिन्ता से ओतप्रोत रहते हुये भी हिन्दू हितों के प्रति सचेष्ट रहते थे। वे कहते थे – हिन्दू के नाम पर अपनी-अपनी दुकाने चलाने वाले इन लोगों से कुछ न होगा। हिन्दू एवं भारतवर्ष के भविष्य के लिए जो क्रान्ति

होगी वह धार्मिक क्षेत्र से ही होगी। ज्ञान एवं भक्ति की चर्चा चलने पर एक बार उन्होंने कहा था – 'ज्ञान बन्दरी है एवं भक्ति बिल्ली है। बिल्ली अपने बच्चे को मुँह में दबाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है। सारी जिम्मेदारी बिल्ली की है, बच्चे को कुछ नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत बन्दरी का बच्चा अपने पंजों के बल उसके वक्षस्थल से चिपका रहता है, अपनी रक्षा का भार स्वयं बच्चे पर रहता है'। परीक्षा काल में आश्रम पर विद्यार्थियों की ज्यादा भीड़ हो जाया करती थी। उनकी ओर इंगित करते हुए पूज्यपाद कह उठते थे – यह सब परीक्षा से घबराते हैं, अरे! तुम्हारी परीक्षा तो वर्ष में एक बार होगी लेकिन साधु की तो जीवन भर परीक्षा होती रहती है, जो आता है वह अपने-अपने दृष्टिकोण से साधु की परीक्षा लेता है।

पूज्यपाद के जीवन वृत्त के संबंध में पूर्णतया किसी को ज्ञात नहीं है। चर्चाओं से यह मालूम पड़ता है कि पूज्यपाद का जन्म काशी अंचल के किसी गांव के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। छोटी अवस्था में ही घर द्वार छोड़कर काशी आ गये, वहीं शिक्षा दीक्षा हुयी। देश भ्रमण करते हुये ९ जुलाई १९२९ को दतिया पधारे और स्थानीय मड़िया के महादेव मंदिर पर गये। पूज्यपाद कहा करते थे कि वहाँ सबसे पहले तुम्हारे पिता पं. ज्वाला प्रसाद दुबे से बातचीत हुयी थी। कुछ समय पश्चात् पूज्यपाद वनखण्डी स्थान पर आये और यहाँ की दिव्यता देख कर यहीं रहने लगे।

उस समय दतिया में अनेक ज्ञानपिपासु पूज्यपाद के सेवक बन गये। जिनमें फौजदार पर्वत सिंह, पं. रघुनाथ दुबे, बाबू बृजकिशोर, अमानसिंह, भगत राम अंगल आदि लोगों के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी समय पूज्यपाद रोगग्रस्त हो गये, बहुत उपचार के अनंतर रोग ठीक हुआ। पूज्यपाद की प्रेरणा से उस समय एक संस्था ने जन्म लिया, जिसका नाम था – "श्री यशवंत शंकर समाज"। इस संगठन के अन्तर्गत कवियों, लेखकों, संगीतकारों एवं प्रवचन कर्ताओं की टोलियां तैयार की गयीं, इसी मंच से शंकर जयन्ती का वार्षिक समारोह प्रारंभ किया गया। इस उत्सव में पूज्यपाद का प्रवचन प्रतिवर्ष होता था। पुरानी पीढी में से बहुतों को वह अमृतमयी वाणी अभी भी याद होगी। इसी काल में स्थान शुद्धि एवं जागरण के विचार से एक सप्ताह के अखण्ड हरिनाम संकीर्तन का अभूतपूर्व आयोजन किया गया। आयोजन के उपरान्त संवत् १९९५ में पीताम्बरा माई की स्थापना हुयी। इसी क्रम में संवत् १९९७ में पंचम कवि के पहाड़ पर भगवती तारा की स्थापना हुयी। पूज्यपाद के ही निर्देश से मड़िया के महादेव पर श्री अन्नपूर्णा के बीजमंत्र पर आधारित भगवती सिंह वाहनी शिव शक्ति पीठ के रूप में अवतरित हुयीं।

इस प्रकार यह छोटा मगर बिंध्याचल जैसे त्रिकोण पर आधारित शक्ति केंद्र बन चला। इसके पश्चात् वह समय आया, जब दतिया में निरंकुश ब्रिटिश प्रतिनिधि

(रियासत दीवान) के विरुद्ध सत्याग्रह छिड़ा। जब सारे कार्यकर्ता जेल जा चुके और लगा कि अब आन्दोलन की कमर टूटने वाली है, तब पूज्यपाद ने मात्र लोककल्याण की दृष्टि से उस आन्दोलन की कमान संभाली। न केवल पीपुल्स कमेटी जो उस आन्दोलन की संचालिका समिती थी, की अध्यक्षता की, वरन समय समय पर नगर में जनसमूह को उत्प्रेरित किया एवं मार्गदर्शन दिया। ध्यान रहे, इस आन्दोलन की स्वयं महात्मा गांधी ने यह कह कर प्रशंसा की थी कि सत्याग्रह करना दतिया से सीखो। सत्याग्रह की सफलता के पश्चात् पूज्यपाद पुनः अपने काम में लग गये।

पूज्यपाद का छोटे बालकों पर सहज स्नेह रहता था। इस कार्य के लिये वे प्रातः और सायंकाल नियमित समय देते थे। बहुत से छोटे-छोटे बालक पूज्यपाद के पास आकर 'भवन्तम् नमस्करोमि' कह कर प्रणाम करते थे। पूज्यपाद अपने हाथों से उनको प्रसाद देते थे। बच्चों के लिये अलग से प्रसाद की व्यवस्था रहती थी।

पूज्यपाद भक्तों पर अहेतुकी कृपा करते थे। उनकी कृपा से अनेक भक्तों के संकट दूर हो जाते थे। फौजदार बलवीर सिंह जी श्रीचरणों के पुराने शिष्यों में से हैं और अच्छे साहित्यकार भी हैं। कई ग्रन्थ आपके पद्यानुवाद सहित प्रकाशित हो चुके हैं। परिस्थितिवश आर्थिक तंगी में थे। एक दिन पूज्यपाद से चर्चा कर बैठे। सुनकर महाराज ने पूछा– जप करते हो? हां में उत्तर मिलने पर जप मंत्र पूछा। थोड़ी देर चुप रह कर एक बीजाक्षर विशेष बताया और आदेश दिया कि इसे जोड़कर जप करो। कहना न होगा, कुछ दिनों में ही राज्यशासन से साहित्यिक वृत्ति मिलने लगी, जो अब भी मिल रही है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जो विस्तारभय से नहीं लिख सकते।

काफी समय पूर्व किसी विशेष अवसर पर कुछ साधकों ने कहा– हम तो श्री स्वामी जी के कारण स्थान पर आते हैं। जब यह चर्चा पूज्यपाद के कान तक पहुँची तो बड़े सहज भाव से कहा– भाई हमने तो सब कुछ छोड़ा है, हमारा अपना कुछ भी नहीं। जिन्हें साधना से लगाव है, माई से प्रेम है, वही यहां आया करें। बाकी जो मेरे कारण आते हैं, न आया करें। मुझे उनकी आवश्यकता नहीं। आज की परिस्थिति में इन शब्दों को अपनी विशेषता है। सभी साधक बंधु स्वार्थ भाव भूलकर मां पीताम्बरा के चरणों में बैठे और पूज्यपाद द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर अग्रसर हों, यही कामना करते हुये, यह वाक्य पुष्पोपहार श्री चरणों में समर्पित करता हूँ।

***

राष्ट्रगुरु श्री स्वामी जी

— प्रो. राजेन्द्र सिंह
क्लाइव मार्ग, प्रयाग

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के संगठन कार्य से ग्वालियर (म.प्र.) के भ्रमण काल में मुझे दतिया के अनंत श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके निर्वाण से लगभग छः-सात माह पूर्व ही ग्वालियर संभाग के अन्तर्गत दतिया में श्री पीताम्बरा पीठ आश्रम पर मैंने उनके पावन दर्शन किये। पूर्व में उनके विषय में मेरा अनुमान भारत के सामान्य संतों के प्रकार का ही था, परन्तु उस दिन के पश्चात् मेरी भ्रान्ति दूर हो गयी। उनके दर्शन करते समय मुझे एक अद्‌भुत आकर्षण अनुभव हुआ और मेरे अंत: में स्वत: ही अपार श्रद्धा का प्रादुर्भाव हुआ। जब श्री स्वामी जी महाराज से कुछ समय संघ के राष्ट्रीय संगठन और फिर आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा हुई तो मैंने जाना कि वे केवल शीर्षस्थ महात्मा ही नहीं, अपितु राष्ट्र के वास्तविक आचार्य प्रवर होने के भी सभी गुण उनमें विद्यमान हैं। वहाँ पर यह जानकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हुयी कि श्री स्वामी जी महाराज की देश ने राष्ट्रगुरु का सम्मान भी दिया है। यद्यपि उस त्यागमूर्ति को इन अलंकारों से कोई आसक्ति नहीं थी, परन्तु राष्ट्र का कर्तव्य भी तो था।

उन्होंने ऐसे गूढ़तम रहस्यों, जिनका देश के बहुत से अच्छे संतों से भी मुझे संतोषप्रद समाधान न मिल सका, उनका सहज में ही बड़ी सरल शैली में निराकरण कर दिया, यह उनकी प्रखर प्रतिभा और अद्वितीय विद्वता का ही प्रमाण था। मुझे लगा कि ज्ञान, उपासना, भक्ति, वैराग्य, पांडित्य, स्नेह और सम्पूर्ण ऐश्‍वर्य की साक्षात् मूर्ति वे ईश्‍वर ही हैं। उनका परम मृदु स्वभाव, सादगी पूर्ण अवधूत वृत्ति से परिपूरित रहन-सहन और शिक्षा, परन्तु सशक्त अनुशासन स्वत: ही आकर्षित करनेवाला और अनुकरणीय था। देश में बढ़ रही अनुशासनहीनता के विषय में उनके विचार थे कि देश के भावी नागरिकों की शिक्षा में आध्यात्मिक एवं धार्मिक शिक्षा का भी समावेश आवश्यक रूप से होना चाहिये। देश की शिक्षा पद्धति में आमूलपरिवर्तन से ही समाज के आचरण में सुधार संभव है। उन्होंने शिक्षा के स्वरूप परिवर्तन का सुझाव सन् १९२१ ई. में महामना मदन मोहन मालवीय जी के माध्यम से गांधी जी के समक्ष भी रखवाया, जिसमें कहा गया था कि स्वतंत्रता प्राप्ति से भी महत्वपूर्ण शिक्षा में

सुधार है, परन्तु कुर्सी के लालची नेताओं ने गांधी जी सहित किसी का भी यह सुझाव नहीं माना, जिसका परिणाम आज हमारे समक्ष है।

श्री स्वामीजी के अनुसार धर्म के हिन्दू, मुसलमान या ईसाई इत्यादि नाम नहीं हैं, धर्म तो मनुष्य की मानवता है, जिसको सुरक्षित रखने से स्वयं मानव की रक्षा होती है, और उसको भूल जाने पर मानव स्वयं नष्ट हो जाता है, क्योंकि मानवता ही उसका प्राकृतिक स्वभाव है, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि विश्व के समस्त सम्प्रदायों ने मानवता का पाठ आज हिन्दू कहे जाने वाले सनातन धर्म से ही सीखा है। श्री स्वामी जी महाराज ने भगवती श्री बगलामुखी देवी के मंदिर की ओर इंगित करते हुये बताया कि यहाँ जगदम्बा प्रतिष्ठित हैं, वे जिव्हा को पकड़े हुये हैं, जिसका आशय है 'अनुशासन' (Hold your Tongue). वाणी पर नियंत्रण रखने से अनुशासन होता है। इस बगला महाविद्या की उपासना से मनुष्य के वे समस्त कार्य पूर्ण हो जाते हैं जिनके लिए वह संसार में आता है।

हिन्दू लोग संगठित नहीं हैं, इसलिये वे इतने दुर्बल और असहाय हो गये हैं, अनेक प्रकार के अत्याचार उन्हें शांत कर सहन करने पड़ते हैं। वर्ण-व्यवस्था अत्युत्तम व्यवस्था है, परन्तु आज उसमें भी विकृति आ गयी है, और भ्रष्टाचार बढ़ रहा है। समाज में अज्ञानता के कारण ही देश में जातीयता पनप रही है, आपसी सौहार्द्र समाप्त हो गया है। काल की इस विडम्बना के कारण ही हिन्दुओं के संगठित होने की आवश्यकता है। अहिंसा की दुहाई देकर हिन्दू अपना मन समझा लेते है परन्तु वास्तव में वे अपने आपकी प्रवंचना करते हैं। अन्याय या अत्याचार से बचाव के निमित्त यदि कोई एक गाल में चपत खाकर आततायी के दोनों गालों में चांटा न लगा सके, आततायी को उसकी हत्या करने के लिये उद्यत देखकर यदि वह उसे मार न डाले तो फिर वह मनुष्य कैसे? हिन्दू शास्त्र का तो यही मत है। हमें प्रत्येक सम्प्रदाय के नियमों और सिद्धान्तों का आदर तो करना चाहिए, परन्तु हिन्दुओ को अत्याचार से निपटने के लिये सक्षम होना आवश्यक हैं।

क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों ही धर्म एक दूसरे के पोषक हैं। बिना सबल के राज्य नहीं चलाया जा सकता और बिना आदर्श शासन के अध्यात्म की प्रतिष्ठा कैसी? शासक के पास दोनों ही बल होने चाहिए, कुल धर्मः सनातनः' के अनुसार आर्यों के शाक्त मत में दोनों का ही योग है, इस युग में तो मात्र शाक्तोपसना ही कल्याणकारी है। उनके उपर्युक्त शब्द आज भी अक्षरशः मेरी स्मृति में हैं।

श्री स्वामी जी में ऐसा अलौकिक आकर्षण था कि उसके पास से उठने को तो जी चाहता ही नहीं था। कहा जाता है कि भगवान के दर्शनों से मनुष्य कभी तृप्त नहीं होता। वह चाहता है कि वह निरंतर एकटक होकर भगवान की छवि को निरखता

रहे। ठीक यही बात श्री स्वामी जी के दर्शनों में थी। उनके ब्रह्मलीन होने के पश्चात् अध्यात्म जगत ही नहीं, अपितु लौकिक जगत भी सूना सूना सा ज्ञात होता है। उनके हृदय में विश्व में हो रहे मानवता के ह्रास के लिए कसक थी। यद्यपि वे स्थिति प्रज्ञ महात्मा थे, परन्तु उनका प्रादुर्भाव मानव कल्याण के निमित्त ही हुआ था।

इस युग के उस महान मानवता के पुजारी राष्ट्र गुरु को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए उसी मुक्तात्मा द्वारा उसकी नाद सन्तान के माध्यम से जनकल्याण के प्रकाश को सदैव प्रसारित कराते रहने की मैं प्रार्थना करता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जगत का प्रत्येक प्राणी परम सत्य वस्तु की खोज में लगा हुआ है। अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार कोई उसे मान-प्रतिष्ठा, कोई नाम, कोई धन, कोई सन्तति, कोई कुछ तो कोई किसी रूप में मान बैठा है तथापि उसकी जिज्ञासा की पूर्णता नहीं होती। इतने में मृत्यु का समय आ जाता है और मनुष्य चलता बनता है। फिर संस्कारवश नूतन देह धारण करके वही कार्य करने में लगता है। ऐसे ही यह संसार-चक्र बराबर चल रहा है।

– ***श्रीस्वामीजी***

अहैतुकी कृपा के कुछ संस्मरण

— *रामकृष्ण वर्मा एडवोकेट*, झाँसी
(प्रस्तुति : श्री भोलानाथ सक्सैना)

श्री रामकृष्ण वर्मा पूज्यपाद के शिष्य हैं तथा पीताम्बरापीठ न्यास मण्डल के सदस्य हैं। उन्होंने स्मृति ग्रन्थ के लिये अपना संस्मरण सुनाया था। उसको मैं संक्षेप में प्रस्तुत कर रहा हूँ।

वर्मा जी के शब्दों में – "मुझे सन् १९४७ में मोतियाबिन्द आया। यह मोतियाबिन्द दांई आँख में था। सन् १९५४ में बांई आँख में भी मोतियाबिन्द आ गया और दिखना बन्द हो गया। डॉ. एस. एस. मितर उस समय देहली में आंख के सबसें बड़े डाक्टर समझे जाते थे। उन्होंने मेरी आँख का ऑपरेशन किया। सात दिन बाद पट्टी खुली। ऑपरेशन के दस दिन बाद तक मुझे शौच नहीं हुआ। अत: शौच के लिये एनीमा दिया गया। शौच के लिए जोर लगाने में बांई आँख की पुतली फट गई। पन्द्रह दिन बाद डॉक्टर ने चश्मा देने के लिये बुलाया और आंख देखकर रह गया। उसने देख लिया कि पुतली विकृत हो गयी है। मुझे दोनों आंखों से दिखना बन्द हो गया और मैं कचहरी का कार्य लोगों को धोखा देकर करता रहा। दतिया निवासी दुर्गाप्रसाद खासकलम जो कि मेरे रिश्ते में मामा-श्वसुर होते हैं, झांसी आये। हमारी दीनदशा देखकर द्रवित हुये। उन्होंने कहा – दतिया, स्वामी जी के पास चलोगे? मैंने कहा – मैं साधुओं से दूर रहता हूँ। वह बोले – क्यों? मैंने उत्तर दिया – 'साधु कहेंगे, सच बोलो-धर्म पर चलो' और ये दोनों मुझे नहीं करना है। मामाजी ने स्वामी जी से यही बात कह दी। स्वामी जी ने मामा से कहा – लाओ, वही आदमी हमें चाहिये। मामा ने कहा – कैसे लायें? वह तो आते नहीं। स्वामी जी ने कहा – वह आयेंगे। जून का महीना सन् १९५७ की रात्रि को चार बजे छत पर लेटा था। आंख खुली, आसमान की ओर देखा कि कोई महात्मा हाथ में लाठी लिये हुये आसमान से चले आ रहे हैं। जहां चरण पडते हैं, वहाँ तारे चरण-चिन्ह बना रहे हैं। इस तरह नौ चरण चिन्ह आसमान में मैंने देखे और लेटा रहा। थोडी ही देर में मेरे दाँये हाथ की कलाई उन महात्मा ने पकड़ी और करवट लिवा कर कान में कहे – तुम यह मंत्र जपा करो। उठ कर मैंने उस मंत्र का जाप शुरू कर दिया।

सन् १९५८ में एक मुकदमे के संबंध में मै दतिया गया। मैं राजगढ़ (कचहरी) के जीने पर बैठ गया, उसी समय मामा दुर्गाप्रसाद आये। मैंने आँखें बंद की तो देखा भगवान राम और सीता, राजगढ़ से उतर रहे हैं और उस ढाल से गांधी द्वार की ओर जा रहे हैं, मैं मामा के साथ नीचे उतरा, वहाँ से वे युगल मूर्तियाँ वनखण्डेश्वर की ओर चलीं। वनखण्डेश्वर में उन दोनों मूर्तियों ने प्रवेश किया। हम पीछे-पीछे चले आये, थोडी देर बाद राम जी बाहर निकलते हुये दिखाई दिये और पश्चिम की ओर जहाँ बगिया में स्वामी जी बैठते थे, चले गये। हम आँख बन्द किये सब देखते रहे। दांयी ओर तखत से जहाँ पूज्यपाद विश्राम करते थे, आवाज आयी – दर्शन नहीं होंगे, पट बंद है। यह आवाज सुनकर मैंने आँखें खोली और देखा कि एक मोटे साधु तखत पर बैठे हैं, मामा से पूछे – ये कौन हैं? मामा ने कहा – ये वकील साहब हैं। उस दिन पूज्यपाद ने मुझे एक स्तोत्र दिया और आगामी नवरात्र में मुझे बुलाया। नवरात्र में पूज्यपाद ने मुझको मंत्र दिया और कहा – यह बहुत पहले शरण में आ चुके हैं, बहुत पहले से तात्पर्य सन् १९५७ की रात्रि की घटना से था। इसके बाद पूज्यपाद ने मुझे औषधि दी। कुछ दिन बाद रात्रि को मैंने स्वप्न देखा कि शिकागो आई हॉस्पीटल बैड नं. ५२८ पर मैं लेटा और डॉक्टर ने मेरी आँख का आपरेशन किया। उसी दिन सुबह, जब मैं पूज्यपाद को प्रणाम करने आया तो प्रणाम करने में मेरा चश्मा गिर गया। उसी दिन से मैंने चश्मा छोड़ दिया और मुझे दिखने लगा। यह सब पूज्यपाद की मेरे ऊपर अहैतुकी ही कृपी थी।''

***

–: वैदिक उपदेश :–

सृष्टिरूपी यज्ञ के संयोजक परमात्मा ने यजमान स्वरूप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के पुरुषों को अपने अंग से उत्पन्न किया। इस महान् यज्ञ में सभी लोग अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार आहुति डाल रहे हैं और उसका प्रतिफल पा रहे हैं। पुण्य-पाप, सुख-दुःख जो जीवों को मिल रहा है इसी यज्ञ का फल है।

– श्रीस्वामीजी

श्री स्वामी जी महाराज : एक संस्मरण

— प्रयाग नारायण श्रीवास्तव
इलाहाबाद

मई १९४६ ई. में मेरे पूर्व जन्म का पुण्य उदय हुआ, जब मेरे मित्र बाबू दीनदयाल जी मुझे अपने साथ श्री पीताम्बरापीठ बनखण्डी दतिया पर परमपूज्य श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज के दर्शनार्थ ले गये। मिट्टी के उँचे चबूतरे पर तखत पड़ा था। उसी पर महाराज जी विराजमान थे। हम लोग दण्डवत प्रणाम करके चटाई पर बैठ गये। भाई दीन दयाल जी ने मेरे संघर्षमय जीवन का संक्षिप्त परिचय दिया तथा कहा कि यह जन्म से ही आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरित गीता के कर्मयोग की साधना में लगे हुये हैं। महाराज जी तो अंतर्यामी थे, उनसे क्या छिपा था। स्वभावतः मैं उनका कृपा-पात्र बन गया। हम लोगों ने झाँसी पधारने और सत्संग का सुअवसर वहाँ की जनता को प्रदान करने का महाराज जी से अनुरोध किया। दयालु प्रभु ने प्रार्थना स्वीकार कर ली।

३० जून १९४६ को महाराज जी का गीतामंदिर, झाँसी में प्रवचन आयोजित हुआ, मानवतावादी तत्वज्ञ महात्मा ने जो उपदेश दिया, उस उपदेश का सारांश दैनिक पत्रों में प्रकाशित हुआ। वह यहाँ दिया जा रहा है :-

आध्यात्मवाद पर स्वामी जी के प्रवचन पर एक दैनिक ने "स्वार्थी व्यक्ति नास्तिक है" शीर्षक से विस्तार में टिप्पणी प्रकाशित की, जिसमें लिखा – "अपने ही स्वार्थों को चाहने वाले व्यक्ति नास्तिक होते हैं। इसके विपरीत जो व्यक्ति समाज का हित चाहते हैं, और जिन्हें सारा समाज प्रिय होता है, उन्हें समाजवादी कहते हैं। इस प्रकार के समाजवाद की चर्चा हमारे वैदिक ग्रन्थों में है। हमारी संस्कृति का यह एक विशेष अंग रहा है, किन्तु उन सबसे श्रेष्ठ जैसा कि हमारे शास्त्रों में बताया गया है – वे है जो अखिल विश्व का सारी मानव जाति का कल्याण चाहते हैं। यह तीसरे प्रकार के व्यक्ति को हमारे वैदिक शास्त्र सर्वश्रेष्ठ मानते रहे हैं। ये शब्द कल पीताम्बरा पीठ के स्वामी जी ने गीता समिति के तत्वावधान में प्रवचन करते हुये कहे। स्वामी जी ने आगे कहा – मानव जीवन का उद्देश्य सांसारिक माया जाल से मुक्त होना है, यह तभी होता है, जब हम गीता द्वारा सिखाए हुये ज्ञान को प्राप्त कर उसे कार्य रूप में परिणत करें, तथा उसकी साधना करें। भारतीय धर्म शास्त्रों के अन्तर्गत ज्ञानयोग

और कर्म-योग दो सिद्धान्त हैं, इन्हीं दोनों को प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग के नाम से कहते हैं, ये एक दूसरे के विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं। स्वामी जी ने बताया कि आत्मा जिसे लोग 'अहं' या 'मैं' समझते हैं, ईश्वर का ही अंश है। जो व्यक्ति ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करता है वह व्यवहारिक रूप से अपनी सत्ता को अस्वीकार करता है। आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने में ही मानव जाति का कल्याण है, उसे जानकर ही मनुष्य सांसारिक बंधनों से दूर हो जाता है, स्वामी जी ने कहा कि ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात् मनुष्य अपने कर्तव्य का निर्णय कर सकता है, और यह निश्चय कर सकता है कि अमुक समय में उसे क्या करना चाहिये। गीता के आरंभ के अध्यायों ने आत्मज्ञान पर प्रकाश डालते हुये आगे के भावों में मनुष्य के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया''।

अध्यात्म ज्ञान विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए पूज्य स्वामी जी महाराज सहमत थे। तदनुसार उसकी रजिस्ट्री कराने के लिए नियमावली तैयार की गयी, संस्था की रजिस्ट्री हो गयी। उन्ही दिनों विख्यात क्रांतिकारी राजा महेन्द्र प्रताप भारत वापस आये। वह जब मद्रास में जहाज से वापस उतरे तो उन्हें अध्यात्म ज्ञान विश्वविद्यालय के उद्‌घाटन करने का निमंत्रण मिला। उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया और वह १० अक्टूबर १९४६ को झाँसी पधारे। परम पूज्य स्वामी जी महाराज ६ अक्टूबर १९४६ को ही गोपाल की बगिया झाँसी आ गये थे। महाराज जी की अध्यक्षता में विशाल समारोह हुआ। लगभग बीस हजार नर-नारी उद्‌घाटन में उपस्थित थे।

उन्हीं दिनों नोवा खाली साम्प्रदायिक दंगों में लाखों नरनारियों का संहार हो रहा था। महाराज जी द्रवित हो उठे और एक रात्रि को भीषण नर संहार ज्वाला के शमन के लिए उन्होंने सवा लाख गायत्री जप का यज्ञ करने का संकल्प कर लिया। यों तो मैं बैंक का काम समाप्त करके प्राय: पूरा समय श्री चरणों के निकट ही बिताता था, पर उन्होंने जब यह निर्णय किया, तब मैं उनके निकट नहीं था। प्रात: जब दर्शनार्थ पहुँचा तो मुझे आदेश हुआ कि तुरंत व्यवस्था हो। मानवता का कल्याण चाहने वाले नि:स्पृह महात्मा की भावना ईश्वर आज्ञा होती है। न जाने कैसे सवा लाख गायत्री यज्ञ की व्यवस्था हो गयी। मुझ अकिंचन के लिए जो असंभव था, वह सब सफलतापूर्वक संपन्न हो गया। समाचार पत्रों में यज्ञ संपन्न होने का समाचार छपा, वह इस प्रकार है–

''जागरण, दिनांक २०-११-४६

गायत्री जप यज्ञ

देश में शांति के लिए, गत १८ नवम्बर को अध्यात्म ज्ञान विश्वविद्यालय में देश में शांति के लिए सवा लाख गायत्री जप यज्ञ बड़ी शांति के साथ संपन्न हो

गया। एक लाख अड़तीस हजार गायत्री मंत्रों का जप हुआ और सायंकाल सवा मन का हवन हुआ"।

जो अमानुषिक अत्याचार नोवा खाली में हुये उनकी विस्तृत जानकारी से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, हजारो हिन्दू युवतियों के साथ बलात्कार तथा अपहरण पशुता का क्रूर कृत्य था, महाराज जी इस अत्याचार को सहन न कर सके। देश के बड़े बडे सुधारक तथा राष्ट्रवादी मौन थे, दयालु स्वामी जी महाराज ने धार्मिक घोषणा की कि बलात् जिन युवतियों का अपहरण हुआ है, वह निर्दोष हैं, उन्हें हिन्दू समाज को वापस लेना चाहिये। उनका वक्तव्य जो उस समय हिन्दी और अँग्रेजी पत्रों में छपा था वह यहाँ दिया जा रहा है। महाराज जी के वक्तव्य के बाद ही महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का भी वक्तव्य स्वामी जी महाराज के समर्थन में प्रकाशित हुआ–

जागरण, २.११.४६,

समाज से अपील

नोआ खाली को घटनाओं पर आध्यात्मिक ज्ञान विश्वविद्यालय के प्रिन्सिपल को श्री अनन्त स्वामी जी ने निम्न वक्तव्य दिया है–

"पूर्वीय बंगाल में जो बलात्कार से धर्म परिवर्तन तथा अधार्मिक बातें हिन्दुओं के साथ की जा रही हैं, सिद्धान्ततः हिन्दू समाज में ऐसे हिन्दुओं को मिला लेना, धर्म एवं धर्म शास्त्र के विरुद्ध नहीं है। हिन्दू धर्म के बड़े बड़े – धर्माचार्य तथा पंडित समाजों का इस समय यह परम कर्तव्य है कि अपनी-अपनी व्यवस्थाओं द्वारा उन असहाय व्यक्तियों को पुनः समाज में मिलाने की शीघ्रातिशीघ्र व्यवस्था दें।" इसी प्रकार अमृत बाजार पत्रिका (अँग्रेजी दैनिक) ने २.११.४६ को एक रिपोर्ट निम्नानुसार प्रकाशित की –

AGNYAT SWAMI'S APPEAL

Scriptures do not Recognise

Conversion under Duress

(from our own correspondent)

JHANSI Oct. 31 :- An appeal to the religious heads of the Hindu Society, including Jagatguru Shankaracharya and Ramanujacharya, to give sanction in favour of retaking into the Hindu fold the forcibly converted Hindu men and women in East Bengal, was made by Agnyat Swami, Principal Adhyatma Gyan Vishwa vidyalaya (university for spiritual training), in a press

statement, Quoting extensively from Nirnayasindhu, Kalivargya Prakash, authoritating books on Hinduism Swamiji said "It is clearly laid that forcibly converted person should be deemed as sinless and be taken back into the Hindu fold without their undergoing any penance."

"I hope the Swamiji concluded, the religious head of the Hindu society including Shankaracharya and Ramanujacharya will rise to the occasion and issue injuction in favour of reconversion of the countless Hindu men and women who embraced Islam under Duress in Bengal."

गोपाल की बगिया झांसी उन दिनों आध्यात्मिक वातावरण से ओत-प्रोत रहती थी। प्राय: अठारह घण्टे ध्यान, भजन, पठन-पाठन तथा प्रवचन चलता रहता था। नालंदा विश्वविद्यालय की पाठ्यविधि के अनुसार भारत वर्ष के विभिन्न स्थानों पर-परीक्षा केन्द्र स्थापित किये गये। प्रश्न पत्र एक महीना पहले परीक्षार्थी को दे दिया जाता था, और उसे खुली छूट थी कि वह पुस्तकें पढ़ें। विद्वानों से प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करें, परन्तु जब प्रश्न पत्र एक महीना पहले परीक्षार्थी को दे दिया जाता था, और उसे खुली छूट थी कि वह पुस्तकें पढ़े। विद्वानों से प्रश्नों के उत्तर ज्ञात करें, परन्तु जब प्रश्न पत्र के उत्तर लिखें तो जो स्वयं को ठीक जान पड़े, वही लिखे। इन परीक्षाओं का परीक्षाफल भी घोषित होता रहता था।

गोपाल की बगिया झाँसी में अधिकांश समय मैं महाराज जी के सत्संग में ही लगाने का प्रयत्न करता था। रात्रि में भी जब तक दयालु शयन के लिए नहीं जाते, मैं उन्हीं के पास रहता था। एक रात्रि को लगभग बारह बजे मौज में आकर टहलते हुए कहने लगे कि– "मैं काशी में संस्कृत पढ़ता था, मेरी आयु १८ वर्ष की थी। मेरे मन में उत्कट वैराग्य जागृत हो उठा। मैंने संन्यास ले लिया, तथा ज्ञान मार्गी संन्यासी को गुरु बना लिया। उसके बाद अकेला इधर-उधर बिचरने लगा। घूमते हुये पंजाब पहुंच गया। वहाँ एक महन्त के स्थान पर ठहर गया। वह महन्त जी बीमार पड़े, उन्हें खून की उल्टी और पाखाने होने लगे। महन्त बहुत धनी और वैभव-शाली थे। उनके शिष्य भी उनके अनन्य भक्त थे। शिष्यों ने अधिक से अधिक धन खर्च करके उनका उपचार कराया, परन्तु उनकी हालत बिगड़ती ही गयी। ऐसा समझा जाने लगा कि उनका अंत समय निकट है। इसी नैराश्य की स्थिति में महन्त के शिष्य प्रात: उपचार के लिये कहीं जा रहे थे। उन्हें एक वृक्ष के नीचे एक महात्मा ध्यानस्थ दिखाई पड़े, यह शिष्य वहीं बैठ गये। जब महात्मा जी की समाधि भंग

हुयी तो शिष्यों ने हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना की कि वह उनके गुरु जी महन्त पर दया करें और उन्हें अच्छा करने की कृपा करें। महात्मा जी ने पांच यंत्र बनाकर दिये और कहा– चार यंत्र तो छुआरे की गुठली निकाल कर उसके अंदर रख, चारपाई के चारों पायें के पास गाड़ देना और पांचवा यंत्र एक कोरे घट में रखकर एक रुपया डालकर घट को अच्छी तरह बन्द कर देना। उसे सिरहाने रख देना और घट पर बराबर कड़ा पहारा रखना, कोई उसके पास जाने न पाये, दूसरे दिन प्रात: घट खोलना और यदि रुपया वहाँ न मिले तो समझ लेना कि तुम्हारे गुरु महन्त जी अच्छे हो जायेंगे।

महन्त जी के शिष्य वहीं से लौट आये और मुझे (स्वामीजी महाराज को) सब वृत्तान्त बतलाये, परन्तु मुझे इन बातों पर कोई विश्वास न था। महन्त के शिष्य ने महात्मा जी के बतलाये ढंग से यंत्रों का प्रयोग किया। चूँकि मुझे इन बातों पर विश्वास नहीं था, अत: मैंने बड़ी होशियारी से घट का पहरा दिया कि देखे कैसे रुपया घट के अंदर का गायब होता है, परन्तु जब प्रात: घट खोला गया तो रुपया गायब था और महन्त जी मरणावस्था में थे वह उठ कर बैठ गये और खाने को माँगने लगे। एक-दो दिन में वह चंगे हो गये। इस घटना ने मुझे यंत्र, मंत्र, तंत्र की विद्या सीखने के लिये अधीर बना दिया। मैंने तब जाना कि यह तो कोई महान विद्या है। फिर मैं उसकी खोज में निकल पड़ा। जहाँ क़हीं किसी हस्तलिखित पुस्तक अथवा किसी तन्त्र के जानकार का पता लगता है, मैं वहाँ जाता। परन्तु मुझे कहीं कोई सहारा न मिला। फिर भी मैं अपनी जिज्ञासा शांत करने में लगा ही रहा।

भटकते-भटकते दतिया आ गया। यहाँ बनखण्डी में जंगल जैसा भयानक वातावरण था। रात में कोई यहाँ नहीं आता था। मुझे भी लोगों ने रात में यहाँ न ठहरने के लिए कहा, पर मेरे पैर में घाव था, और मैं चल फिर नहीं सकता था। अत: मैं यही पड़ा रहा। बाधाओं ने घेरा, पर मैं तो अपनी धुन में था। मुझे भय कहाँ?''

इसके आगे फिर कुछ नहीं बतलाये और चुप हो गये। मुझसे जाने को कहे। सिद्धान्त रहस्य के द्वितीय संस्करण में यह वृतान्त मैं देना चाहता था, पर महाराज जी की अनुमति नहीं हुयी। महाराज जी मुझसे कहा करते थे कि तन्त्र विज्ञान के सम्बन्ध में गलत धारणाएँ लोगों ने बना रखी है। इस-विद्या का भौतिक कामनाओं के लिये दुरुपयोग भी होता है। वास्तव में कलिकाल में आत्मज्ञान के लिये तन्त्र-साधना सरल और सुगम साधना-मार्ग है। विद्या मार्ग और अविद्या-मार्ग दोनों ही ब्रह्म साक्षात्कार के परम लक्ष्य के लिये उपयोगी है।

उस समय धौलपुर सेन्ट्रल जेल के सुपरिन्टेडेंट स्व. कुँवर नारायण जी थे। महाराज जी ने उनका परिचय देते हुये बतलाया कि उन्हें आज तक जितने आत्मज्ञानियों से मिलने का अवसर मिला, उनमें कुँअर साहब सर्व श्रेष्ठ जान पड़े अत: हम लोगों ने अध्यात्म ज्ञान विश्वविद्यालय के संस्थापक मंडल में उन्हें भी सम्मिलित कर लिया।

दतिया में आन्दोलन छिड़ जाने के कारण स्वामी जी महाराज झाँसी से दतियाँ चले गये और वहाँ से धौलपुर चले गये। मैं भी महाराज जी के दर्शन के लिए झाँसी से धौलपुर गया। महाराज जी कुंअर नारायण सिंह के साथ जेल पर ही ठहरे थे। वहीं मुझे सर्व प्रथम कुँअर साहब के सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। महाराज जी ने जो कुछ उनके संबंध में कहा था, वह यथार्थ था। कुँअर साहब के शरीर पर ऐसा घाव था जिससे सदैव मवाद निकलता रहता था। हर दो घण्टे पर उन्हें पट्टी बदलनी पड़ती थी। इतना शारीरिक कष्ट होते हुये भी ठाकुर साहब सदैव प्रसन्न रहते थे। किसी से सेवा भी स्वीकार नहीं करते थे। वहाँ नारायण सिंह जी ने बताया कि धौलपुर नरेश पूज्यपाद के लेखों को बड़े ध्यान से पढ़ते हैं और कोई गुजरात के राजा पूज्यपाद के दर्शन के लिये लालायित हैं। अध्यात्म ज्ञान विश्वविद्यालय की योजना को सफल बनाने के लिये तथा उसके द्वारा अधिक से अधिक लोगों का आध्यात्मिक जीवन बनाने के लिये धन की आवश्यकता थी। हम सदैव इसी उधेड़बुन में रहते थे कि कहीं से धन जुटाया जाये। एक दिन महाराज जी शौच के लिये चले तो मैं भी उनके साथ-साथ चला गया। उनको प्रसन्न मुद्रा में देखकर मैंने निवेदन किया कि महाराज जी आपकी प्रतिभा से बड़े-बडे राजा महाराजा प्रभावित हैं। यदि आप एक इशारा मात्र कर दे तो लाखों रुपया अध्यात्म ज्ञान विश्वविद्यालय के लिये मिल सकता है – मेरी यह बात सुनकर महाराज जी ठहाका लगाकर खूब जोर से हँसे। कमंडल पृथ्वी पर रख दिये और खडे हो गये। गंभीर होकर मुझसे कहने लगे। कि तुम बड़े मूर्ख हो, राजाओं के पैसे से अध्यात्म ज्ञान का प्रचार और प्रसार नहीं हो सकता, वरन परम उद्देश्य ही विफल हो जायेगा। तुम लगे रहो – **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** के अनुसार चलाते रहो। यदि उसकी मर्जी होगी तो वह काम आगे बढेगा, और यदि नहीं बढ़ता तो कोई चिन्ता नहीं। यह सुनकर मैं स्तंभित रह गया। अब मैं भी समझने लगा कि शोषण द्वारा एकत्रित धन उपयोगी नहीं हो सकता।

फतेहगढ़ (उ. प्र.) से मैंने 'अधिकारी' हिन्दी साप्ताहिक का संपादन एवं प्रकाशन १५ अगस्त १९४९ में प्रारंभ किया। प्रथम अंक के मुख पृष्ठ पर भगवती की चतुर्भुजी मूर्ति प्रकाशित हुयी थी। महाराज जी ने उस अंक को पढ़ा और निम्नांकित शुभाशीर्वाद प्रकाशनार्थ भेजा।

शुभ कामना

'अधिकारी' की १५ अगस्त की प्रति प्राप्त हुयी। पत्र सामयिक विचारों का प्रतीक है। संपादकीय लेख तथा अन्य लेखकों की विचार धारा भी उपयोगी है। 'अधिकारी' को राष्ट्रीय बातों की आवश्यकता नहीं है, उसे आध्यात्मिकता एवं धार्मिकता के क्षेत्र में भी अपना अधिकार स्थापन करना है। राष्ट्रीय विचार धारा के साथ अध्यात्म एवं धर्म का सम्मिलन होने पर ही "अधिकारी" की पूर्णता हो सकेगी। मैं सर्वथा 'अधिकारी' की उन्नति एवं चिरायु की अभिकांक्षा करता हूँ।

– *स्वामी*

श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज

वनखण्डी दतिया (मध्य भारत)

मई १९६४ ई. में छोटी पुत्री का विवाह तय करने में कठिन परिश्रम करना पड़ा, उसी से रोग ग्रसित हो गया, उपचार जो हुआ, वह घातक बन गया, पेशाब बन्द हो गयी, मैंने ऑपरेशन कराने से इन्कार कर दिया। छब्बीस दिन तक पेशाब बन्द रही, छब्बीसवें दिन दोपहर को आँख झपक गयी, देखा कि पूज्यपाद शौच होकर लौटे है। उन्होंने हमारे घर के सामने चबूतरे पर चढ़कर कमण्डल रख दिया और नचला निकालकर फैंक दिया है। बस, आँख खुल गयी, आँखों में आँसू आ गये, मैंने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि अब हम अच्छे हो गये। तुरंत महाराज जी को पत्र लिखा, उसी रात को पेशाब हो गयी और तब से बराबर ठीक रहा।

५ जुलाई १९७८ को मैं श्री पीताम्बरा पीठ दतिया पर पहुँचा था और ८ जुलाई १९७८ को वापिस चला आया था। तीन दिन के सत्संग के समय में मैंने महाराज जी को प्रतिभोदय तथा कुण्डलिनी पर लिखा गया शोध-पत्र भेंट किया था। महाराज जी ने उसे पढ़वाकर सुना और उन्होंने कहा कि विज्ञान का अधिक आधार मानकर लिखा गया है, परन्तु मेरी लगन को देखकर प्रसन्न मुद्रा में बोले– मैं तुम्हें दो मंत्र देता हूँ, उनका जाप करो। उनका आदेश पालन करने में सदैव कल्याण ही होता है। चलते समय जब प्रणाम करने पहुँचा, तो वे मूढ़ा पर बैठे माला जप रहे थे, मैंने माथा टेका और जब सिर उठाया तो महाराज जी ने ऊर्ध्वनेत्र से मेरी ओर देखा। वह नेत्र-दृष्टि बहुधा हृदय पटल पर कौंध जाती है। खुले आकाश की भांति वह दृष्टिपात था। यही हमारे लिये पूज्यपाद के अंतिम दर्शन थे।

पूज्यपाद के चरणों में शत्-शत् प्रणाम।

***

आराध्यदेव

— *रामकृष्ण पाण्डेय*
मुबारक गंज, फैजाबाद

मेरी पूर्व दिनचर्या न तो आध्यात्मिक थी और न ही मैं इस ओर किसी भी प्रकार उन्मुख हो सका था। यह स्थिति मेरी पूज्य माताजी और पिताजी के अंतर्मन में सदैव चिन्ता का कारण रहती थी। मेरे माता पिता नितान्त धर्मनिष्ठ, आचरणवान एवं आध्यात्मिक और कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे। उन्होंने किस प्रकार पुत्र मोह के आवरण में इस स्थिति को झेला होगा, यह विचार भर करने पर समूचे शरीर में सिहरन सी व्याप्त हो जाती है। आरंभ से ही वामपंथी विचारों के प्रभाव स्वरूप समाजवादी आन्दोलन के संबंध रहने और राजनीति विज्ञान में एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त करके भी निकट से वर्तमान राजनीति के जिस विकृत रूप को समझने का संयोग प्राप्त हुआ, उसने यदा कदा मस्तिष्क में कुछ प्रश्न अवश्य उभारे, परंन्तु समाधान उपलब्ध न हुआ।

कुछ समय पश्चात् मैं ट्रेनिंग के लिये इलाहाबाद गया। यहाँ श्री कादम्बी जी से भेंट हो गयी। ये कुछ-कुछ मनहूस से प्रतीत होने वाले गुम-सुम और अपने मैं खोये-खोये व्यक्तित्व के स्वामी थे। कादम्बी के प्रति मेरा पूर्वाग्रह समाप्त हुआ और जितना मैंने उन्हें समझने की चेष्टा की उतने ही वह जीवट के आदमी प्रतीत हुये। कई बार कुरेदने और पूछने पर बस हाँ हूँ कह कर रह जाते, कभी-कभी लम्बी चुपी साध लेते। एक दिन जब मैं उलझ ही गया तो जैसे वह पसीज उठे। अपने रक्तिम नेत्रों से निरंतर घूरते हुये कुछ क्षण पश्चात खिलखिला कर हंस पडे। कहने लगे– "मैं तुम्हें इस संबंध में कुछ बता नहीं सकता। यह मेरा अधिकार नहीं है। हाँ, अगर तुम्हारी रुचि है–" कहते कहते अपने सिरहाने से एक भव्य चित्र उठाकर दिखाया और राय दी कि मुझे दतिया जाना चाहिये। यदि भाग्य में कुछ होगा तो वहीं से प्राप्त होगा। मन की गहराई में कादम्बी के शब्द उतर गये। मुझ पर एक विचित्र सा भाव धीरे-धीरे प्रभावी होने लगा। चाहकर भी मैं संभल नहीं पा रहा था। कुछ विचित्र विचित्र सी स्थिति व्याप्त रहने लगी, और एक दिन बिना किसीसे कुछ कहे दतिया पहुँच गया।

मेरा प्रथम साक्षात्कार पूज्य महाराज से कुछ ऐसा था जिसकी मुझ अकिंचन ने कल्पना भी न की थी। अलबत्ता, यात्रा में एक महत्वपूर्ण स्वप्न अवश्य हुआ था जिसका अर्थबोध दतिया पहुँचने और पूज्य श्री का दर्शन प्राप्त होने के पश्चात् ही भलीभाँति समझ में आया। पूज्य महाराज ने, कोई परिचय न होने पर भी मुझे नाम से पुकारा। फिर बहुत कुछ ऐसा कहा जो सदैव के लिये श्री चरणों का सान्निध्य प्राप्त करने हेतु पर्याप्त था। महाराज ने कहा – "हम आचरण देखते हैं पांडेय जी! यह अखाड़ा है, रियाज रोज करना चाहिये। पहचान रियाज से होती है दंगल से नहीं।" इतना कह कर महाराज ने पूछा था – "क्या समझे?" और मैं एक एक शब्द की गहराई में डूबता तैरता रहा। सिर्फ उत्तर भर के लिये मुँह से निकला – 'जी'। इतना सारगर्भित उपदेश एक नये आत्मविश्वास और ओज का संचार प्रसाद रूप में प्रथम यात्रा की बहुमूल्य निधि थी।

प्रथम यात्रा के पश्चात् तो दतिया आने जाने की राह ही बन गयी, और मेरी इस स्थिति पर उर्दू के एक शायर की यह पंक्ति लागू होती है–

"बनाते है वह जब अपना गिरफ्तार किसी को,
कर देते हैं भागने की हर राहे मुफिर बंद।"

पीठ पर गरिमायुक्त अनुशासन, साधक बन्धुओं की कर्तव्यपरायणता और पूज्यपाद के उद्‌बोधन ने एक के पश्चात् एक प्रभाव सर्जन किया। श्री पूज्य महाराज के निर्देश, उनकी तदनुरूप आस्था, निर्मलता और दृढ़ भक्ति सहित पालन उन अनुभूतियों का आधार है जो विपरीत और अनुकूल परिस्थितियों में किसी अंतर का बोध नहीं होने देता। महाराजश्री की शैली और बातचीत का एक अनूठा अंदाज था। एक अवसर पर महाराज के पैरों में 'आयोडैक्स' मल रहा था। बस्ती से एक साधक आये, उन्होंने श्री चरणों के विषय में जिज्ञासा की। महाराज किंचित मृदुलता सहित मुस्कराये, फिर बोले – 'इन चरणों में जो आ जाता है फिर वह छोड़ता नहीं।' कितनी बड़ी बात किस अंदाज में महाराज ने कह दी। मैं तो सुनकर भी भाव विभोर हो गया। मैंने प्राय: अनुभव किया है, संभवत: अन्य साधक बँधुओं का भी ऐसा ही अनुभव हो कि पूज्य महाराज के निकट जिस अभूतपूर्व स्थिति का बोध होता है वह है उनके निकट शेष सब ओर की विस्मृति। पूज्य श्री के सान्निध्य में व्यक्ति को और कुछ भी स्मरण नहीं रहता। यह एक ऐसी चुम्बकीय शक्ति के प्रवाह का आकर्षण था कि चित्त शक्ति वहीं स्थिर होकर एकात्म हो जाने के लिए विव्हल होती प्रतीतमान लगती थी। प्रात: स्मरणीय श्री गुरुदेव अत्यंत विलक्षण दृष्टि और कुशाग्र तर्क शक्ति से संपन्न दिव्य पौरुष के धनी मानी स्वामी थे। कितनी ही बार का अनुभव है कि जब भी किसी जिज्ञासा समाधान हेतु पूज्यपाद से निवेदन करने की ठानता तो पूज्य

गुरुदेव बिना मुझे संबोधित किये विषय की व्याख्या कर गुजरते और फिर मेरी ओर मुंह फेर कर पूछते – "क्या समझे पांडे जी?" ऐसे अन्तर्यामी थे महाराज। उनका एक-एक शब्द अत्यंत स्फूर्ति एवं प्रभावोत्पादक होता था। अनर्गल वार्तालाप में कोई रुचि न थी। एक बार वैदिक युग में विस्तारपूर्वक उन्होंने समाजवाद की व्याख्या की थी। और फिर हँसते हुये कहा था – "आपका समाजवाद इससे क्या भिन्न है?" उनकी पारखी दृष्टि अंतर तक प्रवेश कर सामने वाले व्यक्ति का यथार्थ स्पष्ट कर देती थी। वह प्रदान उतना ही करते थे जितना प्राप्त कर्ता पचा पाता। न कम न ही अधिक।

एक अवसर पर मेरे संपर्क में रहने वाले एक परिवार के लोग पूज्यपाद के दर्शन के लिये गये। साथ में एक बालिका भी थी। वह पूजा-पाठ और जप में बड़ी श्रद्धा रखती थी। उसकी श्रद्धा से प्रभावित होकर मैंने उसे भगवती श्री दुर्गा की एक रजत मूर्ति दी थी। वह पीठ पर ही उस मूर्ति को साथ लेकर गयी थी। बालिका ने मुझसे आग्रह किया कि उस मूर्ति को मैं महाराज से स्पर्श करा दूँ। मैंने उसे समझाया कि वह स्वयं पूज्यपाद के समक्ष उपस्थित हो, परन्तु कुछ कहे नहीं। महाराज अंतर्मन की बात पढ़ लेते हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है वह अवश्य कृपा करेंगे। बालिका मूर्ति अपने आँचल में छिपा कर श्रद्धा पूर्वक महाराज के समीप जा बैठी। पूज्य महाराज ने प्रश्न किया– "क्या करती हो?" बालिका चुपचाप साहस जुटाने का प्रयत्न कर रही थी। तभी महाराज ने पूछा – "वह क्या है?" बालिका ने मूर्ति महाराज के कर कमलों में सौंप दी। महाराज ने मूर्ति देखकर मूर्ति बालिका को लौटाते हुये कुछ निर्देश भी प्रदान किये। ऐसा दयाभाव से पूर्ण व्यक्तित्व था पूज्यपाद श्री गुरुदेव का।

शायद महाराज के दर्शन का मेरा अंतिम अवसर था। कुछ समय पीठ पर रहने के पश्चात मैं लौटने की सोच रहा था। न जाने कैसे महाराज को भनक लग गयी, बोले– 'रुक जाते तो ठीक था' फिर पूज्यपाद ने एक शिष्य को कुछ लाने का संकेत दिया। जब वे ले आये तो पूज्यपाद ने संबंधित विषय की व्याख्या की, विधि-विधान बताया, उच्चारण किया और उच्चारण करा कर नित्य नियमित करने की आज्ञा प्रदान की।

ऐसे दयालु थे गुरुदेव! माँ की वात्सल्यमयी ममता और पिता का स्नेह दोनों का युगल रूप मेरी अनुभूति का सार है। मेरे लिये महाराज साक्षात शिव और भवानी के युगल रूप थे। वह आज भी नित्य हैं, अनंत हैं, निरंतर अनूभूतियों में सजीव हैं।

***

पूज्यपाद का अलौकिक व्यक्तित्व

— *ए. पी. त्रिपाठी*
प्रोफेसर, भोपाल

विज्ञान का छात्र और निर्मूल अहं के कारण मैं प्रारंभ में आध्यात्मिक क्षेत्र के बारे में कुछ न जान सका, परन्तु पूज्यपाद श्री स्वामी जी की कृपा एवं आशीर्वाद के फलस्वरूप आध्यात्मिकता से संबंधित बहुत सी बातों को सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कहा भी तो है कि सन्तों की वाणी ईश्वर की वाणी है, सन्तों की उपदेश वार्ता पर ईश्वर की स्वीकृति की मुहर लगी होती है। इसलिये श्रोताओं पर उन उपदेशों का शुभ परिणाम होता है। मेरे प्रकरण में भी ऐसा ही हुआ। पूज्य स्वामी जी के दर्शन करने का सुअवसर मुझे १० वर्ष पूर्व प्राप्त हुआ था। उस समय साधारण बातचीत में मेरा एक प्रश्न था कि आध्यात्मिक साधना करने पर उसका प्रभाव क्यों नहीं मिलता है? तो उनका संक्षिप्त उत्तर था – मेरी शैक्षणिक योग्यता क्या है? और कितने वर्षों में यह प्राप्त की है? इसका उत्तर देने पर उन्होंने समझाया था कि इतने वर्षों के बाद जब यह शैक्षणिक योग्यता (नाम मात्र की) मिली है तो आध्यात्मिक साधना के फल की इतनी जल्दी कैसे? मैंने उनकी अमूल्य बात सुनी अवश्य, पर साधारण तौर पर ही, योग्य समय गुजरता गया।

चार वर्ष पूर्व एक बार जब मैं स्वामी जी के समक्ष बैठा हुआ था। हमारे एक साथी ने उनसे प्रार्थना की – हैड इंज्यूरी के सर्वोत्तम इलाज के बाद भी इनकी (मेरी) स्मरण शक्ति में सुधार नहीं हो रहा है। इस पर महाराज जी ने कहा– वे दवा तो दे सकते हैं, पर मरीज के लिये कुछ शर्तों के साथ। मैंने शर्तों को मंजूर करते हुये जब 'प्रसाद' रूप दवा देने के लिए निवेदन किया तो उनका स्पष्ट उत्तर था कि यह 'प्रसाद' नहीं, वरन् दवा है। उन्होंने भले ही गुप्त रूप से उसे दवा की संज्ञा दी, किन्तु उस प्रसाद का अकथनीय लाभ मुझे मिला है।

ऐसे ही एक बार अकेले में उनसे मंत्र देने हेतु निवेदन कर बैठा। मंत्र तो नहीं मिला, पर यह सीख अवश्य मिली कि जब सूर्य दक्षिणायन होते हैं, तब मंत्र नहीं मिलता। कुछ समय बाद अनायास ही अगली भेंट में मेरी यह मनोकामना भी पूर्ण हो गयी।

अनुपम मुस्कान व मोहक सौन्दर्ययुक्त ब्रह्मलीन पूज्यपाद राष्ट्रगुरु श्री अनन्त स्वामी जी महाराज को विनम्र श्रद्धांजलि।

***

श्री स्वामी जी महाराज : एक दिव्य ज्योति

– प्रभुदयाल गोस्वामी
दतिया

श्री स्वामी जी महाराज कहा करते थे कि– संन्यास धारण करते समय मेरे गुरु ने मुझे चार उपदेश दिये थे – (१) नियमित रूप से सदैव भजन करना, (२) नारी वर्ग से दूर रहना, (३) नियमित रूप से सदैव अध्ययन करना, (४) स्थाई रूप से स्थान को न बनाना। पूज्यपाद ने बतलाया कि उक्त चार बातों में से प्रथम तीन का तो उनके द्वारा सफलता पूर्वक निर्वाह हुआ, किन्तु चौथे सूत्र को वे इस कारण क्रियान्वित न कर सके क्यों कि जिस साधना पद्धति का अनुसरण करके उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना अभीष्ट था, उसके लिए एक लंबी अवधि तक एक ही स्थान पर जमकर जप करना वांछित था। फलत: इस स्थान को तलाश करने में उन्होंने भारत का काफी भ्रमण किया। अंत में दतिया आकर श्री वनखण्डेश्वर के मंदिर में जब उन्होंने प्रवेश किया तो उन्हें इस स्थान में सिद्धि की संभावनाओं का अनुभव उसी क्षण होने लगा।

अपने गुरु के इन सभी उपदेशों को पूज्यपाद ने जीवनपर्यन्त अपने आचरण में दृढ़तापूर्वक उतारा। केवल दिन में ही नहीं रात में भी वे अपने निर्धारित कार्यक्रमानुसार नियमित रूप से अनेक बार भजन करते थे। आगन्तुक व्यक्ति से वार्तालाप करते-करते यदि उनकी साधना का समय हो जाता तो वे उस व्यक्ति को नि:संकोच होकर सावधान करते हुये सहज भाव से कहते– "अच्छा जी! अब मेरी ड्यूटी का समय हो गया है, मैं चलता हूँ," कहते हुए वे अन्दर कमरे में चले जाते और साधना में लीन हो जाते।

युवावस्था में ही श्रीचरणों का आगमन दतिया में हुआ और वे बनखण्डी पर रम गये। उनकी साधना, विद्वत्ता और सिद्धि की प्रसिद्धि फैली। आरंभ से ही समय-समय पर श्रीमद्‌भगवत् गीता पर उनके प्रवचन हुये। श्रद्धालु श्रोता उनके दर्शनार्थ एवं प्रवचन सुनने हेतु बनखण्डी पर पहुँचने लगे।

स्वामी जी महाराज अनेक भाषाओं के अच्छे ज्ञाता थे। मंत्र, तंत्र, वेदान्त और दर्शन के तो वे अद्वितीय उद्‌भट विद्वान थे ही। पीताम्बरा पीठ पर अवस्थित सरस्वती मंदिर, पुस्तकालय में काफी बड़ी संख्या में संग्रहीत बहुमूल्य प्रकाशित तथा अप्रकाशित

ग्रंथ स्वामी जी महाराज की रुचि के द्योतक हैं, जिन्हें उन्होंने देश के कोने-कोने से मंगाकर पुस्तकालय को संपन्न बनाया है। वे पूर्ण रूप से सरस्वती पुत्र थे तथा देवभाषा, मंत्र, तंत्र, वेदान्त और दर्शन जैसे विषयों को जिज्ञासु छात्रों को अध्यापित कर उनके प्रचार और प्रसार में सहयोग देकर इन लुप्तप्राय विषयों को पुनर्जीवन दान कर प्रतिष्ठित करने में सक्रिय रहते थे– यहाँ पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि जगत गुरु शंकराचार्य जैसी महान विभूतियाँ श्री स्वामी जी महाराज से परामर्श प्राप्त करने हेतु आश्रम पर पधार कर दतिया नगरी को गौरवान्वित करती थीं।

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। युवावस्था में ही श्री स्वामी जी महाराज का आगमन दतिया में हुआ था– और अपनी तपस्थली के लिये वनखण्डेश्वर महादेव का स्थान उपयुक्त समझकर वे वहाँ रम गये थे। तब यह स्थान इतना सुरम्य और विकसित नहीं था। उस समय इस स्थान पर शिवजी का एक प्राचीन मंदिर था। उसके समीपस्थ मिट्टी का एक कच्चा घर बना हुआ था। जहाँ वर्तमान में भव्य मंदिर में माई पीताम्बरा की मूर्ति बिराजमान है, और पास में ही वीरान श्मशान और भयावह जंगल था। पूज्यपाद की विगत पाच दशकों की तपस्या ने स्थान में आमूल परिवर्तन कर उसे वर्तमान स्वरूप दिया है। केवल भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के मानचित्र में दतिया नगरी को श्रेष्ठ स्थान के रूप में प्रतिष्ठित किया है शक्ति के पुजारियों के लिए पीताम्बरा पीठ जैसे तीर्थ की स्थापना की है। देश विदेश से अगणित सेवक पीताम्बरा पीठ पर आते हैं, श्रद्धा सुमन अर्पित कर स्वेच्छा से सामर्थ्यानुसार पीठ के भौतिक स्वरूप के उन्नयन में हाथ बटाते हैं। पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज अपने पीछे किसी गद्दी की स्थापना करने नहीं आये थे। कदाचित् इसी भाव से उनके ब्रह्मलीन होने के बाद किसी भी व्यक्ति को उत्तराधिकारी बनाकर उनकी गद्दी समर्पित नही की गई।

ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी जी की दिव्यज्योति आश्रम को आज भी दैदीप्यमान किये है, जो श्रद्धालुओं को साधना और सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने में निरंतर सहायक रहेगी।

***

–: वैदिक उपदेश :–

प्रत्येक महापुरुष जो समय समय पर हुए हैं सबने ईश्वरभक्ति से ही अपना एवं संसार का कल्याण सम्पादन किया है। परस्पर एकता की योजना ईश्वर द्वारा ही की जा सकती है। उसकी कृपा का गान सभी ने किया है। सामूहिक उपासना विशेष बलवती होती है।

– *श्रीस्वामीजी*

पूज्यपाद का अनुग्रह

– कन्हैयालाल श्रीवास्तव
धौलपुर

पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के तेजोमय स्वरूप के दर्शन मई सन् १९३२ में धौलपुर में कुंवर नारायण सिंह जी के निवास स्थान – जेल पर हुये। पूज्यपाद ने मुझ पर अनुग्रह किया और मुझे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। पूज्य गुरुदेव धौलपुर में लगभग पांच वर्ष तक रहे और अनेकानेक अनुयायियों पर दया कर समय-समय पर उचित मार्गदर्शन कराते रहे। भगवत् चर्चा विषयक् कार्य तो स्वामी जी के निवास स्थान तथा नरसिंह जी के मंदिर पर प्राय: हर समय होता ही रहा। वेदान्तप्रिय साधकों को वेदान्त के गूढ़ रहस्यों से वे अवगत कराते रहे तथा मंत्र उपासकों को दीक्षा देकर उनके जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर कृतार्थ किया। पूज्यपाद ने संस्कृत-साहित्य प्रचार के लिए धौलपुर के पास बाड़ी में एक संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। कुछ धर्म विरोधियों ने पाठशाला की स्थापना के संबंध में अड़चने प्रस्तुत की, किन्तु यह सब अडचने महाराज जी की कृपा से स्वत: ही लुप्त हो गयी।

दीन दु:खियों पर कृपा करना तथा उनकी करुणा प्रार्थना को स्वीकार करना उनका स्वभाव था। एक बार मैंने सांसारिक पंच क्लेशों से छुटकारा पाने हेतु कोई साधना बताने की प्रार्थना की। पूज्य गुरुदेव ने मेरी रुचि को देखते हुये गोपाल कृष्ण मंत्र की दीक्षा दी और उसके संपन्न करने की विधि से अवगत कराया। लगभग एक वर्ष साधना में रत रहने पर भी सन्तोष प्राप्त नहीं हुआ। मेरी वेदना युक्त प्रार्थना सुनकर पूज्यपाद ने मुझे सूर्यग्रहण के पर्व पर मंत्र जाप का आदेश दिया। बतायी हुयी विधि के अनुसार मैंने सूर्यग्रहण के समाप्त होने तक जाप किया। उसी दिन मुझे अतुल प्रकाश पुंज दृष्टिगोचर हुआ, इस घटना से मुझको आशातीत प्रसन्नता हुयी। दूसरे दिन पूज्यपाद को मैंने इस घटना के संबंध में बताया। पूज्यपाद ने कहा – अब मंत्र सफल हो गया।

कुछ समय पश्चात् मेरे विरोधी प्रबल हो गये। इस संबंध में पूज्यपाद से निवेदन करने पर उन्होंने बटुक भैरव के मंत्र को जपने की आज्ञा दी। इसके जप के पश्चात् ही प्रभाव दृष्टि गोचर हुआ। मेरे सभी विरोधी स्वयं ही उस गर्त में गिर गये, जिसमें मुझे गिराने की सोच रहे थे। पूज्य गुरुदेव का छोटे से छोटे व्यक्ति के साथ भी वैसा ही बर्ताव रहा, जैसा सम्पन्न और प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साथ रहता था।

सन् १९३५ में ग्रीष्मकाल में मुझे पूज्यपाद की अनुकम्पा से पीताम्बरा माता की मूर्ति जो जयपुर से निर्मित होकर आयी थी, धौलपुर से दतिया ले जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इस मूर्ति की स्थापना पूज्यपाद के हस्तकमलों द्वारा दतिया में हुयी। पूज्यपाद गुरुदेव की मेरे ऊपर असीम अनुकम्पा रही, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पूज्यपाद के चरणों में शत्-शत् प्रणाम।

* * *

–: वैदिक उपदेश :–

योगियों ने शक्ति और ब्रह्म की मिली हुई अवस्था यहाँ पर बताई है। अर्द्ध-नारीश्वर इसे योग में बताया है। जैसे नदी समुद्र में मिलकर समुद्ररूप हो जाती है, इसी प्रकार जीवात्मा षट्चक्रों को हठयोग या मन्त्रयोगों के उपायों द्वारा पार करके तत्त्वातीत अवस्था को प्राप्त करता है। जिस प्रकार युक्तिद्वारा दूध से मक्खन निकाल लेते हैं उसी प्रकार जीव मुक्ति से उसे जानकर अविद्या से पृथक् हो जाता है।

– *श्रीस्वामीजी*

समष्टिरूप श्री स्वामी जी

— योगेश्वर प्रसाद मिश्र
कानपुर

ब्रह्मलीन पूज्यपाद राष्ट्रगुरु श्री स्वामी जी महाराज की अनुपम विद्वत्ता, गहन तपश्चर्या एवं साधना सिद्धि के कारण उनके श्री चरणों के सन्निकट नित्य निरंतर बड़े-बड़े विद्वानों, उत्कट साधकों का जमघट रहता था, वही व्यक्ति पूज्यपाद के विषय में सम्यक् प्रकार से लिख सकेंगे। मेरे जैसे अल्पज्ञ तो केवल विनम्र श्रद्धांजलि ही दे पाएँगे।

परमपूज्य महाराज जी के प्रथम दर्शन मुझे १९५४ में हुए थे। उन दिनों पीठ में इस समय जैसी भीड़-भाड़ नहीं होती थी। स्त्रियाँ तो बिल्कुल ही नहीं आती थीं। सहज बातें करते करते वे साधना के गूढ़तम रहस्यों को बता देते थे। उनके श्री मुख से निर्गत सुभाषितों को सुनने में अनिर्वचनीय आनंद आता था। मैं कानपुर के पास के उन्नाव जनपद का निवासी हूँ। पूज्यपाद ने मेरा काव्य प्रेम देख कर सिद्ध सरस्वती स्तोत्र पाठ करने के लिए एवं सरस्वती मंत्र जपने के लिये दिया। कुछ समय पश्चात् सन् १९५८ ई. में मैं महान आधि-व्याधि से ग्रस्त हो गया। परिस्थिति ऐसी थी कि मित्र शत्रु बन कर व्यवहार करने लगे। सगे संबंधी प्रयत्न करने पर भी सहायता न कर पाये। मुझे लगभग चालीस दिनों तक झाँसी के कारागार में रहना पड़ा, वहाँ रहते हुये श्री चरणों के प्रति अनुराग घनीभूत हुआ और बन्दी जीवन से निवृत्त होकर मई मास की प्रचण्ड धूप में झाँसी से पैदल ही चलकर दतिया पहुँचा। उस समय मन में विचार हुआ कि यदि कहीं संसार में मेरा त्राण हो सकता है, तो महाराज जी के श्रीचरणों के सन्निकट। पीठ में पहुंचकर कुएँ पर स्नान कर भीतर गया। महाराज जी भोजन करने के पश्चात् विश्राम हेतु लेटे थे। मैंने जाकर महाराज जी के श्री चरणों पर मस्तक रख दिया और बिलख बिलख कर रोने लगा। महाराज जी ने आँखें खोली और कहा– "कौन है? कौन है?" मेरा वेश निराला था। लगभग तीन चार महीनों की बढी दाढी, वस्त्रों के स्थान पर दूसरों के उतारे हुये जीर्ण शीर्ण मैले कपड़े। दूसरे ही क्षण महाराज जी ने उस दशा में भी पहचान लिया और बोले– "मिश्र जी! यह क्या?" मैंने संक्षेप में अपनी दुर्दशा की कथा-व्यथा सुनाई। वे तखत पर से उठे, मुझे अपने साथ लिये और खिड़की से श्री पीताम्बरा माँ के दर्शन कराये और कहे– "तुम अपने विषय में माँ से कहो। वे समस्त विपत्ति निवारणी हैं।"

मैंने आज्ञानुसार हाथ जोड़े और माँ से कष्ट निवारण की प्रार्थना की। सायंकाल मुझे एक वस्त्र पहिनने के लिये दिया और जप करने के लिये मन्त्र बताया। मै पीठ में ही रह कर जप करने लगा। पूज्यपाद इस अवधि में उत्तरकाशी गये। इसी अन्तराल में पूज्यपाद के आशीर्वाद और माँ की कृपा से शत्रुओं में से किसी का तो स्थानान्तरण हो गया। कोई परलोकवासी हो गया और कुछ बदली परिस्थिति में मित्रवत् आचरण करने लगे।

एक दिन बातों ही बातों में महाराज जी ने मुझसे कहा – "मिश्र जी! संसार तो तुमने देख ही लिया, कोई किसी का नहीं होता। अब तुम मेरे रंग में रंग जाओ।" मैंने मन में सोचा-बिचारा, अपने को टटोला, तो वहां विवेक-वैराग्य का सर्वथा अभाव पाया। अतः उत्तर दिया – "महाराज जी! अभी एक कन्या का विवाह करना है।" महाराज जी यह उत्तर सुनकर उपस्थित जनों से बोले– "देखो, संसार ने इसकी ऐसी दुर्दशा की, किन्तु यह फिर भी संसार को नहीं छोड़ना चाहता" और मेरी ओर उन्मुख होकर बोले – "जाओ और संसार का नर्क अभी और भोगो।"

पूज्यपाद को बड़ा हार्दिक क्लेश था कि पीठ में इतने लोग दूर-दूर से आते हैं, पर प्रायः सभी लौकिक कामनाओं को लेकर आते हैं। सच्चा जिज्ञासु परा विद्या का सत्यान्वेषी कोई दिखाई नहीं देता। वे तन्त्र शास्त्र के महान पंडित थे, पर तन्त्रों के नाम पर फैली हुयी मर्यादाहीनता, अशास्त्रीयता और लम्पटता उन्हें अभीष्ट न थी। वे वाममार्ग के भी ज्ञाता थे। पर इस विषय में वे सर्वसाधारण में वार्तालाप नहीं करते थे। किसी सुयोग्य अधिकारी को पाकर वे उसको उस मार्ग का भी रहस्य बता देते थे। कट्टर शाक्त होते हुए तथा आजीवन शाक्त साधना में रत रह कर उन्होंने लोककल्याण के लिये लोगों को दक्षिणाचार का ही उपदेश दिया।

वे व्यक्ति नहीं संस्था थे। वे व्यष्टि नहीं समष्टि थे। वे अंश नहीं अंशी थे। वे पशु नहीं पशुपति थे। अपनी समग्र विशेषताएँ वे स्वयं ही बता सकते थे, पर यह उनके स्वभाव के विरुद्ध था।

उन नित्य ब्रह्मलीन के श्री चरणों में शत शत प्रणाम।

***

एक श्रद्धाञ्जलि

– स्वामी दिव्यानन्द सरस्वती
कनखल, हरिद्वार

मुझे यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुयी कि श्री पीताम्बरा पीठ परिषद् दतिया द्वारा पूज्यपाद राष्ट्रगुरु श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज की स्मृति में एक स्मृति ग्रंथ के प्रकाशन की योजना बनाई गई है, यह कार्य अत्युत्तम ही नहीं, समय की मांग भी है। इस शुभ कार्य में योगदान करने के लिए मुझसे अनुरोध किया गया है कि मैं भी इस शुभ अवसर पर इस स्मृति ग्रंथ के लिये दो शब्द लिख भेजूं, यह मेरे लिये एक सौभाग्य की बात है, उसके लिये मैं पीठ परिवार का आभारी हूँ।

यूं तो, 'चण्डी' पत्रिका के लेखक की हैसियत से मैं पूज्यपाद श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज से पूर्व परिचित था, कारण कि आप श्री के लेख भी 'चण्डी' पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित होते रहते थे, परन्तु श्री चरणों में प्रत्यक्ष दर्शनों का लाभ मुझे कब और कैसे प्राप्त हुआ, वह एक विचित्र घटना है, जिसका उल्लेख कर देना भी मैं इस अवसर पर अप्रासंगिक नहीं समझता।

श्रद्धेय श्री रामनारायण जी वैद्य झांसी वाले जो महाराज के एक प्रमुख शिष्य हैं, वे हर साल ग्रीष्म काल में यहाँ हमारे आश्रम श्री सूरत गिरी बंगले में आया करते हैं, और यहीं कुछ काल के लिए ठहरते भी हैं, जब मेरा उनसे मिलना होता है तो महाराज श्री व उनके पीठ संबंधी कार्यकलापों का परिचय देते रहते हैं। एक बार जब वे आये तो उनके साथ पूज्य महाराज श्री भी पधारे। आश्रम के कोठारी श्री कैवल्यानंद जी महाराज ने आपके स्वागत-सत्कार के उपलक्ष्य में एक सभा का आयोजन किया, सभी आश्रम के संत महात्मा व अन्य श्रोतागण एकत्रित हुये। जब पूज्य महाराज श्री ने उपस्थित श्रोताओं की ओर एक दृष्टि डाली तो एकाएक बोल उठे– "यहाँ इस आश्रम में स्वामी दिव्यानंद नाम के कोई संन्यासी हैं?" इतना सुनते ही श्री कोठारी जी महाराज ने मुझे बुलावा भेजा, मैं इस समय अपनी कुटिया में ही था, मुझे इस आयोजन का तनिक भी भान नहीं था। तत्काल ही मैं सभा में उपस्थित हुआ, महाराज श्री के दर्शन कर प्रेमपूर्वक दण्डवत प्रणाम कर उनके समीप वहीं बैठ गया। फिर महाराज श्री का विद्वतापूर्ण प्रवचन हुआ, सभी उपस्थित श्रोतागण इस महत्वपूर्ण प्रवचन से आकर्षित व लाभान्वित हुये। इस अद्भुत घटना से

स्पष्ट है कि महाराज श्री का मेरे प्रति कितना अधिक स्नेह था। मैं तो इसको महाराज श्री का एक चमत्कार ही मानता हूँ, यदि ऐसा नहीं होता तो मैं अभागा पूज्यपाद के दर्शनों से वंचित ही रह जाता, अस्तु।

महाराज श्री ने संस्कृत व हिन्दी के कई ग्रन्थों की रचना की है। कुछ पुस्तकों के अध्ययन का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ, पुस्तकों के अध्ययन से मैंने यह अनुभव किया कि आप में वेदों व तंत्रों के समन्वय की कितनी अनूठी कला थी। आपने अपनी एक पुस्तक 'चिद्विलास' मुझे अ-मूल्य ही प्रदान करने की भी कृपा की। यह पुस्तक श्री विद्या के उपासकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

महाराज जी के निधन से धार्मिक क्षेत्र में महान क्षति हुयी है। आजकल धर्माचार्यों का दिनों-दिन अभाव होता जा रहा है। इस कलियुग में धर्म नाम की कोई वस्तु रहेगी ही नहीं क्या?

अंत में मैं पूज्य महाराज श्री के प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पण कर अपने को कृत-कृत्य समझता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही चार पुरुषार्थ हैं। प्रत्येक प्राणी इन्हीं को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर रहा है। धर्म, अर्थ एवं काम ये तीन संसार की उन्नति के लिए बताये गये हैं जिन्हें अभ्युदय नाम से कहा जाता है। चौथा मोक्ष है जिसे परम पुरुषार्थ कहते हैं। मनुष्य-जीवन का यही अन्तिम लक्ष्य है। इसकी भी व्याख्या अनेक आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप से की है तथापि मूल सिद्धान्त में विशेष अन्तर नहीं है।

– ***श्रीस्वामीजी***

श्री चरणों की महिमा

— मदन लाल रस्तोगी
धौलपुर

मैं पूज्य स्वामी जी के पास बड़े संकट के समय में गया था। स्थानीय अदालत से मुझे दुकान खाली करने के आदेश मिल चुके थे और मेरी खुद की दुकान को किरायेदार खाली नहीं कर रहा था। ऐसी गंभीर परिस्थिति में सन् १९६५ में पूज्यपाद की शरण में गया। मैं ने अपनी समस्या का वर्णन पूज्यपाद से किया। पूज्यपाद ने मुझे श्री बगलामुखी स्तोत्र दिया और कहा कि इसको पढ़ लो। कल सुबह चैत्र सुदी पूर्णिमा मंगलवार है, यह माई का दिन है तथा विजय का दिन है, कल से इस स्तोत्र के सौ पाठ प्रतिदिन करना है। अगले दिन से मैंने पाठ प्रारंभ किया, रात्रि में ही मुझे कुछ अनुभव हुआ। प्रात:काल मैंने पूज्यपाद से निवेदन किया। एक माह पश्चात् मुझे कोर्ट से स्टे मिल गया। बाद में मैं पाठ करता रहा। फिर मैं पूज्यपाद के पास गया, उन्होंने पाठों की कुल संख्या पूछकर जोर से सिर पर हाथ रखा, और कहा कि जाओ, अपना पाठ करो, तुम्हारा फैसला ऊपर की अदालत से तो हो चुका है, ये सांसारिक अदालतें तो बनती और बिगड़ती ही रहती हैं, उस अदालत का फैसला अटल है। इस वार्तालाप के बाद मैं धौलपुर लौट आया। न्यायाधीश महोदय ने हमारे वकील से कहा, इस मुकदमे में कुछ भी दम नहीं है, किन्तु उन्हीं न्यायाधीश महोदय ने हमारे पक्ष में ही फैसला कर दिया। यह सब पूज्यपाद की कृपा का फल था।

इस घटना के बाद से मैं लगातार आश्रम पर जाता रहा और पूज्यपाद के निर्देशानुसार साधना में लगा रहा। पूज्यपाद की मुझ अकिंचन व्यक्ति पर अत्यंत कृपा रही। पूज्यपाद के चरण कमलों में सादर प्रणाम।

***

—: वैदिक उपदेश :—

ज्ञानसत्त्व गुण की क्रिया रजोगुण एवं स्थूलता तमोगुण का परिणाम है। जैसे मकान में सब चीजें रखी हों परन्तु प्रकाश न हो तो उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार ज्ञान न होने से जगत् के पदार्थों का व्यवहार नहीं किया जा सकता।

— श्रीस्वामीजी

समदर्शी पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज

– *चन्द्र प्रकाश शर्मा*
एडवोकेट, झांसी

सर्वप्रथम मैं यह उल्लेख करना चाहूँगा कि मैं पूज्यपाद के समीप कैसे पहुँचा? अक्टूबर सन १९६८ की नवरात्रि में मैं एक मुकदमे के संबंध में श्रीरामकृष्ण वर्मा एडवोकेट के पास गया। मुकदमे के बारे में कुछ न बता कर उन्होंने मुझसे पूज्यपाद के दर्शन करने को कहा। इच्छा तो थी ही, मैं सीधा पूज्यपाद के दर्शन हेतु पहुँचा। पूज्यपाद का पहला प्रश्न था – "कौन हो?" मैं दो तीन मिनट तक निरुत्तर सा खड़ा रहा। समझ नहीं सका कि इतने सीधे प्रश्न का क्या उत्तर दूँ। दूसरा प्रश्न उन्होंने किया– "क्यों आये हो?" मैं ने कहा – "दर्शन करने आया हूँ, और यदि कुछ मिल जाये तो लिये जाऊँगा।" पुनः प्रश्न था – "क्या चाहिये?" मैं ने कहा – "जो आप देना चाहे।" इस पर पूज्यपाद अन्य सेवकों की ओर देखकर हँसे और कहे – "ये वकील हैं, मुझे उल्टा फंसाना चाहते हैं।" अब मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि पूज्यपाद की कृपा मेरे ऊपर होने वाली है। फिर उन्होंने कहा– "आज तो तुम विलम्ब से आये हो, अब अष्टमी को आना।" ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई अप्राप्य वस्तु मुझे बिना प्रयास के ही मिल गयी हो।

श्री वर्माजी के निर्देशानुसार मैं आश्रम में अष्टमी को प्रातः स्नान करके बाहर बरामदे में प्रसाद, माला, कापी व पेन लेकर बैठ गया। अभी तक मुझे पूज्यपाद के दर्शन नहीं हुये थे। न ही उनकी कृपा दृष्टि आज तक मुझ पर पड़ सकी थी। साधकगण अन्दर आ-जा रहे थे। मैं सोच रहा था कि कैसे पूज्यपाद को अपने आने की सूचना दूँ? इतने में एक सज्जन अंदर से आये और पूछे, आप वकील हैं – झाँसी से आये हैं? मेरे 'हाँ' कहने पर उन्होंने कहा – 'पूज्यपाद ने आपको बुलाया है।' मुझे आश्चर्य हुआ कि पांच दिन पूर्व प्रथम बार स्वामी जी के दर्शन हुये थे। आज वे कैसे जान गये कि मैं बाहर बैठा हूँ। यहीं से विश्वास दृढ़ हुआ कि पूज्यपाद अंतर्यामी हैं, उनसे कुछ छिपा नहीं है।

मैं अन्दर गया, प्रणाम किया। पूज्यपाद का फिर वही प्रश्न था – 'क्या चाहिये?' मैंने भी वही उत्तर दिया – "जो मिल जायेगा, ले लूंगा।" पूज्यपाद ने फिर हँस कर वही शब्द कहे, और कुछ क्षण के लिये नेत्र बन्द किये। फिर नेत्र खोले और

मेरी ओर हाथ बढ़ाये, मैंने कापी व पेन उनके हाथ में दिया, पूज्यपाद ने कापी पर मंत्र लिखे, माला हाथ में लेकर मुझे दिये और कहे – ''मेहनत करना, प्रतिष्ठा बढ़ती जायेगी।'' ऐसा अनुभव हुआ, मानो मेरे हृदय की बात पूज्यपाद कह रहे हैं।

इसके पश्चात् पूज्यपाद के आदेशानुसार मार्ग पर मैं चल दिया, कुछ ही समय पश्चात् मैं प्रत्येक गुरुवार को व विशेष अवसरों पर साधना हेतु आश्रम पर पहुँचने लगा। दिन बीतते गये, आस्था बढ़ती ही गयी, और स्थिति यह आ गयी कि पूज्यपाद द्वारा कही गयी बात – 'प्रतिष्ठा बढ़ती जायेगी' को प्रत्यक्ष में अनुभव करने लगा। कभी कोई प्रश्न पूछने का अवसर उन्होंने नहीं दिया, क्योंकि जब भी मेरे मन में कुछ जानने की इच्छा हुयी किसी न किसी के द्वारा या स्वयं पूज्यपाद के द्वारा जानकारी मिलती रही। एक विशेष बात यह भी अनुभव हुयी कि पूज्यपाद के समक्ष बड़े छोटे का भेद नहीं था। प्रत्येक साधक को यही अनुभव होता था कि पूज्यपाद उसी पर अधिक स्नेह करते हैं। पूज्यपाद के सान्निध्य में प्राप्त अनुभव लेखनी अंकित करना संभव नहीं है। आज पूज्यपाद प्रत्यक्ष रूप में हमारे समक्ष नहीं हैं परन्तु मुझे विश्वास है कि पूज्यपाद हमसे दूर भी नहीं हैं। आज भी पूज्यपाद अपने शिष्यों के प्रेरणा स्रोत हैं, और आगे भी बने रहेंगे, ऐसा भी विश्वास है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूप से सत्त्व, रज, तमोगुण में प्रतिबिम्बित शक्ति-तत्त्व ही जगत् का नियामक है। ज्ञान के नियामक रूप को ही सरस्वती कहा गया है। वेद, पुराण, शास्त्र आदि में उसी के विस्तार रूप से वर्णन है। स्थूल एवं सूक्ष्म जगत् अपने अस्तित्व का बोध सरस्वती द्वारा ही करता है।

– *श्रीस्वामीजी*

मेरा अनुभव

– शिव भगवान सारिया
मुम्बई

पूज्यपाद श्री स्वामी जी महाराज के सम्पर्क में आने के पश्चात् मुझ में जो परिवर्तन आये उनको शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता। पूज्यपाद के सम्पर्क में आने से मुझमें आत्मबल और विश्वास जागृत हुआ जिससे मैं जीवन में आई कठिनाइयों का सामना कर सका। पूज्यपाद की कृपा से मैं कभी हताश नहीं हुआ। जब भी कोई कठिनाई या विघ्न आता तो उसके पूर्व ही पूज्य गुरुदेव स्वप्न में आकर संकेत कर जाते थे। यद्यपि प्रारम्भ में मैं संकेत का अर्थ नहीं समझ पाता था किन्तु कठिनाई के आने पर जब थोड़ा मनन करता था तो अर्थ स्वतः ही समझ में आ जाता था। पूज्य गुरुदेव की कृपा से मुझे अद्‌भुत सहनशक्ति प्राप्त हो जाती थी। पूज्य गुरुदेव जैसा अनोखा व्यक्तित्व मुझे कहीं दिखाई नहीं दिया। मैं अपने को बड़ा धन्यभाग्य समझता हूँ जो मुझे पूज्य गुरुदेव की शरण में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं तो मानता हूँ कि इसका कारण कोई पूर्व जन्म का ही बड़ा सुकृत रहा होगा।

***

–: वैदिक उपदेश :–

परमाकाश में चलने वाली सरस्वती का वाहन हंस पक्षी है। हंस प्राणतत्व का बोधक है। नीर-क्षीर विवेक जिसके कार्य हैं जिससे सत् और असत् का विवेक जानना चाहिए। यह विद्वानों का या सरस्वती के उपासकों का मुख्य कार्य है। इसकी प्राप्ति के लिए अनेक साधनायें गुरुओं ने बताई हैं, उनके सामीप्य द्वारा जिज्ञासुओं को जानना चाहिए।

– श्रीस्वामीजी

युगपुरुष राष्ट्रगुरु श्रीस्वामी जी महाराज

— ***वेणी माधव शास्त्री,***
आयुर्वेदाचार्य, प्रोफसर
चिकित्सक, राज्यपाल म. प्र.

'अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्'

भगवद्गीता के इस वचनानुसार अधर्म के प्रवाह को रोकने हेतु ईश्वर या उसके अंश अथवा कलावतार भूमण्डल पर अवतरित होते हैं। इसी क्रम परम्परा में पूज्यपाद राष्ट्रगुरु का आविर्भाव हुआ था। **'होनहार विरवान के होत चीकने पात'** की सदुक्ति के अनुसार मानव देह-धारण के साथ साथ श्री स्वामी जी महाराज अन्मना साधारण कर्मणा महान थे। उनका देह-धारण अवश्य ही साधारण रूप से उत्तरप्रदेश के पूर्व क्षेत्र में हुआ था, किन्तु ज्यों ही मानवीय गुणों के विकास का समय आया वे स्वगुरु से अध्ययन पूर्ण कर सुविकसित शिष्य के रूप से सामने आ चुके थे, गुरुदेव का अध्ययन क्षेत्र वाराणसी रहा। उन्होंने वैय्याकरण पदवी आचार्य परीक्षा के रूप में समाप्त की। सत्संग एवं सरस्वती के उपासकों की नैष्ठिक उपासना कर उन्होंने व्याकरण के अतिरिक्त छन्दशास्त्र-ज्योतिष-साहित्य-दर्शन-आयुर्वेद-संगीत-मल्लविद्यादि विषयों का मार्मिक अनुशीलन प्राप्त पुरुषों की भीड़ में बैठ कर उपार्जित किया था। जहाँ तक उनके शास्त्र ज्ञान का आरंभिक विचार किया जाये, वे वेदचतुष्टयी एवं षट्शास्त्र पारंगत थे। व्यक्तिगत तौर से गुरुदेव नैष्ठिक संन्यासी एवं राष्ट्र के उत्थान के लिये अवतरित हुये थे। अपने स्वास्थ्य के लिए व्यायाम, हठयोग, पर्यटन एवं योगाभ्यास में वे परम अभ्यस्त थे, ये सभी व्यक्तिगत गुण इन्होंने महान संकल्पित राष्ट्रसेवा के लिये उपार्जित किये थे, जैसा कि हम सभी जानते हैं कि इन्होंने मानव जाति के सर्वांगीण विकास के लिये अपनी जीवन लीला को निरंतर गतिशील रखा। मानव की बिना किसी भेदभाव के कल्याणकारी भारतीय विधियों एवं गूढ़ लुप्तप्राय वैज्ञानिक रहस्यों के व्यावहारिक प्रकाश एवं मार्गदर्शन के साथ उन्होंने निरन्तर अंतिम जीवन क्षणों में भी सृजनात्मक कल्पना जारी रखी।

जिस किसीने जब कभी श्रद्धा विश्वासपूर्वक उनसे कल्याण हेतु प्रार्थना की, उन सभी शिष्यों एवं भक्तों के लोकातीत या लौकिक कर्म सम्बन्धों में उन्होंने करुणापूर्ण कृपावदान किया। वस्तुतः मेरी दृष्टि में **'अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः'**

के बचन को चरितार्थ करने वाले गुरुदेव अवतार पुरुष थे। अपने विद्यागुरु के सामीप्य से दीक्षित होकर चलते समय स्वगुरुद्वारा स्वामी जी को यह निर्देश प्राप्त हुआ था कि जाओ जगत का अवलोकन करो, देवगिरा संस्कृत का प्रचार करो। गुरुदेव ने निष्ठापूर्वक स्वगुरु की आज्ञानुसार देशभ्रमण किया, तदुपरान्त उत्तर से दक्षिण की ओर जाने वाली राह को अपनी महान यात्रा का मार्ग बनाया। देश भ्रमण से भारतीय भाषाओं के प्रति उनके मन में आकर्षण हुआ तथा बंगला, मराठी, अरबी, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, उड़िया, गुजराती भाषाओं के साहित्य एवं महापुरुषों की कृतियों का पूर्ण अवगाहन किया। भाषाओं की विविधता के ज्ञान से गुरुदेव ने सर्वांगीण वाणी संस्कृत के लुप्त शब्दों एवं मुहावरों को प्रतिसंस्कृत किया। काश्मीरी, पंजाबी एवं सिन्धी भाषाओं में भी रहस्यमय भारतीय संस्कृति के लुप्तप्राय तथ्यों का अवगाहन गुरुदेव ने किया था, जिसे वे सामयिक चर्चा के समय प्रकट किया करते थे। अनेक भाषाएँ व्यक्तितत्व में प्रतिष्ठित होकर जिस प्रकार ज्ञान भण्डार को समृद्ध कर रही थी, उसी प्रकार गुरुदेव भौगोलिक दृष्टि से दक्षिण भारत की आंशिक रूप से, यथा-शेष समस्त भारत का पर्यटन कर संस्कृति की समग्रता को एकीकृत कर लिया था। जब कभी चर्चा प्रसंग में स्थान का परिचय दिया जाता तो वे अपनी विलक्षण स्मृति से उस स्थान का पूर्ण परिचय दिया करते थे। भारत दर्शन के साथ साथ वे सभी स्थान यात्रा-पथ में आये जो हमारी संस्कृति की निधि के रूप में आज भी सिद्ध क्षेत्र या तीर्थ स्थल कहलाते हैं। शक्तिमय ब्रह्म की चित्स्वरूपावस्था के क्षेत्रों में निवास एवं पूर्ण परिचय प्राप्त कर उन्होंने शक्ति संचय एवं पुण्यभक्ति शक्तिश्रोत का अजस्त्र प्रवाह इहिलौकिक यात्रावसान के अंतिम क्षण तक गतिमान रखा। संस्कृत प्रचार प्रसार हेतु उत्तर से दक्षिण दिशा का मार्ग धौलपुर उनके कर्मक्षेत्र का प्रथम तीर्थ स्थान बना। वहीं से दक्षिण दिशा की ओर उरई क्षेत्र में बढे तथा बाद में दतिया नगरी में आये। धौलपुर, उरई दतिया में संस्कृत प्रचार प्रसार के अवशेष चिन्ह वहाँ के संस्कृत विद्यालय एवं उनमें पूज्य गुरुदेव द्वारा पढे हुये पंडित वर्ग आज भी उनकी महिमीय कीर्ति के साक्षी है। धन्य है वे बन्धु जिन्होंने सिद्ध सारस्वत गुरुदेव से व्याकरण आदि शास्त्र पढ़े हैं। धर्म की उनकी अपनी व्याख्या विशेष वैज्ञानिक तथ्ययुक्त है। धर्म बाहरी प्रदर्शन की वस्तु नहीं है, धर्म एक दार्शनिक पद्धति पर सुव्यवस्थित जीवन का नाम है। धार्मिक होने का तात्पर्य है निष्ठापूर्वक वैदिक परंपराओं के साथ उदय से प्रलय पर्यन्त की जीवन यात्रा। इसीलिये धर्म में सनातन परंपरा का अभाव है, तथा मनुष्य द्वारा इसे धारण किया जाता है, अनादि या सनातन वैदिक परम्परानुकुल वैदिक धर्म ही विश्व का एक मात्र धर्म है, शेष अधुनाप्रचलित सम्प्रदाय है।

धर्म-धारण के प्रति प्राथमिक निष्ठा जागृत करने में गुरुदेव का मौलिक कार्य क्षेत्र वैदिक संस्कारों का सरलीकरण सहित जनसाधारण को उपदेश एवं सहयोग

बढाना था। स्मृति एवं श्रुति के निर्देशानुसार सभी मानवीय आचारों का यथार्थ पालन गुरुदेव की नैमित्तिक दिनचर्या का प्रमुख अंग था। दतिया में आगमन के बाद से गुरुदेव ने अपने निवास एवं साधनास्थली के रूप में वर्तमान में श्री पीताम्बरा पीठ क्षेत्र को ही सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र के रूप में मान्यता दी। गुरुदेव ने इसी स्थल पर चार दशक से भी अधिक समय तक निरन्तर, अहर्निश साधना, यज्ञ, अनुष्ठान पूर्ण किये, तथा साधकों, सेवकों भक्तों और शिष्यों को साधना के मार्गों का वात्सल्यपूर्ण हृदय से प्रत्यक्षाभ्यास कराया। वनखण्डी का कण-कण साधनास्थली के रूप नें विकसित होकर आज न केवल दतिया नगर अपितु अखिल भारतीय स्तर पर भी विख्यात पीठस्थल के रूप में जाना जाता है, विदेशी जिज्ञासुओं द्वारा इस पीठ का सप्रसंग उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया गया है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

दुष्ट पुरुषों को यदि विद्या प्राप्त होवे तो वे उससे विवाद करते हैं, धन हो तो उन्हें मद हो जाता है, अर्थात् वे विवेकपूर्वक बर्ताव नहीं करते हैं, सशक्त होकर निर्बलों को सताते हैं। यदि यहीं चीजें सज्जनों को प्राप्त हों तो वे विद्या से ज्ञान और धन से अधिकारियों को दान, शक्ति से निर्बलों की रक्षा करते हैं।

– *श्रीस्वामीजी*

दयालुता एवं कृपा की पराकाष्ठा

— चन्द्र प्रकाश अँगल
दतिया

"तुम्हें याद है जब तुम छोटे थे, यहाँ आते थे। तब यहाँ कैसा लगता था"? यह अमृत वाक्य उन महापुरुष के थे, जिन्होंने लगभग ५० वर्ष पूर्व दतिया राज्य के प्राचीन शिव मन्दिर मड़िया के महादेव पर पदार्पण किया था और फिर अपना सारा जीवन जीवन-साधना एवं तपश्चर्या में लगा कर उस छोटी सी नगरी को देश विदेश में विख्यात कर तीर्थ स्थान में परिणत कर दिया। उस समय मैं यह न समझ सका कि यह उनके द्वारा मुझे संबोधित किये गये अंतिम वाक्य हैं और अब भविष्य में श्रीमुख से अन्य कुछ भी सुन सकने से वंचित हो जाऊँगा।

लगभग ५२ वर्ष पूर्व जब पूज्यपाद दतिया पधारे उस समय मेरे स्व. पिताजी पंडित भगतराम जी तथा मेरे मामाजी एवं अन्य कुछ अध्यात्म प्रेमी सज्जन फौजदार श्री परवत सिंह के यहाँ एकत्रित होकर आध्यात्मिक चर्चाएँ किया करते थे। उसी समय मेरे पिताजी श्री गुरुदेव के सम्पर्क में आये। उस समय पूज्यपाद ने हमारे घर पर भी पधारने की कृपा की। उस समय मेरी आयु लगभग ९ वर्ष की थी, उसके बाद से निरन्तर मुझे पूज्यपाद गुरुदेव के समीप बनखण्डेश्वर महादेव के स्थान पर यदा कदा दूध एवं भोजन ले जाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। बनखण्डेश्वर स्थान के समीप ही हमारा स्कूल था। स्कूल से अवकाश होने पर मैं पूज्य श्री चरणों में नित्य उपस्थित होता रहता था।

सन् १९४१ में मैं दतिया राज्य की पुलिस सेवा में आ गया। उस समय तत्कालीन दीवान मुझ पर अप्रसन्न हो गये और मुझे निलम्बित कर दिया। वह मेरे प्रति अन्याय था, मैंने महाराज जी से निवेदन किया। उनकी कृपा से बाद में मेरा सब प्रकरण निपट गया और मैं फिर सेवा में कार्य करने लगा और बाद में मुझे दतिया में नायब कोतवाल बनाया गया। दतिया में जब जन आन्दोलन शुरू हुआ तो मेरे हृदय में भी त्यागपत्र देने की भावना उठी। मैंने महाराज जी से निवेदन किया। पूज्य महाराज जी ने आदेश दिया – कि तुम शासकीय सेवा में रहकर ही लोगों की सेवा करो।

हमारे परिवार के सभी सदस्यों पर पूज्यपाद ने कृपा की और सब को मंत्रोपदेश दिया। गुरुदेव द्वारा श्री यंत्र की स्थापना होने पर मुझे भी श्री यंत्र के पूजन में सम्मिलित किया गया और आश्रम पर जो शाक्त दीक्षाएँ हुयी, उनमें भी मैं सम्मिलित हुआ। प्रारंभ में पूज्यपाद महिलाओं को मंत्रोपदेश नहीं देते थे, किन्तु उन्होंने कृपा कर सर्व प्रथम हमारी माताजी को मंत्रोपदेश दिया, इसके पश्चात् अन्य महिलाओं को भी यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेव की कृपा के कारण मुझे अनेक बार संकटों से मुक्ति प्राप्त हुयी। आश्रम में साधकों के लिये जो भवन बना है, उस भवन का वास्तु पूजन भी हमारे द्वारा हुआ। इतने समय के पूज्यपाद के सान्निध्य एवं उनके अनुग्रह का यदि सविस्तार वर्णन किया जाये तो एक ग्रन्थ बन सकता है, किन्तु यहाँ पर संक्षेप में कुछ घटनाएँ ही लिखी गयी हैं।

कुछ कम आस्था रखने वाले सज्जन कहते सुन गये हैं कि अब महाराज जी नहीं है, वहाँ क्या रखा है? लेकिन, मैं यह निश्चय रूप से कह सकता हूँ कि पूज्य गुरुदेव अभी भी हमारे बीच उपस्थित हैं, भले ही उनका पँचभौतिक शरीर अब नहीं है, परन्तु उनकी कृपा किसी न किसी रूप में हम सभी के साथ है और पूज्यपाद समय-समय पर स्वप्न में दर्शन देकर मार्गदर्शन भी करते रहते हैं। मैं पुनः श्री चरणों में अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर इस लेख को समाप्त करता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

मनुष्य का परिचय बोलने से होता है। जैसे शब्दों का प्रयोग मनुष्य करता है, उससे उसका परिचय होता जाता है कि वह किस कोटि का है। जिस प्रकार उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन कोटियां मनुष्य की होती हैं, इसी प्रकार शब्दों की भी तीन कोटियां होती है। ईश्वरोपासना, मन्त्र, देवता, ऋषिमुनि, राजा महात्मा आदि उत्तम पुरुषों के बोधक शब्द उत्तम कोटि के हैं। खान-पान, खाट, लोटा आदि प्रतिदिन के बोधक शब्द सामान्य कोटि के हैं। गाली-गलोज, निन्दा-चुगली आदि के जताने वाले शब्द अधम कोटि के हैं।

– *श्रीस्वामीजी*

शिव – स्वरूप स्वामी जी

– *कृष्णानन्द बुधौलिया*
वेदान्त शास्त्री, एम.ए.
दतिया

स्वामी जी अब चिर समाधि में शिवावस्था को प्राप्त कर चुके हैं। ३ जून सन् १९७९ को प्रातः से ही जन समूह एकत्रित होने लगा। अपनी आँखों में आंसुओं के बिन्दु को स्पष्ट करते हुए, गरदन नीची किये, अधीर, मौन मुद्रा में लोग इधर उधर किंकर्तव्य विमूढ़ घूम रहे थे। कोई किसी से बात किये बिना ही अपने हृदय की दारुण वेदना अभिव्यक्त करते। अजस्र गीता-पाठ से आकाश गूंज रहा था। कभी-कभी पाठक कण्ठ अवरुद्ध हो जाने पर रुदन-स्वर में तथा कभी मौन रूप में श्लोकों का पाठ करते। दिन के ग्यारह बजे एकाएक चारों ओर से रुदन का कोलाहल प्रारम्भ हुआ। महाराज गुरु के पार्थिव शरीर का आश्रम में प्रवेश हुआ। दमकता चेहरा, आलोकित मुखाकृति एवं बीस घण्टे के बाद भी अविकृत आभा। ऐसा प्रतीत होता था कि गुरु जी समाधिस्थ हैं तथा अब उठने ही वाले हैं। चारों ओर जन-क्रन्दन के साथ आंसुओं की धारा प्रवाहित थी। लगभग पांच बजे सायं गुरु देव के पार्थिव शरीर ने पृथ्वीमाता की गोद में चिर समाधि ग्रहण की और अब वह अमृतेश्वरनाथ के नाम से शिव-लिङ्ग के रूप में प्रकट हैं।

आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व दतिया के बनखण्डेश्वर महादेव पर एक संन्यासी ने आकर डेरा डाल दिया। थोडे ही समय में साधक की ख्याति दिग् दिगन्त में फैल गईं। राज्य के तत्कालीन राजा ने संन्यासी को राज्य का आश्रय प्रदान करना चाहा, किन्तु स्वामी जी ने राज्य-धान्य ग्रहण करने को दृढतापूर्वक अस्वीकार कर दिया। अन्त तक वह स्वयं प्राप्त भिक्षा से जीवन का निर्वाह करते रहे। स्वामी जी ने सदैव अयाचित वृत्ति का पालन किया। किसी से याचना न करना ही उनके गुरुत्व का मूल रहा है। जैसा कि आचार्य शङ्कर ने लिखा है – "**गुरुत्वमूलं यदयाचितं तत्**"। श्री स्वामी जी अपने शिष्य समुदाय को प्रायः एक शेर कहा करते थे –

"माँगना सौ ऐवों का ऐव है,
वह दस्तगैव है जिसमें यह ऐव नहीं।"

साम्राज्य, स्वराज्य एवं वैराग्य पद पर आसीन, सदा अद्वितीय, एक ऐश्वर्य में स्थित, एवं भगवान शङ्कर के समान प्रणत जनों को याचना से भी अधिक प्रदानवान।

स्वामी जी महाराज स्वयं के शरीर को ढकने के लिये मोटा खादी का वस्त्र धारण करते थे जो घुटने से वक्ष तक ही उनके शरीर को ढक पाता था। कवि कालिदास ने ऐसे महान पुरुषों के लिये लिखा है :-

"एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यः स्वयं कृत्तिवासः"।

संन्यासी ने वनखण्डेश्वर महादेव के निकट श्मशान भूमि को साधना स्थली बनाया तथा एकनिष्ठ होकर तपश्चर्या प्रारम्भ कर दी। दम्भ से दूर, अभिमान से वर्जित, निराडम्बर साधक के एकाकी दिन व्यतीत होने लगे। एक मिट्टी की मड़ैया, टूटासा छप्पर, जिसमें ग्रीष्म का आतप, शीत की ठिठुरन तथा वर्षा की बौछार की धारा भी साधक को विचलित न कर सकी।

दिन बीतते गये, शिष्यों की संख्या बढती गई। मध्य वर्ग के शिक्षित युवकों तथा बुद्धि-जीवियों का विशेष आकर्षण बढने लगा। भारत के कोने कोने से विद्वानों के समुदाय एकत्रित होने लगे। साधक को कसौटी पर कसा गया। विद्वान अभिमान लेकर परिचय प्राप्त करने आता, पर नत मस्तक होकर आग्रहपूर्वक शिष्यत्व ग्रहण करके ही वापस जाता। साधना का मार्ग प्राप्त कर अपने को धन्य मानता। आधुनिक विज्ञापन के तरीकों से दूर अखबार व प्रचार के साधनों से परे रहते हुए भी दिग्दिगन्त में स्वामी जी का यश फैलता गया।

बावन वर्ष के निरन्तर सम्पर्क के बाद भी कोई साधक स्वामी जी के जन्मस्थान, कुल, जाति, माता, पिता आदि का ज्ञान प्राप्त न कर सका। उन के लिये सच्चे संन्यासी की भाँति कुल एवं जाति का अभिमान मिथ्या था। बिना किसी भेदभाव के उनकी कृपा सब पर समान रूप से बरसती रही। ब्राह्मण उनको ब्राह्मण, कायस्थ उनको कायस्थ तथा ठाकुर उनको ठाकुर मानता रहा। स्वामी जी दण्डी स्वामी थे। केवल ब्राह्मण ही दण्डी सम्प्रदाय में दीक्षित हो सकता है अतः उनका जन्म ब्राह्मण कुल में होना निश्चित है।

आत्म निवेदन की पूर्ण भावना– जैसा कि भावनोपनिषद् में वर्णित है –

"समस्त यातायात वर्ज्यं नैवेद्यं"

यह वह अवस्था है जिस में भक्त भगवान के लिये अपने शरीर को ही अर्पण कर देता है फिर यातायात कैसा?" यही साधना है जिस के कारण बारह वर्ष से भी अधिक समय में स्वामी जी ने आश्रम की चार दीवारी से बाहर जाना भी बन्द कर दिया था। मूढा पर बैठे बैठे उनके पैर सूज गये थे और घुटनों तथा एड़ी में दर्द रहने लगा था। आत्म-निवेदन की अजस्र भावना से ओत-प्रोत रहते हुए भी वे लोककल्याण एवं दीनों के उपकार में सदा रत रहे, मानों दीन ही उनके भगवान थे। लोक एवं दीनों के उपकार में सदा रत रहे, मानों दीन ही उनके भगवान थे। लोक कल्याणार्थ कर्म करते हुए भी अपने आपको संसार-कलङ्क से अलिप्त रखा।

जैसा कि गीता में कहा है –

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददाति यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।"

इस प्रकार गुरु देव की आत्मसमर्पण बुद्धि पूर्णत्व को प्राप्त थी। ऐसा लगता था कि गीता स्वयं उन के जीवन में उतर आई है। स्वामी जी समाधिस्थ, स्थितप्रज्ञ, निष्काम कर्मयोगी, मोह ममता से रहित, त्याग एवं वैराग्य की प्रतिमूर्ति तथा गुणातीत सिद्ध पुरुष थे। जप एवं ब्रह्म चर्चा निरन्तर अहर्निश चलते रहते थे। कब सोते तथा कब जागते यह कोई नहीं जानता। वे कहा करते थे –

"प्रातरुत्थाय सायाह्नं, सायाह्नात् प्रातरेव च।
यत्करोमि जगन्माता तदेव तव पूजनम्।।"

यह श्लोक बगला मुखी रहस्य में भी उद्धृत है। उनके लिये तन्मयता रूप भावना का नाम जप तथा चञ्चलता में भी तन्मयता में अप्रमाद का नाम पूजा था। किसी विशिष्ट अवसर पर यह श्लोक सुनाया –

"जपः तन्मयतारूप भावनं सम्यगीरितम्।
पूजा चञ्चलत्वेऽपि त्वन्मयत्वाप्रमत्तता।।"

स्वामी जी में अनेक विचारधाराओं का सामरस्य विद्यमान था। वे संन्यास मार्ग में दीक्षित होते हुए भी शाक्त थे। उनकी शक्ति की उपासना आचार्य शङ्करकृत आनन्दलहरी एवं आचार्य गौडपादकृत सुभगोदय पर आश्रित थी। यह उपासना समयाचार के नाम से प्रसिद्ध है। स्वामी जी द्वारा सङ्कलित श्री त्रिपुर सुन्दरी पूजा पद्धति यद्यपि कौल मार्गीय कही गई है किन्तु यहाँ भी परा अपरा एवं परापरा तीनों प्रकार की पूजा का विधान है। इसमें भी परा पूजा का प्राधान्य है। इस में वेदान्ती एवं शाक्त पूजा का पूर्ण सामरस्य है जिसमें दक्षिणाचार का ही विधान है। यहाँ श्री चक्र की पूजा होती है। श्री चक्र एवं श्री चक्र पूजा के विशेष गहन अध्ययन के लिये स्वतन्त्रानन्द नाथ कृत मातृकाचक्रविवेक नामक प्राचीन पुस्तक का अनुवाद तथा प्रकाशन श्री गुरुवर ने कराया है।

ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक एवं माण्डूक्य उपनिषदों पर प्रकाशनामक भाष्य लिख कर स्वामी जी ने शिव एवं शक्ति की अभेद-उपासना तथा आगम एवं निगम से सामञ्जस्य का उपदेश किया है। आश्रम में समय समय पर किये गये उपदेशों का भी यही सार है। उपनिषद् भाष्य में स्वामी जी ने आचार्य शङ्कर द्वारा प्रतिपादित विवर्तवाद एवं शाक्त-मत द्वारा प्रतिपादित परिणाम वाद में समन्वय स्थापित किया। दोनों मतों की यह भिन्नता अविकृत परिणाम का समर्थन द्वारा दूर की गई है। श्री गुरु वर ने बाह्य

एवं आन्तर पूजा, बहिर्याग एवं अन्तर्याग, मूर्त एवं अमूर्त उपासना में अविरोध एवं एक्य स्थापित किया। बगलामुखी रहस्यं के अन्तर्गत जहाँ भगवती बगला के मूर्त रूप का ध्यान कहा है वहीं आगे बगला के अव्यक्त, अमूर्त शाक्त तत्व का उपनिषत् एवं शास्त्रानुमत विवरण प्रस्तुत किया है (बगला मुखी रहस्य पृ. २६, द्वितीय संस्करण)। पातञ्जल योग पद्धति एवं शाक्त योगपद्धतियों का अनोखे ढंग से ऐक्य प्रतिपादन किया है। इस के अतिरिक्त चिद विलास का भाष्य लिख कर श्री विद्या के रहस्य एवं अन्त: पूजा का विस्तृत वर्णन किया है। पञ्च शिव, शक्ति, गणेश, भैरव आदि अनेक देवताओं की उपासना का उपदेश करते हुए भी अखण्ड शैवाद्वैत, शाक्ताद्वैत एवं वेदान्ताद्वैत के सामरस्य का निर्वचन किया है। अन्ततो गत्वा प्राण तत्त्व, शब्द तत्त्व एवं विज्ञान तत्त्वों की एकीकृत साधना का ईशावास्य उपनिषद के योगपक्षीय भाष्य में विस्तृत एवं गम्भीर विवेचन किया है। प्राण, शब्द एवं विज्ञान की पृथक-पृथक साधना से अन्ध-तामिस्र की प्राप्ति होती है तथा एकीकृत उपासना से अद्वैत ब्रह्म का प्रकाश होता है। जैसा कि योगपक्षीय भाष्य के मंगलाचरण में कहा है –

''प्राणापान समायोगात्, शब्दतत्त्व समाश्रयात्।
विज्ञानतत्त्व सापेक्षात् ब्रह्माद्वैतं प्रकाशते।।''

इन शब्दों में मैं गुरुदेव को अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करता हूँ। मुझ जैसे अल्प बुद्धि और अकर्मण्य को गुरुदेव का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होना अति दुर्लभ है तथापि जन्म जन्मान्तर के स्वयं के सुकृत एवं अपने पूर्वजों के पुण्यों के संग्रहीत फल से एवं गुरुदेव की अनन्य कृपा का ही परिणाम है जो मुझ को उनका शिष्यत्व प्राप्त हुआ। यद्यपि लगभग तीस वर्षों के प्रगाढ सान्निध्य में मुझ को गुरुदेव के अनेक अलौकिक चमत्कारों का अनुभव हुआ किन्तु, स्थानाभाव से कुछ भी लिखना नहीं है। गुरु जी ने मुझ में शक्ति का सञ्चार कर जो कार्य सम्पन्न कराया इसका कुछ विवरण 'मातृका चक्र विवेक' ग्रन्थ के 'विशेष निवेदन' में लिखा है। मेरे द्वारा सम्पादित अन्य पुस्तके भी गुरुदेव द्वारा शक्ति-पात का ही प्रमाण हैं।

अन्त में शिव स्वरूप गुरुजी से यही प्रार्थना है कि अपनी ब्रह्मलीन अवस्था में भी सदा की भाँति मार्गदर्शन देते रहें।

***

–: वैदिक उपदेश :–

देव-पूजा, संगठन और दान- ये तीन अर्थ यज्ञ शब्द के होते हैं। यज्ञ नाम परमात्मा विष्णु का भी है। देवपूजा परमात्मा की पूजा का ही रूप है। ईश्वर की पूजा या भक्ति से अनेक आपत्तियाँ टल जाती हैं इसी लिए यह भी राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

– *श्रीस्वामीजी*

पूज्य श्रीचरणों का आशीर्वाद

– गौरी शंकर मिश्र

हमारे पूर्वज बहुत प्राचीन काल से बनखण्डेश्वर महादेव की सेवा में रहे हैं। शिवरात्रि के दिन हमारे परिवार की ओर से बनखण्डेश्वर नाथ का पूजन होता चला आ रहा है।

मैं बचपन से ही पूज्यपाद की सेवा में रहा हूँ। एकबार मैं प्रणाम कर पूज्यपाद के चरणों में बैठ गया। तब पूज्यपाद वहाँ उपस्थित लोगों को हमारे विषय में एक पुरानी बात सुनाने लगे कि "शंकर बचपन में बहुत तेज था। एक बार शिवरात्रि पर इसकी माँ ने हमको भोजन कराया। उसके दो चार दिन बाद शंकर यहाँ आया तो हमने पूंछा कि तुम कौन हो, तब इसने कहा– तुम हमें नहीं जानते, हमने तुम्हें उस दिन भोजन कराया था।" यह संस्करण सुनकर सब लोग हँसने लगे और मैं शिर झुकाये सुनता रहा।

महाराज जी की दृष्टि सब सेवकों पर समान रूप से रहती थी। एक बार महाराज जी के पैरों में सूजन आ गई। अनेक शिष्य कुछ न कुछ दवा लेकर आते थे और महाराज जी सबको सन्तुष्ट करने के लिये दवा को लगाने के पश्चात् कहते थे। कि इससे हमको लाभ हुआ है। मैं भी झाँसी से एक पान वाले दुकानदार द्वारा बनाया हुआ तेल ले गया था, मैंने निवेदन किया कि महाराज जी यह तेल बहुत अच्छा है इससे अवश्य लाभ होगा। पूज्यपाद ने तेल लगाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ दिनों बाद जब मैं गया तो कहने लगे "शंकर तुम्हारा दिया हुआ तेल बहुत अच्छा है इससे मुझे लाभ हुआ है"। पूज्यपाद कभी शिष्यों में भेदभाव नहीं करते थे।

श्री चरणों में शत शत प्रणाम। ***

–: वैदिक उपदेश :–

जो प्राणी या जिस देश के लोग अपनी मातृभूमि की सेवा-भक्ति नहीं करते, उनका सौभाग्य दुर्भाग्य के रूप में परिणत हो जाता है। इसी लिए वेद उसके गुणगान करने की आज्ञा देते हैं। उसी से बल, बुद्धि, ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति होती है। जिन लोगों में मातृभूमि की भक्ति एवं देश-प्रेम नहीं होता है, वे वास्तव में मृतक तुल्य हैं।

– श्रीस्वामीजी

श्रद्धाञ्जलि

– महेशनाथ सेठ
रिटायर्ड बैंक मॅनेजर, हि.क. बैंक लि.
दतिया

मैं जून १९५९ में जीवन के सब से कठिन समय पर संयुक्त परिवार से दतिया आया। भयंकर गर्मी पड रही थी, पानी की कमी के कारण लोग शहर के बाहर नहाने आते थे। मैं भी दो रोज अन्य स्थान पर गया लेकिन तीसरे दिन उसी लक्ष्य से वनखण्डी आया। अन्दर आते ही अनुभूति हुई कि सही जगह पहुंच गये हो, अब और कहीं जाने की जरूरत नहीं। नित्य स्नान करके माई के दर्शन कर महाराज को प्रणाम करता तथा कुछ समय बैठ कर चला जाता। यह क्रम दो तीन दिन तक चलता रहा। महाराज जी प्राय: उस समय आसन पर बैठे जप में लीन रहते। एक दिन बड़ी हिम्मत कर चरण छू लिया, फौरन सुनने को मिला "कौन है" तथा मृदु आदेश मिला "आग और साधू से दूर रहना चाहिये"। मैंने नम्र निवेदन से अपनी इच्छा व्यक्त की, टूटे फूटे वाक्य पूरे भी न हो पाये, आज्ञा हुई "माई के दर्शन करो और जाओ"। मै नित्य आता रहा, कुछ समय बाद महाराज जी ने बुला कर मंत्र दिया और कहा "बेकार मत बैठो इसका जप करो"।

श्री महाराज जी आडम्बर तथा प्रचार के सख्त खिलाफ थे। यदि कोई किसी की सिफारिश करता तो दोनों को भगा देते। महाराज जी स्वयं मनुष्य रूप धारण कर भजन, जप, पठन-पाठन तथा पुस्तकें लिखने में लीन रहते, पर कभी कभी अपने भक्तों को ईश्वरी सत्ता में विश्वास दिलाने हेतु बडे बड़े चमत्कार दिखा देते थे। विनोद बस कहा करते, "सच्चा गृहस्थ साधू से बड़ा होता है। वह दो धर्म निभाता है – एक साधू धर्म तथा दूसरा गृहस्थ धर्म, जब कि साधू केवल एक ही धर्म निभाता है"। इस प्रकार उनकी कृपा सभी नित्य आनेवालों पर बनी रहती और भुक्ति और मुक्ती दोनों ही मार्ग का दर्शन करा देते। वे कहा करते थे जो पिंड में हैं वही ब्रह्मांड में है। इस प्रकार अद्वैतवाद का सिद्धान्त भी लोगों को समझा देते तथा तुम कौन हो वह सभी आने जाने वालों से प्राय: पूछा करते और इस प्रकार समझा देते। ऐसे ज्ञानी शिव के सिवाय और कौन हो सकता है। वे चाहते थे कि सब अपने को शिव का अंश रूप समझ कर कार्य करे और शिवत्व को प्राप्त हो। उनके पास कोई जाति

भेद नहीं था, उनके शिष्य हिन्दू, मुसलमान तथा ईसाई सब उनके पास आते और अपने को कृतार्थ समझ कर जाते।

राष्ट्र के प्रति भी उनका अगाध प्रेम था। जब चीन ने भारत पर हमला किया तो वे कह उठे कि "साधू केवल रोटी खाने के लिये नहीं है उसे सब प्राणियों के उत्थान के साथ राष्ट्ररक्षा में भी सहयोग देना चाहिये" यही आवश्यक समझ उन्होंने राष्ट्ररक्षा अनुष्ठान कर ईश्वरीय शक्ति का चमत्कार सारे विश्व को दिखा दिया। उनकी सत्ता का अवलोकन करने के बाद विश्व भर में बिकने वाले साप्ताहिक Illustrated weekly ने अपने अंक ६.१०.६३ के पन्ना नं. १९ पर Chiaroscuro का शीर्षक देकर जो भी लिखा वह सब सत्य है। लेकिन लेखक व सम्वाददाता को स्थान का नाम देने का साहस न हुआ। कारण महाराज जी प्रचार के खिलाफ थे। उनकी महान कृपा मुझ पर थी जो मुझ जैसे छोटे से आदमी को अर्थ व्यवस्था का भार सौपा। लगभग १ लाख रुपये खर्च हुये, किसी से चन्दा भी नहीं लिया गया। पीताम्बरा परिवार के एक ही सदस्य ने उनकी कृपा से सारा भार उठा लिया। ३१ दिन तक दुर्गा सप्तशती का सम्पुट के साथ (जिसका भावार्थ चीन की फौज का कीलन, उच्चाटन करना था) पाठ हुआ तथा दिन रात जप चलता रहा। देश के कोने कोने से आये पंडित पूर्ण दत्तचित्त होकर महाराज जी के निर्देशन में पाठ तथा जप करते रहे। पूजास्थल पर किसी को भी जाने की आज्ञा नहीं थी। बड़े अनुरोध पर पूर्ण आहुति के समय स्थानीय जनता को महाराज जी ने आने दिया। तभी रेडियो पर प्रसारण हुआ कि चीन की फौजें वापिस चली गईं।

एक दिन दोपहर के समय महाराज जी एकान्त में बैठे जप में लीन थे तभी एक जैन यात्री आया और प्रणाम करके स्नान करने जाना चाहता था, बोला-झोला यहाँ रखा है। महाराज जी ने उससे कहा "जैन साधुओं ने तो बड़ा त्याग किया है यहाँ तक लंगोटी भी छोड़ दी, तुम्हारा झोले से मोह नहीं छूटता" उसका अज्ञान दूर हो गया और वह नत मस्तक हो गया।

एक बार एक युवक आर्थिक कठिनाइयों से परेशान होकर अपना घर छोड उदास होकर इधर-उधर घूम रहा था। उसे कूछ लोग महाराज जी के पास ले आये, महाराज जी ने बैठाया स्नान करवा कर उसे मंत्र दिया। वह कुछ दिन रह कर जप करने लगा, फिर तो उसे आनन्द आने लगा और आशा की किरन फूटने लगी। वह नित्य महाराज जी से माई के साक्षात दर्शन करने का अनुरोध करने लगा। इसी बीच महाराज जी को ज्ञात हो गया था कि उसके माँ भाई बहन सब है। महाराज जी ने समय उचित देख कर उससे कहा कि साक्षात दुर्गा तो तेरे घर बैठी है और तू उसकी सेवा से दूर भाग खडा हुआ है तो फिर इन आखों से कैसे दर्शन कर पावेगा, इस प्रकार उसको चेतना देकर महाराज जी ने उसे घर जाकर माँ की सेवा करने के लिये

वापिस भेज दिया, साथ ही कहा मंत्र बराबर जपते रहना। इस घटना के बाद से वह खुश हाल है और अब वह गृहस्थ एवम साधु जीवन दोनों का निर्वाह कर रहा है।

हम सब का दृढ विश्वास है कि महाराज जी स्थूल शरीर त्यागने के उपरान्त सूक्ष्म शरीर से हम सभी के हृदय में विराज रहे हैं और समय समय पर मार्ग निर्देशन देते हैं।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जगत की सारी सम्पत्ति ईश्वर की है, उसने उसे सभी प्राणियों के भोगक्षेम के लिए बनाया है। उसे अपनी समझना या उस पर अनुचित अधिकार रखना महान् अपराध है। **''मागृधः कस्य स्विद्धनम्''** इस वेद वाक्य में यही तत्त्व कहा गया है। गीता में अर्जुन को बताया है- "हे अर्जुन, तुम जो कुछ कर रहे हो- भोजन, दान, होम, यज्ञादि शुभ-कर्म तथा तपश्चर्या आदि वह सब हमारे अर्थात् ईश्वरार्पण बुद्धि से करो, इससे तुम बन्धन से मुक्त होकर पूर्ण सुखी होगे'' यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए ही नहीं था, अर्जुन का निमित्त बनाकर सभी जीवों को दिया गया है।

– ***श्रीस्वामीजी***

पूज्य श्री से सम्पर्क

— *सीताराम सक्सेना,*
८४ सी., बाघम्बरीगद्दी, इलाहाबाद-६

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

परम पूज्य श्रद्धेय श्री स्वामी जी महाराज के व्यक्तित्त्व पर प्रकाश डालना मानो सूर्य को दीपक दिखाना है। उनकी जीवनी, रचनायें, साधना, शास्त्रीयज्ञान, ब्रह्मज्ञान, परमहंस गति, शिवत्व की प्राप्ति, हिन्दू संस्कृति की आधारस्तम्भस्वरूपता, राष्ट्रगुरु की उपाधि, महर्षिरूपीदिनचर्या; विद्योपार्जन की पराकाष्ठा, पुस्तकसंग्रह, व्यावहारिक कुशलता, विनोद, शिशुप्रेम, संस्कृतभाषा का प्रचार, अनुशासन पालन आदि अनेकों विषयों पर समय समय पर चंडी पत्रिका व उसके बगलामुखी विशेषांक में उल्लेख हो चुका है। उपरोक्त विषयक निबन्ध का कुछ भाग गतवर्षीय चण्डी पत्रिका के प्रथम पाँच अंकों में प्रकाशित हो चुका है। अत: स्मृतिग्रन्थ में स्थानाभाव का ध्यान रखते हुये प्रस्तुत लेख में अति सूक्ष्म रूप से श्रद्धांजलि सुमन चढ़ाने का प्रयास ही लक्षित है।

पूज्य श्री के सान्निध्य में आने का प्रथम अवसर मुझे जुलाई सन् पैंतीस में प्राप्त हुआ, जब मैंने हिन्दी मिडिल पास कर वनखण्डेश्वर के उस समय निकटस्थित लौर्ड रीडिंग हाईस्कूल दतिया की कक्षा छठीं में प्रवेश किया। उस समय मेरी आयु लगभग चौदह वर्ष की थी। पिता जी की आज्ञा से मैं प्रतिदिन प्रात:काल घर से चाय ले जाकर पूज्य श्री को पिलाने बनखण्डी जाया करता था। पिता जी दतिया राज्य के लेखा विभाग में आडीटर थे व कट्टर वैष्णव थे। पूज्य श्री की आज्ञा से श्री पीताम्बरामाई की उपासना भी करते थे। उनके विषय में स्वामी जी का कहना था "ऐसा विचित्र मानव मैंने अपने जीवन में नहीं देखा"। उन दिनों प्रतिदिन प्रात:काल स्वामी जी महाराज घूमने जाया करते थे। लौटने के पश्चात् पंचदशी, गीता, उपनिषद् आदि पर उनका प्रवचन होता था। कुछ गिने चुने लोग ही उपस्थित रहते थे। प्रवचन के पश्चात् चाय पीकर अंग्रेजी का समाचार पत्र पढ़ते थे।

कुछ काल के पश्चात् मुझे पूज्य श्री की सेवा का एक विशेष कार्य सौंपा गया, वह था रात्रि में दूध गर्म करके उन्हें पिलाने का। मैं अपने एक मित्र के साथ हॉकी खेल कर सन्ध्या समय बनखण्डी आ जाता था। उन दिनों महाराज मन्दिर की छत पर हौदे में बैठना पसन्द करते थे और हम लोग पैर दबाते रहते थे। कभी-कभी महाराज साफी बिछा कर छत पर लेट जाते थे व हम लोग उनके हाथ-पैर दबाया करते थे। इसी काल में महाराज द्वारा अनेकों विषयों की जानकारी होती थी। दश महाविद्याओं की उपासना की महत्ता व अन्तरंग जगत की विशेषताओं का वर्णन बड़ा ही प्रभावशाली होता था। उस समय एक तीव्र इच्छा जागती थी कि इन महाविद्याओं से सम्बन्धित रहस्यात्मक साहित्य प्राप्त हो व कुछ अनुभूति हो। माई की आरती प्रारम्भ होते ही हम लोग नीचे उतर आते थे। आरती के पश्चात् दूध गर्म कर एक पीतल के कटोरे में महाराज को अर्पण करते थे। कभी कभी महाराज मुझे "सिद्धान्त रहस्य" की हस्तलिखित प्रति की कुछ मणियाँ पढ़ने का आदेश देते थे। उस समय श्री पीताम्बरा पीठ के पार्श्व में एक कुटी थी और बिजली न लगी होने के कारण लालटेन का ही उपयोग होता था। कभी कभी छुट्टी के दिन दोपहरी के समय स्तोत्रों की प्रतिलिपि बनाने के लिये महाराज मुझे बनखण्डी बुला लिया करते थे। इसी बीच में मुझे पूज्य श्री से सिद्ध सरस्वती का एकाक्षरी व सप्ताक्षरीमन्त्र व स्तोत्र प्राप्त हुए। उनकी असीम कृपा से मैं सन् चालीस की हाईस्कूल परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ व साइन्स और मैथ्स में विशेष योग्यता प्राप्त की। इस प्रकार मेरे विद्यार्थी जीवन के पाँच साल का अधिकांश समय स्कूल के अतिरिक्त पूज्य श्री के सान्निध्य में ही व्यतीत हुआ।

महाराज जुलाई सन उन्तीस में दतिया पधारे। इसके पूर्व वे धौलपुर में श्री नारायण सिंह जेलर के पास लगभग तीन साल रहे। जेलर साहब द्वारा लिखित सन् छयालीस के एक पत्र से विदित होता है कि उनका महाराज से परिचय वीस वर्ष पहले से था। वहीं एक निकटवर्ती ग्राम में एक संस्कृत पाठशाला का महाराज के कर-कमलों द्वारा उद्घाटन हुआ। जेलर साहब धौलपुर नरेश के निकट के सम्बन्धी थे। वहाँ पूज्य श्री से राज्याश्रय ग्रहण करने की प्रार्थना की गई, परन्तु उसे स्वीकार न कर जेलर साहब के निवास स्थान पर ही रहना पसन्द किया। उनका कहना था कि संन्यासियों के लिये राजा का अन्न एक वेश्या के अन्न के समान है। दतिया की रानी व नरेश ने भी पूज्य श्री से किले में रहने व राज्याश्रय ग्रहण करने की प्रार्थना की थी, परन्तु उसे अस्वीकार कर दिया और आजीवन बनखण्डेश्वर में ही रहकर तपस्या की। भोजन एक सेवक के घर से ही आया करता था। उनका विचार था कि राजनैतिक सिद्धान्तों के अंग आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अंगों से पृथक हैं जैसा कि

पूज्य श्री के एक पत्र से विदित होता है। अत: अध्यात्मवाद में राजनीति का प्रवेश श्रेयस्कर नहीं है, ऐसी उनकी मान्यता थी, परन्तु यदि कोई सेवक अपने लिये अपने व्यक्तित्व में दोनों का समावेश करने के लिये प्रयत्नशील होता था तो उसकी स्वतन्त्रता में पूज्य श्री ने इस विश्व विद्यालय का पाठ्यक्रम निर्धारित किया। वास्तव में इस योजना के कार्यक्रम का विस्तृत विवरण तो एक स्वतन्त्र निबन्ध की अपेक्षा रखता है। जब झाँसी में इस विश्वविद्यालय की जिलास्तर की शाखा का उद्घाटन होने को था तो उसकी कार्यकारिणी समिति ने देश के एक महान क्रान्तिकारी नेता राजा महेन्द्र प्रतापसिंह को मुख्य अतिथि के रूप में आमन्त्रित करने का निर्णय किया व पूज्य श्री से उद्घाटन समारोह का सभापतित्व ग्रहण करने की प्रार्थना की। पहले तो इन शब्दों में "क्या मेरी उपस्थिति अनिवार्य है?" टालने का प्रयत्न किया, परन्तु सेवकों के अनुरोध के सामने महाराज ना नहीं कर सके। उद्घाटन बड़े जोशीले व्याख्यानों के साथ सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ तथा समाचार-पत्रों ने इसे प्रमुख स्थान दिया। इसी प्रकार सन् छयालीस में दतिया आन्दोलन के समय पूज्य श्री को जनता ने अध्यक्ष निर्वाचित किया। पद ग्रहण करने के एक सप्ताह के अन्दर ही राज्यसरकार को झुककर जनता की समस्त माँगों को स्वीकार करना पड़ा। इस अहिंसात्मक आन्दोलन की चमत्कार पूर्ण व असाधारण सफलता की सराहना स्वयं महात्मा गान्धी जी ने की थी। इस विजय पर्व के दिवस पर नगर की सारी जनता में एक ऐसे हर्षोल्लास का उद्गार हुआ जिसे एक पत्र द्वारा व्यक्त करने में पूज्य श्री की लेखनी भी न रुक सकी। हिन्दुत्व की भावना तो महाराज में कूट-कूट कर भरी थी। जब सन् छयालीस में नोआखाली में मुसलमानों ने हजारों हिन्दू औरतों के साथ खुले आम बलात्कार किया और उनके मुसलमान बनने की नौबत आई, तब पूज्य श्री ही भारत के प्रथम महापुरुष थे जिन्होंने उन स्त्रियों को हिन्दू धर्म से बहिष्कृत न करने की घोषणा की। इसी घोषणा से बल पाकर महामना पं. मदनमोहन मालवीय उन स्त्रियों को हिन्दू बनाये रखने व शुद्धिकरण के प्रयत्न में अग्रसर हुये।

पूज्य श्री की प्रत्येक मनुष्य, पशु व पक्षी में आत्मभावापन्न समदृष्टि थी। अपने टौमी नामक कुत्ते की मृत्यु होने के पश्चात् उसका दाह-संस्कार पूज्य श्री ने विधिवत् करवाया था। चिड़ियों के घोंसले का उदाहरण तो किसी साधक से छिपा नहीं है। महाराज प्रत्येक प्राणी की स्वतन्त्रता व अधिकार में विश्वास करते थे, यहाँ तक कि शब्दों के औचित्य व अधिकारों की भी उन्हें मान्यता थी। उनका कहना था कि शब्दों के अपने अधिकार होते है और उन अधिकारों की सुरक्षा मनुष्य मात्र का कर्तव्य है। शब्द ब्रह्म ही इस जगत की सृष्टि का मूल है। कदाचित् इसी कारण महाराज सूत्र

रूप में लिखा करते थे व व्यावहारिक जीवन में नपे तुले शुद्ध व उचित शब्दों का ही प्रयोग करते थे, परन्तु यह भी ध्यान रखते थे कि कहीं उनके शब्दों से किसी के हृदय पर आघात न हो जाय। प्राय: कहा करते थे –

"मन्दिर तोडो मस्जिद तोडो, इनमें क्या मुज़ायका है;
दिल किसी का मत तोडो यह घर खास खुदा का है"।

जैसा कि सांख्यायन तन्त्र से विदित होता है कि श्री पीताम्बरा महाविद्या का मारण, मोहन व उच्चाटन में ही प्रयोग प्रचलित था, परन्तु पूज्य श्री ही प्रथम महापुरुष हुये जिन्होंने वैदिक बगला पूजा पद्धति का विधान कर महाविद्या के सात्विक स्वरूप को प्रकट किया और तान्त्रिक वाङ्मय में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जिस देश में खान-पान की विषमता रहती है, एक आदमी अनेकों की सम्पत्ति अपनी चालाकी से लेकर धनी बनकर अन्याय करता है, अकाल दुर्भिक्ष की अवस्था में भी जनता का शोषण करके श्रीमान बना रहता है, वह वास्तव में प्राणदण्ड का अधिकारी है। जो राज्य-अधिकारी धन के लोभ से ऐसे मनुष्यों की तरफदारी करके राज्य में विषमता को प्रश्रय देते हैं, वे भी दण्डनीय हैं। प्रजा में यदि सामर्थ्य हो तो यह असम्भव नहीं है। सच्चे समाजवादी देश में जब उत्पन्न होते हैं तब यह समस्या उनके तपोबल से हल हो जाती है।

– *श्रीस्वामीजी*

"गुं गुरुभ्यो नमः" मेरे गुरुदेव

– रमेश, उपाध्याय
व्याख्याता, ग्वालियर

परम पूज्यपाद प्रातः स्मरणीय मणिद्वीपवासी राष्ट्र-गुरु सर्वतंत्रस्वतंत्र श्री अनन्त श्री स्वामीजी महाराज मानवीय रूप में साक्षात् आशुतोष थे। उनके विभिन्न रूपों का दर्शन विद्वानों, साधकों, दार्शनिकों, तान्त्रिकों और शिष्यों को भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ है एवं भगवान शिव के समान ही उन्होंने अपने स्वरूप को पीठपर आने वालों की योग्यता के अनुसार ही दिया है। पूज्यपाद ने प्राचीन भारतीय ऋषि प्रणाली को पुनर्जीवित ही नहीं किया वरन् सुदीर्घ काल तक उसे सींचा और पल्लवित भी किया है। दर्शन, तंत्र-मंत्र, योग, विज्ञान और ज्योतिष का समन्वय पूज्यपाद ने लेख और पुस्तकों के माध्यम से तो किया ही है, इसके साथ ही साथ उनका व्यावहारिक रूप भी शिष्यों के द्वारा उद्घाटित करवाया है। पूज्य गुरुजी जो भी चाहते थे वह अपने शिष्यों के माध्यम से प्रस्फुटित करवा देते थे यह बात किसी से भी छिपी नहीं है। पीठ पर महाकाल की स्थापना, श्री धूमावती की स्थापना, चीन-भारत युद्ध के समय किया गया राष्ट्रीय रक्षा अनुष्ठान के अतिरिक्त वाराणसी में हुये तांत्रिक सम्मेलन में तंत्र विषयक श्री कालू पंडित एवं श्री ब्रजनन्दन शास्त्री का व्याख्यान, मातृका चक्र विवेक की हिन्दी टीका के लेखक श्री कृष्णानंद बुधौलिया, चिद्विलास के अंग्रेजी व्याख्याकार डा. योगेशचन्द्र मिश्र और वैदिक उपदेश के अंग्रेजी अनुवादक श्री हेमचन्द्र मिश्र उक्त कथन के सजीव प्रमाण हैं। पूज्यपाद का व्यक्तित्व एकदेशीय न होकर सर्वदेशीय था। विभिन्नताओं का समन्वय उनके कृतित्व और व्यक्तित्व में था।

मैं पूज्यपाद के श्रीचरणों में किशोरावस्था में आया। मेरी समस्त शिक्षा-दीक्षा जो कुछ भी हुई वह पूज्यपाद के श्री चरणों की कृपा का ही परिणाम है। अनेक विद्वानों, पंडितों और महाजनों से सम्पर्क का सूत्रपात पीठ से आरम्भ हुआ। श्री चरणों में बैठकर ही ज्योतिष विषय की विशेष शिक्षा ग्रहण की। प्रारम्भ में ज्योतिष विषय पर मुझे विश्वास नहीं था और इसे मात्र कल्पना की उड़ान ही समझा करता था, किन्तु मुझे क्या पता था कि कालान्तर में गुरुकृपा से स्वयं ज्योतिषी बनूंगा। एक दिन की घटना है कि मैं सायं ४ बजे पूज्यपाद की सेवा में उपस्थित हुआ। गुरुजी उस समय

बाहर के बरामदे में विराजमान थे व एक जन्मकुण्डली का अवलोकन कर रहे थे। मैंने उत्सुकतावश पूछ लिया "महाराज क्या यह सही विज्ञान है", इस पर गुरुजी ने कहा कि 'तू सीख ले'। इसी वाक्य के साथ मेरी ज्योतिष शिक्षा का सूत्रपात हुआ। उसी समय गुरुजी ने 'शीघ्रबोध" पढ़ाया और मैं ज्योतिषरत्न की उपाधि से विभूषित हो गया एवं पीठपर दूसरे दिन से ज्योतिषी के नाम से जाना जाने लगा। ज्योतिष सम्बन्धी समस्त कार्य भी मैं गुरु आज्ञा से करने लगा। ज्योतिष जितने गूढ़ विषय का बोध पूज्य गुरुदेव ने एक क्षण में करा दिया। यह घटना आज भी असाधारण प्रतीत होती है और इसकी अनुभूति मुझे हर समय होती रहती है।

ज्योतिष विषय पर मेरा परिहास भी कम नहीं हुआ। इसी को लक्ष्य करके अनेक कटाक्ष होते रहते थे, इन्हीं कटाक्षों पर एक दिन मैं अत्यन्त क्षुब्ध हुआ और गुरुजी को स्नान कराते वक्त रोकर निवेदन किया कि "महाराज अधिकांश लोग मेरी मजाक उड़ाते हैं और कहते हैं कि ज्योतिष में क्या रखा है महाराज से कोई सिद्धि ले लो"। इस कथन को सुनकर पूज्यपाद के चेहरे पर एक दिव्य भाव आया और परमाराध्य गुरुदेव के जिस स्वरूप के दर्शन उस समय हुये उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। उसी समय महाराज के श्रीमुख से जो वाक्य निकले थे मेरी जीवनयात्रा के पथप्रदर्शक हैं। चार आदेश भी उस समय मुझे दिये गये जिनका पालन नियमित रूप से कर रहा हूँ।

१) ज्योतिष का कार्य सेवा भाव से करना और किसी से भी लेने की अपेक्षा मत रखना। यदि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से दे तो ले लेना। २) अपने नियम से रहना। ३) स्वाध्याय मत छोड़ना। ४) जप का नियमित अभ्यास करना।

पूज्यपाद के सान्निध्य में ही ज्योतिष के विभिन्न अंगों का समुचित अध्ययन हुआ और तद्विषयक विद्वानों से विचार-विमर्श हुआ। जिन विद्वानों के सम्पर्क में पूज्य चरणों की कृपा से आया उनमें सर्वश्री महामहोपाध्याय ज्योतिषाचार्य जगन्नाथ त्रिपाठी, ज्योतिषाचार्य पंडित हरदेव शर्मा, पद्मभूषण श्री सूर्यनारायण व्यास और घनश्याम ज्योतिषी पुष्कर आदि प्रमुख है।

प्रतिदिन ज्योतिष सम्बन्धी जो भी कार्य एवं सम्बन्धित अध्ययन करता था उसको ज्यों का त्यों श्री चरणों में निवेदित कर देता था, जिस पर गुरुजी मौन रहते थे उसे सही मानकर लिख लेता था और जिस पर डाँट पड़ती थी उसे अशुद्ध समझकर छोड़ देता था। इस प्रकार जो संकलन हुआ वही संकलन आज ग्रन्थ का रूप ले चुका है। पूज्य गुरुदेव ने अपने अन्तिम ग्वालियर प्रवास के समय पूछ लिया कि

"तेरा लिखने का काम समाप्त हुआ या नहीं"। मैंने उत्तर दिया "महाराज आपकी कृपा से लेखन कार्य समाप्त हो गया है।" मेरे कथन को सुनकर गुरुदेव मुस्करा दिये और बोले "अब तू ज्योतिषाचार्य हो गया है"।

मेरे अभ्यास काल के समय मुझे यह अन्तर्प्रेरणा हुयी कि पूज्यपाद की जन्म-पत्रिका में अवश्य ही ऐसे योग होंगे जिनके कारण त्रिपुरारी को पीड़ित मानवता को कष्टों से मुक्ति दिलाने हेतु मनुष्य के रूप में अवतरित होना पड़ा। इसी भावना को संजोये हुये मन ही मन आराध्य देव से प्रार्थना की कि वे मेरी मनोकामना को सफलीभूत करने की कृपा करें। भगवान ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उन्हीं की प्रेरणा से जो जन्मकुण्डली बनी वह निम्न है। कुछ समय के पश्चात् पत्रिका की प्रामाणिकता भी श्रीमुख से हो गयी।

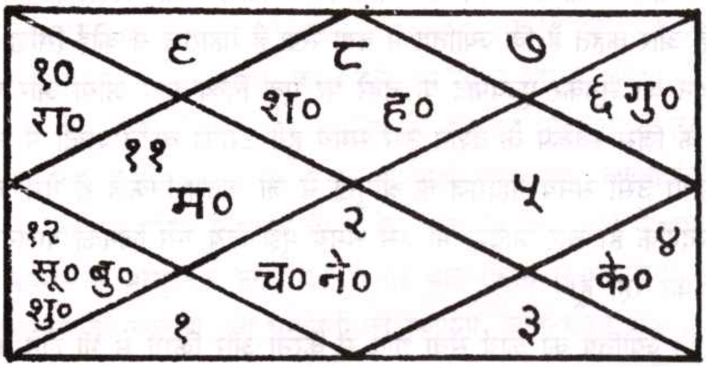

पूज्यपाद की कुण्डली में ग्रह परस्पर नवम्, पंचम और समसप्तक योग बना रहे हैं। ये सभी योग पूर्ण वैराग्यता, अद्वितीय शास्त्रवेत्ता की स्थिति तो दर्शाते ही हैं उसके साथ ही साथ हर्षल नेपच्यून की शनि-चन्द्र के साथ समसप्तक स्थिति जलतत्व की राशि में होने से अवतार योग की स्थिति को स्पष्टतः दर्शाते हैं। ऐसी ग्रहस्थिति हजार वर्षों में मुश्किल से एक बार हो पाती है। पत्रिकाओं में जब हर्षल नेपच्यून की स्थिति बनती है तो ऐसे समय में उत्पन्न जातक संसार के कल्याणार्थ पृथ्वी पर अवतरित होते है। (आध्यात्मिक ज्योतिष) स्वामी वासुदेवानंद सरस्वती, भगवान शंकराचार्य, तेलंग स्वामी, गोस्वामी तुलसीदास आदि महापुरुषों की पत्रिकाओं में भी इसी प्रकार के योग विद्यमान थे।

यहाँ पर पूज्य गुरुदेव की कुण्डली प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य यहीं है कि अवतार की बात केवल भावनात्मक ही नहीं है वरन् जन्म कुण्डली के योगायोग भी

उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं। पूज्य गुरुदेव का भव्य ललाट एवं उस पर शोभित अर्धचन्द्र भक्तों का ध्यान सहज ही भगवान् आशुतोष की याद दिलाता है। गुरुजी का सम्पूर्ण जीवन मनुष्यों के कल्याणार्थ ही व्यतीत हुआ और साधना की दुर्गम पगडंडी की दुरूहता को सुगम बनाने में ही लगा रहा। ऐसे समर्थ गुरु भक्तों के कल्पवृक्ष भगवान शिव को इन्हीं शब्दों में अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

विकार के कारण आने पर भी जिनका चित्त विकृत नहीं होता, उन्हें ही धीर कहते हैं। गीता में इसे इस प्रकार बताया गया है कि जैसे शरीरधारी के शरीर में कौमार्य, युवा, वृद्ध आदि अवस्थाएँ आतीं है इसी प्रकार मृत्यु भी आती है। ऐसी दशा में जिसको मोह न व्याप्त हो उसे ही धीर कहते हैं। यह बात आत्मज्ञान से मिलती है। अहत्त्व-ममत्व के हटने पर ही यह होता है।

– ***श्रीस्वामीजी***

पूज्यपाद के साथ आबू यात्रा के संस्मरण

– डा. इन्द्रमणि शुक्ल
प्रोफेसर नेत्रविभाग,
मेडिकल कालेज, रायपुर (म. प्र.)

हम लोग दतिया जब जाते थे तो पूज्यपाद के चरणों में बैठकर बहुत-सी धर्म-ज्ञान व साधना संबंधी बातें हुआ करती थीं और यह भी पता चलता था कि पूज्यपाद इस बार उज्जैन गये थे या हरिद्वार गये थे और अमुक अमुक शिष्य उनके साथ गये थे तथा वहाँ बहुत से अनुभव हुए और सत्संग में बहुत आनंद आया आदि। मन में एक अभिलाषा रहा करती थी कि कभी ऐसा मौका आवे तो मैं भी उनके साथ किसी ऐसी यात्रा में जाऊँगा।

जून, १९७२ का महीना था हम सपरिवार छुट्टियों में श्री पीताम्बरापीठ गये हुये थे। जाने के बाद मालूम हुआ कि श्री महाराज जी आबू की यात्रा पर जाने वाले हैं। फिर क्या था, दूसरे ही दिन श्रीचरणों में प्रणाम कर साथ जाने की आज्ञा मांगी कहने लगे 'अच्छा मौका है चलो' मैं दूसरे दिन ही अपने परिवार के लोगों को लखनऊ छोड़कर वापस आ गया।

१५ जून १९७२ प्रात: ८ बजे दो कारें व एक मेटाडोर में हम सब दसबारह लोग आगरा के लिये रवाना हुए। रास्ते में धौलपुर में थोड़े समय विश्राम करके दो बजे के लगभग आगरा पहुँचे। शाम की गाड़ी में सब लोग आबू के लिये रवाना हुए और एक रात व दूसरे दिन की यात्रा कर शाम ४ बजे के लगभग आबू रोड स्टेशन पर पहुँच गये– रास्ते में धौलपुर, आगरा, जयपुर इत्यादि जगहों में हमारे गुरुभाइयों का जमघट श्रीचरणों के दर्शन हेतु लगता रहा और यात्रा बड़ी सुखद रही।

पश्चिम रेल्वे की मीटरगेज रेलगाड़ी की अहमदाबाद देहली लाइन पर आबू रोड प्रसिद्ध स्टेशन है, आबू रोड स्टेशन से उत्तरपश्चिम दिशा में लगभग २८ किलोमीटर की दूरी पर माउन्ट आबू स्थित है। यह अरावली पर्वतों की शृंखला के दक्षिणपश्चिम में स्थित हैं। इसकी उँचाई समुद्र की धरातल से ४००० फुट है, इसका अपना बहुत प्राचीन इतिहास है। कहा जाता है कि आबू पहाड़ सतयुग में विद्यमान था लेकिन इसकी खोज वि. सं. १३ कलयुग में आज से लगभग २ हजार साल पहले बैशाख की अष्टमी के दिन हुई। इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक पौराणिक

कथायें हैं। हम लोगों को श्री महाराज जी ने बताया कि इसका असली नाम अर्बुद गिरि था और अर्बुदा देवी जिसका कि वहां एक विशाल मंदिर है उन्हीं के नाम पर यह नाम पड़ा और उसका अपभ्रंश अब आबू के नाम से कहा जाता है। श्रीमुख से हम लोगों को यह मालूम हुआ कि पुराणों के समय से आबू पर्वत ऋषियों के तपोवन के रूप में पुण्यभूमि रहा है। महर्षि वशिष्ठ ने यहीं तपस्या की थी– और भी अनेकों महाऋषियों ने अपनी योग-साधनायें पूरी की है; दत्तात्रेय मुनि ने भी अपनी तपस्या यहीं पूरी की थी। चार धामों की यात्रा करने वाला कोई भी यात्री आबू पर्वत पर आये बिना नहीं रह सकता– इस प्रकार इस पर्वत का महत्तम बहुत अधिक है।

–: अर्बुदाचल महात्म्य :–

तपो गच्छेत धर्मज्ञ, हिमवत्सुतमर्बुदम्।
पृथिव्यां यत्र वै छिद्रं पूर्वमासीद्युधिष्ठिर।।
तपाश्रमो वशिष्ठस्य त्रिषुलोकेषु विश्रुतः।
तपोष्य रजनीमेकां गोहस्यफलं लभेत।।

(महाबन तीर्थयात्रा ८२।५२।५४ पद्मपुराण अ. २४।३०)

"धर्मज्ञ युधिष्ठिर तदनन्तर हिमालय पर्वत के पुत्र अर्बुदाचल (आबू) पर्वत पर जायं। जहाँ पहले पृथ्वी में (पाताल जाने के लिये) एक छिद्र (सुरंग) था, वहाँ का महर्षि वशिष्ठ का आश्रम तीनों लोकों में विख्यात है। वहाँ यदि मनुष्य एक रात भी निवास कर लेता है, तो उसे हजार गोदान करने का पुण्य प्राप्त होता है।"

मथुरा से द्वारका जाते समय भगवान श्री कृष्ण भी यहाँ पधारे थे– जैन लोग भी इस स्थान को पूज्य दृष्टि से देखते हैं और प्रतिवर्ष दिलवाड़ा के भव्यतम जैन मंदिरों के दर्शन हेतु लाखों की संख्या में आते हैं। केवल भारत के ही नहीं अपितु युरोप– अमेरिका तथा दुनियां भर के अन्य देशों में से भारतवर्ष की यात्रा करने वाले यात्री इस स्थान पर अवश्य आते हैं– पर्वत के शिखरों का मानव जाति को सदा से आकर्षण रहा है। इसका न केवल स्वस्थ जलवायु व ग्रीष्मकालीन निवास (Hill Station) के लिये अपितु उसकी धार्मिक महत्ता के लिये सभी देशों की सभी जातियों में मान्यता रही है।

आबूरोड रेल्वे स्टेशन से आबू के पहाड़ तक कोलतार की सुन्दर सड़क जिसकी बनावट सर्पाकार है– चढ़ते समय उपर की सड़क के चक्कर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो पहाड़ को करधनी पहिना दी गई हो। चढ़ते समय आगे की यात्रा में मनोरम घाटियों के सुंदर दृश्या, सड़क के दोनों ओर चित्र-विचित्र झाड़ियाँ, सघनकुंज, परिचित-अपरिचित फल, फूल तथा शीतल सुरभित पवन और जलवायु की ठंडक ने हमारी

सारी थकावट दूर कर दी। दतिया व रास्ते भर की भयंकर-गरमी के बाद वहाँ पहुँच कर एक महान उल्लास व स्फूर्ति महसूस हुई। जाते ही पूज्यपाद की अपनी परंपरा के अनुसार स्नान जप इत्यादि कर सभी लोग श्रीचरणों के साथ में बैठ गये। एक घंटे बाद प्रसाद पाकर सब लोग रात्रि विश्राम के लिये अपनी अपनी जगह चले गये।

अगले दिन प्रात: हम सभी गुरु भाई श्रीचरणों में प्रणाम कर जब एकत्र हुए तो पहिला वाक्य श्रीमुख से यों ही था कि "स्थान बहुत अच्छा है, मुझे तो रात को ही मालूम हो गया कि मैं जिस कार्य के लिये आया था– पूरा हो गया"। हम लोग सभी स्तंभित से रह गये और जैसा सुना था कि श्री महाराज जी अपनी उच्च से उच्चतम साधना की प्राप्ति हेतु कोई अवरोध आने पर अक्सर कहीं न कहीं यात्रा पर यदाकदा जाते रहते थे– उसी में यह यात्रा एक कड़ी थी। श्रीमहाराज जी को आते ही जो अनुभूति हुई और उन्होंने कहा कि यह स्थान गुरु परंपरा में है, दत्तात्रेय मुनि भी यहा इसी लिये आये थे, यह भजन की जगह है सैर-सपाटे की नहीं। तुम लोग आये हो तो मेहनत करो और एक नित्य की दिनचर्या जैसी पूज्यपाद की दतिया में होती थी वैसी वहाँ भी हुई।

शाम पाच बजे सभी के साथ घूमने जाना, लौटकर चाय फिर ८ बजे भोजन, ९ बजे विश्राम, ढाई बजे रात्रि से उठकर भजन व जप, प्रात: ५ से ६ बजे तक चाय – दो घंटे तक फिर अध्ययन और सत्संग का कार्यक्रम चलता था। साढे नौ बजे स्नान करके फिर साढे ग्यारह बजे तक जप का समय होता था फिर प्रसाद पाने के बाद डेढ़ बजे तक विश्राम और दो बजे से चार बजे तक जप का कार्यक्रम रहता था।

प्रथम दिन ही शाम को श्री पूज्यपाद की आज्ञानुसार हम सभी पैदल उनके साथ नक्की झील देखने गये। यह मनोरंजक झील हरे-भरे पेड़ों की कतारों तथा सुंदर पहाड़ों से घिरी हुई है। पर्वतों में कई गुफायें हैं जिसमें गर्मी में साधु लोग विश्राम व साधना करते हैं। श्री महाराज जी ने कहा कि नैनीताल से यह स्थान ज्यादा अच्छा है। यहाँ आधुनिक सभ्यता की पैठ इतनी नहीं जो कि वहाँ है। करीब पौन घंटे तक बैठे रहे और साधुओं की गुफाओं में रहने और दिनचर्याओं की चर्चा होती रही।

दूसरे दिन पूज्यपाद की आज्ञानुसार अर्बुदा देवी के मंदिर जाने का कार्यक्रम बना। हम लोग शाम कुछ जल्दी ही चल दिये, अर्बुदा देवी श्री दुर्गा देवी ही हैं, यह मंदिर एक विशाल शिला के नीचे ही है और ऊपर तक पहुँचने के लिये ३५० सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ी। रास्ते में थोड़ा विश्राम करते हुए हम सभी चले, हम लोगों को आश्चर्यचकित हो जाना पड़ा, जब हमने देखा कि इस उम्र में पूज्यपाद बराबर सभी सीढ़ियाँ चढ़ गये और वैसे ही उतर भी आये कोई थकावट नहीं बल्कि हम लोगों में से कुछ लोग काफी थक गये थे। इस मंदिर का प्रवेश द्वार इतना सँकरा है

कि आदमी को नीचे बैठकर अंदर प्रवेश करना पड़ता है। पूज्यपाद की आज्ञानुसार हम सभी ने अंदर जाकर बैठकर वहाँ जप किया। पहले तो श्री स्वामीजी बाहर भजन करते रहे, पर बाद में उस सँकरे द्वार से बैठ कर खुद मंदिर के अंदर आ गये और बैठकर कुछ समय के लिये भजन करते रहे। रास्ते भर माँ जी की महिमा व स्थान की महिमा का आभास हम सभी को पूज्यपाद से होता रहा।

ज्यों-ज्यों चारों तरफ पूज्यपाद के आबू प्रवास की खबरें फैलने लगी, राजस्थान व गुजरात के दूर दूर के स्थानों से उनके भक्त व अन्य साधुसंत आबू आने लगे। आये दिन कोई न कोई आ जाता और श्रीमुख से धर्म तथा शास्त्रों के बारे में सुनकर व समझकर अपने को धन्य मानता। साथ ही हम सभी गुरु भाई उनकी धर्मचर्चाओं व पीठ की पूज्यपाद लिखित पुस्तकों को उनसे पढ़कर व समझकर अपनी अपनी शक्ति अनुसार लाभ उठाते रहे। गूढ़ से गूढ़ मन्त्रार्थ व शक्ति उपासना की व्याख्या होती थी। साथ-साथ पूज्यपाद से उनके स्वभाव अनुसार विनोद व हास्य की कथाओं का भरपूर रस लेते रहे, बड़े आनंद का समय गुजरता रहा। एक दिन राजस्थान के एक सिख वहाँ पधारे, गुरुदेव ने विनोद से कहा – सिख की परिभाषा जानते हो, कहा – "तीन में से दो निकल गया बाकी बचा इक – आदमी से अक्ल निकल गई तो बाकी बचा सिख" इत्यादि कई किस्म के विनोद व हास्य की बातें होती थी। एक दिन निम्बार्क संप्रदाय के एक साधु दर्शन करने आये, उनका कुछ व्यक्तिगत मुकदमा चल रहा था, श्री पूज्यपाद ने उन्हें अष्टोत्तरशत नाम को जपने को कहा, उन्होंने भी श्री महाराज जी को गैस निवारण हेतु अदरक, शहद, नींबू व सेंधा नमक का नुस्खा बता दिया। जैसे आप पाठक जानते हैं, श्री पूज्यपाद को जो भी कोई, कोई भी दवा बता जाता व दे जाता उसी से उन्हें सबसे ज्यादा फायदा हो जाता। कितना विशाल हृदय, हर आने वाले का मन व विचार वहाँ आकर शुद्ध हो जाता और यही कहता कि वही महाराज जी का सबसे प्यारा शिष्य है – और उनका चाहने वाला हो जाता। एक दिन पूज्यपाद से लोगों ने कहा कि टूरिस्ट बस नीचे में बस स्टेंड से जाती है और इधर-उधर के स्थान घूमने जाने की आज्ञा माँगी – कहने लगे – जिसे जाना हो जाये हम तो यहाँ भजन के लिये आये हैं। हमारे कई साथी दिलवाड़ा आदि अन्य स्थान देखने जाते थे पर मुझे कहीं जाने का मन नहीं होता था। जहाँ पूज्यपाद जाते थे वहाँ जाऊँगा ऐसा मन करता रहा।

बीच में एक दिन अम्बाजी जाने का प्रोग्राम बना। यह स्थान आबू से २२ किलोमीटर अम्बाजी रोड पर बना है, हम कारों में गये, वहाँ पूज्यपाद के साथ अम्बाजी जो शिवजी की आराध्या देवी हैं, उनके दर्शन किये। पूज्यपाद ने शिवाजी की शक्ति व साहस और वीरता की पृष्ठभूमि की गाथा व अम्बाजी ने उन्हें तलवार दी थी वह बताया, और हम सभी को राष्ट्र की रक्षा व राष्ट्रीयता का पाठ पढ़ाया जो कि वैदिक

उपदेश की पुस्तकें पठन के साथ-साथ भी चलता था। इतनी बड़ी विभूति सब दीन दुनियाँ से अलग होकर भी हर मानव की आंतरिक व्यथा व कथा और देश की व्यथा से स्वयं जागरूक व हमेशा हमेशा अच्छा रास्ता व भलाई के लिये प्रयत्नशील। जो भी उन चरणों तक पहुँच सका है वही उनके मर्म की कुछ गंध का अनुभव कर सका है। शायद ही विश्व में आज इतना पहुँचा हुआ सन्त कहीं हो।

एक दिन सिद्धिपुर के एक पंडित पूज्यपाद के दर्शन हेतु आ गये, धर्म चर्चा हुई। जो पंडित व साधु आता उसे पीठ की पुस्तके दी जाती – साथ ही गुरुदेव का आदेश हुआ कि हम लोगों को सिद्धपुर जाना चाहिये – वह स्थान मातृगया कहलाता है। वहाँ जिनकी माँ इस संसार में नहीं हों श्राद्ध करना चाहिये। आज्ञानुसार दूसरे दिन हम कई गुरुभाई वहाँ के लिये रवाना हुए, भगवान परसुराम जी ने अपनी माता का श्राद्ध यहीं किया था इसी से यह मातृगया कहलाया, और हममें से कुछ ने यह श्राद्ध विधिवत करवाया। वहाँ पर अन्तर-सलिला सरस्वती हैं जहाँ गड्ढा करके पानी निकाल कर हम लोगों ने स्नान किया और उस पावन सरस्वती का जल पूज्यपाद के लिये भी ले आये। वहाँ कई अनेकों मंदिर व एक कुण्ड है जिसमें स्नान करने का महान लाभ है, उसमें स्नान भी किये और भारद्वाज मुनि के मंदिर के दर्शन भी प्राप्त किये।

वहाँ से लौटकर एक दिन हमने पूज्यपाद से प्रणाम कर प्रार्थना की कि सूर्यास्त देखने जाया जाय, वे तैयार हो गये और हम लोग एक दिन के बजाय दूसरे दिन भी गये क्यों कि प्रथम दिन बादल आ जाने से ठीक से देख नहीं पाये थे। पूज्यपाद दोनों दिन पधारे और ऊपर बैठकर सूर्यास्त देखे, गहरा लाल आग सरीखा शक्ति पुंज छिपता दिखा जो बड़ा रमणीक था। – सूर्योदय पुनः होगा पर शायद जीवन के वे महान से महान दुबारा फिर से न आने वाले वे दिन जो कि एक साक्षात शक्ति परब्रह्म के साथ बिताये गये, फिर कभी भी न आयेंगे। हम में से वे सभी भाग्यशाली थे जिन्हें कुछ न कुछ और बहुत कुछ वहाँ "गुरुशिखर" पर प्राप्त हुआ, न ज्यादा साफ बताया जा सकता है न लिखा जा सकता है। वह अनुभव जन्मजन्मांतर बना रहे व बढ़ता रहे यही उन अनन्त विभूषित श्रीचरणों से प्रार्थना है।

***

गुरु-महिमा

– संगीता सरिया
मुम्बई

सब धरती कागद करूँ, लेखनी सब वनराय।
सात समुद्र की मसि करूँ, गुरु-गुन लिखा न जाय।।

वास्तव में गुरु-महिमा अपरम्पार है। गुरु-गुण की महिमा अवर्णनीय है। गुरु की महानता को व्यक्त करने के लिए अगर हम समस्त धरती को कागज बना लें, वन के वृक्षों को कलम और सात समुद्र को मसि के रूप में उपयोग करें तो भी गुरु-महिमा शब्दों में लिखना कठिन है।

गुरु ही तो हमारे मार्गदर्शक हैं। वही तो मनुष्य का ईश्वर से परिचय कराते हैं। वही हमें ईश्वर तक पहुँचने का, उन्हें नजदीक से जानने का सही मार्ग बताते हैं। अगर गुरु नहीं हों तो मनुष्य भटक जाता है। 'गुरु बिनु होय न ज्ञान।' गुरु ही सही मार्गदर्शन कर के हमें ईश्वर को पाने का हौंसला बढ़ाते हैं।

गुरु गोविंद दोनों खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो मिलाय।।

पूज्यपाद श्री गुरुजी ही मेरे परिवार के गुरु हैं। घर में सबको उनसे गुरु-दीक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य है। उनके लिए मेरे मन में श्रद्धा कूट-कूट कर भरी हुई है। उनके सान्निध्य में मैंने बहुत सीखा है। उनसे मुझे जो दीक्षा प्राप्त हुई है वही मेरे जीवन की ऐसी अनोखी पूंजी है जो कभी खत्म नहीं होती। यही अमूल्य धन है जो खर्च करने से और ज्यादा बढ़ता है। उसे कोई लूट नहीं सकता। वरना मै तो तुच्छ मनुष्य हूँ, उसके बिना निर्धन हूँ।

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिए जो गुरु मिलें, तो भी सस्ता जान।।

श्री अनन्त श्री गुरु जी दया के सागर हैं। वही जगद्गुरु हैं जो सब दीनों के रक्षक हैं। उनकी कृपादृष्टि सभी पर समान है। उनके नेत्रों में जो तेज था वह कभी भी नहीं भूल सकते। ऐसे गुरु आज के इस कलयुग में बड़ी कठिनाई से प्राप्त होते हैं।

ऐसे गुरु के लिए सीस भी दे तो कम है। मेरे बड़े सौभाग्य हैं कि मुझे उनके दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुए हैं और उनकी स्नेह-छाया में रहने का अवसर प्राप्त हुआ है।

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दे, बाहर बाहै चोट।।

श्री अनन्त गुरुजी महाराज शिष्य के अवगुणों को सुधार कर उसे सही रूप प्रदान करते हैं। जिस तरह कुम्हार, कुंभ गढ़ते समय सब खोट निकालकर, बाहर से चोट देकर अंदर से सहारा देता है। गुरु ही हमें संकट काल में आंतरिक सहारा देते हैं। गुरु के बिना हमें बाट कौन बताए? उनके बिना यह यमघाट बड़ा बिकट है जिसमें काम, क्रोधरूपी दो विशाल पर्वत हैं। जिसमें लोभ रूपी चोर का वास है और जहाँ माया की तेज पवन बहती है। गुरु की सहायता बगैर इसे तरना मुश्किल है।

कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय।।

अंत में मैं यही कह सकती हूँ कि श्रीगुरु जी अब शरीररूप में नहीं रहे परन्तु वे सर्वव्यापक हैं और सच्चे हृदय से याद करो तो वे हमारे नजदीक ही है। शरीर तो मात्र मनुष्य के लिए बहलावा है, वास्तव में तो उनकी कृपादृष्टि और आशीर्वाद ही अमूल्य है। श्री अनन्त गुरुजी के कमल समान चरणों में मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णू, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

* * *

—: वैदिक उपदेश :—

जब कभी धर्म-संकट उपस्थित होता है और मनुष्य अपनी बुद्धि से यह निर्णय करने में असमर्थ होता है कि इस समय हमें क्या करना चाहिए, तब सत्य का यथार्थ स्वरूप मनुष्य के हृदय में ईश्वर ही बताकर मार्गप्रदर्शक होता है। मनुष्यों में राग, द्वेष, लड़ाई, झगड़े हो रहे हैं उनका कारण असत्य व्यवहार है। यदि मनुष्य सत्य व्रत का अनुयायी हो जाय तो जगत् के कल्याण होने में देर नहीं होगी।

— *श्रीस्वामीजी*

दतिया के श्री स्वामी जी

— हरि मोहनलाल श्रीवास्तव
साहित्य-वारिधि

पीताम्बरा पीठ दतिया के श्री स्वामी जी महाराज बिना नाम के भी दूर-दूर तक विख्यात हो गये। दन्तवक्र की इस दैत्या (दतिया) के किसी संचित भाग्य से रमते राम स्वामी जी प्राय: ३५ वर्ष की अवस्था में ९ जुलाई, सन् १९२९ को इस भूमि को पुण्य लाभ कराने का महान औदार्य लेकर पधारे। वनखण्डेश्वर के स्थान पर श्री पीताम्बरा पीठ का भवन निर्मित कराते हुए स्वामी जी ने ज्येष्ठ कृष्ण ५, संवत् १९९२ को भगवती बगलामुखी की चतुर्भुजी मूर्ति की स्थापना की। भगवान शंकर, गणेश और हनुमान तो यहाँ पहले से विद्यमान थे। श्री स्वामीजी ने परशुराम, कालभैरव आदि की भी स्थापना कराई। स्वामीजी की साधना ने पीताम्बरा पीठ को भारत में विख्यात सिद्धपीठ के गौरव से सम्पन्न किया है। जिले में अन्य स्थानों पर उन्होंने राजराजेश्वरी पीठ, तारापीठ आदि की भी स्थापना की।

धार्मिक सहिष्णुता और तार्किक सहनशीलता की मूर्ति स्वामी जी श्री विद्या और पीताम्बरा के नियमित साधक होने के साथ ही गायत्री, ओंकार, मृत्युंजय, वटुक भैरव, काली, तारा, धूमा, मातंगी आदि की साधना से सम्पन्न एक महान् योगी थे। मुझ अल्पज्ञ की इतनी गति कहाँ कि मैं उस ऊँचाई को समझ सकूं। विभिन्न भाषाओं में उनकी विद्वत्ता से मैं चमत्कृत अवश्य हूँ। उनके अगाध पाण्डित्य के समक्ष बड़े-बड़े नत-मस्तक हुए हैं।

गजब की थी उनकी स्मृति – अवश्य ही ब्रह्मचर्य के तेज-स्वरूप श्री स्वामी जी को कोई बरसों बाद मिले, तो उस व्यक्ति से सम्बन्धित घटनाओं की, विभिन्न स्थानों में भ्रमण के चित्रों की रील उनके मस्तिष्क में क्रम से घूमने लगती थी। स्वामी जी उसे तुरन्त पहचान लेते थे और वर्षों के अन्तराल में डूबी हुई घटनाओं पर बड़ी आत्मीयता से चर्चा करते दिखाई देते थे।

सभी छोटे-बड़ों पर, धनी-निर्धन पर बिना किसी भेदभाव के स्वामी जी की समान कृपा रही। प्रत्येक ने उनको अपने अत्यन्त निकट समझा है। माई के दरबार में भेदभाव होना भी नहीं चाहिये – राष्ट्रगुरु तो बरतते नहीं थे। व्यक्ति की क्षमता के अनुसार वे उसे भजन का उपदेश देते थे। वे जितेन्द्रिय क्रोध करते तो कभी देखे

नहीं गये – कभी किसी विषय पर खोज भी अपेक्षित हुई, तो वह बड़े सौम्य और शिष्ट रूप में देखी गई। व्यक्ति को दुबारा वैसी भूल से रोकने के लिये ऐसी चेतावनी आवश्यक ही थी।

स्वामी जी महाराज के आदेश से मुझे कुछ साहित्य-सेवा का सौभाग्य मिलता रहा है – मैंने उसके लिये अपने को उपकृत माना है। उनकी महान साधना और उनके अमृत वचनों का लाभ इस नगरी ने अर्ध-शताब्दी तक तो उनके जीवन-काल में ही पाया है। अब जब वे ब्रह्मलीन हो गये हैं, मुझे विश्वास है पीताम्बरा पीठ उनकी अमर साधनास्थली के रूप में उपदेशों का युगों तक प्रसार करती रहेगी।

***

–: वैदिक उपदेश :–

प्रति दिन के व्यवहार में सत्य व्यवहार पर ध्यान रखना चाहिए, इसी के द्वारा बल की प्राप्ति होती है। महान् सत्य अपने समस्त राष्ट्र के हित की अपेक्षा रखता है। विश्व-प्रेम से प्रेरित होकर सत्य को ही सर्वदा व्यवहार में लाने का प्रयत्न करना चाहिए। समाज में जो लोग अव्यवस्था उपस्थित करते हैं उन्हें उग्र ऋत के द्वारा शान्त करना चाहिए। इस प्रकार ऋत और सत्य दो प्रकार के सायाचरण हो जाते हैं। 'राइट एण्ड ट्रूथ' - ये दो शब्द इंगलीश में भी माने गये हैं।

– श्रीस्वामीजी

गुरु-पूजन

— *श्री जगन्नाथ प्रसाद भण्डारी,*
दतिया

गुरु-पूर्णिमा का दिन, हजारों शिष्य कतारबद्ध। पीताम्बरा-पीठ अध्यात्म एवं साधना का केन्द्र एवं शक्ति का स्रोत है। मैं यहाँ, जहाँ बैठ कर जप करता हूँ, वहाँ से दाई ओर सामने श्री स्वामी जी महाराज के आसन का स्थान है। सामने, पीछे, आगे, बाये, दाहिने, जहाँ भी सिर उठाकर देखिए, साधक साधना में लीन। मैं उनके आसन को देखता हूँ, तो सामने पूज्यपाद।

पहली बार देखकर कोई भी चौंक उठेगा। भ्रम ही सही, इस स्थान में कितना सहज स्वाभाविक है। पीठ के प्रांगण में कितनी ही बार पूज्य स्वामी जी महाराज को साधकों एवं जिज्ञासु शिष्यों ने अपने बीच पाया है, देखा है और महसूस किया है, तभी तो शिष्य उन्हें रोम-रोम में संजोये हुये हैं। वे माँ के अनन्य भक्त, मन्त्र-तन्त्र, शक्ति, दर्शन, और वेद के विशेषज्ञ रहे, लेकिन क्या उनके व्यक्तित्व को "गुरुदेव" के अलावा किसी अन्य रिश्ते में बांधा जा सका? जब भी, जो कोई भी उनके सम्पर्क में आया, उसी की उनके प्रति एक गहरी आत्मीयता बनी रही। पीताम्बरा-पीठ ने इसी आत्मीयता को मानों स्थायी धरोहर के रूप में संजोकर रखा है। आदम कद छायाकृति ने उनकी उपस्थिति से मन्दिर-कक्ष को भर लिया है।

सफेद घनी दाढ़ी-मूछें, भौहें, दूर-दर्शी आखें, रोम-रोम उत्फुल्ल, कैसा सहज हास्य चेहरा, दायें हाथ की बन्द मुट्ठी, उन्नत विस्तृत ललाट, ठोडी से ललाट तक की क्षैतिज रेखाओं को अगर देखें, तो कैसा भव्य आकार समा जाता है। आँखों में, जैसे साक्षात हों लेकिन भ्रम उस समय टूट जाता है जब छायाकृति पर पुष्प-माला अलग इंगित कर देती है कि यह छायाकृति है और भ्रम साक्षात् को तोडने में बोध कर रहा है, पर यहाँ स्वामी जी महाराज के पार्थिव बिछोह को दूसरी गुरु-पूर्णिमा हो गई। जाने के बाद उन्हें और गहरे जानने की इच्छा हुई। पर, अथाह की थाह लेने के लिये अपनी-अपनी क्षमताओं का विकास भी आवश्यक है।

ऐसा देव-पुरुष शाक्त-धर्म-प्रवर्तक शताब्दियों में कभी-कभी ही मिल पाता है। बनारस से आराधना काल के साधना-क्षेत्र जैसे हिमालय की तराई क्षेत्र, पंजाब, चिन्तापूर्णी, ज्वालामुखी, वैष्णवदेवी, कामाख्या, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि से दतिया

और फिर जो शाक्त धर्म की महक गूंजी, तो समस्त भारतवर्ष महक उठा। स्वामी जी का काल-जयी कृतित्व उनकी इस महक का अक्षय भण्डार है। वह रीतेगा नहीं और अगर शाक्त-धर्म अनुयायियों की भावी पीढ़ियाँ मन से प्राण तक उसे ले जाती रहीं तो वे भी नहीं रीतेंगी। उनकी द्वितीय गुरु-पूर्णिमा पर हम अपने गुरु-पूजन द्वारा उनके आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण कर श्रद्धांजलि अर्पित कर अपने को कृत-कृत्य मानते हैं।

***

–: वैदिक उपदेश :–

एक संस्कृति और समान धर्मवालों की रक्षा स्वराज्य में होती है। इस लिए अपने मुखिया की रक्षा करना सब का धर्म है। यदि धर्म का त्याग कर दिया जायगा, तो जनता का चरित्र गिर जायगा। चरित्र गिरने पर भिन्न विरोधी लोग राष्ट्र पर अधिकार करके देश को गिराकर मनमाना व्यवहार करेंगे जिससे उस जाति का विनाश होगा। चाणाक्य कौटिल्य ने विद्या समुद्देश में यह विषय बताया है। जैसे रक्षक सेनापतियों की देशभक्ति से राजा की या राज्य की रक्षा होती है। इसी प्रकार वेद के विद्वानों के द्वारा देश (राष्ट्र) की रक्षा होती है।

– ***श्रीस्वामीजी***

हरिः ओम् तत्सत्

– वैद्य ठाकुर प्रसाद त्रिपाठी आयुर्वेदाचार्य
नारायनपुर, सुलतानपुर (उ.प्र.)

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।
"श्री गुरवे नमः", "श्री महात्रिपुरसुन्दर्ये नमः।।"

लगभग सन् १९५८ का समय है। मेरा स्थान परिवर्तित होकर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा. लि. द्वारा श्रीपीताम्बरा रसायनशाला – दतिया (मध्य प्रदेश) में नियुक्ति हुई। श्री पीताम्बरापीठ वनखण्डी पर परम पूज्य सदा स्मरणीय तेजोमयी विभूति के दर्शन हुये और प्रातः स्नानादि के बाद भजन के लिये पूज्यपाद स्वामी जी के सान्निध्य में जाने लगा। कुछ दिनों के उपरान्त किसीने कहा कि वहाँ पर दिखाने के लिये ढोंग करने जाते हैं। मैंने जाना बंद कर दिया। इसके कुछ दिन बाद एक दिन दर्शन के लिये गया तो पूछने लगे कि यहाँ आना क्यों बंद कर दिये। मैंने महाराज जी से उपर्युक्त ढोंग की स्थिति को बतलाया, तब उन्होंने श्री शंकर-पार्वती की गाथा को कहा – "शंकर जी बैल की सवारी पर जा रहे थे तब किसीने कहा कि कैसे हैं, स्त्री पैदल जा रही है और अपने सवारी पर हैं। तब शंकर जी ने कहा कि पार्वती जी आप सवारी पर बैठें, मैं पैदल चलता हूँ। कुछ दूर जाने पर किसीने कहा कि ये कैसे हैं, स्त्री तो सवारी पर है, स्वयं पैदल हैं। कुछ दूर चलने के बाद शंकर जी ने कहा कि पार्वती जी हम दोनों सवारीपर बैठकर चलें। कुछदूर चलने के बाद फिर किसीने कहा कि ये लोग कैसे हैं जो सवारी की जान ही नहीं जानते और दोनों बैठे हैं। फिर शंकर जी ने कहा कि पार्वती जी हम लोग पैदल चलें और सवारी वैसे ले चलें। फिर कुछ दूर चलने पर फिर किसी ने कहा कि ये लोग कैसे हैं, सवारी वैसे है, ये लोग पैदल हैं। तब पूज्यपाद स्वामी जी ने कहा कि यह संसार है, कोई भी कार्य कितना ही सुन्दर क्यों न हो, कोई न कोई कुछ कहेगा। अस्तु अच्छे कर्तव्य करते रहना चाहिये।"

श्री स्वामी जी बहुत विनोदी स्वभाव के थे। प्रसंगवशात् सभी लोगों को प्रसन्न भी कर देते थे। उन्होंने कहा जो भजन कर रहे हो उसे छोड़ना मत, दूसरी बात कही कि सत्संग करते रहना, तीसरी बात कही कि महापुरुषों के सम्पर्क में भी रहना।

यों तो उनके कई संस्मरण हैं, कुछ अंतरंग स्थितियाँ भी हैं। उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिक भी थे, देखते ही उसकी स्थिति को जान जाते थे, किसी न किसी रूप में उसे कह देते थे। संकल्प सिद्धि बुद्धि प्रदाता तो थे ही, जो उनके सम्पर्क में रहे वे सभी यही कहते हैं – हमारे ऊपर विशेष कृपा रही है।

पूज्यपाद स्वामी जी उच्च कोटि के विद्वान होते हुये तपस्वी भी थे और सदाचार एवं भजन की प्रेरणा देते रहते थे। बहुत से लोग स्थान-स्थान पर भजन करते रहते हैं। आश्रम की व्यवस्था, श्री विग्रह का पूजन एवं श्रीपीताम्बराजी के मन्दिर की पूजा-अर्चा सुचारु रूप से चलती रहती है। विशेष पर्वों पर विशेष ढंग से होती है। आश्रम की व्यवस्था एवं पूजा-विधान की व्यवस्था जनश्रुति से तथा स्वरूप से ही महापुरुष के दर्शन से प्रभावित रहे बिना कोई रह ही नहीं सकता। जो भी उनके सम्पर्क में रहा उन सबके ऊपर अपनी अमिट छाया छोड़ गये हैं, जो जीवन पर्यन्त स्मरण होता रहेगा। वे अद्वितीय शंकर के अवतार थे। श्रद्धा-विश्वास के साथ शत-शत वन्दना करता हूँ। जन-कल्याण के लिये आध्यात्मिक एवं सामाजिक प्रेरणा मिलती रहे, यही शुभ-कामना का आकांक्षी हूँ।

* * *

–: वैदिक उपदेश :–

जो वस्तु जिसरूप में निश्चित हो उसे उसी रूप में जानना एवं वाणी से कहना तथा आचरण में लाना ही सत्य कहलाता है। जब तक अज्ञान का अंश आत्मा में विद्यमान रहता है तब तक इस सत्य का पालन नहीं हो सकता। इसके लिए ईश्वर-भक्ति की सहायता लेना ही आवश्यक है, उसकी दया से ही यह सम्भव है। ईश्वर ही पूर्ण सत्य है तथा इस सत्यव्रत का स्वामी है और वही यथार्थ बुद्धि का प्रदाता है।

– *श्रीस्वामीजी*

श्रद्धायुक्त नित नमन्

– *कीर्तिदेव शुक्ल*

पीताम्बरा पीठ पूर्ण जागृत तीर्थ है जिसके देव शरीर की सीमा का त्याग कर समष्टि में व्याप्त हो गये और उनकी ज्योति मानव कल्याण के लिए निरंतर हम सब पर बरस रही है। सशरीर संत मानव में आस्था पैदा करते हैं, सम्पर्क साधते हैं और फिर ज्योतिर्मय बनकर शरीर की परिधि को पारकर वे अपने अनुग्रह की गति को तीव्र कर लोक कल्याण के संकल्प की पूर्ति करते हैं। उनकी आध्यात्मिक यात्रा निर्बाध और निरंतर चलती ही रहती है, यह उनका बहुत निजी और गुप्त क्षेत्र होता है। उनकी तत्संबंधी पहुँच को हम नहीं समझ पाते इसी लिए संत की स्थिति और अनुग्रह का थाह लेने का हमें प्रयत्न नहीं करना चाहिए। यदि जिज्ञासा हो तो मात्र श्रद्धा से ही उन्हें जानने का प्रयत्न करना चाहिए।

पीताम्बरा पीठ के महाराज जी से मेरा सीधा सम्पर्क कभी नहीं रहा, किन्तु उन्होंने बहुत अंदर मुझमें श्रद्धा का एक अनूठा बीज बोया है। यह श्रद्धा भी न जाने क्यों, कब से और किसके लिए है? शायद चिरंतन है – सर्वव्यापी है। दर्शन उनके एक बार ही हुए तो लगा कि उनकी स्थूल देह एक ऐसा ठंडा पहाड़ है जिसके गर्भ में ज्ञान की अद्भुत ज्योति सदा जलती रही है। वे अत्यंत गंभीर, स्थिर और शांत व्यक्तित्व वाले संत थे किन्तु ज्ञान के प्रति उनकी अकुलाहट, विभिन्न विषयों पर उनके अंदर से प्रवाहित होने वाली ज्ञान-गंगा की अजस्र धारा अद्भुत थी। उनको बहुत कम लोगों ने सही रूप में समझा है। बस उतना समझा जा सका है जितना उन्होंने समझाया, पर वे क्या थे यह वे ही जानें या वह जानें जिसका स्वरूप वे बन गये थे। मन के क्षेत्र में तेजी से वे किसी मंजिल को पार कर रहे थे। साथ ही इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि सभी ज्ञात व अज्ञात व्यक्ति किसी एक स्थिति पर स्थिर होकर मन से किसी न किसी दिव्य लक्ष्य की ओर अग्रसर हों। उनके स्नेह की वर्षा बिना भेदभाव के सब पर होती थी। वे "गुरु" तत्व से ओतप्रोत थे। जिसको दृष्टि थी उसने उनके स्वरूप के दर्शन कर लिए और धन्य हो गये।

पीताम्बरा पीठाधीश महाराज के व्यक्तिगत जीवन के बारे में जानकारी नगण्य है। संत के परिवार, नाम, जाति और स्थान से भक्त को क्या लेना-देना? वह तो संत के अनुग्रह में भागीदार होने का प्रयत्न करता है और ये तो ऐसे संत हैं जो

दोनों हाथों से अनुग्रह के असीम खजाने को भक्तों पर, साधकों पर लुटाते रहे हैं। देने में उनके कभी कमी नहीं रही और न कभी होगी। यदि कमी रहेगी तो मात्र हम लेने वालों में इच्छा और क्षमता की 'राम नाम की लूट' में सदा लूटने वाला हारा है लुटाने वाला नहीं। यह बात पीताम्बरा पीठ में हर क्षण चरितार्थ होती रहीं। महाराज जी ने "करत करत बन जाय" का स्वावलम्बी मार्ग सबको बताया। साधक से जिस संधान की अपेक्षा होती है उसके लिए निरंतर करते जाना ही एक मात्र सुलभ और स्थायी मार्ग है। जप-योग के इस मार्ग से साधक निरंतर उठता जाता है, उसके गिरने की सम्भावना नहीं रहती। पीताम्बरा की सिद्ध पीठ में साधकों की पंक्तियाँ गौमुखी में हाथ डाले मंत्र के मानस-जप में संलग्न दिखलाई पड़ती थीं। गुरु के अनुग्रह के साथ ही साधक के अध्यवसाय को महाराज जी ने महत्व दिया। वे किसी में भी शक्तिपात करने में पूर्ण सक्षम थे। वे स्वयं माँ शक्ति के मर्मज्ञ और सक्षम द्रष्टा थे। उन्होंने मातृ शक्ति के गुह्य स्वरूप को समझा था, उसकी सार्थक साधना की थी और उसके साथ अपनी प्राणशक्ति का तादात्म्य किया था किन्तु वे अपनी उपलब्धियों के प्रति सदैव पूर्ण अनासक्त थे। शक्ति-संधान के बाद भी अनासक्ति एक दुर्लभ वृत्ति थी। महाराज अद्भुत थे अत: उनकी हर बात सामान्य तथा सरलता की उस सीमा पर थी जहाँ उसे दुर्लभ एवं मानवीय स्वभाव के लिए सर्वथा असम्भव कहा जायेगा। जहाँ उनके हर व्यवहार में इस "अद्भुत" की झलक दर्शित होती है वहाँ हम अपनी अभिव्यक्ति की असहाय स्थिति को 'महान' शब्द के उपयोग से छिपा लेते है। साधक की गुरु के प्रति वह स्थिति जहाँ वह अभिव्यक्ति में असहाय और असमर्थ होकर मूक तथा भाव-विह्वल हो जाता है, गुरु के प्रति उसकी सबसे सशक्त श्रद्धाञ्जलि होती है और यहीं से उसमें विशुद्ध श्रद्धा का उदय होता है। यह 'अद्भुत' शब्द में निहित अभिव्यक्ति से बहुत गहरी अनुभूति है। पीताम्बरा पीठाधीश बनखण्डेश्वर महाराज के प्रति ऐसे अनुभूतिपूर्ण हृदयों की कमी नहीं है। इन हृदयों का 'गुरु-स्मरण' ही 'हरि-स्मरण' है। 'गुरु' में 'गु' से 'गुण' तथा 'रू' से 'रूप' का आभास होता है। ब्रह्म के गुण और रूप – दोनों के दर्शन गुरु में हो जाते हैं। ऐसे संत प्रकट रूप में दुर्लभ है। जिनके दर्शन मन के आसन पर श्रद्धा के माध्यम से संभव है।

उनके चरणों में मेरा नित-नमन्।

***

श्रद्धाञ्जलि

— महेन्द्रकुमार 'मानव'
दतिया

मुझे जीवन में दो बार स्वामी जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पहली बार जब मैंने स्वामी जी के दर्शन किए तब उनके उन्नत ललाट और देदीप्यमान चेहरे ने अनायास ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वे देवी के उपासक थे। उनके मुख पर दैवी कान्ति खिल रही थी। किसी मनुष्य के चेहरे पर ऐसी कान्ति, दीप्ति, प्रभामंडल कहाँ से आता है। यह साधना का परिणाम है, ब्रह्मचर्य का परिणाम है अथवा आत्म तेज की झलक है। अगर हम यह माने कि यह साधना या उपासना का परिणाम है तो दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है कि सभी मनुष्य इस जगत में साधना क्यों नहीं करते। साधना संकल्पजन्य है, सभी मनुष्य साधना करने का संकल्प क्यों नहीं करते। मनुष्य में यह संकल्प कहाँ से आता है। हमें इस प्रश्न का भी कोई सन्तोष जनक उत्तर नहीं मिलेगा। यह रहस्यमय है और अन्त में हमें यही कह कर सन्तोष करना पडेगा कि जिस मनुष्य पर भगवान की कृपा होती है उसी के मन में साधना करने का संकल्प उठता है वही साधना करता है और तप साधना से उसका जीवन कुन्दन की तरह पावन बनकर निखार पाता है। उसमें आत्मतेज, दिव्य कान्ति प्रकट होती है। वह दैवी अंश बन जाता है। उसमें अपनी-अपनी सीमा तक दिव्य शक्तियाँ प्रकट होती हैं। वह भगवान बन जाता है। सब देशों में, सब कालों में ऐसे दिव्य पुरुषों का अवतार होता है। यह सृष्टि का नियम है और इसीलिए कहा गया है कि मोक्ष, भगवत् प्राप्ति, आत्म-ज्ञान, आनन्द, स्वतंत्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। ऐसे ही महापुरुषों में स्वामी जी एक थे।

तंत्र साहित्य पर उनका पूर्ण अधिकार था। उनको देखकर वाराणसी के एक दूसरे साधक पं. गोपीनाथ कविराज की सहसा याद आ जाती है। दोनों ही साधक थे, दोनों ही प्रकाण्ड विद्वान् थे।

यह दुनियाँ स्वार्थी है और सदा से स्वार्थी रही है। कुछ लोगों के इन महापुरुषों के सत्संग के आशीर्वाद से सांसारिक कार्यसिद्ध हो जाते हैं और वे लोग इन महापुरुषों के भक्त बन जाते हैं। इन भक्तों की संख्या बहुत बड़ी हो जाती है, परन्तु ऐसे भक्तों की संख्या अति न्यून होती है जो इन महापुरुषों से पारमार्थिक लाभ लेते हों।

स्वामी जी ने दर्शन पर संस्कृत में कई ग्रन्थों की रचना की है। प्रज्ञा पारमिता दर्शन पर उनकी पुस्तक का अवलोकन करने का अवसर मिला था। प्रत्येक दर्शन की अपनी मान्यताएँ हैं, अपनी पारिभाषिक शब्दावली है। अध्ययन के लिए, शोध के लिए इन दर्शनों का विवेचन लाभकारी हो सकता है, लेकिन वह होगा शुद्ध बौद्धिक व्यायाम ही। उसका साधना से कोई सम्बन्ध नहीं। वैसे बौद्धिक व्यायाम स्वयं एक साधना है। मैं सोचता हूँ कि क्या कोई ऐसी सर्वमान्य साधना पद्धति नहीं हो सकती जिसमें सब साधना पद्धतियों का निचोड़ हो, सारे धर्म दर्शनों का निचोड़ हो। मनुष्य मतमतान्तरों की भूल, भुलैया में न पडे, उसके मन में धार्मिक विद्वेष न पनपे। मेरे मत में हो सकता है। मनुष्य की बुद्धि पर भ्रम का परदा पड़ा है, अज्ञान का परदा पड़ा है, प्रत्येक मनुष्य ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी कर्म का शिकार है। यह परदा हटते ही बुद्धि निर्मल हो जाती है। व्यक्ति के मन के संशय और विमोह नष्ट हो जाते हैं और वह आत्मदर्शन कर लेता है, परमात्मा का दर्शन कर लेता है। यही मनुष्य-जीवन का साध्य है।

भारत में अनेक साधनापीठ हैं। जब एक साधक के जीवन का अन्त हो जाता है तब वहाँ उसका स्थान भरने के लिए दूसरा साधक पहुँच जाना चाहिए। ठीक उसीप्रकार जिसप्रकार घर में पिता के मरणोपरान्त पुत्र पिता का स्थान ले लेता है। और इस देश में साधना की अखंड परम्परा अजस्त्र गति से प्रवाहित होनी चाहिए। इन्हीं शब्दों से मैं पूज्य स्वामी जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सब एक होकर चलो, अर्थात् एक मत होकर अपने लक्ष्य की ओर बढ़ो। तुम में फूट न होनी चाहिए, क्यों कि फूट ही कार्य को बिगाड़ती है। तुम्हारा बोलना भी समान ही हो। अपनी सभा में निर्णय करके एक बात करो। व्यर्थ बकवाद का त्याग करो। तुम्हारे मन भी समान हों। कपट दुर्भावना को अपने मन में किञ्चित भी स्थान मत दो। मनसा-वाचा-कर्मणा इन तीनों प्रकार की एकता तुम्हें प्राप्त करनी चाहिए।

— ***श्रीस्वामीजी***

एक संस्मरण

– डा. राम मूर्ति त्रिपाठी,
एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट.

मैंने अपने जीवन में अनेक साधु-सन्तों के दर्शन किये, पर साधना वैदुष्य एवं सात्विक समृद्धि से मण्डित दतिया के पीताम्बरापीठाधीश्वर स्वामी बनखण्डी जी महाराज में जिस इन्सानियत के दर्शन किये, वह मुझे कहीं नहीं मिला। एक बार की बात है, मैं सागर में छोटा सा अध्यापक था – प्रसंगतः ग्वालियर गया था और सागर वापस आ रहा था। दतिया का आकर्षण जो महाराज श्री के कारण था न छूट सका और मैं रास्ते में उतर पड़ा। अपरान्ह एक का समय था, बस स्टेन्ड से आश्रम आया। पता चला कि महाराजश्री पूजन में हैं, लगभग १॥-२ बजे बाहर आयेंगे। प्रतीक्षा में बाहर एकाकी बैठा रहा। किसी से जान पहचान भी नहीं, स्वरूप तथा वेष-भूषा भी कुछ ऐसी नहीं कि कोई आकर्षण हो। महाराजश्री पूजन के अनन्तर बाहर पधारे महात्मा की आकृति और वेष-भूषा ने स्पष्ट ही आकृष्ट किया। पीताम्बर वेष्टित, गौर वर्ण, सामान्य कद, स्वस्थ दीप्त मुख मण्डल, प्रभावशाली व्यक्तित्व – देखते ही हृदय पहले झुक गया, सिर बाद में चरणों पर। आँखों से धाराप्रवाह स्नेह और वात्सल्य की उन्मुक्त वृष्टि करते हुए परिचय पूछा। मैंने अपना परिचय दिया और बताया कि काशी के कवि तार्किक चक्रवर्ती सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पं. महादेव पाण्डेय (जो बाद में महेश्वरानन्द सरस्वती के नाम से उर्ध्वाम्नाय पीठाधीश्वर हो गये) का भागिनेय हूँ। बातचीत में आत्मीयता का प्रवाह भोजपुरी (मातृभाषा) में बहने लगा। बात तकल्लुफ तक आई और एक संस्कृत का निष्णात महात्मा हास्य के शेर पर उतर आया और व्यवहार में तकल्लुफ की पुष्टि की। प्रसाद पाकर जल ग्रहण किया। लगभग २-२॥ का समय था, महाराजश्री की भिक्षा का समय हो रहा था अतः आभास पाकर मैं अतिथि निवास के कक्षविशेष में आकर पड़ा रहा। पेट में चूहों का कूदना स्वाभाविक था, फिर भी आंख बन्द किये एक चौकी पर पड़ा था कि अचानक एक आश्रमसेवक ने आवाज दी। आँख खुलने पर देखा कि महाशय पत्तल से ढँकी एक थाल लिये खड़े हैं। मैंने जिज्ञासा की नजरों से देखा। उत्तर मिला "महाराज श्री ने अपनी भिक्षा से निकाल कर आपके लिये खाद्य भेजा है और सरयूपारीण ब्राह्मण अस्पृश्यता का भाव न लाये फलतः यह भी कहलवा दिया कि यह उनका निजी पाक है कोई संदेह न करूँ।" आप कल्पना कर सकते हैं कि इस थाल के पीछे जो उनका अगाध स्नेह

उमड़ रहा था उसमें आपाद मस्तक कौन नहीं डूब जायेगा। मानसिक तृप्ति के साथ-साथ भौतिक तृप्ति भी मिली।

अपरान्ह के वार्तालाप के निमित्त ४-५ का समय मिला। मैं समय पर पहुंचा। दिव्य मूर्ति, हंसमुख वदन, नितवृत व्यक्तित्व और प्रभावपूर्ण प्रभामण्डल ने मुझे आश्वस्त किया। आसन पर बैठने का मुझे आदेश मिला। कुछ अन्य लोग भी वहां विद्यमान थे। मैं म. म. पं. गोपीनाथ जी कविराज द्वारा प्रदत्तविषय ''तांत्रिक दृष्टि से निर्गुण साहित्य का मंथन'' विषय पर शोध कार्य कर रहा था। तंत्रों पर ही बातचीत चली। काफी देर तक वैदुष्य निखराव छहर-छहर कर बरसता रहा। उनका स्नेह और बढ़ गया। उसी समय सायंकाल किसी गृहस्थ ने रात्रि भोजन का निमन्त्रण पूरे आश्रम को दिया। महाराज श्री ने कहा– आश्रम के अन्य लोग तो भोजनार्थ जायेंगे, पर त्रिपाठी जी मेरे अतिथि हैं, वे नहीं जायेंगे। उनका भोजन यहीं होगा। रात्रिकालीन भोजन सचमुच वहीं हुआ। भोजन के अनन्तर महाराजजी से आशीर्वाद लेकर सोने चला। मेरे चले आने के बाद शासकीय महाविद्यालय के कतिपय वरिष्ठ अध्यापकों से भी उन्होंने मेरी चर्चा की और उनसे प्रेरणा पाकर वे लोग मेरे शयन कक्ष में आये। सम्मान से उठाया। अब उन लोगों का अतिथेय जागा। शहर का चक्कर लगा, सुस्वादु पदार्थ खिलाये गये। घुमा फिरा कर वापस शयन कक्ष तक लोग छोड़ गये।

प्रातःकाल उठ कर नित्य क्रिया से निवृत्त होकर आश्रम से बाहर प्रातःकालीन चङ्क्रमण पर निकल गया। बाहर आश्रम के ही एक सज्जन मिले। उन्होंने बताया कि महाराज श्री ने मुझे चाय के लिये दिखवाया था और पूछ रहे थे। साथ ही उन्होंने और मजे की सूचना और दी, वह यह कि एक व्यक्ति के मन में मेरे प्रति महाराज जी के स्नेहातिरेक को जानकर बड़ी ईर्ष्या हुई और पूछने पर उसने कुछ रुष्ट उत्तर दिया। मेरे लिये तो यह गौरव की बात थी। आकर प्रणाम किया, स्नेह से मेरे सिर पर उन्होंने अपने हाथ फेरे और हृदय से आशीर्वाद दिये। महाराज श्री के उस अगाध स्नेह ने आज तक मुझे सिक्त कर रखा है और उनकी आराध्य आकृति हृदय पर अपना कालजयी प्रभाव डाल गयी है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

धन्य वे वीर हैं जो धर्म और राष्ट्र के लिए अपने प्राणों का त्याग करके वीर गति को प्राप्त करते हैं। महर्षि व्यास ने बताया है कि इस संसार में सूर्य मंडल को भेद कर दो ही पुरुष ब्रह्म लोक को जाते हैं। पहला, योगयुक्त परिव्राट (संन्यासी) और दूसरा रण में धर्मयुद्ध द्वारा जो अपने प्राणों को त्यागता है।

— *श्रीस्वामीजी*

पीताम्बरा पीठ की यात्रा

— श्री कृष्णराय
खुदाईपुरा, गाजीपुर

प्रिय सम्पादक जी,

ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्री अनन्त श्री स्वामी जी महाराज पीताम्बरा पीठ, दतिया-स्मृति ग्रन्थ के सम्बन्ध का आपका कृपा पत्र प्राप्त हुआ। आपने यह लिखकर कि ग्रन्थ में श्रद्धापरक लेखों को भी स्थान मिलेगा, मुझे भी अपनी बात कहने के लिए साहस जुटा दिया है। वास्तव में एक मात्र श्रद्धा के आधार पर ही मुझे स्वामी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बात लगभग तेरह-चौदह वर्ष पूर्व की है। मैं अपने क्षेत्र के सुविख्यात सन्त सीतापट्टी के नागाबाबा के दर्शन कर के लौटा था। मन में सन्तों के दर्शन की ललक है। सत्तर वर्ष की जीवनावधि में अनेक सन्तों के चरणों की धूलि माथे पर चढ़ायी है और उनके सान्निध्य में बैठकर आनन्दानुभूति की है। नागाबाबा के सम्मुख केवल १५-२० मिनट था। इस अल्पावधि में ही उस सन्त से मैं इतना अधिक प्रभावित हुआ था कि जो कोई भी अपनी बात सुनने वाला मिलता, उसी से उनकी चर्चा करने लगता था। एक सन्ध्या को अपने जिले के तत्कालीन जज श्री भृगु नारायण श्रीवास्तव से, जो स्वयं सन्त हैं, मिलने गया। नागाबाबा की चर्चा उनसे छेड़ दी। दोनों के बीच देश के कई सन्त-वार्ता के विषय रहे। इसी क्रम में जज साहब ने कहा– 'इस समय देश के सब से बड़े सन्त दतिया के पीताम्बरा पीठ में हैं। दर्शनीय सन्त हैं।' निश्चय हुआ, दोनों क्वार में नवरात्र के अवसर पर दतिया चलेंगे। जज साहब को सन्तजगत का विशेषज्ञ मानता हूँ। फिर भी दतिया के सन्त के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए मैंने ग्वालियर में अपने अनुज सूर्यदेव शर्मा को पत्र लिखा। पत्रोत्तर में स्वामी जी के प्रति उद्‌गार व्यक्त करते हुए सूर्यदेव ने लिखा– 'पूज्यपाद स्वामी जी को सन्त नहीं, साक्षात् शंकर मानता हूँ।' सन्त के प्रति असीम श्रद्धा और आस्था ही सूर्यदेव के लिए शंकर बन गयी है, अन्यथा मानव को शंकर कहा जाय यह औचित्य की परिधि में कैसे समेटा जा सकता है, ऐसा मैं सोचने लगा। इस चिन्तन में श्री आद्य शंकराचार्य की वाणी ने मेरी सहायता की। उनका कथन मेरे दृष्टि-पथ पर था –

लक्ष्यालक्ष्यगति त्यक्त्वा यस्तिष्ठेत्केवलात्मना।
शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः।।

जिसका कोई प्राप्तव्य नहीं और जो ब्रह्म वेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ है, वह साक्षात् शिव है। यदि सूर्यदेव उन्हें शंकर मानते हैं तो निश्चय ही वह सन्त सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता है। फलतः दर्शन की उत्कण्ठा तीव्रतर हो उठी और नवरात्र की प्रतीक्षा की जाने लगी।

जज साहब के पास अवकाश का अभाव था। अतः मैं उनके संग से वञ्चित रहा। अकेले पीताम्बरा पीठ पहुँचा। वहाँ के पुनीत आध्यात्मिक वातावरण में पाँच दिनों तक रहा। भगवती माँ पीताम्बरा तथा पीठ के संस्थापक स्वामी जी के सान्निध्य में रहकर अपनी क्षमता के अनुसार जो कुछ ग्रहण कर सकता था, उसे अपनाने का प्रयास किया। स्थान की जानकारी की। स्वामी जी के पदार्पण के पूर्व जनशून्य वनस्थली में केवल पशुओं का सुपास था। बनखण्डेश्वर के नाम से जाने जाने-वाले भूमि-खण्ड के एकमात्र अधिष्ठाता भूत भावन भगवान शंकर अमूर्त रूप से वहाँ के कण-कण को प्राणवान किए हुए थे। प्रभाव इतना गम्भीर कि जिस साधक ने आसन पर बैठ, आँखें बन्द की, ध्यानावस्थित हो गया। निराकार शिव की उस सिद्धस्थली में साकार शंकर के रूप में स्वामी जी ने सर्वप्रथम वहाँ के प्राणवान् वातावरण को वाणी प्रदान की। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता के लिए भगवान शंकराचार्य जी के शब्दों में उससे अधिक उपयुक्त स्थान दूसरा कौन हो भी सकता था। स्वामी जी ने उस स्थान को अपनी साधना के प्रकाश तथा जनकल्याणी भावना के प्रसार एवम् पल्लवन के लिए चुना। स्थान-चुनाव की उनकी प्रक्रिया ही उनके ब्रह्मवेत्ता विद्वान होने की दिशा में संकेत करती है।

चिन्ताशून्यमदैन्यभैक्षमशनं पानं सरिद्वारिषु,
स्वातन्त्र्येण निरङ्कुशा स्थितिरभीर्निद्रा श्मशाने बने।
वस्त्र क्षालनशोषणादिरहितं दिग्वास्तु शय्या मही,
सञ्चारो निगमान्त वीथिषु विदां क्रीडा परे ब्रह्मणि।

(विवेक चूडामणि)

'ब्रह्मवेत्ता विद्वान का चिन्ता और दीनता रहित भिक्षान्न ही भोजन तथा नदियों का जल ही पान होता है। स्वतंत्रता उनकी स्थिति होती है। भयशून्य होते हैं। बन में सुख की नींद सोते हैं। पृथ्वी ही शय्या है। वेदातवीधियों में विचरण करते हैं और परब्रह्म में ही उनकी क्रीडा होती है।'

पीताम्बरापीठ पहुँचने के पूर्व से ही मेरे ऊपर स्वामी जी की महानता का प्रभाव पड़ चुका था। उनके दर्शनोपरान्त वह और गहरा गया। चक्रवृद्धि व्याज की गति से श्रद्धा उत्तरोत्तर वृद्धि पर थी। जानकारी मिली– पूज्यपाद ने कभी मुद्रा का स्पर्श नहीं किया। भिक्षान्न पर ही शरीर को चलाया। स्वतंत्र-वृत्तिने तो उन्हें संसार-त्याग की प्रेरणा ही दी थी, जो बाद में उनकी चेरी हो गयी थी। जिसकी चाह गयी, चिन्ता मिटी, उससे बड़ा सम्राट कौन है? फिर उसके पास दीनता कहाँ? यदि भय की मनोदशा होती तो सुख की नींद के लिए जंगल को चुनने का प्रश्न ही कहाँ उठता। बड़े-बड़े विद्वानों को पूज्यपाद के श्री चरणों में बैठ कर वेदान्त की चर्चा करते सुनते पाया। अत: ऐसे जीवनमुक्त व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धावान् होना स्वाभाविक था।

प्रिय महोदय,

हम आप सभी मानते हैं कि वेदों का जो कोष वर्तमान रूप में हमें उपलब्ध है, वह आरण्य-संस्कृति अथवा गुरुकुल-शिक्षा-पद्धति काल के चतुर्वेदी, त्रिवेदी और द्विवेदी की प्रतिभा और स्मरण-शक्ति की धरोहर है; किन्तु आज के युग में भी, जब कि समूची विद्या पुस्तकों के पृष्ठों में है, चारों वेदों को कण्ठस्थ करनेवाला कोई मेधावी है, कल्पना नहीं थी। मुझे इस अकल्पित रूप में भी स्वामी जी का परिचय दिया गया। इसकी एक साधारण सी झाँकी भी मैंने पायी। वृन्दावन के संस्कृत महाविद्यालय के प्राचार्य अपने एक आचार्य के साथ स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुए। ऋग्वेद की किसी ऋचा को व्याख्यायित करना था। उक्त पण्डितों ने स्वामी जी के सम्मुख अपनी शंका का निवेदन किया। स्वामी जी ने एक सहायक को ऋग्वेद की प्रति लाने का निर्देश देते हुए ऋचा पर चर्चा प्रारम्भ कर दी। विभिन्न अधिकारिक विद्वानों की व्याख्याओं को उद्घृत करने लगे। इतने में ग्रन्थ आया। उसे पण्डितों की ओर सरकाते हुए स्वामी जी ने कहा – 'अमुक पृष्ठ खोलिए। अमुक स्थान पर ऋचा अंकित' है। वैसा ही हुआ। ऋचा संकेतित स्थान पर मिली। स्वामीजी ने कई भाष्यकारों की सम्मति पर प्रकाश डालते हुए अन्त में अपना विचार दिया। स्वामी जी की निज की व्याख्या में पण्डितों को समाधान मिल गया। मैंने उन्हें पूर्ण सन्तुष्ट एवम् प्रसन्न पाया।

भारतीय संस्कृति एवम् हिन्दू-दर्शन के प्रबल पोषक होते हुए भी स्वामी जी अन्य धर्मों के प्रति पूर्ण सहिष्णु थे। उन्होंने वाइविल और कुरान की चर्चा बड़े आदर से की। बतलाया कि उनके पुस्तकालय में अन्य धर्म-ग्रन्थों का भी समावेश है। तंत्र के तो वे आचार्य ही थे। भगवान परशुराम को तंत्रविद्या का स्रोत मानते थे। इस सम्बन्ध में स्व. के. एम. मुंशी की अंग्रेजी में लिखी एक पुस्तक मुझे पढ़ने को दी थी।

आश्रम में परशुराम की प्रतिमा की स्थापना से यह तथ्य स्पष्ट है भगवान परशुराम के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखते थे। मंत्र सर्वशक्तिमान होता है, इसे पूज्यपाद ने बड़े तार्किक ढंग से मुझ को समझाया था। "स्थूल से सूक्ष्म अधिक शक्ति सम्पन्न होता है। अणु-परमाणु में सूक्ष्मता के कारण अकूत शक्ति है। इन से भी सूक्ष्म शब्द है, जिसका अस्तित्व है; किन्तु यह दृष्टि की पकड़ से बाहर है। अत: शब्द-शक्ति परमाणुशक्ति से बहुत अधिक आगे है।" इस प्रकार उन्होंने मंत्रों के प्रति मुझ में आस्था भरी। मेरा दुर्भाग्य, इस आस्था को कभी व्यावहारित रूप न दे पाया।

आश्रम के लोगों ने बतलाया कि स्वामी जी जिससे भी बातें करते हैं, वह यही समझता है कि उस पर उनका अत्यधिक स्नेह है। यह जानते हुए कि ब्रह्मवादी प्राणिमात्र के प्रति समभाव रखता है, कुछ ऐसा ही भ्रम मुझे भी रहा। मैंने अनुभव किया कि मुझ से ऊँचे स्तर के दर्शनार्थियों की अपेक्षा स्वामीजी ने मुझको अधिक समय दिया। उन्होंने स्वयं कहा भी – 'तुम यहाँ विष्काम आए हो। अत: तुमसे बातें करना सुरुचिपूर्ण लगता है।' बातें भी विभिन्न विषयों पर हुई। मेरे लिए सबसे आल्हाददायक वह प्रसंग था, जब उन्होंने मेरी मातृ-बोली खाँटी भोजपुरी में बातें कीं और वाराणसी तथा वक्सर के बीच की भौगोलिक स्थिति, निवासियों के रहन-सहन और सन्त परम्परा का सटीक वर्णन किया। पिछली २३ फरवरी को संयोगवशात् इस प्रसंग की चर्चा हरद्वार के स्वामी सत्यमित्रानन्द जी से हुयी। उन्होंने बतलाया कि अपने जीवन-परिचय को छिपाये रखने वालों में पूज्यपाद स्वामी जी अद्वितीय थे। उन्होंने सम्भावना व्यक्त की कि पूज्यपाद का जन्म-स्थान कहीं भोजपुरी क्षेत्र में ही है और भगवान परशुराम के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा से ऐसा लगता है कि वे अयाचक ब्राह्मण – कुल में पैदा हुए थे। इस सम्भावना में कहाँ तक सत्यता है, इसकी खोज उनके जीवन पर प्रकाश डालने वाले विद्वान करेंगे। मैंने तो उन्हें देश-काल की सीमा से युक्त एक महान ब्रह्मविद् सन्त के रूप में देखा, जिसमें आत्मानुभूति के साथ-साथ समग्र मानव जाति को प्रकाश-पथ पर लाने की दैवी प्रवृत्ति थी। राख की ढेर में ठंढाती तंत्र विद्या की आध्यात्मिक उपयोगिता को उजागर करके कुतर्कियों में भी उन्होंने आस्था भरी। सिद्धिदा वनस्थली में भगवती पीताम्बरा का सिद्ध पीठ तथा साधकाश्रम की स्थापना करके अनेक जिज्ञासुओं को व्यावहारिक ज्ञान-प्राप्ति का अवसर जुटाया तथा पुस्तकालय और संस्कृत-परिषद द्वारा अनेक आस्थावानों को अध्यात्म-विज्ञान एवम् भारतीय संस्कृति का सजग प्रहरी बनने का जुगाड़ एकत्र कर दिया। ऐसे आत्मज्ञानी तथा समाज-कल्याण-चिन्तक महात्मा की पावन स्मृति में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने में मैं स्वयं में धन्यता का अनुभव कर रहा हूँ।

अन्त में दो शब्द आप से और। यह पत्र आपके आदेश के अनुपालन का प्रयास मात्र है। यदि स्मृति-ग्रन्थ के लिए स्तरीय न हो तो नि:संकोच इसे अलग कर देंगे। ग्रन्थ के अन्तरंग की सौम्यता में तनिक भी ह्रास न हो, स्वामी जी के प्रति श्रद्धा रखनेवाला हर व्यक्ति यही चाहेगा।

आप को धन्यवाद के साथ।

अपना ही

***

–: वैदिक उपदेश :–

ईश्वर की बुद्धि शुद्ध है उसी से वह जगत् रचना का संचालन यथार्थ रूप में कर रहा है। वह पूर्ण सत्य है, इस लिए उसमें भ्रम, प्रमाद, अज्ञता नहीं है। सारा संसार बुद्धिपूर्वक चल रहा है। बहुत से तार्किक ईश्वर के कार्य में त्रुटि निकालते हैं, तथापि वास्तविक ज्ञान उन्हें नहीं है, उनकी बुद्धि दोष युक्त है, इसीलिए उन्हें ऐसा लगता है, क्योंकि मानव बुद्धि अविद्या के अधीन है इसी लिए उसे अशुद्ध कहते हैं। ईश्वर की बुद्धि का सहारा लेने पर ही मनुष्य वास्तविक बुद्धिमान हो सकता है।

– *श्रीस्वामीजी*

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं, शिष्यस्तु च्छिन्न संशय

(मूल मराठी से अनुदित)

– अ. र. उर्फ अण्णाजी कवीश्वर

अनुवादक – वैद्य विनायक लक्ष्मण कुलकर्णी
नागपुर (महाराष्ट्र)

महामानव अत्रि, धौम्य, वशिष्ठ, सांदिपनी आदि पुण्यश्लोक आचार्यों के गुरुकुल कैसे होंगे? उसकी दिव्य कल्पना आज श्री पीताम्बरा पीठ से होती है। पूज्य स्वामी जी के तपोबल से सिद्ध हुआ श्री पीताम्बरा पीठ एक गुरुकुल है।

इस अवनी-तल पर भागीरथी गंगा को लाने वाले भगीरथ हम लोगों को ज्ञात है; किन्तु पीताम्बरा पीठ क्षेत्र में जिन्होंने ज्ञानगंगा लायी, उस भगीरथ का आचार्य जी का पूर्वेतिहास अज्ञात है। वे लोकाभिराम थे, उन्हें लोगों ने स्वामीजी कहा और वे आज भी प्रेम से प्रतिसाद देते हैं।

पूज्य स्वामी जी नहीं हैं, वे चले गये ऐसा कहने की उद्दण्डता नहीं होती। स्वामी जी सामने दिखने वाले इस कमरे से 'उस' कमरे में गये। अब बाहर से आवाज देने का कष्ट हमें करना पड़ेगा। 'उस' कमरे में याने अन्दर के कमरे में वे अन्तर्यामी हैं और वहाँ से वे अपने भक्त-प्रेमीजनों के जीवन को सुनियन्त्रित करते हैं।

दुग्धशर्करायोग ऐसा है कि इस पावनसिद्ध गुरुकुल में होनेवाले गुरुपौर्णिमा के उत्सव में उपस्थित रहने का सौभाग्य मुझे मिला। इस वर्ष यह मंगल पर्व मंगलवार दिनांक ६ जुलाई १९८२ को था। प्रसन्न वातावरण, श्री पीताम्बरा माई का महन्मंगल परिसर, सिद्ध श्रीयंत्र के दिव्य संस्कार वाले क्षेत्र में पाण्डवकालीन श्री दन्तवक्त्रेश्वर महादेव का सान्निध्य, पुण्यश्लोक पूज्य स्वामी जी की प्रेमकृपा की छत्रछाया में गुरुपौर्णिमा-उत्सव सम्पन्न हुआ। दतिया के श्री पीताम्बरापीठ में सभी कुछ मनोरम है।

हाथ की पांचों उंगलियां बराबर नहीं रहती, ऐसा व्यवहार में कहा जाता है, परंतु इस श्री पीताम्बरा पीठ में मैंने आश्चर्य देखा। इस क्षेत्र में मैंने अनुभव किया कि पांचों ही उंगलियां एक जैसी ही हैं। अन्न भक्षण करते समय, अन्न कवल हाथ में पकड़ते समय उंगलियों की तरफ देखने पर वे एक परमार्थ के समान दिखती हैं।

परमार्थ की भूख लगने के कारण हरेक के हाथ में जितना हजम हो उतना और अपनी पसंद की साधना का ग्रास था और इसीलिए प्रत्येक की उंगलियां समान थीं।

यहाँ इतना बड़ा गुरुपौर्णिमा का उत्सव सम्पन्न हो रहा था किन्तु किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं थी। साधना का ही अनुसंधान होने के कारण अपने-अपने नियत कार्य पूर्णतया सम्पन्न होते रहे। रसोई तैयार करने वाले, माला-जप करने वाले, झाड़ू-लीपापोती करने वाले, गायक, केवल इतना ही नहीं बल्कि विद्वत्चर्चा में भाग लेने वाले भी एक ही धुन में पूज्य स्वामी जी के साक्ष्य में, श्री पीताम्बरा माई के चरणों में लीन थे। यही इस क्षेत्र का सच्चा वैभव है। इस समय पूज्य श्री स्वामी विवेकानन्द जी के एक वाक्य का स्मरण होता है – Take care of the means and end will take care of itself."

यह वैभव नजदीक से देखने का सौभाग्य मुझे मेरे परमस्नेही पं. शिवनाथ जी शर्मा – (सागर जी) और डॉ. जी. बी. मुदाफले के माध्यम से प्राप्त हुआ। पूज्य स्वामी जी के दर्शन की लालसा बहुत पुरानी थी। गुरुपौर्णिमा के अवसर पर हमने दतिया के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में जाते समय मैं कुछ अधिक बातचीत नहीं करता था। दतिया का दर्शन होगा इस विचार से आनन्द में था, किन्तु पूज्य स्वामी जी के पश्चात् जाना हो रहा था इस कारण थोड़ी उदासी भी रही। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि दतिया जाने का यह योग दस वर्ष के बाद आया जबकि पूज्य स्वामीजी का दर्शन उनके फोटो द्वारा दस वर्ष पूर्व हुआ था। मुझे अभी भी याद है, पूज्य स्वामीजी का फोटो मेरे पिता श्री रमेश बापूराव जी कवीश्वर उर्फ काका जी ने यहां के प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान देवेन्द्र जी रेखी से लाये थे। वे पूज्य स्वामी जी के अनुग्रहीत शिष्य हैं। श्री रेखी जी का नागपुर में गांधीबाग में 'दीपक रेखी' नाम का एक प्रतिष्ठान है, वहां मेरे पिता जी डेपो मैनेजर थे। आदरणीय श्री रेखी जी और मेरे पिता जी फुर्सत के समय संत वाङ्मय के बारे में हमेशा बातें किया करते थे। संतों की याद करने में उनका समय बीतता था। उस समय पूज्य स्वामी जी के अलौकिक और दिव्य अनुभव, संकटों से पार करने वाले और भगवत् प्रेम बढ़ाने वाले संवाद श्री रेखी जी बताते थे और पिता जी उसे हमें सुनाते थे। इसी से मेरी जिज्ञासा बढ़ती गई। पिताजी कहते थे कि योग आने पर पूज्य स्वामी जी का दर्शन करने के लिए अवश्य दतिया जाना।

एक दिन श्री रेखी जी ने एक सुन्दर रंगीन कैबिनेट साईज का फोटोग्राफ मेरे पिता जी को दिया। उन्होंने उसे घर में लाकर मुझे बताया कि उस फोटो के लायक अच्छी फ्रेम लगाकर लाना, पैसे का कोई प्रश्न नहीं, यह फोटो हमारे मालिक का प्राणसर्वस्व है – ऐसा कहकर वह फोटो उन्होंने मुझे दे दिया। उस पैकेट को प्रणाम

करके पूज्य स्वामी जी कैसे होंगे इस जिज्ञासा से मैंने उसे धीरे से खोला। भव्य शरीरयष्टि, वक्षस्थल तक लुंगी पहने हुए, गौरवर्ण, सुहास्य सूक्ष्म दृष्टि, कैमेरा और कलाकार की उत्कृष्ट कला और पूज्य स्वामी जी की शुभेच्छा – इनका त्रिवेणी संगम अर्थात् वह सुन्दर फोटोग्राफ।

मैं देख रहा था। फोटो में पूज्य स्वामी जी के भाल प्रदेश पर अर्धचन्द्राकार और वक्षस्थल पर गले तक माला पहने हुए ऐसा कुछ तो भी दिखा। फ्लॅश के कारण पसीना या तैलीय पदार्थ जैसा आकार भी वह नहीं था। वह फोटो ग्राफिक टचिंग भी नहीं था। चन्दन-कुंकुम-भस्म इत्यादि सामान भी वह नहीं था, फिर वह क्या होगा? कुछ सामुद्रिक चिन्ह होगा ऐसा सोचकर मैने लेन्स से देखा तो मैं दंग हो गया। इसके बारे में मैंने आदरणीय श्री देवेन्द्र जी रेखी से पूछा तो उन्होंने बताया कि भाल में चन्द्र और गले में सर्पाकार माला यह श्रीविग्रह के भूषण हैं। वह अभी भी मेरी दृष्टि के सामने स्पष्ट है।

उल्लसित और उदासीन ऐसी संमिश्र अवस्था में श्री पीताम्बरा पीठ के परिसर में मैं घूम रहा था, साथ में डॉ. मुदाफले भी थे। वे मुझे सब समझा रहे थे। दुर्लभ षडाम्नाय दर्शन, मनोहर बटुक भैरव, मंगल-मूर्ति गणेश, श्री धूमादेवी, श्री परशुराम इत्यादि का दर्शन लेते हुए सर्व मंगलमयी श्री पीताम्बरा माई का दर्शन हुआ। वहां का सिन्दूर मस्तक में लगाया। उरविलोभनीय मूर्ति को देखकर मन शान्त हुआ। पूज्य स्वामी जी का फोटो और पादुका देखकर मन उल्लसित हुआ। बरामदे में पूज्य स्वामी जी के आसन के पास एक कोने में मैं बैठा रहा। दाहिनी और श्री स्वामी जी की पादुका दिखती थी। सामने के द्वार से श्री पीताम्बरा माई का दर्शन होता था और बाईं ओर कुछ दूरी पर पूज्य स्वामी जी के समाधि स्थान पर अमृतेश्वर शिवलिंग का दर्शन होता था। मेरे थोड़ा पीछे पीने के पानी का घडा था। मन में आया कि, यहां श्री नवार्णमन्त्र का जप करूं मैं आसनस्थ हुआ, मन लगने लगा बहुत हल्का, प्रसन्न और निवान्त लगने लगा। पाठ (Lesson) जैसे लेते हैं वैसा जप चल रहा था। थोड़ा ध्यान लगने पर ऐसा आभास हुआ जैसे कोई प्रशस्त व्यक्ति सामने रखे हुए केन के सोफे पर बैठा है। वह सोफा थोड़ा करकर हुआ, इस लिए उधर देखा तो वहां कोई भी नहीं था। जप में ध्यान लगाने का फिर से प्रयत्न किया, मन लगने लगा। इतने में अचानक अत्यन्त तेजस्वी नीले रंग का बड़ा आकर्षक एक गोला दो-तीन बार दिखा। मुख से जप शुरू रहने पर भी कुछ विक्षेप हुआ। इसके बाद श्री पीताम्बरा माई के विलोभनीय मूर्ति की तरफ देखते हुए संकल्पित जप संख्या पूरी की। थोड़े समय पूर्व हुए विक्षेप का मन में दुःख था तथा थोड़ी थकावट आने से आँखें मूंदकर शान्त बैठा था। मन में विचार आया कि पूज्य स्वामी जी होते तो विक्षेप के बारे में शिकायत करके मन शान्त करता। अबोध मन सुसंवाद करना चाहता

था, मैंने कहा – पूज्य स्वामी जी, आपका तो ध्यान मुझ पर है ही, तो ऐसा ही ध्यान मुझ पर आगे भी रहेगा ना? तभी मेरा जीवन धन्यता से सम्पन्न होगा। उस समय मुझे संत तुकाराम महाराज का एक पद् याद आया।

लेकराचे हित वाहे, माऊलीचे चित्ति।
ऐसी कळवळ्याची जाती, करी लाभाविण प्रीति।।
पोटी भार वाहे, त्याचे सर्वस्वही साहे।
तुका म्हणे, माझे तैसे तुम्हां संता ओझे।।

(माता का चित्त हमेशा बच्चे का हित देखता है। यह प्रेम की रीति ऐसी है कि लाभ के विना ही माता प्रीति करती है। पेट में बच्चे का भार वहन करती है, उसका सर्वस्व सहती है। तुका कहता है कि वैसा ही आप संतों के ऊपर मेरा भार है।)

किसी को 'माँ' कह कर पुकारना, इससे बड़ा सम्मान और क्या हो सकता है? संत-सत्पुरुषों की तरफ देखकर गुरुतुल्य भावना दृढ़ होना यही उनका सत्कार-सम्मान है।

पूज्य स्वामी जी की मुझ पर कृपा है अथवा नहीं – यह विचार कर मन में धारणा की कि यदि मुझ पर कृपा है तो हरे रंग की साड़ी पहने एक सौभाग्यवती स्त्री एक मिनट में ही मेरी ओर आयेगी एवं पानी पीने के घडे की तरफ निकल जायेगी। एक मिनीट तो क्या, कुछ ही निमिषों में एक बच्चा गोद में लिए हुए तथा हाथ में पानी का घड़ा लिए हुए, हरे रंग की साड़ी पहने, गौरवर्ण की सौभाग्यवती स्त्री आयी। उसने पीताम्बरा माई का यथाविधि दर्शन किया और पानी पीने के घड़े की ओर चली गई। हरी साड़ी पहने हुए उसे नियोजित मार्ग से जाते हुए देखकर मैं गद्‌गद् हो गया। मैंने अपनी आंखें पोछी और मन ही मन कहा कि पूज्य स्वामी जी आपका निःसंशय मेरे ऊपर ध्यान है इसके लिए अब कोई दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। मैने आपको कितना कष्ट दिया। मुझे लज्जा प्रतीत हुई, मैंने आसन को प्रणाम किया और प्रार्थना की – **''सर्वेऽपि सन्तु, सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।।''** यह प्रार्थना करते हुए श्री स्वामी जी की पादुकाओं पर नतमस्तक हुआ। श्री पीताम्बरा माई को साष्टांग दंडवत किया और समाधि के सामने मैंने नाक रगड़ी। पूज्य स्वामी जी से मैंने प्रमाण चाहा यह मुझ से बहुत बड़ी उद्दण्डता हुई, अपने मन का झगड़ा मैं सुन रहा था। गाय का बछड़ा जब गाय के स्तन में ठुस्सा मारता है तभी गाय दूध देती है। अस्तु।

साधक को साधनारत करने वाले और प्रगतिपथ पर ले जाने वाले महन्मंगल

श्री पीताम्बरा माई के परिसर में मैं सुख से विहार करता रहा। समुदाय बढ़ता जा रहा था किन्तु कोई गड़बड़ी नहीं थी, भेदभाव नहीं था। भविष्यकाल में कोई ठोस विधायक कार्य होने वाला होगा इसलिए एकता थी। साधनारत रहने का अभ्यास होने से स्वयं अनुशासन था। श्रीयन्त्र की पद्धति से पूजा और श्री पीताम्बरा माई की महापूजा होने के पश्चात् हर एक व्यक्ति पंक्ति में खड़ा होकर श्री पादुकापर यथाशक्ति भावाञ्जलि अर्पित करके उपकृत होता था। 'पूर्ण' होने की दृष्टि से गुरुपौर्णिमा मना रहा था।

दोपहर में महाप्रसाद लेने के बाद मैं श्री बटुक भैरव के पास आकर बैठा। उस समय मन में एक प्रश्न उठा कि दस विद्या के विषय में मुझे कौन बताएगा? बारह राशि के स्वामी, नवग्रह, नवरस, नवरंग, नवदुर्गा – इनका दसविद्यान्तर्गत कुछ सम्बन्ध है क्या? इन सब प्रश्नों का सविस्तर उत्तर मेजर श्री ठुस्सू जी ने स्वयं दिया। मुझे आश्चर्य हुआ, सायंकाल में श्री धूमावतीदेवी के पास एवं श्री परशुराम जी के मन्दिर के सामने यज्ञमंडप की सीढ़ी पर बैठकर यह विवरण लगभग देढ़-दो घण्टे तक सुना। डॉ. मुदाफले जी भी थे। वास्तव में कुछ समय बिताने के लिए हम इधर आये थे लेकिन अत्यन्त उद्‌बोधक और नई बातें मेजर श्री ठुस्सू जी से सुनने को मिलीं। श्री ठुस्सू जी ने कहा – श्री पीताम्बरा माई का अद्‌भुत रस, रंग पीला, संबंधित ग्रह गुरु हैं, ये देवी सत्त्ववर्धिनी हैं। कुण्डली में जन्मतः होने वाला गुरुग्रह दोष दूर होकर गुरुग्रह की अनुकूलता अनुभव में आयी। ऐसे अनेक उदाहरण अपने विवरण में श्री ठुस्सू जी ने बताये। मेजर ठुस्सू जी का गहन अभ्यास है लेकिन उन्होंने कहा 'हम लोग फक्कड़, खाना-पीना करने वाले मनमौजी हैं, हमें सिर्फ उर्दू आती है। ऐसे मुझ जैसे पर पूज्य स्वामी जी को कृपा हुई, यह सब उनका ही है।'' श्री ठुस्सू जी ने अपनी डायरी निकाली, उसमें से पूज्य स्वामी जी के संवाद, अवतरण, दस विद्या देवता, नवग्रह, नवरंग, नवरस – इनका चार्ट और पूज्य स्वामी जी की सही के साथ हस्ताक्षर दिखाया। मैं धन्य हो गया।

मेरी ऐसी निश्चित धारणा हुई कि श्री पीताम्बरा माई के अद्‌भुत रस में यह सारा परिसर डूबा हुआ है और पूज्य स्वामी जी के तपोबल से भव्य-दिव्य कल्याणकारी शक्ति के साथ तद्रूप होकर मौन हुआ है। मैं समझता हूँ कि तद्रूपता की अर्थात् एकान्त की विलक्षण चरम सीमा याने मौन। यहाँ के एकान्तवास का अनुभव लेते हुए कोई भी यही कहेगा कि **''गुरोऽस्तु मौनं व्याख्यानं, शिष्यस्तु छिन्न संशयः।''** यह पावन सिद्ध परिसर निःसंशय निरामय अवस्था को ले जाने वाला सिद्ध हो रहा है। जीव का शिव से, मृण्मय का चिन्मय से, ज्योति का तेज से एकरूप होकर साधकों के जीवन श्री पीताम्बरा पीठ से सुनियंत्रित हो रहे हैं।

उसी दिन दोपहर के चार बजे को कमाल हो गया। हुआ यह की श्री गणेश जी के पास आकर बैठा, वहां गुंदी नामक एक दाढ़ी वाला वृद्ध जप के लिए लगने

वाली मालायें तैयार करके बेचता है। मैं बैठे-बैठे गुंदी बाबा जी का माला तैयार करना देख रहा था। थोड़ा अधिक मूल्य देकर अच्छे दर्जे के कमलाक्ष के मणि मिलेंगे क्या? ऐसा विचार मेरे मन में आया। फिर तो आश्चर्य की बात यह हुई कि तत्काल ही बाबाजी ने कहा – "यहाँ मेरे पास वैसे मणि नहीं हैं, आपके लिए छांटकर बनाई हुई अच्छी माला निकालकर रखूंगा।" मैंने कहा – वह माला श्री सागर बाबूजी को दीजिएगा, मुझे वह मिल जाएगी, लेकिन मैंने तो आपसे माला के विषय में तो प्रत्यक्ष कहा ही नहीं। उस पर गुंदी बाबाजी बोले 'मुझे ऐसा लगा कि आप माला के दाने के बारे में बोल रहे हैं' यह सुनकर मैं अवाक् रह गया। अपने काम में मग्न हुए गुंदी बाबाजी शान्ति एवं गम्भीरतापूर्वक मन ही मन जप करते रहते हैं। यह बात उन्होंने स्वीकार की। उनका एक वाक्य बड़ा मार्मिक था – "पूज्य स्वामी जी ने जैसा बताया वैसा अपने व्यवहार के साथ नाम रटता हूँ अन्यथा उनके सामने आने के लिए उजागरी कहाँ है?" मैंने तुरन्त कहा कि – बाबाजी, आपने बहुत मार्के की बात बतायी। यह तो सच ही है कि **'एक नाम तारी, बाकी सारी दीवालखोरी।'** (एक नाम तारता है बाकी सब दिवालियापन है)।

प्रत्येक को उपासना का बल मिले, इसलिए समन्वय महर्षि-महामानव पूज्य स्वामी जी की लीला और श्री पीताम्बरा माई की कृपा अगम्य है। दिव्य दीपस्तम्भ जैसे पूज्य स्वामी जी और महन्मंगल श्री पीताम्बरा माई की कृपा होने पर हम श्री पीताम्बरा पीठ की सकल सौभाग्य सम्पन्न स्वर्ण गैरिक नाम धर्मध्वजा एकात्मता से और सहकार्य से अपने हृदयाकाश से लेकर जगदाकाश पर्यन्त सर्वोच्च खड़ी कर सकेंगे।

***

–: वैदिक उपदेश :–

बिना लौकिक स्वार्थ की अपेक्षा रखते हुए स्वाभाविक प्रेम से जो परस्पर व्यवहार किया जाता है उसे मैत्री कहते हैं। ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं का व्यवहार ऐसा ही होता है। ब्रह्मनिष्ठ राग-द्वेष से रहित परमात्मा की ही तरह सब जीवों की भलाई करते हैं, इस लिए वे भी वास्तविक मित्र की ही कोटि में आते हैं। मित्र की दृष्टि से ही संसार के कार्य यथार्थ रूप में हो सकते हैं।

– ***श्रीस्वामीजी***

गुरुकृपा के चमत्कार पूर्ण अनुभव

— *रामकृष्ण वर्मा,* एडवोकेट
झांसी, (यु.पी.)

बड़े लोग तो वो हैं जिनके सामने छोटे छोटेपन का अनुभव नहीं करते। इनको आकाश मार्ग पर विचरण करते स्वप्न और जागृत अवस्था में मैने देखा था। उसका विवरण भोला को लिखा चुका तभी उन्होंने एक मंत्र भी दिया था जिसे मैंने जपा था।

२१ अक्टूबर ५८ को मुझे त्रिपुर सुन्दरी विद्या का उपदेश दिया। मुझे क्या मालूम था कि ये वो महान् विभूति हैं जिनसे बड़े-बड़े तपस्वियों ने तप सीखा, महामहोपाध्यायों ने विद्यापाठ किया और शङ्कराचार्यों ने उपदेश लिया।

६ अक्टूबर ५९ को कुछ ऐसी क्रिया हो रही थी जिसका पहले अनुभव कभी नहीं हुआ। उसी दिन झांसी में चि. प्रमोद का जन्म हुआ। मुझे ख्याल हुआ कि मन्दिर के भीतर जप करें कि नहीं। भीतरी इस उथल-पुथल को उन्होंने जान लिया और कहा – "चलो मन्दिर में; अशौच तो झांसी में हुआ है।" मैं जप करने लगा। मेरे पीछे वे बैठे थे, तभी मन्दिर की मूर्ति में से जगदम्बा विमान पर बैठकर निकलीं। भीतर ही भीतर मुझसे कहा – "पकड़ जाओ, यही चरण हैं।" मैंने भी अन्दर ही अन्दर कहा – मुझसे नहीं बनेगा, पकड़ा दो। एक हाथ उठा और मेरा हाथ पकड़ कर उन चरणों को पकड़ा दिया। उस विमान से इन्द्र ने दुन्दुभि बजाई। ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों खड़े हो गये और विमान सोने की कुर्सी में फिर मन्दिर में चला गया।

६ दिसम्बर ५९ को मुझे खड्गमाला स्तोत्र का पाठ सुबह ९ बजे आसन पर पढाया और जब मानवौघाक्ष गुरु रूपिणी आया, तभी बंद कर दिया और कहा – बस .....।

१९६५ में जाडे के दिन मुझे इशारे से भीतर बुलाया। श्रीमन्दिर वाले दक्षिणी कक्ष में जो कमरा है उधर मैं गया। कुछ लोग वहां थे, उनसे कहा – "सब चले जाओ, किवाड़ बंद करो"। मुझसे पूछा – "क्या ऐसा होने लगा?" मैंने कहा – जी हाँ! श्री मुख से निकला – "जाओ काम हो गया, मार्ग मिल गया; जप करते रहना" मैं उठ कर आ गया।

कहा जाता है; गुरु तत्त्व मरता नहीं। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे मार्च सन् १९८२ में हुआ। मैं सो रहा था। दो परिचित चरणों ने आंख मिचौनी की और जब चरण हटाये तो त्रिमूर्ति सामने थी। कुछ दिनों बाद सोते में उन्हीं (गुरु) नेत्रों ने प्रखर प्रकाश पुञ्ज आंखों में डाला और उसी प्रकाश पुञ्ज से ये शब्द निकले – "पञ्चदशाक्षरी मंत्र मोतीलाल से लिखा लेना।" ऐसा हुआ; और तब से यह मंत्र करने लगा और जब होश आता है तो ऐसा लगता है कि यही मंत्र जप रहा हूँ।

मिया आदिलखां-उस्ताद पर महाराज जी की कृपा

मियां आदिल खां-उस्ताद भारत के तीसरे नम्बर के गवैये थे। पं. ओंकार नाथ ने स्वामी जी को अपना गान सुनाया था और आदिल खां ने भी –

वो गा रहे थे –

जो एतबारे उल्फत मुझपर न हुआ तुमको।
मैं समझ गया यकीनन मुझमें भी कमी है।।

जब यह समाप्त हुआ तो महाराज जी ने उस्ताद से कहा – "चलो माला लो। मैं अरबी और संस्कृत दोनों के मन्त्र जानता हूँ। अरबी या संस्कृत में किस मन्त्र को तुम्हें चाहिए।" मियां आदिल खा बोले – मुझे अरबी और संस्कृत से क्या मतलब? मुझे तो तुमसे मतलब है। उनकी इस बात से स्वामी जी प्रसन्न हुए और प्रभावित भी। उन्हें मंत्र मिल गया। वे हर पर्व विशेष कर वसंतपञ्चमी पर महाराज जी को अपना शास्त्रीय गान सुनाते थे जिसमें "बागेश्वरी" विशेष तौर से।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जो वेदाध्ययन के साथ-साथ ज्ञानयुक्त हैं, वे ही सब श्रेयों को प्राप्त करते हैं और अन्त में ब्रह्मपद की भी उन्हें ही प्राप्ति होती है। शिक्षा का उद्देश्य शिक्षणीय वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर तदनुकूल आचरण करना है। लौकिक एवं पारमार्थिक ज्ञान केवल वैदिक शिक्षा से ही होता है क्योंकि अभ्युदय एवं निःश्रेयस का ज्ञान वेदों द्वारा ही प्राप्त होता है।

– *श्रीस्वामीजी*

उन चरणों में ...

– सत्यदेव वर्मा
झांसी

सन् १९७५ में मई के अंतिम सप्ताह में कलकत्ता से मेरी पुत्री का पत्र आया कि उसकी ससुराल वालों ने जून के प्रथम सप्ताह में बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री और ऋषीकेष की यात्रा पर जाने का निर्णय लिया है और दिल्ली से इन लोगों के साथ में मुझे और उसकी मां को भी शरीक होना है। इन लोगों ने, दिल्ली से एक मिनी बस पहले ही सुविधानुसार यात्रा के लिये एक ट्रेवलर्स एजेंन्सी के मार्फत तय कर ली थी। मन ही मन मैं यात्रा के लिये राजी हो गया था परंतु जाने के पूर्व अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी श्री पीताम्बरापीठ दतिया का आदेश लेना अनिवार्य था, जैसा कि कोई भी महत्वपूर्ण कार्य आरंभ करने के पूर्व मैं करता था।

शनिवार ३१ मई सन् १९७५ को मैं नियमानुसार श्रीचरणों में पहुंचा। उसी भांति रात्रि साधकावास में विश्राम किया, जैसा कि गत १४ वर्षों से करता आया था। रविवार १-६-७५ की सुबह श्री चरणों में प्रणाम किया। स्थान छोड़ने के पूर्व आज्ञा लेना स्वाभाविक ही था। प्रणाम करने के बाद मैं घुटनों के बल चुप साध कर बैठा रहा, तब मेरी ओर ध्यान गया, बडी मिठास से बोले – 'क्या बात है!' उनकी वाणी में सदा रस बरसता था। मैं गद्‌गद् हो गया। मैंने कहा – 'महाराज जी बद्रीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, जमनोत्री के दर्शन करने के लिए जाने की बात घर में तय हुई है। आज्ञा हो तो मैं भी चला जाऊं।'

हंसकर बोले, 'जरूर जाओ। घूम आओ। कब जाना है?' 'कल महाराज जी।'

'अच्छी बात है।'

मैंने श्रीचरणों में प्रणाम किया और दतिया से झांसी की ओर आने वाली बस पकड़ने के लिए बस स्टेन्ड की ओर चला। एक बात लेकिन बार बार कान में गूंजती रही – पूज्य स्वामी जी ने आदेश किया – ''घूम, आओ'' दर्शन कर आने की बात नहीं कही। यह बात मन को बार-बार कोंचे रही, जब तक बस में बैठा-बैठा झांसी नहीं पहुंच गया।

दिल्ली से ऋषीकेश, मुनिकीरत से हम लोगों ने जमनोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ और गंगोत्री की यात्रा की। सभी स्थानों पर ठहरने की सुविधा थी और भोजन का

प्रबन्ध हम लोगों का स्वयं का था। बहुत छोटे से सुनता आया था कि हिमालय में बड़े-बड़े योगी रहते हैं। मेरे मन में योगी के दर्शनों की प्रबल कामना थी। इन सभी स्थानों में हिमालय का सौन्दर्य, उसकी विलक्षण प्राकृतिक छटा तो है ही, लेकिन सभी जगह यात्रियों का जमघट और मेला ही मिला। योगी क्या साधु-सन्त के भी दर्शन नहीं हुए। सुना था गंगोत्री के आसपास और ऊपर की ओर योगी-महात्माओं के सौभाग्य से दर्शन हो जाते हैं।

हम लोग शाम के समय गंगोत्री पहुंच गए थे। मनमोहक दृश्य, पवित्र जान्हवी के अनवरत कलकल निनाद और यात्रियों के आवागमन और कोलाहल के बावजूद वातावरण में एक विलक्षण शान्ति विराजमान थी। यात्रा की थकान जैसे मालुम ही न पड़ रही हो, अजीब स्फूर्ति और प्रेरणा मन में थी। मैं चुपचाप गंगा के किनारे चला गया। अनवरत धारा और कलकल निनाद से मन ऊब नहीं रहा था। धीरे-धीरे अंधकार बढ़ने लगा – ऐसा लगता था जैसे सिलेटी रंग की धूमरी मटमैली चादर अपने में प्रकृति को समेट कर गोदी में थपथपाने लगी हो। थोड़ी देर में आकाश में तारांगण अपना संयुक्त प्रकाश छिटकाने लगे। मैं अपने परम पूज्य गुरुदेव का स्मरण करने लगा तभी कानों में, हृदय की धँसी बात – 'घूम आओ' गूंज गई। क्या घूमने को ही आया हूँ! पूज्यपाद ने 'दर्शन कर आओ' नहीं कहा था। मैं वहीं बैठा इन्हीं विचारों में खोने लगा – कभी कभी यहां वहां भी ध्यान बँट जाता। मैंने तभी निश्चय किया कि सबेरे से ही गंगोत्री के ऊपर की ओर निकल जाऊंगा, इन सबके बिना बताए, और किन्हीं योगी के दर्शन करूंगा।

सुबह मैं अकेले बिना किसी से कहे-सुने चल दिया। मन में एक धुन थी और गंगा का किनारा। अपनी समझ में टटोला-टटाली कर ली लेकिन इन बाह्य आंखों से ऐसे योगी के दर्शन नहीं हुये। भोजन के बाद फिर निकल पड़ा। अब की बार आश्रम की ओर गया जो गंगा से हट कर कुछ भीतर की ओर थे। एक स्थान पर एक आश्रम के निकट दो गेरुआ वस्त्रधारी सज्जन खडे बातें कर रहे थे। मैं उनकी ओर उन्मुख हुआ। वे भी मेरी ओर देखने लगे। मैं प्रोत्साहित हुआ। उनको झुककर नमस्कार किया। मैंने क्षमा मांगते हुए कहा – 'मैं किसी योगी के दर्शन करना चाहता हूँ! किस आश्रम में उनके दर्शनों की संभावना है?' लगभग एक साथ ही वे दोनों बोले, 'आप आए कहां से हैं?' झांसी से आया हूं महाराज।'

'क्या कुछ योगिक क्रियायें सीखना चाहते है, या योगाभ्यास करना चाहते हैं?'

'योगिक क्रियायें नहीं सीखना चाहता हूँ और योगाभ्यास का तो प्रश्न ही नहीं। केवल एक जिज्ञासा हैं – मन में एक प्रेरणा है – छुटपन से योगी के दर्शनों की अभिलाषा है।'

'यहां भटकने से आपको कोई लाभ नहीं। योगी यहां नहीं मिलेंगे। यहां तो व्यवसायी हैं जो योग, दर्शन और तत्वज्ञान के नाम पर आश्रम खोले है और अर्थसिद्धि करते हैं। योगी तो बहुत ऊंचे हिमालय में एक दो हैं – दर्शन दुर्लभ है।''

उनकी स्पष्ट बात से मेरी श्रद्धा उन लोगों के प्रति उमडी, प्रश्न सूचक दृष्टि से मैंने कहा, ''आप लोगों का परिचय पा सकता हूँ।''

'हम लोग योगी की तलाश में भटक रहे हैं – रोटियां तोड़ रहे हैं – और इन्हीं आश्रमों में से एक में रोटी बनाते खाते हैं। थोड़ा खाली समय मिल जाता है तो कुछ पढ़ लिख लेते हैं।'

उनकी ऐसी सीधी सच्ची बात से मैं बहुत प्रभावित हुआ। मैंने कहा, 'तो आप ऊपर हिमालय में योगी की तलाश में क्यों नहीं जाते?'

'हमारे पास वस्त्र नहीं, भोजन का साधन नहीं और भिक्षा न मांगने का हमारा प्रण है।'

यकायक मेरे मुंह से निकला-आपकी शिक्षा कहां तक हुई है? उनमें से एक ने कहा, 'इनकी और मेरी शिक्षा जिसे शिक्षा कहनी चाहिए कुछ भी नहीं – युनिवर्सिटी की साधारण शिक्षा के बाद अब वास्तविक शिक्षा पाने के लिए निकले हैं।' मैंने धृष्टता करके पूछा, ''आप लोगों ने किस विश्वविद्यालय में शिक्षा पाई?''

उत्तर मिला ''बनारस से संस्कृत में एम. ए. करके पी. एच. डी. भी किया और इन सज्जन ने एम. ए. संस्कृत और अर्थशास्त्र में किया।'' मैंने सोचा इतने शिक्षित अपने को अशिक्षित कहते हैं – रोटियारे – इन आश्रमों के – और अब शिक्षा के लिए जिज्ञासु। मैंने उनके चरण छुये और विनम्रतापूर्वक क्षमा मांगते हुये कहा, 'मेरी धृष्टता के लिये क्षमा करें, परंतु यह तो बतावें कि आप लोगों को कभी किसी योगी के अथवा बडे महात्मा के दर्शन हुए? क्या हिमालय छोड़कर योगी के दर्शन मैदान में संभव नहीं! आप लोग तो जानते ही हैं कि महर्षि रमण-महर्षि अरविंद भी तो मैदान में ही रहे हैं, वे लोग हंसकर बोले – 'आपने दतिया का नाम सुना है? वहां एक महात्मा हैं। वे ऐसे योगी हैं जिनको हम साक्षात अवतार मानते हैं। आपके तो बगल में ही हैं उनके दर्शन कीजिए। यहां कहीं भटकने से कोई लाभ नहीं। हमारा भाग्य उदय हुआ था तो हम लोगों ने उनके चरण रज प्राप्त की थी।' 'मैंने पूछा -- आप लोग दतिया हो आये हैं? पूज्यपाद स्वामी जी के दर्शन किए थे?'

'बताया न आपको कि दर्शन कर आये हैं, चरणों में प्रमाण कर आए और जो उन्होंने बताया उसी का अभ्यास करने यहाँ एकान्त में रहते हैं।' तब मैंने कहा, ''श्री चरणों में मैं भी गया हूं, जाता रहता हूं और .... बीच में टोककर उनमें से एक ने जिसने अपने को संस्कृत का डाक्टर बताया था – कहा, 'तब आपके पूर्व

जन्मों का पुण्य उदय हुआ है, भाग्यशाली हैं आप। यहाँ बिलकुल न भटकें, दतिया के स्वामी जी से बढ़कर कोई पुण्य तीर्थ नहीं।'

इस उद्‌बोधन पर मैंने उनके पुन: पैर छुये और कहा, "कभी फिर दतिया श्रीचरणों में प्रणाम करने आवें तो झांसी पधारें"। उन्होंने पता ले लिया और हामी भर दी – मुझे ऐसा लगा कि वास्तव में मणि पास में है और कांच ढूंढ़ता फिर रहा हूँ बंजर में। रात में अकेला लेटा-लेटा "घूम आओ" की सार्थकता समझ में आयी। मेरे आनंदाश्रु आ गए।

सब लोग सो रहे थे। मुझे नींद नहीं आ रही थी। कुछ देर अनन्त श्री पूज्य गुरुदेव का बताया मंत्र करता रहा। गंगा का कलकल निनाद बराबर सुन पड़ रहा था। उस नाद के साथ जप के क्रम का ऐसा तालमेल बैठ रहा था कि मन रम गया था। अनोखे वातावरण की पवित्रता में। माला करते हुए ध्यान श्रीचरणों में जाना स्वाभाविक ही था। उसी अवस्था में निद्रा आ गई। मैं सो गया, लेकिन पता नहीं लगभग ३ घंटे बाद नींद खुल गई। वातावरण की मंजुलता, गंगा का अनवरत कोलाहल मन में स्पन्दन उत्पन्न करने लगा। कान में फिर वे ही शब्द "घूम आओ" झंकार सी मार गए। ध्यान श्रीचरणों की ओर गया। असीम शक्ति, अतुल बल, दया के सागर, विद्या वारिधि, जिनकी आंखों में तेज, सरलता और सरसता तथा मानव मात्र के प्रति करुणा का भाव सदा छलछलाता रहता है, ध्यान करने लगा। फिर तो चलचित्र की भांति वह सामने घूमने लगा, जिस कारण श्री चरणों में पहुँचा था। अनेक बातें दिमाग में घुमड़ती मंडराती रही, इनमें तीन घटनाओं के उल्लेख करने के लोभ का संवरण करना कठिन है, यद्यपि तब उन्होंने किसी से कहने के लिए निषेध किया था।

जब मैं जीवन-मरण के बीच डोल रहा था और रोग का निदान भी नहीं हो पा रहा था, मैं दिल्ली के प्रसिद्ध आल इंडिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडीकल साइन्सेज में परीक्षण और उपचार हेतु गया। वहाँ के रुधिर-विभाग के अध्यक्ष डा. ए. के. सराया से पारिवारिक संबंध थे। दरियागंज में ठहरा था, किन्तु परीक्षण डा. सराया के मार्फत कराए। रुधिर और मूत्र परीक्षण से हताश हुए और बोले 'हालत बहुत दयनीय है। रुधिर में हीमोग्लोबिन एक भिखारी से भी कम है। मूत्र में "पस-सेल्स" आदि बहुत हैं। आप एक दिन बाद आवें तब और परीक्षण होगा। प्रोफेसर बी. एन. टण्डन से परामर्श करूंगा।' बुखार लगभग रोज हो आता था। उस दिन तेज़ हुआ। लेटे-लेटे श्री चरणों का ध्यान कर माला करने लगा। नींद आ गई। जागता-सोता रहा। स्वप्न देखा – मैं वनखण्डेश्वर दतिया के शिवमंदिर और साधकावास के बीच सरस्वती मंदिर के पास हूँ। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी सामने से आ रहे हैं। चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। स्वामी जी बोले 'तबियत ज्यादा खराब है?'

"जी महाराज जी।"

उन्होंने बायां हाथ बांये से दायें की ओर एक बार चलाया, बोले "जाओ, कुछ नहीं हैं सब ठीक हैं।"

आंख खुली तो पसीना शरीर भर में। शरीर एकदम हल्का। मुझे आश्चर्य हुआ। साक्षात् पधारे महाराज जी!

मैं बडे विश्वास के साथ डाक्टर सराया के कक्ष में आल इंडिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडीकल साइन्स पहुंचा। कमरे में घुसते ही मैंने कहा, "आज पेशाब आदि का परीक्षण करें अब कुछ नहीं मिलेगा आपको। मैं बिलकुल ठीक हूँ। झांसी जल्दी जाऊंगा।"

डाक्टर सराया ने हंसकर मुझसे कहा, "क्या शेखचिल्ली जैसी बात करते हो! न तो कोई ऐसा जादू है और न ऐसी कोई दवा। अभी परीक्षण करता हूँ।" मैंने कहा "जादू ही समझिए। आप देख लें।" हंसकर डा. सराया ने कहा, "अच्छी बात है" और पुनः परीक्षण आरंभ हुये।

डाक्टर सराया के नीचे रिसर्च करने वाले डाक्टरों ने परीक्षण कर कागज पर परिणाम लिखकर दिया – "सब नार्मल।" डाक्टर सराया ने परीक्षण पर अविश्वास कर कहा, "किसी दूसरे रोगी का परीक्षा फल उठा लाये।"

"नहीं साहब, इन्हीं का है।"

सराया कुछ क्षोभ में बोले "नान्सेन्स। कभी हो नहीं सकता। मैं खुद टैस्ट (परीक्षण) करूंगा।" और उनके किये परीक्षण से भी जब "नार्मल" परीक्षाफल आया तो आश्चर्य में डूब गये। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था लेकिन विश्वास करना ही पड़ा – बोले "आपने अमृत की दवा भी खाई हो तो भी यह असर तो नहीं हो सकता। क्या किया आपने सच बताइए।"

मैंने कहा, 'सब दतिया वाले स्वामी जी के श्रीचरणों की असीम दया का फल है। उन्होंने ही जो कुछ किया हो। मैंने कुछ भी नहीं किया।" नियमित आहार-भोजनादि बताकर मुझे झांसी जाने के लिए कह दिया। डा. टण्डन को दिखाया उन्होंने भी परीक्षण के आधार पर झांसी जाने को कह दिया। आज भी वे दोनों ही डाक्टर ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडीकल साईन्सेज में हैं।

जब परमपूज्य अनन्त श्री स्वामी जी बीमार हुए और अपने भक्तों का मन रखने के लिए ऑल इण्डिया इन्स्टीट्यूट आफ मेडीकल साइन्सेज जाना पड़ा, तब डा. सराया ने उनकी चरणरज ली और निकटतम सेवकों में से किसी एक से कहा था कि मैं सदा सेवा को तैयार हूँ। रुधिर से संबंधित जो भी परीक्षण होंगे मैं स्वयं करूंगा।

जब मैं आल इण्डिया इन्स्टीट्यूट पूज्यपाद स्वामी जी की बीमारी के दौरान गया था – डा. सराया से मिला था – उन्होंने देखते ही मुझसे कहा – "सचमुच ये तो 'साक्षात' हैं। ये कुछ भी कर सकते हैं लेकिन ये महानतम शक्तियां अपने लिए कभी कुछ नहीं करती हैं, इसलिए साधारण जन की तरह व्यवहार बर्तती हैं। में तो अपने को भाग्यवान मानता हूं जो इनके दिव्य दर्शन हुए।"

पूज्यपाद सरस्वती और कला के वारिधि थे। संगीत में उनकी गहरी पैठ थी। उसके शास्त्रीय अंग के तो बहुत बड़े जानकार थे ही साथ ही परख भी बहुत पैनी थी। स्वयम् जब मौज में होते, गाते भी थे। कभी-कभी केवल धीरे-धीरे गुनगुनाते थे। उनको राग बागेश्वरी अधिक पसंद थी। सुप्रसिद्ध गायनाचार्य झांसी के उस्ताद आदिल खां श्रीचरणों में पहुंच चुके थे मेरे बड़े भाई श्री रामकृष्ण वर्मा के उद्योग से। उस्ताद को पूज्य गुरुदेव की शरण प्राप्त हो गई। उनको दीक्षा मिल गई थी। उस्ताद का गायन पूज्य अनन्त श्री स्वामी जी को बहुत पसन्द था। उस्ताद झांसी में बहुत बीमार पडे। उनको प्रोस्ट्रेट ग्लेन्ड की तकलीफ बढ़ गई। उस्ताद हम लोगों के परिवार के अंग थे। मेरे पिताजी से सन् १९२४ से उस्ताद का घनिष्ठ सम्बन्ध था। मैं उस्ताद को, उनके सुपुत्र बेदार खां के साथ ग्वालियर मेडीकल कालेज ले गया। वहां मेरे निकट के संबंधी डा. ओम नारायण खरे मेडीकल कालेज में लेक्चरर थे अब और बड़े पद पर हैं – उनकी सहायता से उस्ताद को भर्ती करा दिया। लौटते समय बस से दतिया उतरा और श्री चरणों में प्रणाम किया।

मैं शनिवार की सन्ध्या को दतिया जाता था, उस दिन शनिवार नहीं था – पूज्य अनंत श्री स्वामीजी ने पूछा, "आज तो शनिवार नहीं है। क्या बात है?"

मैंने बताया, 'उस्ताद को प्रोस्ट्रेट ग्लान्ड की तकलीफ हो गई है – झांसी के सिविल अस्पताल में इतने बडे आपरेशन के लिए सही साधन नहीं था इसलिए वहीं के सर्जन की राय से उस्ताद को ग्वालियर पहुंचाकर लौट रहा हूँ।' इस पर पूज्य स्वामी जी ने संतोष व्यक्त किया और उस्ताद के स्वास्थ्य का समाचार देते रहने के लिए आदेश दिया। चरणों में प्रणाम कर मैं झांसी चला आया।

चार-पांच दिन बाद फिर दतिया पहुंचा। शनिवार नहीं था – प्रणाम कर ही रहा था कि पूज्य स्वामी जी ने प्रश्न किया, "उस्ताद की खबर आई? क्या हाल है उनका?"

मैंने बहुत धीरे से कहा, "महाराज जी झांसी अस्वस्थता का तार पहुंचा था, तार पाते ही मैं ग्वालियर पहुंचा। उनका देहान्त हो गया।" मूढ़ा से टिके हुये थे, सीधे बैठ गये। बायां हाथ उठाकर अपने वक्ष के दाहिने भाग पर रखकर बोले, "हमें

यहां कष्ट हुआ।'' फिर कुछ क्षण बाद बोले ''जाता तो सब कोई है लेकिन उस्ताद बहुत बडे कलाकार थे। ऐसे कलाकार दुर्लभ भी होते हैं।''

वास्तव में उस्ताद बहुत बड़े अद्वितीय कलाकार और श्रेष्ठ मानव थे, जिसने 'साक्षात' को भी कुछ क्षणों के लिए द्रवित कर दिया था।

२५ फरवरी १९६९ की सुबह ७-५ पर मेरे पूज्य पिताजी बाबू वृन्दावन लाल वर्मा का स्वर्गवास हो गया। मेरे ममिया श्वसुर स्वर्गीय श्री दुर्गाप्रसाद जी खासकलम दतिया निवासी मुद्दत से वनखण्डेश्वर श्री चरणों में नियम से जाते थे। २५ फरवरी की सुबह भी उसी भांति पहुँचे। श्री चरणों में प्रणाम करके कहा 'सक्कन (मुझे पूज्यपाद घर के इसी नाम से जानते थे और सम्बोधित भी इसी नाम से करते थे) के पिताजी-वर्माजी की तबियत ज्यादा खराब है। आज झांसी जाने की सोच रहा हूँ। आज्ञा चाहता हूँ जाने के लिए।''

पूज्य अनन्त श्री स्वामी जी ने कहा, ''सक्कन कुछ समय पहले किसी एक और के साथ जिसे हम नहीं पहिचान सके, रोते हुये आये थे। मैंने उनसे कहा था रोयें नहीं।'' कुछ क्षण चुप रहकर बोले ''उनकी सद्‌गति हो गई।''

'कब महाराज!'' ''मामाजी का प्रश्न था।''

''अभी।''

मामाजी – 'सक्कन खुद आये थे?' अनन्त श्री स्वामीजी ने उत्तर दिया, 'आये तो थे लेकिन ....' कहकर चुप हो गये।

''तो महाराज मैं जाऊं झांसी।''

''हां – जाओ।''

मामाजी सुबह ८ बजे के पहले ही हम लोगों को धैर्य बंधाने के लिए, हम लोगों के बीच थे। मुझे उनके आने पर जब आश्चर्य हुआ, तो उन्होंने सारी बात बताई। मैं आश्चर्य में रह गया। यह सच है कि बाबू (पिताजी को मैं बाबू ही कहता था) के स्वर्गवास के पूर्व – जब उनका अंतिम समय निकट दिखा, मैंने परमपूज्य अनन्त श्री स्वामी जी का स्मरण किया था – प्रार्थना की थी उनके प्राणों के लिए। उस समय मैं अपने को नियन्त्रण में नहीं रख पाया था।

अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ने कभी चमत्कार नहीं किये, परन्तु न कहते हुये हमेशा अनोखे – अलौकिक कृत्य किये। चीन का युद्ध – चीनियों का लौट जाना इसका जीता जागता उदाहरण है।

हम लोगों पर जो दया और कृपा करते रहे और आज भी करते रहते हैं – ये सब तो उनके लिए साधारण बातें हैं।

यात्रा से २२ जून को झांसी हम लोग आ गए। २३ जून को जब मैं श्रीचरणों में प्रणाम कर रहा था तो हंसकर श्रीमुख से निकला, "घूम आये।"

मैंने भी चरणों से मस्तक उठाते हुये कहा, "जी महाराज जी घूम भर पाया।" मैं उस छवि को कभी भूल सका और न उन दो शब्दों को।

वे साक्षात अवतार थे। वैसे ही, अवतारों की भांति अपना काम करके, मानव कल्याण करके संसार से चले गए।

* * *

–: वैदिक उपदेश :–

राग, द्वेष, आसक्ति एवं नास्तिकता ही मनुष्य को भ्रान्ति में डाले हुए हैं। अज्ञानवश मनुष्य इनसे छुटकारा नहीं पाता है, इसलिए वैदिक उपदेश है कि उसी सुखस्वरूप ब्रह्म की शरण में जाकर हम आन्तरिक हविषारूप पूजा-द्रव्यों से उसकी पूजा करें। जो कुछ भी कार्य करें सब उसी को समर्पण होना चाहिए, इसे ही शरणागत भक्ति कहते हैं बिना इस बात के आये मनुष्य का कार्य पूर्ण नहीं हो सकता।

– *श्रीस्वामीजी*

कृपा-कोर की याद

– *मुन्ने खां, (बारबर) झांसी*

मैंने वर्षों से झांसी व हिन्दुस्तान के दूसरे शहरों में महाराज जी के बारे में बड़ी-बड़ी तारीफें सुन रक्खी थीं। मुझे भी उस महान् संत के दर्शनों की इच्छा हुई। मुझ से तमाम लोगों ने कहा कि तुम मुसलमान हो, महाराज जी तक तुम्हारा पहुंचना बड़ा मुश्किल है।

एक बार मैं पण्डित शिवनाथ जी शर्मा (सागर बाबू), जो महाराज जी के सेवक हैं, के बाल बना रहा था। मैंने अर्ज किया कि पण्डित जी हम भी महाराज जी के दर्शन करना चाहते है, आप यदि इसमें मदद करें तो बड़ी मेहरबानी होगी। बाबू जी बोले – तुम दर्शन करने जाओ। उनकी इच्छा होगी तो वे तुम्हें जरूर स्वीकार कर लेंगे।

हम एक दिन दतिया, महाराज जी के दरबार में दर्शनों के लिये गये। गेट पर जैसे ही पहुँचे लोगों ने रोक कर कहा कि तुम अन्दर नहीं जा सकते क्योंकि पजामा पहने हो। इस पर मैंने कहा कि हम तो पजामा पहने ही महाराज जी के पास जायेंगे। इधर महाराज जी को जब मालूम हुआ कि कोई शक्स हमारे दर्शन के लिये आया हैं तो उन्होंने मुझे फौरन अंदर बुलवाया। जब मैं महाराज जी के पास अन्दर गया तो तुरन्त उन्होंने सवाल किया – "तुम मेरे पैर दबाओगे? बिजली की मशीन से सेंक करोगें?" क्या तुम डाक्टर हो? जो मुझे अच्छा करोगे। मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही क्योंकि वे मेरे दिल की बात जान गये। मेरे शरीर से एकदम पसीना छूट गया। मेंने घबड़ाकर जबाब दिया – सरकार! न तो मैं डाक्टर हूँ और न ही मैं अच्छा कर सकता हूँ। इस पर महाराज जी का हुक्म हुआ कि करो मेरे पैरों की मालिश। मैंने सेवा करना शुरू कर दिया। जब मैं मालिश तथा बिजली की मशीन से सेंक कर चुका तो वे बहुत खुश हुए। आगे फरमाया – तुम्हें भी हमने अपने सेवकों में ले लिया है। तुम्हारे लिये यहां के दरवाजे हमेशा खुले रहेंगे। उश दिन के बाद महाराज जी हमें शाम ४ बजे से ५ बजे तक का समय देते रहे। हम नियमित रूप से महाराज जी के चरणों की मालिश एक माह सोलह दिन तक करते रहे। उनके चरणों को काफी आराम मिला।

लेकिन दुर्भाग्य से महाराज जी की तबियत खराब होने के कारण उन्हीं के हुकुम से मुझे मालिश करना बन्द करनी पड़ी। उसके बाद उनकी तबियत नहीं संभली और एक दिन वे इस दुनिया से पर्दा कर गये।

महाराज जी के दिल में हिन्दू मुसलमान के लिये कोई भेदभाव न था। वे कभी किसी को छोटा-बड़ा नहीं समझते थे। उनके अन्दर छूआछूत की भावना नहीं थी। एक घटना मेरे साथ अजीब सी घटी। एक दिन मैं झांसी से पौने चार बजे दतिया के लिये मोटर साइकिल से चला, मेरे साथ हरीसिंह यादव भी थे। हम लोग रास्ते भर बहुत परेशान थे कि आज ४ बजे शाम तक महाराजजी के पास हाजिरी कैसे दे पावेंगे? लेकिन उनकी कृपा थी। हम लोग जैसे ही दरवाजे पर पहुंचे, महाराजजी के दरबार की घडी ४ बजा रही थी। हरीसिंह वेशाख्ता बोले, 'मुझे भइया, आज तो चमत्कार हो गया। ठीक ४ बजे है, हम लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। हम समय के मुताबिक महाराज जी की सेवा में पहुंच गये। हालांकि हमें दररोज दतिया पहुँचने में पौनघण्टा लगता था लेकिन उस रोज महाराजजी की कृपा का अनुभव हुआ। हम लोग १५ मिनट में ही दतिया पहुँच गये।

महाराज जी दुनिया की तमाम जुबानें जानते थे। उर्दू का भी अच्छा रियाज था। हमें हररोज खूब शेरशायरी सुनाते थे। खास तौर से उनका मेरे ऊपर इतना प्यार था कि ४ बजे जब मैं उनके दरबार में पहुंचता था तो जितने लोग वहां रहते थे सब से यही कहते थे कि तुम सब लोग जाओ, अब मुन्ने आ गया है। जब मैं उनके चरणों की मालिश करता था तो अक्सर विनय कुमार और हरीसिंह वहां दिखाई देते थे।

महाराज जी दुनिया की बहुत बुजुर्ग हस्तियों में से थे। आज भी वे मेरे लिये मौजूद हैं। जब भी मैं ज्यादा परेशान होता हूँ तो वे बराबर हमें दर्शन देते हैं और हमारी परेशानियां दूर हो जाती हैं।

दुनिया की नजरों में महाराजजी भले ही न हों लेकिन उनका साया हम सब के साथ है। उनकी यादें हमेशा अमर रहेंगी।

***

–: वैदिक उपदेश :–

देवताओं की प्रियता से अभ्युदय नामक धर्म की वृद्धि होती है। राजकीय प्रियता लौकिक उन्नति का कारण है, जिससे योग-क्षेम की रक्षा होती है। आर्य से लेकर शूद्र पर्यन्त सभी जगत् के जीवों में हमारा प्रेम हो अर्थात् सभी जीवों में भेद-भाव रहित प्रेम हो। यह सिद्धान्त मोक्ष धर्म का समर्थक है, क्योंकि राग-द्वेष से भेदवृद्धि होती है। सभी संसार ब्रह्म का स्वरूप है ऐसा जान लेने पर वास्तविक प्रेम प्रगट होता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी लौकिक कामना से प्रेरित होकर प्रेम का प्रदर्शन वास्तविक प्रेम नहीं है।

– *श्रीस्वामीजी*

पूज्य गुरुदेव और मैं

– श्रीमती श्यामा ठुसू
अर्धाङ्गिनी – मेजर बी. एन. ठुसू (अवकाश प्राप्त)
F.R.A.S. (London), Divisional Warden, Civil Defence

मनुष्य मात्र का विश्वास है कि इहलोक में नहीं, परलोक में कर्मों के अनुसार स्वर्ग या नरक मिलता है, पर न जाने क्यों मेरे विचार इस तथ्य के विपरीत हैं। मैं समझती हूं कि स्थूल शरीर में ही समयानुसार स्वर्ग और नरक की प्राप्ति होती है। गृहस्थ जीवन भी तो एक साधना है। व्यवहार इसके केन्द्र-बिन्दु है। कर्म इसका व्रत है। अब नियन्त्रित, नियमित और सुचारु रूप से जो इसे निभाये, वही साधक अपूर्ण न रहते हुए पूर्ण विराम तक निष्कंटक पहुंच जाता है। जहां साधना में त्रुटि, असंयम और कामुकता आई कि साधक उच्छृंखल होकर आरोहण के बजाय अवरोहण की ओर आता है। तदनुसार कर्मों की सृष्टि होती है।

साहित्य के मर्मज्ञों तथा कई महानुभावों ने 'परा' शक्ति की विवेचना की है। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि उनसे मेरा विचार-विरोध हो और जो कुछ उन्होंने लिखा है, शिष्ट ही है। मेरी क्षीण सी बुद्धि में यही आता है कि वह अमानवीय शक्ति, जो अदृश्य रूप से नैतिक उद्धार करे, 'परा है।' 'सुपर नैचुरल' है। मैं गहनता की ओर न जाकर शाब्दिक अर्थ का ही अवलम्ब लेती हूँ। विज्ञान के इस युग में धर्म के क्षेत्र में तर्क बहुत बढ़ गया है। दिव्य विभूतियों के साक्षात्कार में भी गवाही चाहिये। यद्यपि यह मार्ग तर्क का नहीं, मनन का है – तथापि जनसाधारण की शंका निवारण करने के लिये चमत्कार का स्पष्टीकरण करना ही पड़ता है।

मुझे और मेरे पतिदेव को महाराज के सम्पर्क में आये हुए अभी अधिक समय नहीं हुए, पर ऐसा भास होता है कि जैसे युगों से उनको जानते हों। जब अन्तर्मन को टटोलते हैं, तो लगता है – वह केवल निकटवर्ती ही नहीं, शरीर में जिन नाड़ियों का ताना-बाना है, उनको झंकृत करने का जैसे शक्तिपुंज वही है। क्यों ऐसा लगता है? तो समाधान यही है कि कुछ कण अपार ज्योतिर्मय समूह में से उसी समय हमारे अंश में आते है। जब महाराज की कृपा हो जाती है, तब उन कणों का समावेश गुप्त नहीं रह सकता। हमारे हर कर्म, व्यवहार, बुद्धि, सतर्कता, वाक्पपटुता, प्रसन्न मुद्रा, हाव-भाव तथा शान्त और संयमित भृकुटि से स्वयं ही पता चल जाता है। किसी ने दतिया जाकर चमत्कार क्या देखे होंगे, मेरा तो जीवन ही चमत्कार बन गया।

काश्मीरी सारस्वत ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर बाल्यावस्था से ही शक्ति की पूजा सिखाई गई। 'माँ-माँ' कहना ही मन्त्र सा हो गया। प्रारम्भ से ही धर्म की ओर झुकाव रहा। विवाह के कुछ पूर्व भी गौरी-पूजन विधिवत् कराया गया। मतलब यह कि मन में यह निष्ठा पैठ गई कि जो भी शुभ कार्य होगा, देवी मां की कृपा से ही होगा। विश्वास बढ़ता ही गया। भावना को सदैव पुष्टि मिली। विवाह तो सुपात्र देख कर ही किया गया, पर मेरे दुर्भाग्य से – पिता की असावधानी के कारण वे मुख्य मार्ग छोड़कर जीवन की उस पथरीली कटीली पगडण्डी पर आ गये थे, जहाँ से उनको मोड़ना सुगम न था – बहुत दूर निकल चुके थे वे। विवाहोपरान्त जब उनको देखा-परखा तो ठगी सी रह गई। माँ को समाचार पत्र या कुछ पढ़कर सुनाती थी, यदि कहीं मद्य की बात आती तो वह कहती थूं कर। पर यह क्या, यहां तो मद्य अन्तर को ही नहीं सींचता, बाह्य को भी भिगो रहा है। अच्छी आय थी उस समय, पर जब आवश्यकता पड़ी तो वहाँ कुछ नहीं – ऋण ही ऋण। मँगते से क्या मांगती। माँ से मांगना ही ठीक समझा। बस, उसी दिन से मेरी तपस्या शुरू हुई। छोटी सी उमर में ही मेरे मन ने चीख कर मां को पुकारा। संतुलन नहीं खोया मैंने। मेरी माता जी ने कुछ समय के लिये मुझे पीहर बुलाया, पर मैंने झूठ की सब लज्जा छोड़कर साफ 'ना' कर दी। छाया की तरह इनके आगे पीछे चलने लगी। पर किंचित्मात्र अन्तर नहीं आया इनमें। घर में पीने को न मिलता तो बाहर जाते रहते, रात बहुत बीतने पर ही घर आते; कैसी हालत में आते, यह वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। विचारशील मनुष्य समझ सकते हैं। मद्य की ओर झुकाव था – वासना की ओर नहीं। कहीं मस्तिष्क के अछूते कोने में धर्म की भावना सुरक्षित थी, वही एक चीज मेरा सहारा बनी। मेरे संग से उसे अभिव्यक्ति तो मिली, प्रेरणा भी मिली, पर अवगुण सहज में जाता नहीं है। घर में बच्चे आते रहे, आखिर गृहस्थ का पालन जो करते थे। सबकी सब कन्यायें हुई। कुछ समझते नहीं थे। यदि कहती, तो कलह ही होती। घर आना छोड़ देते। बच्चे भी इस बात को समझने लगे। आर्थिक संकट सदैव ही रहता। ऐसे चौराहे पर आ गई थी मैं, जहाँ पर भटक भी सकती थी, पर न जाने कौन सी दैवी शक्ति मेरी रक्षा करती थी। मैंने शायद ही कोई फूल भगवान् की मूर्ति पर चढ़ाया होगा। मेरे अश्रु ही फूल, धूप और आरती का काम करते। मुझे अब याद आता है कि कैसे सारी-सारी रात मैं रोती रहती। कभी भय के कारण, कभी खीज के कारण आसुओं के प्रवाह में देवी की मूर्ति को झिलमिलाती पाती। कितनी बार सर पटका वहाँ पर, जहाँ देवी की जगह आले पर बनाई थी, पर मुझे कोई सहायता कहीं से न मिली। आर्थिक कष्ट, निरादर, कपट, झूठ, मस्तिष्क की वेदना के सिवा मुझे कुछ न मिलता। मुझे रक्त वमन होने लगा। पहले कम, फिर बहुत अधिक। डाक्टरी इलाज चालू हुआ। मैं मन ही मन हंसती कि मेरी बीमारी

का इलाज कहीं नहीं है। कभी कभी मुझे देखकर ये भी रो देते, पर मजबूर थे अपनी आदत से। कहने का सारांश यह कि सब अन्धकार मेरे सामने था। इसी दौरान में एक बार आत्महत्या की सोची। स्टेशन पास था, गाड़ी से कट जाने का ध्यान आया, तो रात के एक बजे उठकर चलने जो लगी, तो न जाने चटखनी पर हाथ रखते ही किसने मेरे हाथ पर अपना भारी हाथ रखा। उंगली पकड़ कर मुझे बिस्तरे पर पहुँचाया। दूसरी बार अति क्लान्त अवस्था में थी, तो दीन आखों से मूर्ति को निहारा कि शायद तुममें शक्ति नहीं है। ज्यों ही सिर झुकाया तो मेरे शीश पर किसी का फैला हुआ हस्त था और में रोए जा रही थी। थोड़ी देर में ध्यान भंग हुआ तो ढूंढ़ने लगी, कौन था वह? पर उत्तर न मिला, झलक भी नहीं मिली। फिर एक और रात – गहन अंधकार में अकेलापन, विक्षुब्ध मन, छटपटा सी रही थी। आँखों का बरसना कभी थमा नहीं, तो आगे देखती हूँ जोगिया वस्त्र धारण किए एक सौम्य स्त्री मूर्ति मुझसे कह रही थी कि मैं इसकी माँ हूँ। तुम खुश रहना। उठकर देखा, तो कुछ नहीं।

यह सब होता रहा कि हमारा स्थानान्तरण ग्वालियर को हुआ। संभवतः मेरे मचलने ने मां को अपनी ओर आकृष्ट किया था। वहां पर भी यही क्रम चलता रहा इनका। बुरी हालत हो गई थी। अब तक हमारे पांच कन्याएं हो चुकी थीं, पर इन पर कोई असर न था। आखिर वह दिन आ ही गया, जो मेरे जीवन का सबसे बड़ा पर्व है। घर आकर मुझसे कहा कि टूर पर दतिया जाना है। वहां पर एक भारी शाक्त महात्मा हैं। प्रोफे. मदनगोपाल ने रानीखेत में मुझसे कहा था। मैं २-३ दिन वहां रहूंगा।

मैंने भारी मन से कहा, होता होगा कोई। क्या करता है कौन? सामान बांधते हुए मुझसे कहा कि एक बोतल भी रख देना। देवी के उपासक हैं वह महात्मा, बैठ कर पियेंगे। मुझे क्रोध आया, पर चुप रही। मेरी साधना ने इन्हें उस स्थान पर पहुंचाया, जहां से मुझे जीवन मिला। वैसे तो ये हर गेरुए वस्त्रधारी को नमन करते थे पर यहां आकर जो मस्तक झुका तो नया ही आभास लेकर उठा। महाराज की तीक्ष्ण दृष्टि काम कर गई। जैसा कि उन्होंने मुझे सुनाया कि महाराज ने कहा – "आ गये।"

हा महाराज! बहुत दिनों से लालसा थी।

जब मद्यपान की बात छेड़ी तो महाराज ने कहा – 'अब बहुत हो गया'।

बस पूरी की पूरी बोतल किसी और को दे दी गई। महाराज के वही शब्द इनके लिए बीजमन्त्र बन गये। बड़ी शान्ति से रहे वहां पर, घर आये, तो रोज की तरह मैंने मांस आदि व्यञ्जन तैयार किये थे। खाना परोसा, तो कटोरी अलग रख दी और भोजन करने लगे। मैं डर गई। शायद ठीक न बना होगा, सो भागकर गई और अंडे बना कर लाई, परन्तु उन्हें भी ग्रहण नहीं किया। मेरे तो भय के मारे प्राण मुंह तक आये। पूछा साहस करके, तो बोले कि मैंने यह सब खाना छोड़ दिया है। वैष्णव भोजन करूंगा।

मुझे हँसी आई। कहां तो दोनों वक्त इसी चीज का आहार और कहां यह उच्च संकल्प। मेरी जिज्ञासा बढ़ी। विश्वास ही नहीं हो रहा था, तो मुझे ज्योतिष्मती दिखाई, जो महाराज ने साथ दी थी। कहा कि इस दवा के सेवन के उपरान्त मांस इत्यादि नहीं खा सकते।

मैं बार-बार उस छोटी सी शीशी को उलट-पुलट कर देखने लगी कि इसमें क्या जादुई पदार्थ है। श्रद्धा से उसे मस्तक से लगाया। मूर्ति के पास गई, मन में द्वन्द्व सा उठा। नरक से स्वर्ग। वही ज्योतिष्मती मेरे लिए अमृत की बूंद बन गई। इन्होंने जैसे पुराना चोला उतार कर नया पहन लिया. एक, दो, तीन करके दस दिन ऐसे ही बीते। अपनी दशा उस पागल की तरह हो गई, जो पागलखाने से छूटकर आया हो, जहां उसे बार बार कुएं में ढकेलने का भय दिया जाता हो। दवा समाप्त होने लगी और मेरे प्राण कुलबुलाने लगे मन ही मन उस पराशक्ति का ध्यान कर नतमस्तक हुई। दतिया जाने को छटपटाने लगी।

एक दिन प्रातः चल पड़े, पर दतिया की न मिली। सोचा डबरा से दूसरी बस मिल जायेगी, पर अभी दुर्भाग्य ने पूरा साथ नहीं छोड़ा था। सो दिन भर धूप में डबरा में ही पड़े रहे, संध्या को घर वापिस लौटे – बड़ी उलझन लिए हुए। फिर कई दिन निकल गये। पर "जहां चाह, वहां राह" वाली बात सिद्ध हुई। दतिया पहुँच ही गये। मन में अतिशय उत्तेजना थी – अजीब उथल-पुथल थी। सागर-रूपी मन को ज्वार-भाटा मथ रहा था, सांस फूली जा रही थी। द्वैत मिट सा रहा था कि और कहीं नहीं, लक्ष्य यहीं है – यहीं है। कुएँ पर पहुँच कर हाथ-मुंह धोया, तो नई स्फूर्ति सी आई। जिसके बारे में कल्पना ने ऊँची और पवित्र उड़ान लगाई थी, वही सौम्य मूर्ति मेरे सामने थी। मैं झुकने से पहले थोड़ी देर देखती ही रही कि क्या यह वही दिव्य पुरुष हैं, जिनका चमत्कार अभी-अभी देख चुकी हूँ। महाराज ने मेरी स्तब्धता भाँप ली, सान्त्वना के शब्द सुनाई दिये। वातावरण गूंज-सा उठा. माँ पीताम्बरा के दर्शन कर आसन पर बैठने को कहा। वर्षों का क्लान्त और दुखी मन न जाने क्यों शान्त-सा हो गया। मैंने भावनाओं का अर्घ्य चढ़ाया। महाराज के मधुर शब्द अपना प्रभाव डालते गये। मैं उस थके पथिक की तरह बैठी, जिसे दौड़ने हाँफने के उपरान्त ठंडी छाया और मधुर पेय मिला हो। अजीब-सी तसल्ली मिली, जो कभी अपने माँ बाँप से भी नहीं मिली थी। मैंने गृहस्थ होकर गृहस्थ का सुख कभी भोगा नहीं था। बस मेरा नया जीवन यहीं से शुरू होता है। गृहस्थ की साधना को सुचारु रूप से निपटाते हुए अध्यात्म की ओर अग्रसर होना ही अच्छे साधक की विशेषता है। वह भी क्या खेल, जो खिलाड़ी की तरह न खेल कर अनाड़ी की तरह खेला जाये।

महाराज ने कहा था – "यहां कई बार आना पड़ता है" – सो आवागमन

आरम्भ हुआ। स्वर्ग के विषय में जो साहित्य में पढ़ा था, उसी का आभास यहां पर मिलने लगा। आश्चर्यजनक शान्ति है स्थान में। प्रवेश द्वार के दाई ओर घूमकर कुएँ से आगे बढ़कर साधकावास है। यहाँ पर रहकर साधक अपनी रहने की सब आवश्यकता पूरी करते हैं। सामने ही एक वाटिका है। अनेकानेक पुष्प खिले रहते हैं। यत्र तत्र लता कुञ्ज है, कहीं कहीं तो लताएँ आपस में गुंथी, उलझी और लिपटी हुई हैं। वाटिका के भीतर पत्थर की बड़ी-बड़ी सिलायें लगवाकर रखी हुई है। दाईं ओर पानी से भरा हुआ सरोवर है – शांत और स्निग्ध। बाईं ओर संस्कृत पाठशाला है। प्रात: उठकर छटा देखते ही बनती है रंगबिरंगे पक्षी कुछ सरोवर पर, कुछ वाटिका में किलोलें करते रहते हैं। प्राचीन समय के गुरुकुल का स्मरण हो आता है। मन्दिर की ओर बढ़ते ही एक भारी इमली का पेड़ है, चिर प्रहरी सा खड़ा अपनी साधना में लीन। जबतक फल लदा हुआ – सम्भवत: उपासना का वरदान। सामने ही भगवान शंकर का मंदिर। सरोवर पर बने इस शिव मंदिर का प्राकृतिक सौन्दर्य अकथनीय है। यदि मनुष्य घड़ी-पहर वहां पर बैठे तो स्वत: ही कवि बन जाए। इस मंदिर के आगे यज्ञशाला है। यही है वह दिव्य स्थान, जिसने चीन की कमर तोड़ दी। न उगलने का रखा, न निगलने का। अन्तर्राष्ट्रीय परिषद में अपना मुंह काला करके आज चीन पछता रहा है। राष्ट्र-रक्षा अनुष्ठान यहीं पर हुआ था। यज्ञशाला के सामने परशुरामजी का भव्य मंदिर है। मूर्ति को देख कर ऐसा भास होता है कि देश-कल्याण के निमित्त उन्होंने फिर से फरसा संभाला है। आगे, द्वार में प्रवेश कर बनखण्डेश्वर का मंदिर है। इसे पार कर पीताम्बरा माई का मंदिर है। यही हैं वह मां बगला, जो स्मरण करने पर साधक को वांछनीय फल देती हैं।

बहुत भ्रमण किया है हमने। मंदिर असंख्य देखे है। कलाकारों ने मूर्ति गढ़ने में कोई कसर नहीं छोड़ी है कहीं पर। पर यहां की मूर्ति में कुछ ऐसा आकर्षण है कि दृष्टि उठाने को मन नहीं चाहता। भय-मिश्रित स्नेह सा छलकता है। सौन्दर्य का अविचल विराम, शान्ति की पराकाष्ठा, मुग्ध करनेवाली मादकता तथा साधना की सत्यता। यहाँ पहुँचकर लगता है कि कहीं सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए हैं। सामने ही गुरुदेव की कुटीर है। कुटीर और मंदिर के बीच का स्थान साधकों की साधना के लिए है। रूपरेखा में तराजू की तरह है। यह स्थान, जहां पर सबकी भावनाओं-संघर्ष और साधना को तोलकर कसौटी पर उतारा जाता है। मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा या शिवत्व लाने के लिए विधिवत् पूजन किया जाता है, पर यदि कर्मयोगी को इसी जन्म में भगवान के दर्शन करने हों, तो विश्वस्त रूप और स्वच्छ मन से जाकर गुरुदेव के दर्शन कर लें। मात्रचरण-रज से भाल के अक्षर मिट सकते हैं। इससे अधिक अपनी भावना को व्यक्त नहीं करना चाहती।

महाराज के पास जाकर मुझे मार्गदर्शन मिला। इन्हें संस्कृत-हिन्दी आती नहीं है। अत: बहुत दिनों तक मंत्र आदि लेने में झिझकते रहे। महाराज के पास पहुँचते

ही सब कुछ समझने लगे, पर कर्म हर जगह प्रधान है और फिर महाराज के पास जहाँ अनुशासन और कर्म-निष्ठा सिखाई जाती है, उनकी बारम्बार की सीख चासनी में दूध के कतरे का काम कर गई। सब मैल निकल गई, तो मंत्र-साधना के मार्ग पर यह भी आए और काफी बढ़ गए। अब तो इनकी लगन यही है कि गुरुदेव की गठरी खोलता जाऊं। कई गांठें खोल चुके हैं। जो बाकी है, उसके लिए तत्पर रहते हैं। इस सबके लिए इन्होंने जीवन का सबसे निराला त्याग किया है। मद्य, मांस तथा मत्स्य तो सभी छोड़ ही दिया था, फिर एक समय का भोजन भी छोड़ दिया। एक महीने की छुट्टी लेकर घर से दूर किसी निर्जन स्थान में जाकर रहते हैं, अपनी साधना में तत्पर। महीने भर बाद लौटते है, तो पहचानना मुश्किल हो जाता है। दाढी बढी हुई और संन्यासियों जैसा रूप। अब हमारे छः कन्याएं है, पर अब चित्त को घुन नहीं खाती। जैसे तैसे नैया पार होगी – विश्वास जम गया है। गुरुदेव के पास आध्यात्मिक उन्नति तो मिली ही, साथ में इनकी बरसों की रुकी हुई तरक्की भी मिलती रही।

भगवान भक्तवत्सल होते हैं। गुरुदेव भक्तों की ओर आर्द्र होते हुए शिशुवत्सल हैं। हर बच्चे को बुलाकर पुचकारना, नाम पूछना और मिठाई देना उनकी रोज की दिनचर्या है। मेरे बच्चे उनको बहुत ज्यादा चाहते थे। अत्युक्ति के बिना वे अपने मां बाप पर उनसे कम स्नेह रखते हैं। बच्चा आश्रित होता है इसलिये मां बाप को चाहता है। वे लोग समझते हैं कि हम दोनों से बढ़कर उनकी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाले महाराज ही है। मुझे भी महाराज की ही धौंस दी जाती है। दतिया जाने की लालसा उन्हें लगी रहती है। परीक्षा में प्रथम श्रेणी में रहने का प्रयास भी इसलिये करते हैं कि महाराज को मूर्ख मनुष्य पसन्द नहीं। घर में रहकर सिनेमा, पिकनिक, पार्टी आदि की सुविधा रहती है पर उनको यह सब मंजूर नहीं। ट्रेन में बैठकर जब इस दिव्य नगरी के ऊँचे प्रासाद और मन्दिरों के कलश दिखते हैं तो उनके चेहरे की उत्तेजना, भाव तथा छटपटाहट से साफ लगता है कि उनमें महाराज के पास पहुँचने की कितनी तीव्र इच्छा है। महाराज भी उन पर अत्यधिक स्नेह रखते हैं। एक सी आयु और सूप्त होते हुए भी उन्हें सबका नाम याद था। विशेष कृपा है बच्चों पर। यही मांगती हूं कि उनका वरद हस्त सदा बना रहे, जिससे इनका चरित्र सदा ऊँचा रहे।

मनन करने पर मुझे ऐसा भास होता है कि जितनी कृपा मुझ पर गुरुदेव जी ने की है, और किसी पर इतनी नहीं होगी। यही हार्दिक इच्छा है कि उनकी अनुकम्पा सदा बनी रहे। मेरा जीवन रूपी पंकज पंक में ही धंसा रहता, यदि गुरुकृपा न होती। उनको गहन जल की परत से ऊपर लाकर अपना प्रकाश डालकर विकसित करने का श्रेय गुरुदेव को ही है।

***

END OF AN ERA

– Prakash Mohan Zutshi

It was when I was in my early teens and the period was of mid-thirities that I had my life's proudest privilege and the finest piece of luck to meet Shri Swamiji Maharaj for the first time and to make him subsequently my most revered Guru Dev, To me at least, he was a God-Incarnate, my Mentor, philosopher-Guide, Friend, nay, my everything.

I have no hesitation in confessing that he picked me up from the dust, taught me, made a man out of me, raised me in his own esteem and in the esteem of the entire society around me. Many a time he salvaged me un-scatched out of the devastating fires (fig) that engulfed me, having been caused by the hostile stars and planets and many a time he coverted impossibilities into possibilities for my sake. His ever merciful blessings and benevolence took pride in me just as an urdu poet expressed in the following couplet :–

"Likha Ye Daavar-e-Mehsher Ne
Meri Fard-e-isyan Par
Ye Woh Banda Hai his par
Naaz Karta Hai Karam Mera"

(On the list of my deeds of guilt the Lord thus wrote "Here is the man on whom my Mercy and Pardon take pride").

But, how actually I came to meet him would perhaps need a little narration. My father, Late Pt. Brij Mohan Lal Zutshi, was at that time the Head Master of a High School in Dholpur. It was a princely state in Rajputana but after independence when Sardar Vallabh Bhai Patel wrought about his famous balkanisation of such

States it came to stay as a part of the present day Rajasthan. It was a tiny state with only one High School and my father's service of nearly thirty years there at a stretch resulted in almost half its population having been taught by him. There was hardly any house in which people, practicing various vocations and taught by him were not living. One of them was one Sardar Narain Singh who was then the Superintendent of the State's Jail. He used to go for his morning walks like my father and often met him on the road. One day he told my father that a saint had come and was staying with him.

He expressed a keen desire that my father must meet him but the latter brushed aside the suggestion with a caustic remark that he had seen enough of the present-day Sadhus. They talked quite sweetly, indulged in loud discourses and sermons and when they felt that their listeners had been sufficiently impressed, they would ask for a blanket and a railway-ticket for Hardwar and would then never be heard any more. In his opinion, most of these so-called Sadhus were mere imposters. He himself was a true Vedanti, had never visited temples, did not believe in idol worship but always practiced "SOHAM" (I am God) day and night with his breath the breath itself saying "SO" while going in and "HAM" while coming out. Simultaneously, however, he had a yearning to meet true saints from whom he could perhaps learn something more about "Spiritualism". He was a strong man, very firm in his convictions & far away from the worldly vices. Today, I can visualise that he was quite high on the spiritual plane and if I may say so, was a complete saint in "girhasti" to the last syllable. He also advocated his philosphy in the following urdu couplet of his own composition :-

"Tu Zikr-e-Anal Huq Nafas Se Kar Har Dam,
Dui ke Guman ko mitaye chala Ja".

(Remember day and night through your breath that you are your-self God and go on banishing the idea that God and you are two separate entities).

So, next day, when Sardar Narayan Singh again met him and broached the same subject, remarking that he had talked to the Saint and that he had assured him that he would never demand a blanket or a railway-ticket, my father, though still reluctant, agreed to meet him. Accordingly, the same day, on his return from the school he had his usual meals and siesta and thereafter, in the early hours of the evening started for Sardar Naraian Singh's house which was at a distance of hardly one Kilometer. While leaving, he told my mother that he would be back within a couple of minutes. It was there that he first met this Saint who was none else but Shri Swamiji Maharaj himself. Today, when I read or hear something about "Love at first sight" my thoughts go back to this "first meeting", which I have every reason to believe, must have been a case of "Regards at first sight". My father, who had evidently gone to see him for just a couple of minutes actually returned after about two hours and only after causing some moments of concern to my mother. When she asked him for the reasons for the inordinate delay, he replied that he had in fact come back much earlier for he wanted to stay with the Saint for a few hours more. Imagine his magic, magnetism, his charm that kept my father bound for hours at a stretch, in his very first encounter. Here I must say that it went entirely to the genius of Shri Swamiji Maharaj that he did not fail to realise the immediate need of impressing my father in that first meeting itself, otherwise, he knew, my father would run away, thoroughly dejected and never to return again. Only God knows what actually transpired between the two for two long hours. I only know that when my father returned home, my mother remarked that she had not seen him happier in the past for many years. My father told her that he had at long last found a true Saint that day and would make it a point to see him every day till he stayed at Dholpur. He looked greatly exalted and considerably excited and in that condition started gleefully reciting Saint Kabir's couplet

which ran like this :–

"Aankh Na Moondu, Kaan Na Moondu,
Dhyan Kapaat Na Laya
Khuley Nain Se Sahib Dekhoon,
Ye Guru Bhed Bataya"

(The secret of how one could see the Lord without closing one's eyes and ears, was revealed by the Guru).

This was his first miracle.

I was too little a boy then conclude anything but I heard my mother remaking that Shri Swamiji Maharaj had perhaps shown him the "Light" with his naked eyes which he had been longing to see for long. Soon thereafter I was initiated into this "Order". I also started going to him but we talked over Lighter subjects only like what dishes had I eaten in the morning or what did I propose to eat that evening, what games did I play and to top all that – a few jokes. Our meetings lasted for just a couple of days only when one fine morning we heard that Shri Swamiji Maharaj had left Dholpur for Datia. We naturally became sad, as partings generally are, but this separation was only as Byron put it.

"Though together yet apart". Our hearts were still with him.

After an interlude of about three years during which my father died and I passed my High School Examination, Destiny waved Her magic wand and beaconed my mother to come to Datia. My mother readily responded to the call and reached Datia. Forunately, we had our links with Datia too since my eledest brother Pt. Hari Mohan Zutshi was at that time teaching in the State's High School and so my mother had no particular difficulty in migrating there. I also accompanied her. While in Datia, for once it did not occur to me that I was actually residing in the neighbour-hood of my own God-Incarnate but only later on when this realisation dawned on me I was reminded of Ghalib's following couplet :–

"Masjid Ke Zair Saye Ek Ghar Banalia Hai
Ye Banda-e-Kamina, Ham Saya-e-Khuda Hai"

(I have constructed a house right under the shadow of a mosque and so this rascal of a man has become the neighbourer of God).

From Agra where I had gone to prosecute my studies further, I used to come to Datia during the summer vacations and Dushahra Holidays to stay with my mother and brother. Since it was a very small and primitive type of State, there were not many avenues for one's recreation. It was a problem to pass time. So, more with the intention of passing time in a noble company than with any other, I used to go to Shri Peetambra Peeth every evening during my stays in Datia.

Dushahra, a great Hindu festival (which for centuries, has been signifying the victory of Lord Rama over Ravana or as people say, victory of good over evil) used to be celebrated in the princly states particularly, with great pomp and shew. Datia was no exception. Here people in their colourful dresses used to throng the "Surrion-Ka-Maidan" (which is quite adjacent to Shri Peetambra peeth itself and perhaps now houses the Bus stand (if I am not mistaken) from the early hours of the evening of that day. Thereafter, the State's Maharaja Came, riding an elephant. According to the tradition he hurled a spear at a he-buffalo (who was placed in front of the elephant) and wounded it. This animal, I was told, was reared and well fed for the whole year, exclusively for this occasion. This animal which was till then tied by strong ropes was then let loose. Being badly wounded it ran helter-skelter and sometimes even charged like a tiger at the spectators who came its way. It was chased by some persons on horse-backs with drawn swords and he who first struck the animal with his sword and downed him, was awarded a prize by the Maharaja and this, perhaps marked the culmination of the celebrations. Once I also witnessed these celebrations and from there went straight to Shri Peetambra peeth. Normally, I should have been in a gay mood having witnessed a great festival just a few minutes before, but. I do not yet know the logic of how and why I was feeling so greatly distressed morose

and melancholy. It was "Aarti" time and I stood reverently at the frontal window of the temple. Maharaj ji stood by my side. I was absolutely un-mindful of the "Aarti" going on but was lost in thinking that while my father was already dead, the cruel hands of Fate had now also snatched my mother as well. (She had died during the summer vacations immediately preceding the Dushahra I am talking about). I was brooding that I had become a burden on my brothers which I hated in the extreme and so thought that the wisest course left for me was to commit suicide. The "Aarti" was over and 'prasad' was distributed. Maharaj ji also took his share but soon slipped it in my hands. Immediately thereafter, he said "prakashji, do you know I can read one's hands also. Come along, I will read out to you your hand". Holding my right hand in his, he started speaking thus "Prakash ji, your hand shows that you indulge in perverse thinking. Death does not bring salvation automatically and more particularly the "Akaal Mritues" (untimely deaths). This world is a battle-field and you must carry on your struggle heroically, whatever be the consequences. At present you are unfortunately under the shadow of Saturn which lasts for nineteen years. This is indeed a very bad period for you. But when once this period is over, you would be leading a very happy life. You would have enough money to discharge all your worldly obligations with dignity and ease and that is all for the day. I will tell you other things some other time." He made it crystal clear that he knew every bit of what I had been thinking about, during this "Aarti" period. But, how did he know all that, I think only saints can explain. It is beyond our comprehension atleast. The impact of his words was so great that for a long time I could not look at my life that silly way. Here I may admit that temperamentally I am a born pessimist and tend to believe in the refrain of Thomas Hardy's various writings that "happiness is but an occasional episode in the general drama of pain". So, now that he is no more, I have again fallen into a deep slumber of pessimism and do not think I will ever awake from it till death itself comes to wake me up.

One evening when I went to Maharaj ji he was all alone. I set there and started talking with him. Suddenly he said "Prakashji, today I want to tell you something in confidence. Scores of people have come to me by now but none has come up to my expectations so far. You are the only person whom I consider worthy of making my successor, "but, " in the very next breath he added "I cannot dare to open my mouth because if Master Sahib (meaning my eldest brother, Pt. Hari Mohan Zutshi who was then teaching in Datia) comes to know of this he would think that I have snatched his brother from Him. He would immediately stop your coming over here and would literally eat me up in anger." Hearing this, I only cursed my luck but said nothing. After all at the time, I was indeed a dependent younger brother to a supporting elder brother. The following Persian Saying however spoke on my behalf.

"Sug baash, Birader-e-khurd na baash"

(It is much better to be a dog than a younger brother)

In those days there were very few visitors to Shri Peetambra Peeth. My daily evening visits gave me an impression that Maharaj ji was then meditating rather vigorously – for long hours at a stretch. He was, so to say, in a shell and was therefore not so widely known. However, after a few years when once he came out of this shell he never looked back. Immediately his name and fame spread far beyond the frontiers of Madhya Pradesh to other parts of the country and very soon I found that thousands of men and women had become his disciples. The precincts of Shri Peetambra Peeth themselves started expressing regrets that they had no more space to accommodate all his disciples at a time.

Even renowned saints came to pay respects to him and acknowledged his greatness. Many others, including foreigners came to seek guidance from him.

One evening, after a few days of this happening, I was again sitting with Maharaj ji as usual and he asked me whether I practiced

anything by way of "puja'. "Gayatri Mantra" I replied. He then enquired whether I would do if he gave me some other "Mantra" I was only a boy till then and knew nothing about Spiritualism". I therefore innocently asked him whether there was any other "Mantra" greater and more powerful than "Gayatri" which I was already practicing. He then told me that he wanted to give me some "Mantra" of Goddess Saraswati (Goddess of Learning) and assured me that if I rendered it with complete devotion and dedication, I would always secure First Divisions in my various examinations and would also become a great Orator one day. One could become wealthy also by pleasing "Saraswati" as Goddess Lakshmi (Godess of wealth) got automatically pleased. I was thrilled at the prospect of getting first divisions and becoming wealthy also in the process. What more a student could aspire for? I therefore readily took that "Mantra" from him. Maharaj ji was kind enough to give me a rosary also for this purpose. So great was my excitement that I started counting the beads almost day and night. It was the time of the Summer Vacations and I had all the time in the world to concentrate on this new venture. However, I could do it for hardly three days only when something very extra-ordinary, most exciting and thrilling and which completely changed the entire course of my life, happened. On the fourth day early in the morning at about 4.30 a.m. while I was still sleeping, I saw the most exceptional dream of my life. In that dream, I saw "Maa Kali" appearing before me with a sword in one hand and a bowl of blood in the other. When I beheld Her face to face I started reciting my newly acquired "Saraswati Mantra" quite audibly. When "Maa Kali" heard it She stared at me and with Her finger right at my mouth pointed out that it was not Her "Mantra" that I was repeating. On my telling Her that I did not know Her Mantra, She started telling it to me and made me repeat it exactly as a teacher asks his child to go on repeating R A T, R A T, R A T, R A T till he is able to learn it by heart. 'Maa' disappeared only after making sure that I had learnt that

"Mantra" by heart. It was indeed a peculiar dream the like of which I had never seen or heard before. I immediately woke up but since I had no Sanskrit or even Hindi backgound I noted it down on a piece of paper in Urdu though it was in Sanskrit. I was able to remember it by hearteven when I was awake. I could not sleep again and so, after performing the normal ablutions I made my way "Shree Peetambra peeth". Since my morning sojourns to Bankhandeshwar were rare, Maharaj ji was naturally surprised to see me and curiously enquired about the purpose of my visit at that early hours. When I told him the whole story that had brought me there, he went inside and brought an old book which apparently contained numerous 'Mantras' of various Gods and Goddesses. He then took out that particular page on which was inscribed the portrait of "Maa Kali", Her various Mantras and the detailed procedures of worshipping Her. He then compared the wordings of the "Mantra" as given in the book with those scribbed by me on that piece of paper and which I had taken carefully to show him. After comparing the two and finding that they tallied with each other completely. I found him lost for a few moments with his eyes closed. I can swear that never before in my life had I heard or read anything like that "Mantra". Maharaj ji then opened his eyes, smiled and said thus "prakashji, both the negative and the positive currents were made to be joined to produce "Light". I wanted to make you a man of learning, a luminary and a true pandit but that was not to be. You should now concentrate only on this "Mantra" and you would be benefitted by it only". He then remarked that normally only the Guru imparts such "Mantras" to his disciples, but in a rare case, say one in thousands "Maa" Herself does the duty of the Guru. He congratulated me for being so extra ordinarily lucky and perhaps felt proud of his disciple's achievement. I do not know how else could a miracle be defined. Every word of it came out true.

After finishing my studies in the summer of 1943, I went to

Delhi in search of a job which I readily got only due to the blessings of Maharaj ji. My third elder brother, a bachelor, was already in service there and I stayed with him. One day I heard that an All India Sadhu Sammelan was being held on the banks of river Jamuna and scores of Sadhus from all parts of the country, including all the four Shankaracharyas, Swami Karpatri ji and others who mattered even slightly in the spiritual field, were taking part. I was immediately reminded of Maharaj ji, who, I thought, might also attend. I therefore told my brother that I would go to the site to try and locate him. My brother felt that it was futile since there would be hundreds of Sadhus (wearing similar robes) accompanied by thousands of their cronies and then a motley croud of yet another few thousands, consisting of gay-spectators, urchins, fun-makers and others. It looked really impossible to locate him in such a large congregation. Nevertheless, I decided to try. Most strangely and surprisingly, the apparently impossible looking task became so easy that I cannot simply imagine. Within a few minutes of my reaching there, I saw, to my amazement that Guru Dev was standing just in front of me. I fell on his feet and brought him to our modest house where he gladly stayed, dined and even slept on a "Charpoy" since we had no "Takhat" or any other hard bed. How elated I felt in the company of the noblest of the noble, I cannot describe. I was reminded of Bhagat Vidur whose house was similarly graced by Lord Krishna. My mother had told me the story when I was Child.

"Duryodhan Bahu Pak Banayo
Preet Bina Mo Kon Nahin Bhayo
Vidur Bhagat Ki Preet Jo Jani
Basi Saag Bahut Ruch Khani"

(Lord Krishna says that He was invited by Duryodhan who served Him many dainty dishes but since there was no element of love and affection, He could not relish any of them. However, when He went to Bhagat Vidur, He thoroughly relished the only dish served – a stale vegetable – because it was full of Vidur's love and affection for Him).

Some people may prefer to call it a 'coincidence' but to me it was a miracle an instance of how quickly he responded to his devoties' feelings. This was the second time when he graced our house, the first being his visit to our house in Dholpur at my father's invitation.

On the 4th December 1948 I married and became conscious of the responsibilities of the new life I was ushering in, and so instead of going anywhere else for a "honey-moon", came to Datia to fall at my Master's feet and to seek his blessings. At my request he again agreed to grace our house (for the third time) to dine with us and to bless my wife whom subsequently he many times fondly addressed as "Daughter-in-Law". He never made it a secret that he enjoyed Kashmiri dishes.

I married my eldest daughter, Indu, to Deepak (Ofcourse, after taking Maharaj ji's blessing and only after he had himself tallied the two horoscopes personally and gave a green signal) but it so happened that Deepak fell ill suddenly on the wedding day itself. We gave him the best possible treatment we could afford but to no avail. Almost a month thus passed but his ailment showed signs of aggravation only. Agony, worry and anxiety pervaded the whole atmosphere of the house and we did not know what to do. All of a sudden, one day, (I vividly remember, it was a Thursday), I was reminded of Guru Dev. I told my wife, Girija that I had decided to go to Datia on the coming Saturday to seek Maharaj ji's blessings as that appeared to me to be the only solution. No other alternative appeared to have been left with me. Where medical treatments failed, only prayers succeeded. Lord Tennyson also once wrote "More things are wrought by prayers than this world dreams of." This also inspired me to pray at Datia. It was here that something most extra-ordinary happened, which many a Common man would even refuse to believe. On that memorable Thursday night itself, while I was sleeping, I saw, in my dream, Maharaj ji, standing before me and he spoke thus "Prakash ji, why are you worried.

Have you no faith left in 'Mai' (Mother). Arey Bhai, ailments do come but they go also, why feel so dejected and disheartned? Every thing would be alright verysoon, "He then disappeared. The dream was over. I immediately woke up, woke up Girija too and told her all about the dream. I told her that since Maharaj ji had consoled and blessed me here only I had decided not to go to Datia. Unfortunately she was a nagging wife (although otherwise an ideal lady) and so she retorted that dreams were after all dreams only and were therefore far away from realities. Under no circumstances was she prepared to allow me to cancel my proposed visit. Accordingly, I started from Delhi on Saturday night and reached "Shri Peetambra peeth" in the early hours of Sunday morning. Maharaj ji was sitting in a corner of the Verandah (where his sandals are now kept) and was meditating. The moment I bowed before him, as usual, in reverence and greeted him with "Namo Narayan" he stared at me and said rather contemptuously "Prakash ji, did you not feel consoled and satisfied while staying back at Delhi itself? Did you still need to come here all the way? Arey Bhai, ailments do come but they go. What else do you want me to tell you. Every thing would become alright." He made it clear to me as day-light that he fully knew he had appeared before me in Delhi. Repetition of exactly the same words in person which were uttered earlier in a dream, was a phonomenon I had never seen before in my life and which is totally un-heard of. An experience worth remembering for the whole of one's life. I felt stunned and ashamed. I had no answer. I only said in a rather low tone (which generally signifies confes-sions of guilts) that it was due to my weakness and that I was really sorry. I did not tell him that it was Girija who coaxed and forced me to make that visit. Thereafter he commanded "Jaaiye Saab" The impact of these words, the pace, the tone, the way they were uttered and the enormous meanings they conveyed, can not he expressed on paper. Very often he used to say "Jaaiye Saab" in the same way after my meeting with him ended and I took leave of him. One had

only to hear them to understand. Soon thereafter Deepak became alright. Agony was abated.

In the year 1979, when Girija, being seriously ill, was lying in a city Nursing Home, I found that Maharaj ji was also confined to the Nursing Home of the All India Institute of Medical Sciences in New Delhi, with Kidney trouble. What an irony of Fate? What a coincidence? A case of double worry and double anxiety, staring right into my face. The extent of my agony at that time could better be imagined than described, while I had to be by the side of my dying Girija, I was all the time conscious of my duty to be at Maharaj ji's attendance as well. And, my inability to be at both the Nursing Homes simultaneously which were at considerable distances, made me all the more perplexed and non-plussed. However, Girija breathed her last on the 29th March and thus left me free to divert my attention exclusively towards Maharaj ji. Except to come and pay one's respects there was hardly anything which one could do to ameliorate his suffering and to this extent only I also played my part. Every day there was a regular stream of visitors but since the doctors had advised him not to talk too much these visitors were allowed to have only his "Darshans" for hardly a minute or so and were then ousted from his room by his body-guards (I mean his disciples on duty). One evening, during these days when I went to see him as usual, I got a pleasant surprise. No sooner had I bowed before him than he asked "Prakash ji, have you got a house of your own in Delhi?" I replied in the negative. He then asked "where would you live when you retire from service and have to leave the Govt. accommodation,"? I said "in a rented house, Sir" "but", he said "rents must be very high in Delhi" and I said "of course Yes, but, Sir, what is the alternative"? He became quiet for a moment and the meeting abruptly ended at this point. Incidentally, this was my last meeting with him. Thereafter he left for Datia. However the moment I came back home, I told my children that Maharaj ji had today given me a house too. It was clear to me like a writing

on the wall. Rarely he said any such things directly. He had his own knack of giving out hints which he expected his disciples to understand and interpret. Long communion had however enabled me to understand the hidden meanings of his utterances, more often than not. Soon thereafter, circumstances so shaped themselves that this house about which I had never dreamt (frankly speaking, I could never afford the Luxury of owning a house) is now actually under construction and I hope to be its proud owner one day (proud in the sense that it has, in reality, been gifted to me by my Master). Who would not agree that even when he was critically ill, he had the interests of his disciples at his heart and never his benevolence declined?

3rd June 1979, was perhaps the gloomiest day in my life. Since morning when I woke up I was off my mood. I was losing temper just over trifles. There was some sort of a mental conflict in my mind. My heart was, as if aching, as if I was not my own self. I had become a picture of despondency obviously without any rhyme or reason. I cannot myself describe condition exactly. The following Urdu couplet by "Saif" may perhaps do so.

"Saif Ye din to Qayamat Se Bhi Badtar Guzra
Janey Kya baat thi, har baat pe rona Aaya."

(Ah Saif, this day has come about to be worse than even the Dooms day. God knows what was wrong but every trifle made me weep).

The day thus passed and came the evening, I switched on my T.V. for a diversion but soon thereafter I was struck by a bomb-shell in the form of a telephonic call from Datia, shockingly intimating to me that our dearest Maharaj ji had left his earthly remains. I was rudely shocked and hung down the receiver. A long, a great and a magnificent innings had come to an end. **An era had ended**. I cried in wilderness, I wept and waild. What else could I do? A calamity had befallen me. Alas : I had been orphaned once again.

"I know not why, I could not die"

As Byron put it. Two tragedies had struck me within a span of just three months.

Indeed, 'the moving tinger of Destiny had written and no ocean of my tears could wash a word of it." Later on, while in a pensive mood, I composed the following couplet –

"Ravaana ho gaye khud to woh safar ke liye
Taraptey rah gaye hum, Hum-safar ke liye"

(While he himself left for his journey, I was left to suffer the pangs of separation and pining for a co-traveller).

Inspite of everything which Maharaj ji did for me and my family, I have a lament that while he himself crossed the ocean like a superb Master-Swimmer, which he indeed was, he deserved me and left me drifting like a log while I was still miles away from the shore. But, this is outwardly only. Inwardly, he is still with me. I still continue to enjoy his blessings, He often comes to me in my dreams to guide me, whenever he considers it necessary. Would anybody believe that even while I was writing this article, he came to me and reminded me of his visit to our house in Delhi which I had totally forgotten to include earlier?

One simply cannot imagine the extent of his attachment to me nor can I describe it myself. Every word of his was a miracle in itself. Immediately comes to my mind the following excellent couplet composed over a century back by my grandfather Late pt. Kanhaiya Lal Zutshi –

"Aik Qum Kya Terey har lafz main hai ye taaseer
Teri har baat mein Aijaz-e-Masiha dekha"

(You have surpassed even Messiah who was renowned for his miracles, by giving every word you utter, the effect of a miracle, while he had to take shelter behind a "Qum")

***

ऐसे थे हमारे पूज्यपाद

— के. के. पाठक

"जो कुछ हम कह रहे हैं, स्वामी जी अपने आश्रम में सब सुन रहे हैं" उक्त वाक्य मेरे एक मित्र ने मुझसे सन् १९७० में कहे थे, मैंने उनके इस वाक्य पर कोई महत्व न दिया, कारण कि मेरी स्वयं की भजन-पूजन में कोई रुचि नहीं थी और उक्त वाक्य कहने वाला तो भजन-पूजन से कोसों दूर था। मैं ग्वालियर का रहने वाला हूँ। वहाँ से स्थानांतरित होकर पहली बार दतिया आया था। इसके पूर्व में दतिया कभी नहीं आया अत: पीठ एवं स्वामीजी के बारे में कोई जानकारी न थी। समय बीतता गया, एक दिन एकाएक मुझे अपने मित्र द्वारा कहे गये वाक्य का ध्यान आया। घटना लगभग दो वर्ष पुरानी हो चुकी थी। क्या वास्तव में हम जो कुछ यहाँ कर रहे है स्वामी जी आश्रम में बैठे-बैठे देख रहे होंगे यह बात मेरे मस्तिष्क में आती रही, निश्चित पूज्यपाद की ही कृपा से तीन-चार दिन के उपरान्त मुझे पीताम्बरा पीठ बुलाया गया, मैं उन दिनों फायलेरिया इन्स्पेक्टर के पद पर कार्यरत था। पूज्यपाद के पैरों में सूजन आ गयी थी अत: उन्हें फायलेरिया है या नहीं इसकी जाँच करने हेतु मुझे बुलाया गया। मुझे अपने मित्र के उक्त वाक्य का पुन: स्मरण हो आया। मैं पीठ पर गया, लगभग सात-साढे सात बजे संध्या का समय रहा होगा, पूज्यपाद बरामदे में आसीन थे। माँ भगवती के मन्दिर के पुजारी माई की सेवा में लीन थे, कई साधक अपनी-अपनी साधना में लीन थे। मैंने पूज्यपाद के सर्वप्रथम दर्शन उसी क्षण किये थे। पूज्यपाद का तेजस्वी चेहरा साक्षात् शिवस्वरूप था। पीठ में पिन्ड्रोप सायलेन्स था एकदम शान्त वातावरण। कई बच्चे भी दर्शन कर रहे थे किन्तु कोई आवाज नहीं ऐसा पीठ का विलक्षण अनुशासित वातावरण देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था। मैंने नतमस्तक होकर स्वामी जी को प्रणाम किया, महाराज ने मुझसे पूछा 'तुम कौन –!' मैंने अपना पूर्ण परिचय महाराज जी को दिया व निवेदन किया कि पीठ से ही मुझे आपके रक्त परिक्षण हेतु बुलाया गया हैं। मैंने महाराज जी की उंगली से रक्त लेकर व प्रणाम कर प्रस्थान किया। रास्ते भर महाराज जी का तेजस्वी चेहरा व पीठ का अत्यन्त शान्त विलक्षण वातावरण के बारे में सोचता रहा। दूसरे दिन महाराज जी के रक्त का परीक्षण कर रिपोर्ट देने मैं स्वयं ही गया, स्वामीजी उसी स्थान शिव मुद्रा में बैठे थे। मैंने प्रणाम कर निवेदन किया कि आपको फायलेरिया नहीं हैं संभवत: आपने जो वर्षों से साधना कई घन्टों लगातार एक आसन पर बैठकर

की हैं उसी के कारण आपको ये सूजन हैं और मैं प्रणाम कर वापस चला आया। लगभग एक वर्ष बाद एकाएक में पीताम्बरा पीठ गया, स्वामी जी महाराज को लगभग एक वर्ष पूर्व जिस मुद्रा में बैठा देखा था आज भी उसी मुद्रा में आसीन थे मैंने सादर प्रणाम किया। स्वामी जी का वही पुराना प्रश्न – 'तुम कौन ...!' मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया – मैं पाठक हूँ। मेरा उत्तर अत्यन्त ही सूक्ष्म था। स्वामी जी ने तुरन्त पहिचान लिया और कहा – 'तुम ग्वालियर के रहने वाले हो, तुमने हमारी बीमारी की जाँच की थी,' मैं सुनकर दंग रह गया, इस पीठ पर सैकड़ों दर्शनार्थी प्रतिदिन आते हैं मेरे मात्र एक दिन ही, वह भी लगभग एक वर्ष पूर्व आने पर महाराज जी को मेरा ध्यान वह भी मेरे अत्यन्त अल्प परिचय देने पर। मैं स्तम्भित सा उनके शिव स्वरूप को निहारता रहा और उसके उपरान्त मैं नियमित पूज्यपाद के दर्शनार्थ जाता रहा। लगभग एक वर्ष बाद जब मैं नित्य की भाँति पीठ पर गया तो महाराजजी अपने मूढ़ें पर बैठे थे मैंने प्रणाम किया। महाराज ने कहा – 'एक वहां डॉक्टर आया था और कह रहा था, "मुझे" (स्वामीजी) फायलेरिया हो गया है मैंने तो डाक्टर से उसी समय कह दिया कि हम तुम्हारी बात नहीं मानते।' मेरे अनेक निवेदन करने पर कि मैं कोई डॉक्टर नहीं हूँ आपको डॉक्टर साहब की सलाह के अनुसार अपना उपचार कराना चाहिये, किन्तु पूज्यपाद ने कहा कि 'अपने डॉक्टर पर ही भरोसा करना चाहिये सो मैं भी करता हूँ।' मैं एकदम स्तंभित सा रह गया, गुरु को अपने अज्ञानी शिष्य पर भी इतना अगाध विश्वास मेरे दृष्टि से अत्यंत दुर्लभ है!

पूज्यपाद कह रहे थे 'पाठक जी यह छोटे लाल है इसको पहले रोज मिर्गी आती थी। जब से यह यहाँ दवा लेने आने लगा है इसकी मिर्गी ठीक होती जा रही है अब यह बड़े लाल हो गया है।' मैंने देखा एक काले रंग का ५-६ वर्ष का बालक मैंली कुचैंली फटी कमीज पहिने था, पूज्यपाद स्नेह से उसके सिर पर अपना हाथ फेर रहे हैं। मैंने मन ही मन अपने को धन्य समझा कि जिस गुरु के हजारों शिष्य महारानी सिंधिया, श्री कमलापति त्रिपाठी आदि जैसे हो उस गुरु का एक अत्यन्त दीन बालक के प्रति कितना अगाध स्नेह है हम धन्य हैं ऐसे गुरु का सानिध्य पाकर।

प्रातः नित्य की भाँति मैं भजन पूजन को गया। सर्वप्रथम पूज्यपाद को प्रणाम करने हेतु अंदर आँगन मैं गया तो देखा राजमाता जी की पुत्री व उनके भाई ध्यानेत्र जी उनके पास बैठे हैं, मैंने प्रणाम किया, महाराज जी ने मुझसे कहा – बैठो। मैं बैठ गया महाराज जी ने मुझसे राजमाता जी की पुत्री की ओर इंगित करते हुये कहा 'पाठक जी तुम इसे जानते हों' मैंने अपनी अनभिज्ञता प्रकट की तो महाराज जी ने कहा – 'ये रानी की लड़की है तुम्हारे ग्वालियर की रहने वाली है।' फिर मेरी और इंगित करते हुये कहा – 'ये पाठक जी हैं बड़े अच्छे आदमी है हमें हर महीने दो रुपये देते हैं।' मैं सब कुछ सुनता रहा पर मेरे मस्तिष्क की क्या स्थिति रही होगी

मैं बयान नहीं कर सकता, बस मैं तो यही सोचता रहा कि मैं तो साक्षात शिव के समक्ष बैठा हूँ, जिन्हें राई और सुमेरु समान हैं। अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार मैं यह कह सकता हूँ कि आज तक विश्व में ऐसा कोई महात्मा नहीं जन्मा है जो अपने समस्त शिष्यों को समान समझें। वह विशिष्ट गुण केवल हमारे पूज्यपाद में ही व्याप्त था। आज भी इस पीताम्बरा पीठ पर महाराज के आदेशानुसार अति सन्माननीय व्यक्ति एवं अत्यंत साधारण व्यक्ति के बीच किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है। सभी को समान नियमों का पालन करना अनिवार्य है।

महाराज की कृपा से मेरे कई वर्ष कुशलता से बीत गये, हम पति-पत्नी दोनों ही महाराज द्वारा दीक्षित हो चुके थे। प्रतिदिन महाराज का सानिध्य पाकर हम अपने को अत्यंत भाग्यशाली मान रहे थे किन्तु संयोग से हमारे परिवार में कुछ विघ्न उत्पन्न हो गया, मन में क्लेश रहने लगा किन्तु पीठ पर भजन पूजन हेतु नित्य की भाँति ही जाते रहे। क्लेश तीन चार दिन तक चलता रहा, हमारे जीवन का इस प्रकार का यह क्लेश पहला था और मैं जानता था कि इसमें त्रुटि मेरी ही हैं। नित्य की भाँति मैं पीठ पर भजन करने गया, आते समय महाराज जी को मैंने प्रणाम किया। महाराज जी बोले 'भजन कर चुके'? मैंने उत्तर दिया जी महाराज! महाराज जी ने मुझसे कहा 'बैठों' मैं सहम गया। आज से पूर्व इस प्रकार से मुझसे महाराज ने कभी नहीं कहा था, मैं मन ही मन घबरा रहा था। महाराज जी बोले, "पाठक जी क्लेश करना बहुत बुरी बात है क्लेश कभी नहीं करना चाहिये तुम समझ गये न।" मैं पूरी तरह हड़बड़ा गया था मैं पूज्यपाद की आज्ञा ले घर चला आया। रास्ते भर पूज्यपाद के शब्द मेरे कानों में गुंजते रहे। घर आकर मैंने अपनी पत्नी को बताया, मेरी पत्नी ने आँसू भर कर कहा – आज रात्रि को मैंने घर से ही महाराज से निवेदन किया था। उन्होंने मेरी सुन ली मैं धन्य हो गई, तुरन्त उसी क्षण मुझे वर्षों पूर्व मेरे मित्र द्वारा कहे शब्दों का स्मरण हुआ "जो कुछ हम कह रहे हैं स्वामी जी अपने आश्रम में सब सुन रहे हैं।"

***

उपन्यास सम्राट श्री वृन्दावनलाल वर्मा श्रीचरणों में कैसे पहुँचे?

— *सत्यदेव वर्मा*

सन् १९२५ में कान की बगल की हड्डी का फोड़ा जो प्राणघातक समझा जाता था, पिताजी (स्वर्गीय श्री वृन्दावनलाल वर्मा) को हो गया था। लगातार आठ महीनों के डाक्टरी इलाज के बाद जब झांसी में लाभ नहीं हुआ और हालत बिगड़ती ही गई तो उन्हें लखनऊ ले जाया गया। साथ में मेरे छोटे मामा श्री रामभरोसे – रामकृष्ण वर्मा (दादा) के चाचा के अतिरिक्त पिताजी के सच्चे मित्र और हितैषी भी गए थे। तब मैं ग्यारह वर्ष का था, स्थिति की गम्भीरता को नहीं समझता था। उस समय की केवल मां की अविचलित दृढ़ता, साहस और धैर्य की अमिट तस्वीर आज भी हृदय में अंकित है। माँ घर पर ही रहीं। हम छोटे-बड़े बच्चों को उन्होंने कभी अपनी वेदना का आभास नहीं होने दिया। लखनऊ में कान का आपरेशन रात में पहुंचते ही उस समय के उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध सर्जन डॉ. के. एस. निगम ने सफलतापूर्वक किया था। उनका कहना था कि हालत बहुत खराब है, संभव है सुबह तक वर्माजी जीवित न रहें। झाँसी खबर आती रहती थी। मेरे छोटे मामा लखनऊ से लौट आए थे और मित्रगण तथा हितैषी भी। अब माँ के साथ मैं भी लखनऊ गया। पिताजी के सिर और कान पर पट्टी बंधती थी लेकिन किताबें उलटने-पलटने लगे थे। ठाकुर प्रसिद्ध नारायण सिंह का "हठयोग" प्रकाशक गंगापुस्तक माला लखनऊ, उन्हीं पुस्तकों में मुझे दिखी। पिताजी उसके पन्ने पलटते, पढ़ते और कभी कभी अपने निकट के पंडित अयोध्या प्रसाद शर्मा से उसकी चर्चा करते हुये कहते, "पंडितजी, योग जैसे गहन विषय का इस पुस्तक में ठीक से प्रतिपादन नहीं हुआ। अब तो यही अभिलाषा है कि चलने-फिरने योग्य होने के बाद हरिद्वार, ऋषिकेश जाऊं और वहां किसी योगी के दर्शन करूं। मन में तो यह है कि उसी के बाद झांसी लौटूं। मैं उनकी इस बात को कभी भूला नहीं, उनकी लगन योग की ओर बनी रही। पुस्तकों की सहायता से अभ्यास भी करते रहते थे, कभी कुछ कभी कुछ।

हम सब लोग हरिद्वार, ऋषिकेश और गरुड़ की चट्टी तक गए, परंतु योगी के दर्शन तो साधु के दर्शन तक नहीं हुए। अभी समय नहीं आया था। पिताजी के पूर्वजन्म के पुण्य संस्कारों का उदय अभी नहीं हुआ था।

पिताजी के इस प्रकार वर्षों बीत गए। योग के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा के भाव न आदर का स्थान तो ले लिया था, परंतु पुस्तकें सद्‌गुरु का स्थान कहां ले सकती हैं? संगीत का शास्त्रीय अध्ययन कितना ही कर लिया जावे परंतु उससे कभी कोई गायनाचार्य अथवा गायक नहीं बन सकता। पातंजल, योगी अरविंद, महर्षि रमण, पाल ब्रन्टन आदि की किताबें पढ़ने से उनको योग की अद्भुत और असीम शक्ति में विश्वास तो दृढ़तर होता गया, किन्तु न तो साधना बनी और न योगी के दर्शन ही हुए। हां, मन को एकाग्र करने की और पहाड़ से कष्ट झेलने की उन्हें अद्भुत शक्ति मिली।

मैं १९५९-६० में बहुत बीमार पड़ गया था। मेरे बड़े भाई – मेरे बड़े मामा के लड़के जो तब सगे बड़े भाई के स्नेह के अभाव की पूर्ति करते थे – और आज उसके अतिरिक्त पिता के वात्सल्य और हित के अभाव की पूर्ति करते हैं – मुझे अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी के चरणों में ले गए। बीमारी दूर हुई सो तो हुआ ही, श्रीचरणों की शरण में ले लिया गया। घोर नास्तिक आर्य समाजी से पूर्ण आस्तिक और श्रीचरणों में अमिट, अटूट और अपरिमित विश्वास करने वाला बन गया।

मुझे श्रीचरणों में जाते हुए कुछ वर्ष हो गए थे। एक दिन मैंने पिताजी से कहा, 'बाबू (मैं उन्हें बाबू ही कहता था) दतिया चलिए एक दिन। वनखण्डेश्वर के स्वामीजी बड़े योगी और विद्वान हैं, एक शब्द में कहूं अद्भुत हैं, वर्णनातीत हैं।' बाबू ने आश्चर्य और उत्सुकता पूर्ण स्वर में कहा, 'योगी हैं! दतिया में बिराजे हैं!! ताज्जुब है!!!

मैं :– 'हां बाबू मैं जो कह रहा हूं एक एक अक्षर सत्य है, सन् १९४२ में जब मैंने पहले पहल उनकी बाबत रज्जन वकील (स्व. बाबू अम्बिका प्रसाद सक्सेना, एडवोकेट, झाँसी) से सुना तो विश्वास नहीं कर सका। दतिया में और योगी, परन्तु जब प्रथम बार ही श्रीचरणों में पहुंचा, तभी भीतर से विश्वास जाग्रत हो गया। विश्वास करना पड़ा। मैं फिर दुहराता हूँ वर्णनातीत हैं। आप दर्शन कीजिए। आपके मन में तो सन् १९२५ से ही इसकी साध है।

बाबू – 'सन् १९२५ से नहीं बल्कि सन् १९०८ से, जब मैंने गौतम बुद्ध का जीवन चरित पढ़ा था और फिर उनके संबंध में पुस्तक भी लिखी थी। कल सुबह ही

उनके दर्शनों को चलो दतिया। तभी रामकृष्ण बराबर जाता है दतिया। मैंने "जी" कहा, फिर अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी के संबंध में बातें होती रहीं।

अगले दिन सुबह हम लोग श्री पीताम्बरा पीठ दतिया पहुँचे। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी स्नान करके बाहर आए ही थे। इतने दिव्य, देदीप्यमान, स्निग्ध, ओजस्वी और तेजस्वी दिख रहे थे आंखें देखती ही रह गई। ऐसा लगा जैसे सजीव मूर्ति ने अभिषेक के उपरान्त दर्शन दे हम लोगों को उपकृत किया हो, तार दिया हो। वर्षा के उपरान्त पल्लव स्निग्ध और स्वच्छ दिखते हैं, पूज्य अनन्त श्री स्वामीजी ऐसे ही लग रहे थे। गुलाब की हर पंखुड़ी जैसे सुगंधित होती है, विकसित कमल जैसे नयनाभिराम और चित्ताकर्षक होता है वैसे ही गुरुदेव पिताजी को लगे थे। उन्हें लगा था कि स्वामी जी के हर अंग से सुगंधि और ओज जैसे झर रहे हों, जैसा कि बाद में उन्होंने मुझसे कहा था। उन कमल नयनों में जिनमें मानव के प्रति दया के कारण सदैव तरलता छलकती रहती थी, जिनमें ओज, कोमलता और अत्यन्त तीक्ष्ण प्रकाश एक साथ बिराजमान रहते थे, उन्हीं नयनों से स्वेच्छा से कूर्मक की भाँति देखकर ही मानव मात्र का विशेषतः दीन दुखियों का – आर्तजनों का कल्याण करते रहते थे। कूर्मक अपने अंडों को देखने मात्र से सेता है – स्वामी जी केवल दृष्टिपात से ही शक्तिपात कर देते थे – जब उसका कोई पात्र होता और दया तो सब पर छिरकते ही रहते थे। स्वामीजी ने बाबू की ओर देखा, मैंने कहा, 'मेरे पिताजी हैं।'

स्वामी जी, 'अच्छा। आसन लाओ। आपने तो हिन्दी में बहुत –' इतना ही कह पाए थे कि पिताजी उनके चरणों में साष्टांग लेट गए। मैंने जीवन में कभी भी बाबू को इतना विनयावनत नहीं देखा था। जीवन पर्यन्त स्वामीजी को वे इसी प्रकार प्रणाम करते रहे।

स्वामी जी – 'बैठिए, बैठिए।' बाबू बिल्कुल चुप। मैंने देखा तीन-चार बार उन्होंने हलक के नीचे कुछ निगला – जैसे भावों को पी रहे हों। उन दिव्य दर्शनों के कारण उत्पन्न हर्षातिरेक, स्फुरण और रोमांच ने बाबू को एक साथ जकड़ सा लिया था। वह नहीं चाहते थे कि उनके छुपे भाव आंखों से बाहर बहककर उजागर हो जावें। पूज्य देव को इस सबको अवगत करने और समझने में कितने पल लगे होंगे! जब बाबू ने समझ लिया कि अपने पर नियंत्रण कर लिया है तो बोले, 'दर्शनों की बहुत समय से साध थी आज वह शुभ दिन आया।' फिर हिन्दी की चर्चा हुई, अन्य विषयों की भी।

आज्ञा लेते हुये बाबू ने कहा, 'अब दर्शनों के लिए जल्दी जल्दी आया करूंगा।' और उसी तरह साष्टांग प्रणाम किया जैसे प्रथम दर्शन के समय किया था। लौटते

समय मार्ग में बाबू बोले, 'भय्या (मुझे भय्या ही कहते थे) मेरे पास शब्द नहीं हैं उसको वर्णन करने के लिए जो आज मुझे उनके दर्शन मात्र से हुआ। इतना ही कह सकता हूँ कि पूर्वजन्मों के किन्हीं संचित पुण्यों का परिणाम है जो आज उनके दर्शन हुए। उनके श्रीचरणों की रज मस्तक पर धारण करने अब आया करूंगा जल्दी जल्दी चरणों में प्रणाम करने।'

मैंने कहा, 'आप दीक्षा के लिए उनसे प्रार्थना कीजिए। उससे आपको पता नहीं क्या मिले।'

बाबू ने कहा, 'मैं जरूर विनय करूंगा।' उस समय बाबू की उम्र ७४ वर्ष रही होगी लेकिन उत्साह तरुण जैसा था। २-४ दिन बाद हम दोनों पुन: गए। बाबू ने उसी प्रकार दण्डवत साष्टांग प्रणाम किया। थोड़ी देर बाद बोले, 'स्वामी जी चरणों में ले लिया जाऊं।'

स्वामी जी किसी भी स्पष्ट बात के कहने में जरा भी संकोच नहीं करते थे धीरे से बोले, 'देर तो बहुत हो गई, लेकिन कोई बात नहीं।' फिर हंसकर, कुछ खुलासा शब्दों में कहा, 'आप आ जाइए। वैसे मैं फौजी नियमों का पालन करता हूं। फौज में भर्ती परीक्षण के बाद होती है। लेकिन आप एक अपवाद हैं' – जोर से हंसकर बोले, 'एक्सेप्शन हैं।' ४, ५ दिन बाद का समय दिया। बाबू को मंत्र दे दिया पूज्य गुरुदेव ने। बाबू लगभग अंतकाल तक बहुत ध्यान के साथ जप करते रहे। एक सप्ताह बाद एक दिन पुज्य गुरुदेव ने मुझसे कहा, 'आए तो तुम्हारे बाबू बहुत देर से, लेकिन उनको ऐसा बता दिया गया है कि उनका काम बहुत जल्दी हो जायगा।' और हंसे। मैं उनकी ओर देखने लगा – किसी अभिप्राय से। बोले 'तुम लोगों को नहीं बताया जायगा। उन्हीं के लिए है। उनके पास समय कम है।'

बाबू दतिया जाने लगे। घर पर अपना अभ्यास करते। उनकी एकाग्रता और बढ़ गई। अपनी बीमारी के बाद जब मैं स्वस्थ होता जा रहा था एक दिन मैंने उनके सामने एक साप्ताहिक पत्र आरंभ करने की बात रक्खी। मुझसे बाबू बोले, 'मैंने तुम्हें कभी किसी बात के लिये मना नहीं किया, लेकिन इसके लिये मेरी राय नहीं है। बड़ा आर्थिक, मानसिक परेशानियों में और शारीरिक व्याधियों में पुन: फंस जाओगे। बड़ी जिम्मेदारी का काम है।

मैंने उनसे तर्क करते हुए सब्जबाग दिखाये। 'अखबार में प्लानिंग उन्नत कृषि, सहकारिता, चरित्र-निर्माण, नैतिक शिक्षा, आर्थिक समस्याओं पर लेख रहेंगे तथा आपकी एक कहानी भी और साथ में हिन्दू समाज के उत्थान के लिए लेखों-कथानकों

द्वारा अनवरत चेष्टा। मेरा आदर्श आपके स्वर्गीय मित्र गणेश शंकर विद्यार्थी हैं। आर्थिक हानि नहीं होगी क्योंकि, प्लानिंग और शिक्षा विभाग में इसकी अच्छी खपत होगी।'

मेरे तर्क और सब्जबाग की तस्वीर से उन पर रत्ती भर भी प्रभाव नहीं पड़ा होगा परंतु पुत्र की मीठी बातों से पिता का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने हामी भर दी। साप्ताहिक 'लोकपथ' आरंभ हुआ। श्री चरणों में नियम से स्वयम् लाता अथवा डाक से पहुंचाता।

एक दिन बाबू और मैं श्री चरणों में पहुंचे। लोकपथ की चर्चा अनन्त श्री पूज्य गुरुदेव ने की, तो मैंने कहा – 'स्वामी जी आप भी इसमें कुछ लिखने की कृपा करें तो बहुत अच्छा रहे।'

स्वामीजी बोले, 'धीरे धीरे लिखने का अभ्यास कम होता जाता रहा है। परिश्रम का कष्ट-साध्य कार्य है। मेरे विषय से भिन्न विषय का साप्ताहिक है यह।'

उनके इस प्रकार कहने में मुझे गुंजाइश अवगत हुई, मैंने फिर प्रार्थना की, 'महाराज जी धार्मिक विषय पर कुछ लिखा जावे, उसका एक स्तम्भ कर दिया जावेगा जिसमें नियम से आपका लेख जाया करेगा। पाठक लाभान्वित होंगे।'

'धार्मिक विषय कौन पढ़ता है!' कुछ क्षण रुक कर बोले ''हिन्दुओं की तो गति-मति ही बिगड गई। क्या कहा जाये''?

तब बाबू बोले, 'स्वामी जी रुचि परिष्कृत तो करनी ही पड़ती है। यदि कोई एक, न भी सुने तो भी सुनाना तो पड़ेगा ही। वैदिक ऋचाओं में जो विलक्षण है, उसको हिन्दू वर्षों से किसी न किसी रूप से सुनता आया है। संभवत: उसी ने हिन्दुओं को बचाया है। मेरी एक विनय है महाराज जी, यदि वैदिक ऋचाओं पर बोधगम्य-सरल भाषा में हिन्दी में टिप्पणियां प्रकाश में लाई जावें तो उससे हिन्दू का ही नहीं मानवता का भी हित हो सकता है।'

अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ने तुरंत कहा, 'यह विचार अच्छा है। वैदिक ऋचाओं को सरल हिन्दी भाषा में लिखा जा सकता है।'

बाबू ने कहा, 'तब स्वामी जी एक एक ऋचा 'लोकपथ' के प्रत्येक अंक में प्रकाशित होती जावे और वही पुस्तकाकार होकर बाद में जन कल्याण के लिये सुलभ हो जावे।' पूज्य स्वामी जी मान गए। लोकपथ के प्रत्येक अंक में ऋचा प्रकाशित होती रही। ''वैदिक उपदेश'' उसी का परिणाम है, जो श्री पीताम्बरा परिषद दतिया से प्रकाशित हुआ। ''वैदिक उपदेश'' के प्रकाशन के कुछ समय उपरान्त ''लोकपथ'' उन्तीस हज़ार का घाटा सहकर बन्द हो गया।

रूस के आमन्त्रण पर भारत सरकार की ओर से एक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल सन् १९६७ में रूस जाना था। उसमें पिताजी का नाम भी था। रूस जाने के पूर्व बाबू पूज्य श्री अनन्त श्री स्वामी जी की चरण रज लेने ८-१०-६७ को दतिया पहुंचे। उस समय पूज्यवर पीताम्बरा – मंदिर में जप करने के लिये प्रवेश कर रहे थे। बाबू को देखकर लौट पड़े। ऐसा लग रहा था जैसे प्रकाशपुंज से रश्मियां पसर रही हों। उनके दर्शन से ऐसा लगा जैसे हम लोगों ने सद्य: स्नान कर इच्छित दर्शन पा लिया हो। सदा की भांति बाबू ने दण्डवत प्रणाम किया। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी खड़े ही रहे। बाबू भी नतमस्तक खड़े हो गये। प्रणाम करके मैं भी खड़ा हो गया था। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ने बाबू से कहा, 'कहिये।'

बाबू ने धीरे से कहा, "महाराज जी, रूस के निमन्त्रण पर भारत सरकार की ओर से एक सांस्कृतिक प्रतिनिधि मंडल रूस जा रहा है। मेरा नाम भी उसमें शामिल किया गया है। वहां जाने के पूर्व श्री चरणों में प्रणाम कर आज्ञा लेने आया हूं।' और बाबू ने पुन: दण्डवत प्रणाम करते हुये श्री चरणों में माथा रख दिया।

स्वामी जी ने प्रसन्नता प्रकट करते हुये कहा, 'बड़ी अच्छी बात है।' बाबू फिर खड़े हो गये। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी कहते गये, 'जरूर जाइये। अपनी बात निर्भयतापूर्वक अपनी भाषा हिन्दी में कहियेगा। मैं यहां सुनूंगा।' बाबू हाथ जोड़े जोड़े बोले, 'महाराज जी, हिन्दी में ही कहूंगा और आपकी आज्ञा का पूर्ण पालन किया जाएगा। निर्भयतापूर्वक ही कहूंगा।' अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी बोले, 'हमारे राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद जी रूस गये थे। उनको मान-पत्र वहां संस्कृत में दिया गया था, परंतु उसका उत्तर अंग्रेजी में दिया गया था। कितनी लज्जास्पद बात थी। वह लोग क्या कहते होंगे! हमारे देश और राष्ट्रपति के प्रति रूसवासियों के मन में किस प्रकार के भाव उठे होंगे! मुझे खुशी है आप हिन्दी में अपनी बात दृढतापूर्वक कहेंगे।'

बाबू ने कहा, 'महाराज जी, वास्तव में यह लज्जास्पद ही था कि रूस वाले संस्कृत में हमारे राष्ट्रपति को मान पत्र भेट करें और उत्तर उसका अंग्रेजी में दिया गया। केवल मानसिक दासता का द्योतक है यह। चरणों की दया से हिन्दी में ही अपनी बात कहूंगा।'

अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी बोले, 'बहुत अच्छा है। जाइये।'

हम लोगों ने श्रीचरणों में दण्डवत प्रणाम किया, और चले आये, परंतु आंखों का वह ओज, वह तीक्ष्ण प्रकाश, वह दयामय हास्य जो बाबू को आशिष देते समय आंखों में था विलस रहा था, कभी नहीं भूला। वरद हस्त हवा में उठा हुआ, साक्षात् जीवित प्रतिमा की भांति वह प्रकाश पुंज खड़ा था।

बाबू रूस गये। रूस से रेडियो पर उनकी वार्ता हिन्दी में प्रसारित की गई थी। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ने भी उसको दतिया में अपने आश्रम में सुना था। उसको उन्होंने पसन्द किया था और सराहना की थी।

बाबू रूस से १९-११-६७ को लौटकर झांसी आ गये। लगभग दो घंटे बाद एकान्त पाकर बोले, 'परसों दतिया चलना है।' मैंने कहा, 'थके हैं आप। तीन चार दिन विश्राम करने के बाद चलें।'

धीरे से परन्तु दृढ़तापूर्वक बाबू ने कहा, 'परसों सुबह ही चलना है। अगर स्वामी जी की दया नहीं होती तो तुम मुझे अपने बीच में नहीं पाते।'

मैंने आश्चर्य में डूबकर कहा, 'क्यों?'

'हां भय्या! किसी को नहीं मालूम। और न किसी से कहना ही है, व्यर्थ की परेशानी और शोरगुल सबमें फैलेगा।'

मेरे हृदय की धुकधुकी कुछ बढ़ गई मैंने कुछ जल्दी जल्दी कहा, 'कोई मेजर एक्सीडेन्ट हो गया था – कार से या –'

बाबू – 'ना ना, कार आर की दुर्घटना नहीं। बेटा (भय्या के स्थान पर बेटा शब्द का प्रयोग बहुत भावावेश में ही करते थे) ३०-४० फुट की ऊंचाई रही होगी। मेरा पैर झूठा पड़ गया। घुटना आर्थराइटिस के कारण कुछ खराब तो है ही। मैं एक दम नीचे की ओर हेड लांग (सिर के बल) आया। मेरे साथ के रूसी मार्गदर्शक (गाइड) के मुंह से चीख निकल पड़ी। वह समझा कि मेरे समाप्त होने का दोष उस पर आयेगा, क्योंकि उसकी देखरेख और जिम्मेदारी में मैं चल फिर रहा था। बेटे तुमसे, केवल तुमसे, कह सकता हूं। ऐसा लगा जैसे स्वामी जी वहां पहुंच गये। बच्चे की तरह मुझे गोदी में ले लिया और आधे मिनट बाद नीचे रख दिया। मैं फुदकता सा जमीन स्तर पर था।'

मैं चुपचाप एकटक बाबू की बात सुन रहा था। मैं तो अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी की असीम शक्ति का आभास पहले ही पा चुका था। मेरे लिए इसमें अविश्वसनीय कुछ हो ही कैसे सकता था।

मैने धीरे से कहा 'बाबू वह तो बिना कहे, बिना बताये, बिना प्रकाश में लाये, रक्षा, कृपा और न विश्वास करने वाले काम किया करते हैं।' चमत्कार शब्द का मैंने प्रयोग नहीं किया। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी को यह शब्द कभी नहीं रुचा और न चमत्कारी बाबा लोग।

मैंने फिर कहा, 'बाबू हम सबके भाग्य थे और क्या कहूं!'

तुरन्त हंसकर बोले, 'वह रूसी तो समझा था कि उसके सिर पर कलंक आया। वह आश्चर्य में पड़ गया जब पृथ्वीतल पर मुझे खड़े हुये हंसते देखा। बोला – वर्मा जी आप तो वास्तव में बड़े भारी स्पोर्टस् मैन रहे होंगे। आपके शरीर में बहुत लोच है, जो इतनी अधिक ऊंचाई से भी हेड लांग आते हुये कूदते फांदते प्रसन्न मुद्रा में हैं'।

मैंने हंसकर कहा, स्पोर्टस् मैन तो रहा हूं और कुछ नहीं बोला, क्योंकि महाशक्ति, महारक्षक की बात उससे कहना व्यर्थ था।'

मैंने कहा, 'बाबू, आपने मुझे भी नहीं लिखा।'

'नहीं भय्या, यह बात लिखने की नहीं थी।' बाबू बोले, 'परसो सुबह पहले दतिया ही चलो। और इस बात की चर्चा किसी से नहीं करना।'

मैंने कहा, "जी कभी नहीं" – लेकिन आज न तो पूज्य बाबू ही हैं और न अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ही, इसलिये इस घटना को प्रकाश में ले आया।

हम लोग दतिया गये। सदा की भांति हम लोगों ने अपने अपने ढंग से श्री चरणों में प्रणाम किया।

अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ने बाबू से कहा, 'कहिये, कब लौटे?'

बाबू ने बताया। बाबू ने "अपनी कहानी" में इसका उल्लेख किया है उन्हीं के शब्दों में – पृष्ठ ४११ –

रूस से लौटने के दो दिन बाद अपने पूज्य गुरुदेव के श्रीचरणों में मस्तक टेकने दतिया चि. सत्यदेव के साथ गया। यह मेरा और मेरे परिवार के सभी सदस्यों का सौभाग्य है जो हमें "सतगुरु" मिले।

योग की ओर मेरा रुख तभी से है जब से मैंने गौतम बुद्ध का जीवन चरित्र पढ़ा था और फिर लिखा था। तब मैं १९-२० वर्ष का था। उसके विभिन्न अंगों का अध्ययन करता रहा। हठयोग की कुछ क्रियाओं का अभ्यास भी किया – पुष्ट शरीर और सहन शक्ति मुझे उसी से मिली। एकाग्र-चित्तता भी उसी की देन है। राजयोग का भी कुछ अभ्यास करता रहा हूं, किन्तु यह सब छिछला ही है। बिना गुरु के मार्गदर्शन और दया के, योग की जानकारी और साधना मेरी समझ में असंभव है। दतिया के स्वामी जी अथाह और अद्भुत विद्वान हैं। बहुत कम लोग जानते हैं कि वे महान योगी भी हैं। उन्हीं की दया से "मार्ग" पर रेंगने में अपने को समर्थ पाता हूँ।

पुण्य चरणों में हम लोगों ने प्रणाम किया। रूस की चर्चा हुई। अविस्मरणीय और अद्वितीय हंसी के साथ बोले 'मैंने आपकी रूस से प्रसारित वार्तायें सुनी थीं। आपने अपनी भाषा में निर्भीकता से अपनी बात कही। बहुत अच्छा लगा।' घर लौट आया। अपने में बडा बल अनुभव किया, जैसे शक्ति सरोवर में स्नान कर लौटा हूँ।

बाबू ने रूस की उस अद्भुत घटना की चर्चा छेड़ना चाही थी कि अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी ने तुरन्त निषेध कर दिया बोले, 'परमात्मा सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान हैं। वह अपनों की रक्षा सभी जगह करते हैं। उसकी चर्चा ही नहीं करनी चाहिये।' कुछ ठहरकर बोले, 'आपने हिन्दी को बहुत दिया अब और अधिक देंगे।'

बाबू ने अत्यंत कोमलता के साथ नतमस्तक होकर कहा, 'श्री चरणों की कृपा है। आदेश का पालन करूंगा। और अधिक लिखने की चेष्टा करूंगा।'

आज्ञा लेकर हम लोग चले आये। काल आया और बाबू ने २३ फरवरी १९६९ को शरीर छोड़ा। अनन्त श्री पूज्य स्वामी जी की कृपा व असीम दया से बाबू को सद्‌गति मिली। इसको अनन्त श्री पूज्य स्वामीजी, मेरे बड़े भाई (दादा) श्री रामकृष्ण वर्मा और उन्हीं के द्वारा मैं भी जानता हूं।

***

–: वैदिक उपदेश :–

विद्या का ज्ञान इस संसार में सबसे अधिक पवित्र करनेवाला है। इसे श्रीमदभगवद्‌गीता में बताया गया है - **'नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'**। गंगा-यमुना, काशी-प्रयाग आदि तीर्थों से भी जो शुद्धि नहीं हो सकती वह ज्ञान से होती है। ज्ञानप्राप्ति से ही परम शान्ति मनुष्य को मिलती है। इस जीवन में जो ज्ञान से वंचित है वह पशु के ही तुल्य है - **''विद्या विहीनः पशुः''**

– ***श्रीस्वामीजी***

मेरे जीवन रक्षक पूज्यपाद श्री स्वामीजी

– गोपालदास मिश्र

सन् १८५७ के पूर्व में मेरे पूर्वजों को शस्त्र और शास्त्र के प्रभाव से राजा द्वारा पाँच ग्राम जागीर में मिले थे। उरई जिले में ये गाँव १८५७ तक आधिपत्य में रहे। ऐसे परिवार में जन्मित बालक को शक्ति और भक्ति दोनों ही पैतृक सम्पत्ति के साथ मिली। सन् १९३६ में उरई के प्रसिद्ध नागरिक पाठक जी के बाग में सन्त आगमन सुनकर छात्रावास से सन्ध्या समय मैं भी दर्शन लाभ के लिये गया। वहाँ पूज्यपाद ने पूछा – 'तुम कौन हो'? मैंने उत्तर दिया – 'छात्राध्यापक'। पूज्यपाद ने फिर कहा – 'क्या यही मेरे प्रश्न का उत्तर है?' मैंने विनीत होकर कहा – 'महाराज मैं ब्राह्मण हूँ।' पूज्यपाद ने कहा – 'ठीक है, क्यों आये'? मैंने कहा – दर्शन लाभ के लिये। पूज्यपाद ने पूछा – 'जानते हो दर्शन कैसे होते हैं?' मैंने उत्तर दिया – यही सीखने आया हूँ। फिर पूज्यपाद ने प्रश्न किया – 'अब तक क्या करते हो?' मैंने कहा – पाठ-पूजा। फिर प्रश्न हुआ – 'क्या पाठ करते हो?' मैंने उत्तर दिया सप्तशती का पाठ करता हूँ। अगला प्रश्न हुआ ' और पूजा?' मैंने उत्तर दिया, 'परिवार में तलवार का पूजन पर्वों पर होता आया है, उसी को बड़ों ने सिखाया है'। फिर मैंने कहा – 'महाराज पथ-प्रदर्शक गुरु कभी मिलेगा?' उन्होंने उत्तर दिया 'गुरु शिष्य को स्वयं खोजता है'। इसके बाद पूज्यपाद ने श्री पीताम्बरापीठ-वनखण्डेश्वर दतिया आने हेतु आज्ञा दी।

शरद ऋतु का प्रारम्भ था, पूज्यपाद की प्रेरणा से श्रीपीताम्बरा पीठ दतिया के लिये घर से चल दिया, परन्तु गन्तव्य स्थान के विषय में कोई जानकारी नहीं थी। एक स्नेही एवं धार्मिक सहयात्री के सहयोग से सायं श्री पीताम्बरापीठ दतिया में पहुँचा।

तालाब जल से भरा था, तीसरा प्रहर था, तालाब में जल की ऊर्मियाँ अस्ताचलगामी सूर्य के साथ हवा के सुमधुर तीव्र प्रवाह में ऊपर नीचे उठ-बैठकर भगवान सूर्य को अर्घ्य सा देती हुई प्रणाम कर रही थीं।

पूज्यपाद श्री स्वामी जी मन्दिर के प्रांगण में आसन पर बैठे हुए धार्मिक चर्चा कर रहे थे। श्रद्धा से उनके चरणों में प्रणाम कर तथा आज्ञा प्राप्त कर के पास ही बैठ गया। पूज्यपाद ने पूछा – 'आ गये?'

पूज्यपाद की कृपा एवं आशीर्वाद से अशान्त मन को परम शान्ति प्राप्त हुई। पुनः पुनः आकर दर्शन की उत्कट प्रेरणा लेकर कुछ दिन श्री चरणों के सान्निध्य

में रह कर घर चला गया।

श्री चरणों के दर्शन की उत्कट अभिलाषा के वशीभूत होकर पीठ पर आना-जाना प्रारम्भ हो गया। गुरु कृपा हुई – मंत्र भी मिला, पूजन उपचार तथा श्री यंत्र में भी दीक्षित हो गया।

लगभग १९४२ व १९४३ की बात है दीपावली का दिन था। पूज्य गुरु जी सेवकों के साथ धार्मिक चर्चा कर रहे थे, तभी कलकत्ता से आये हुए हस्तरेखा विशेषज्ञ एक सेवक ने श्री स्वामी जी महाराज की हस्तरेखाओं को देखकर कहा – आप किसी विशेष कार्य के सम्पादन हेतु पृथ्वी पर भेजे गये हैं। मैं झूठा प्रशंसक नहीं हूँ। स्पष्ट तथा कटु सत्य कहता हूँ। यदि आप सन्त न होकर गृहस्थ जीवन में होते तो लक्ष्मी और वैभव दोनों ही चरण धोते।' पूज्यपाद ने उसकी बातों पर ध्यान न देकर अनसुनी कर दी।

मेरे मन में भी कुलबुलाहट हुई, आज्ञा प्राप्त कर अपना हाथ दिखाने हेतु उसके सामने फैलाया, हस्तरेखाओं के पारखी ने देखते ही स्पष्ट एवं कटु सत्य कहा – 'यह लड़का दो माह ही जीवित रहेगा, क्योंकि इसके बाद आगे रेखा समाप्त है।'

ज्योतिषी जी के वचन सुनकर मैं भयभीत हो गया, चेहरा क्लान्त हो गया, गुरुजी ने यह देखकर आश्वस्त करते हुए बोले, 'मंत्र में मृत्यु को वापिस करने की शक्ति है, कल प्रातः मंत्र दूंगा।' निश्चित समय पर मंत्र प्राप्त हुआ और निर्धारित संख्या तक जप करने हेतु आदेश प्राप्त हुआ, इसके साथ ही अपने विलक्षण, तेजस्वी एवं प्रबल नेत्रों से एक प्रखर प्रकाश पुंज मेरे मलिन नेत्रों में उड़ेल दिया। मेरा साहस बढ़ा तथा निर्धारित जप संख्या की पूर्ति में दृढ़ता से तत्पर हो गया।

एट के पास कुरुकुरू ग्राम में एक प्राथमिक पाठशाला में मैं प्रधानाध्यापक था। उसका आडिट होना था, उसी की तैय्यारी में मैं सहायक शिक्षकों के साथ रिकार्ड तैय्यार कर रहा था, कि अचानक ही अर्ध रात्रि पर मेरे शिर में असह्य पीड़ा प्रारम्भ हो गई, असह्य पीड़ा ने मुझे विवश कर खाट पर डाल दिया। वह निद्रा थी या बेहोशी, मैं नहीं कह सकता, परन्तु उसी स्थिति में मैंने देखा कि एक भयानक कृष्णकाय क्रूर पुरुष एक हाथ में दण्ड और दूसरे में पाश लिये मेरे तरफ बढ़ता आ रहा है और उसी के साथ भयानक तपन बढ़ती जा रही है। उस स्थिति में मुझे आभास हुआ कि मैं मंत्र का जप कर रहा हूँ, और जप करते हुए ही मैंने दण्ड पाश धारी उस कृष्णकाय भयंकर पुरुष की कनपटी पर एक जोरदार तमाचा मारा, तमाचे की ध्वनि के साथ-साथ मैंने सुना, 'मार डाला पण्डित जी!' यह आवाज सहायक शिक्षक की थी। मैं जग सा गया और ऐसा लगा कि शिर की वह घनीभूत पीड़ा जिसने मुझे अशक्त कर दिया था उसी तमाचे के साथ विलीन हो गई। मैं उठ बैठा – सहायक

शिक्षक ने कहा, पंडित जी! आप स्वप्न देख रहे थे।' मैं चुप रहा, उत्तर भी क्या देता? क्योंकि पूज्य गुरुचरणों की कृपा से एवं मंत्र शक्ति से भगवान मृत्युञ्जय ने मृत्यु को पराजित किया था। इसके बाद सन् १९४२ से १९८२ तक और इससे भी आगे के लिये जीवन रेखा बढ़ सी गई है। यह पुनर्जीवन गुरु कृपा से मिला अतः जप, तप, संध्या-पूजन में निष्ठा होना और उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। साथ ही जिन श्री गुरुचरणों की कृपा से पुनः यह जीवन प्राप्त हुआ उन चरणों में प्रगाढ़ श्रद्धा और विश्वास में उत्तरोत्तर बुद्धि होना भी स्वाभाविक है।

राष्ट्र भक्ति

सन् १९६२ में 'हिन्दी चीनी भाई भाई' का नारा लगाने वाले चीन देश ने विश्वासघात करके हमारे विशाल भारत देश पर अचानक आक्रमण कर दिया। भारत के वीर सैनिकों के पास बन्दुकें तो थीं, मगर पर्याप्त कारतूसों का अभाव था। चीनी सैन्य-सागर उफनता हुआ सा भारत की भूमि में प्रवेश कर हिमालय पार करके आसाम की पहाड़ियों तक गरजने लगा। उपयुक्त अस्त्र-शस्त्र रहित भारत के उत्साही वीर सैनिक बिना कारतूसों के टिड्डी दल के समान उस उमड़ते हुए सैन्य सागर को कब तक हिमालय के पीछे पराजित कर ढकेलते!

राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत पूज्य गुरुचरण, राष्ट्र में व्याप्त इस आकस्मिक कष्ट से उद्वेलित हो गये, और उसके निवारण हेतु उपाय विचारने लगे। एक दिन प्रातः विचारमग्न पूज्यपाद भगवान परशुराम जी के मन्दिर के सामने टहल रहे थे, तभी सेवक रामदास को सम्बोधित कर कहने लगे, "रामदास, चीनी क्रूर, निर्दयी और हत्यारे होते हैं, भारत में उनके आ जाने पर न तो राम ही रह पायेंगे और न उनके दास! उनके द्वारा मन्दिर नष्ट करके, भारतीय संस्कृति का समूल विनाश नष्ट कर दिया जायेगा। सरस्वती मन्दिर में रखे हुए वेदशास्त्र, पुराण, तंत्र और भी नष्ट होने से बच सकेंगे"। शान्त एवं गम्भीर मुद्रा में भगवान कालभैरव को प्रणाम कर पुनः कहने लगे, "मुझे यदि १०० ब्राह्मण मिल जायें तो चीन की बात ही क्या, समस्त विश्व को पलटने की शक्ति हमारे तंत्र-मंत्र और देवमूर्तियों में निहित है"। दीर्घ निश्वास लेकर पुनः कहा, 'परन्तु अब ब्राह्मण कहाँ हैं? जो थोड़े से तैय्यार किये हैं, और हैं, उन्ही का सहयोग लेकर अपनी आहुति देनी होगी, क्योंकि इस मातृभूमि का अन्न जल इस शरीर में हैं।'

काशी के पं. केदार नाथ तथा पटना, नागपुर, मथुरा, जयपुर आदि के विद्वान ब्राह्मण और दतिया के हम आश्रमवासियों को लेकर पूज्य गुरु जी ने यज्ञ के लिये संकल्प बनाया। पं. काशीनाथजी ने संकल्प में चीन के प्रधान मंत्री चाऊएन लाई का नाम बढ़ाने की इच्छा प्रगट की, जिसे पूज्यपाद ने स्वीकृत कर लिया।

राष्ट्ररक्षा हेतु अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ। जिसमें ८५ ब्राह्मण दिन में सप्तशती का सम्पुट सहित पाठ करते थे तथा ग्यारह ब्राह्मण रात्रि में ९ बजे से ४ बजे तक श्री धूमावती माई का जप करते थे।

इसी क्रम में पूज्यपाद ने मुझे आदेश दिया कि दीपक के सामने स्थित भगवती धूमावती के चित्र से जो अनुभव अथवा मूक भाषण सुनाई दे, वह तुरन्त ही मुझे आकर बताना। आश्रम में बाहर के लोगों का आना तथा भीतर के लोगों का बाहर जाना बन्द था। अनुष्ठान के पहले १० दिन तक पाठ तथा जप निर्विघ्नपूर्वक चलता रहा।

अनुष्ठान के ११ वें दिवस अर्धरात्रि में पीताम्बरापीठ में निर्मित अखाड़े के पास एक भयानक पशुध्वनि हुई, जिसे सुनकर हम सभी भयाकुल हो गये। कुछ साहस कर मैंने पूज्यपाद के चरणों में उपस्थित होकर ध्वनि विवरण निवेदन किया। पूज्यपाद ने भी उस ध्वनि को सुन लिया था – प्रसन्न मुद्रा में कहा, "आरम्भ शुभ है, जाओ! अपना काम करो"।

सम्भवत: १५वाँ दिवस था। दीपक के सम्मुख स्थित भगवती धूमावती मात्र के चित्र से आदेश मिला, 'मैं भूखी हूं' जिस का निवेदन तत्काल ही स्वामीजी से कह दिया, पूर्ण विवरण सुनकर पूज्यपाद ने कहा – 'वह तो भूखी ही रहती हैं, उनको बलि देना अत्यन्त कठिन है, फिर भी चावल, विना दले उर्द, शुद्ध घी, गुड़ और दही का संमिश्रण कर भोजन कराओ।'' दूसरे दिन यही विधान किया गया, तालाब के मैदान में आकर उस तांत्रिक पशु ने बलि पिण्ड को खाया, इसके दूसरे दिन पुन: दीपक के समीप स्थित चित्र से संकेत प्राप्त हुआ, "भोजन पर्याप्त नहीं है, मैं भूखी रहती हूँ। 'उसी अर्ध रात्रि श्री स्वामी से निवेदन किया, पूज्यपाद की आज्ञानुसार घी चुपड़ी चार मोटी रोटियाँ और बढ़ा दी।

दूसरी रात्रि में हम लोग यही सामग्री लेकर तालाब के मैदान में गये। तांत्रिक पशु आया और उस बलि पिण्ड को खाकर चला गया। अगली अर्ध-रात्रि को पुन: उस चित्र से संकेत प्राप्त हुआ 'कि अभी जप कम हो रहा है, पाँच माला और बढ़ाओ'। मैंने तत्काल ही पूज्यपाद से निवेदन किया। पूज्यपाद ने जपकर्ताओं को पाँच माला जप बढ़ाने का आदेश दिया।

अनुष्ठान का २१वाँ दिन था, मैं जप करते करते अर्धनिद्रित सा हो गया था, तभी भगवती जगदम्बा ने मेरा हाथ पकड़कर कहा, 'मेरे साथ मोटर में बैठ कर चीन चलो।' मैंने निवेदन किया, "मैं अनुष्ठान कर रहा हूं, अनुष्ठान छोड़कर आपके साथ कैसे चलूं? कृपा करके आप अकेली ही चली जायें।' जगदम्बा कार में बैठीं, जैसे मोटर प्रारम्भ होने की भर्राहट हुई, और वैसे ही जगज्जननी जगदम्बा अदृश्य हो गईं। मैंने यह सभी चर्चा पूज्यपाद से निवेदित की। श्री स्वामीजी ने कहा – तुमने गल्ती

की, तुम्हें माँ के साथ जाना था। खैर! अब हमको जाना पडेगा।' पूज्यपाद स्वामीजी ने तथा जपकर्ताओं ने जप करते समय अर्ध निमीलित नेत्रों से देखा कि जगज्जननी जगदम्बा कार की बोनट पर खड़ी होकर, हाथ में लिये लम्बे हन्टर से चीनी सेना पर प्रहार कर रही हैं। परिणामत: कुछ सैनिक यमपुरवासी हो रहे हैं, और कुछ प्राण रक्षा हेतु भाग रहे हैं, चीनी सेना में भगदड़ सी मच रही है। दूसरे दिन समाचार पत्र में यह समाचार स्थूलाक्षरों में प्रकाशित हुआ कि चीनी सेना पलायन कर रही है – और कर भी गई।

जीवन-रक्षक

घटना २१ अगस्त १९६७ की है। रात्रि के ७-८ बजे का समय था। हमारे ही ग्राम के ठाकुर महाराज सिंह ने जानमाल की हानि का उद्देश्य लेकर कुछ गुण्डों के साथ हमारा मकान घेर लिया। वर्षाऋतु थी, मैं जप कर रहा था, जप करने के बाद बाह्य परिस्थिति समझने के लिये हाथ में बन्दूक लेकर बाहर दरवाजे पर आया। मुझे देखते ही ठाकुर साहब ने चुनौती दी कि "असल के हो तो मारो"। बन्दूक हाथ में थी। असल का तो था ही। पहला बार ठाकुर साहब ने मुझ पर गोली चला कर किया, उसकी बन्दूक चली ही नहीं, चिट् की आवाज करके ही रह गई। असल को भीतर से आदेश हुआ कि "मारो" किस क्षण और कब बन्दूक तनी, घोड़ा दबा, धमाका हुआ और ठाकुर महाराज सिंह धराशायी हुए, मुझे कुछ पता ही नहीं लगा।

अब क्या हो? इस प्रश्न पर मुझे अपनी भतीजे बाबूराम जो उस समय अपने मामा के घर सैदनगर थे, उनका ध्यान आया और मैं उन्हीं के पास चल दिया। घनघोर अंधेरा था, मार्ग जल से भरा था, उसको पार करता हुआ मार्ग में बढ़े हुए नाले में साँप का पैर से लिपटना-फटकार झटकार कर बाबूराम के पास पहुंचा। उनको साथ लेकर श्री माणिकचन्द शर्मा के पास उरई गया, उरई से उनकी कार द्वारा श्री पीताम्बरापीठ दतिया आया, पूज्यपाद गुरु चरणों में प्रणाम कर घटित समस्त वृतान्त निवेदित किया। श्री स्वामीजी ने बैठकर जप करने का आदेश दिया।

कतल का मुकद्दमा चला, फांसी की सजा हुई। हाईकोर्ट से भी फांसी की सजा कायम रही। परिवार वालों ने श्री स्वामीजी के पास इस घटना की सूचना तार द्वारा भेजी, श्री कृष्णानन्द बुधोलिया ने वह तार पढ़कर श्री स्वामीजी को सुनाया-सुनकर पूज्यपाद ने शिर ऊपर उठाकर कहा, 'फांसी'? 'फांसी' नहीं, फांसी नहीं होगी। जेल की लाल कोठरी में, जहाँ फांसी के कैदी बन्द रहते हैं, रात्रि में मैं जप कर रहा था, पूज्यपाद स्वामी जी ने दर्शन दिये – वरद हस्त सा दिखाई दिया और वह प्रकाशित वरद हस्त फिर अन्धकार में विलीन हो गया। दस माह तक फांसी की प्रतीक्षा करता रहा। और कभी-कभी गाया करता था।

"सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहाँ होगा।
उरूजे कामयाबी पर कभी ये दास्ताँ होगा।"

और कभी याद आता था पूज्यपाद द्वारा कहा गया यह शेर –

"जिन्हें है इश्क ऐ शादिक वो कब फर्याद करते हैं।
लवों पर मुहरे खामोशी, दिलों में याद करते हैं।।"

सन् १९६९ में विश्व में महात्मा गांधी शताब्दी मनाई गई। भारतीय शासन ने उस शताब्दी के उपलक्ष्य में फांसी के सभी कैदियों को सजा से मुक्त कर दिया।

सजा से मुक्त होकर तथा पुनः जीवन प्राप्त करके पूज्यपाद श्री स्वामी जी के चरणों में प्रणाम करने गया, उमड़ाई आँखों ने जल से चरण धोना चाहे, बलपूर्वक उन अश्रुबिन्दुओं को रोका, फिर भी श्री स्वामी जी की तेज आँखों के लिये यह सब छिप न सका। पूज्यपाद ने कहा, 'हम सन्यासियों को व्यक्ति विशेष के कुछ करना मना है। हम लोग तो बहुजन हिताय एवं बहुजन सुखाय कार्य करते हैं। मैं स्तब्ध सा रह गया और मन में विचार करने लगा कि मुझ अकिंचन के कारण इस विभूति को क्या क्या न करना पड़ा होगा। सन् १९४२-१९४३ में मंत्र की आड़ लेकर मृत्यु को भगाया, द्वितीय बार ठाकुर महाराज सिंह की बन्दूक की गोली से कारतूस निष्फल कर प्राण रक्षा की तथा इस बार फांसी के फन्दे से बचाकर जीवन रक्षा की।

उस दिव्य महापुरुष का पार्थिव शरीर इन भौतिक नेत्रों से ओझल भले ही हो गया, परन्तु सभी श्रद्धालु साधकों को वे आज भी स्वप्न में दर्शन देते हैं, साधना में मार्गदर्शन कर रहे हैं, और आश्रम उनकी उपस्थिति का अनुभव करके मंत्रमय वातावरण से अनुप्राणित हो रहा है।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सद्‌गुरु से यथार्थ उपदेश जब मनुष्य को प्राप्त होता है तब अविद्या रूपी माया हट जाती है और वह परमपद को प्राप्त कर लेता है। परमपद अमर महाशक्ति है, वह कभी भी मृत्यु को नहीं प्राप्त होती है इसीलिए उसे अमृता कहा है। मनुष्य भी वास्तव में मर्त्य नहीं है तथापि मृत्युग्रस्त पदार्थों से निर्मित होने से मर्त्य कहा गया है। जैसे अग्नि से बहुत सी चिनगारियां प्रकट होकर पृथक् पृथक् दिखती हैं इसी प्रकार आनन्दस्वरूप पराशक्ति एवं परब्रह्म से महायोग प्राप्त कर बिन्दुरूप से जीव प्रकट हुआ है।

– श्रीस्वामीजी

पूज्य स्वामिसंस्मरण

— बाबूराम मिश्र
जालौन

जय मां

आनन्दमानन्दकरप्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्।
योगीन्द्रमींड्य भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि।।
निग्रहानुग्रहेशक्तम्, भक्तकल्पद्रुमम् गुरुम्।
पीताम्बरा पीठमासीनं स्वामिनं प्रणतोऽस्म्यहम्।।

राष्ट्र गुरु परम पूज्य दतिया श्री पीताम्बरा पीठस्थ श्री स्वामीजी महाराज के संस्मरणों के सम्बन्ध में वहां की प्रकाशन समिति के द्वारा कुछ सामग्री मांगी गयी है।

यह सोचते ही हृदय में अनिर्वचनीय दुख का उभार हो आता हैं। कण्ठावरोध होने लगता है।

एक समय वह था कि हम लोग श्री महाराज जी के चरणों के सान्निध्य में बैठकर उनके उपदेशों से लाभान्वित होते थे तथा उनकी उच्चतम साधना और अगाध प्रबोध के प्रकाश से हम लोग चमत्कृत होते थे।

दुर्भाग्य का विषय है कि हम आज उसी महाविभूति के संस्मरणों को उद्घाटित करने के लिए प्रेरित हो रहे हैं।

संस्मरणों का प्रकाशन भी एक उपयोगी कार्य है। इन संस्मरणों में कुछ ऐसी बातें छिपी हैं जिनका प्रकाश में आना ही हम भक्तों के लिये श्रेयस्कर है। सर्वप्रथम – मेरे काका पंडित गोपालदास जी स्वामी जी के अन्तरङ्ग शिष्यों में हो गये थे उन्होंने मुझे इस ओर बढ़ने का संकेत किया। बहुत दिनों तक हूँ-हां करते रहने के बाद सन् १९४९ में मैं स्वामी जी के कृपा पात्रों में से एक हुआ तब से इस समय तक मुझे श्री स्वामी जी के सान्निध्य में रहने का प्राय: सौभाग्य प्राप्त होता रहा। महाराज जी के समीप जब कभी एकान्त में बैठने का अवसर प्राप्त होता था उन क्षणों में वे कभी-कभी अपने पूर्व जीवन के सम्बन्ध में संकेत दिया करते थे, वे ज्यों के त्यों मेरे हृदय पटल पर अद्यावधि अंकित हैं उन्हें प्रकाशित करना मेरा कर्तव्य है।

श्री स्वामी जी के जन्मस्थान का तो मुझे स्पष्ट रूप से ज्ञान नहीं हैं किन्तु यह निश्चय है कि वाराणसी के समीपवर्ती किसी जिले में उनकी जन्मभूमि रही।

वे सरयूपारी ब्राह्मण थे तथा पयासी के मिश्र वत्सगोत्रीय थे। पन्द्रह वर्ष की अवस्था में विद्याध्ययन के लिये काशी के किसी संस्कृत विद्यापीठ में स्नातक बने। प्राचीन पद्धति के अनुसार स्वामी जी ने गुरुमुख होकर संस्कृत व्याकरण के पातञ्जल महाभाष्य का अध्ययन किया।

इसके साथ ही तत्कालीन महात्माओं और संस्कृत विद्वानों के सान्निध्य में वेद-वेदान्त, न्याय, सांख्ययोग, वैशेषिक, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि विषयों का गम्भीर अध्ययन किया, इसी अध्ययन में करीब १४ वर्ष महाराज जी के व्यतीत हुये।

इसी समय स्वामी जी को एक महात्मा का सत्संग लाभ हुआ और उन्हीं से ही सम्भवतः स्वामी जी ने संन्यास आश्रम की दीक्षा ग्रहण की। उन्होंने स्वामी जी को सिद्ध सरस्वती स्तोत्र का नियमानुसार पाठ करने का आदेश दिया तथा सिद्ध सरस्वती मंत्र भी उन्हीं से प्राप्त हुआ।

इस उपासना और आराधना से स्वामी जी ऐसी स्थिति में पहुँच गये थे कि किसी भी ग्रन्थ को आदि, मध्य व अवसान में देख लेने पर ही उन्हें पूरे ग्रन्थ का ज्ञान हो जाया करता था। स्वामी जी के कथनानुसार उसी मंत्र के प्रभाव से वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय के पूर्ण मर्मज्ञ हुये थे तथा गद्यपद्यमयी धारावाहिक संस्कृत रचना की उनमें अनोखी प्रतिभा थी।

स्वामी जी काशी के गुरुकुल से अध्ययन समाप्त करके देशाटन के लिये भारतवर्ष के तमाम भूभागों में विचरण करते रहे।

प्रथम बनारस से आप प्रयाग आये और प्रयाग से समय का तो ठीक पता नहीं लेकिन कुछ वर्षों के बाद पंजाब पहुँचे। पंजाब में किसी स्थान पर तत्कालीन सिद्ध महात्मा श्री तारानंद स्वामी का सान्निध्य इन्हें प्राप्त हुआ।

श्री तारानंद महाराज मां भगवती पीताम्बरा के अनन्य उपासक होने के साथ तंत्रादि विभिन्न विषयों के विशिष्ट मर्मज्ञ थे।

इनका नाम स्वामीजी के कथनानुसार श्री स्वामी तारानंद ही था वे भी संन्यासी ही थे।

स्वामी तारानंद जी के समीप पहुँच कर हमारे स्वामी जी को योगाभ्यास तथा शाक्त उपासना की इच्छा हुई तथा तांत्रिक विषय की ओर अभिरुचि बढ़ी। परिणाम स्वरूप श्री स्वामी जी ने श्री तारानंद जी महाराज से विधिवत् शाक्त दीक्षा ली। इन्हें भगवती महामाया आद्या शक्ति पीताम्बरा का मंत्र तथा कवच दिया गया। यहीं से स्वामी जी ने शाक्त मार्ग पर उत्तरोत्तर अग्रसर होना आरम्भ किया।

श्री गुरुदेव के आदेशानुसार मंत्र और कवच की शक्ति जागृत करने के लिये साधनों के निमित्त दक्षिण में नर्मदा जी के किनारे होशंगाबाद के समीप, नेमावर में कुछ काल तक साधना करते रहे। वहां से उठकर आप राजस्थान के धौलपुर स्टेट में पधारे और धौलपुर रियासत के जेल अधीक्षक श्री नारायण सिंहजी का आतिथ्य स्वीकार किया। श्री नारायण सिंह साधु-भक्त तथा जिज्ञासु पुरुष थे। इनकी सेवा से सन्तुष्ट होकर महाराज जी ने कुछ समय तक वहीं निवास किया। धौलपुर में इनके आने के थोडे ही समय में इनकी ख्याति हो गयी। तमाम लोग सत्संग के लिये आने लगे। वहां के संस्कृत विद्या के प्रचारार्थ 'वाडी' नामक स्थान में संस्कृत विद्यालय की स्थापना उन्होंने की जो अब भी चल रहा है।

जिस समय नर्मदातट पर साधनालीन थे उस समय उन्हें भगवती की ही कृपा के आदेश हुये थे कि कालपी या बिजनौर में जाकर साधना करो, किन्तु इन दोनों स्थानों में वे न जा सके। धौलपुर से चलकर भ्रमण करते हुये २७ जुलाई सन् १९२९ को दतिया पहुंचकर श्री वनखण्डेश्वर महादेवजी के स्थान पर आकर ठहरे। स्थान की प्राचीनता तथा सिद्धपीठ होने का स्वामीजी को आभास हुआ और इसी समय से ही वनखण्डेश्वर पर ही स्थाई निवास का निश्चय किया।

यहां पर यह लिखना प्रासंगिक होगा कि भारत वर्ष के अनेकदेशीय राज्यों की राजधानियां ऐसी थीं जहां पर सिद्धपीठ थे और अब भी हैं तथा संस्कृत वाङ्मय के बड़े-बड़े प्रतिष्ठान थे, जिनमें दुष्प्राप्य संस्कृत ग्रन्थ उपलब्ध होते थे। अत: दतिया में भी महाराज गोविंदसिंह जी के निजी पुस्तकालय से बहुतसी हस्तलिखित ग्रन्थ-प्रतियों को प्राप्त किया जो प्राचीन थे। दतिया के उदारचेता बहुत से पंडितों ने भी महाराजजी को कुछ ग्रन्थ समर्पित किये।

स्वामीजी में यह प्रवृत्ति थी कि जो लोग उनके यहाँ पहुंचते थे उनसे वह प्राचीन पुस्तकें ले लिया करते थे। मैं जब कुछ दिन स्वामी जी की सेवा में रहा तो मेरे पास जो **पक्षिराज पद्धति** पुस्तक की पुरानी हस्तलिखित प्रति थी, उसे मैंने महाराजजी की सेवा में समर्पित की थी।

दतिया के निवासकाल में ही स्वामीजी ने सन् १९३६ में कामाख्यापीठ, उसके बाद हरिद्वार, उत्तर काशी, कनखल एवं माउन्ट आबू आदि स्थानों की यात्रायें की। सन् १९३५ ई. में स्वामीजी ने भगवती श्री पीताम्बरा की स्थापना की एवं भगवान परशुराम को भी स्थापित किया, उस प्रतिष्ठा में भारत के अनेक प्रसिद्ध कर्मकाण्डी विद्वान एकत्र हुए थे।

स्वामीजी यद्यपि आध्यात्मिक मार्ग में थे फिर भी देश के संकटकाल में लोककल्याण के लिये सन् १९३६ में अखंड हरिकीर्तन तथा सन् १८४६ में दीवान

अपनुद्दीन के अपसारण के रूप में भारतीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिये बृहत् अनुष्ठान किया। सन् १९६२ में चीन के भारत पर आक्रमण के समय भारत रक्षा अनुष्ठान करवाया गया। सन् १९७४ में देश में शांति और समृद्धि के लिये ३६ दिन निरंतर वैदिक-यज्ञ का अनुष्ठान किया गया। जिसमें पं. श्री रामनाथ जी मिश्र वैदिक सम्राट ने आचार्य पद ग्रहण किया।

मैं अपने उरई नगर को तथा स्वयं को इस विषय में भाग्यशाली मानता हूँ कि स्वामीजी सन् १९४५ से १९४९ तक प्रतिवर्ष चैत्र नवरात्रि में स्व. श्री रामाधार मिश्र की पुण्य स्मृति में पधारते थे। इस अवसर पर स्वामी जी, ईश, केन, कठ, मुण्डक और माण्डूक्य उपनिषदों पर प्रवचन करते थे। इस प्रसंग में सन् १९४५ में स्वामी जी वहां पधारे तब यहाँ बहुश्रुत पंडित बैजनाथ त्रिपाठी के यहां हस्तलिखित बंगला नित्यार्चन पद्धति तथा तान्त्रिक पञ्चांग को मैंने तथा मेरे काका गोपालदास ने अवतरित करके स्वामी जी को समर्पित किया था।

इस प्रकार सन् १९२९ से जुलाई १९७९ तक ५० वर्ष की अवधि के अन्तर्गत पूज्यपाद श्री स्वामी जी ने बहुसंख्यक भक्तों को अनुग्रहित किया है। इसलिये स्वामीजी के जितने अनुग्रह भाजन भक्त है और उनके जितनी बार महाराज जी का प्रसाद प्राप्त हुआ है उतने ही स्वामी जी के संस्मरण है। सबका आकलन करना अनुमान के भी बाहर है। अंत में मेरी व मेरे परिवार की हार्दिक श्रद्धाञ्जलि श्री स्वामी जी के श्रीचरणों में समर्पित है।

***

वे देवता थे

– श्री जगन्नाथ प्रसाद भण्डारी
दतिया, (म.प्र.)

आज से लगभग १३ वर्ष पूर्व सन् १९६८ में मैं हरपालपुर से दतिया, हिन्दुस्तान कमर्शियल बैंक शाखा में हेड कैशियर पद पर स्थानान्तरित होकर आया। प्रथम दिन ही अपने बैंक के ब्रान्च एजेण्ट श्री महेशनाथ जी सेठ के साथ स्वामी जी महाराज का सान्निध्य प्राप्त किया। पूज्य स्वामी जी महाराज का प्रथम प्रश्न ही पूरी तरह से झकझोर देनेवाला था। 'तुम कौन हो?' जैसे ही चरणों में नमन किया, प्रश्न कानों में गूंज उठा। मैंने स्तब्ध होकर गुरुदेव की मुख-मुद्रा देखी, हँसता हुआ खिले कमल-सा चेहरा देखकर जिज्ञासुओं की भांति मैंने कहा – यही नहीं ज्ञात है कि मैं कौन हूं? यही ज्ञात हो जाय तो स्वामी जी महाराज, फिर क्या बात है? मैं तो एक साधारण संसारी हूँ। हँसते हुये स्वामी जी ने कहा – 'क्या मेरे सीधे-सादे प्रश्न का यही उत्तर है?' तब मैंने अपना नाम आदि व्यक्त किया। इसके बाद स्वामी जी महाराज ने मुझको पीठ के मन्दिरों, पुस्तकालय एवं यज्ञ-शाला के दर्शनों की महत्ता का दिग्दर्शन अपने उपदेश द्वारा कराया।

तीन मास लगातार दर्शनों के बाद शिव-रात्रि से एक दिन पूर्व मुझको बुलाकर स्वामी जी ने कहा कि – कल तुझको मुसलमान बनाऊंगा। मैं अपनी अज्ञानता के कारण स्वामी जी महाराज का संकेत नहीं समझ सका और मुसलमान की परिभाषा कहता हुआ मैं कहने लगा कि – 'जिसका हो मुसल्लम ईमान, उसको कहते हैं मुसलमान।'

मेरी इस बात पर महाराज की मृदुल हास्य-मुद्रा देखते ही बनती थी। मैं सकपका-सा गया कि क्या कह गया। महाराज जी ने तुरन्त मेरी पीठ को थपथपा कर आदेश दिया कि – कल प्रातः महा-शिवरात्रि है, शुद्ध-पवित्र भावना से यहां आना। तुमको शाक्त-धर्म में दीक्षित करूँगा।

मैं नियत समय पर श्रीचरणों के संमुख पहुंचा। स्वामी जी महाराज ने मन्त्र मेरी डायरी में लिखकर, तीन बार मन्त्र का उच्चारण कर व तीन बार मन्त्र मुझसे बुलवाकर दीक्षित किया। मेरी माला को स्पर्श करके मन्दिर में बैठकर जप करने का आदेश किया। मैं अब नित्य जप करने लगा।

कुछ समय बाद स्वप्न में माँ पीताम्बरा के दर्शन प्राप्त हुये। स्वप्न का विवरण श्रीचरणों में निवेदित किया। सब कुछ सुनकर स्वामी जी महाराज ने कहा कि – माँ की कृपा तुमको प्राप्त हो गई है। बहुत कम भाग्यशाली पुरुष होते हैं, जिनको माँ की कृपा प्राप्त होती है। निरन्तर ध्यान, जप करते रहो। माँ हमेशा सबका कल्याण करती हैं। सब कुछ माँ को निवेदित कर दो।

स्वामी जी महाराज का आदेश मन में ज्यों-का-त्यों आज भी शान्ति प्रदान कर रहा है।

पूज्य स्वामी जी महाराज राष्ट्र-गुरुदेव के रूप में, ज्ञानाकाश में एक अद्भुत प्रकाश की भांति – श्री पीताम्बरा पीठ में अवतरित हुये। जो भी उनके सान्निध्य में आया, उसके जीवन में आलोक छा गया। उस प्रकाश-स्तम्भ से वेद, उपनिषद्, शाक्तधर्म आदि सम्बन्धी ग्रन्थों के भाष्य, सम्पादन और अनुवाद की अनेक किरणें विकीर्ण हुईं, जिनसे अनेक जिज्ञासुओं को नयी दिशा मिली व मिलेगी।

सचमुच स्वामी जी महाराज महान् थे। उनके समान देव-स्वभाव का दयावान और महान सन्त मैंने आज तक नहीं देखा। वे सचमुच देवता थे, देवता।

***

–: वैदिक उपदेश :–

जो लोग असहिष्णु हैं, हमेशा दूसरों की बुराइयां ही करते रहते हैं उन्हें विद्या देना मना है क्योंकि उनकी बुद्धि दूषित है। संसार में कोई भी वस्तु गुण एवं दोष से खाली नहीं है तथापि गुण को छोड़कर दोष में ही जो लोग लगे रहते हैं उनकी बुद्धि में गुण ग्रहण करने की शक्ति न होने से वे विद्या के अधिकारी नहीं हैं। ऐसे पुरुषों को विद्या मिल जाने पर भी निष्फल हो जाती है और अपना वास्तविक फल नहीं प्रकट करती है।

– *श्रीस्वामीजी*

ऐसे थे मेरे स्वामी जी महाराज

– ***गुलाब देवी जैन,*** **धौलपुर**

आज से कुछ साल पहले की बात है मुझे श्री स्वामी जी महाराज के दर्शन करने की इच्छा जागृत हुई। पहली बार बच्चों सहित मैं दतिया पैसेंजर ट्रेन द्वारा जो लेट पहुंची। श्री पीताम्बरा माई व श्री स्वामी जी के दर्शन किये, कुछ थक जाने के कारण हम रात को माई की आरती देखे बिना ही सो गये। रात को नींद भी कम ही आयी, क्या देखती हूँ कि गुरुदेव आकाश में से पालथी मारे उड़ते हुए आ रहे हैं, और चेतावनी दे रहे हैं कि तुमने आरती क्यों नहीं देखी। गुरुदेव अनेक विद्याओं के जानकार थे जिसमें आकाशगामिनी भी है। मेरे ऊपर गुरुदेव की असीम कृपा थी, जब मुझे गुरुदेव की याद आती है तो मन व्याकुल हो जाता है। जाना तो सबको हैं लेकिन यह विश्वास नहीं था कि इतनी जल्दी अपने भक्तों को छोड कर चले जायेंगे।

मेरे स्व. पतिदेव को भी महाराज जी पर अटूट श्रद्धा थी – महाराज के गुणों व अनेक चमत्कारों का वर्णन करने की शक्ति नहीं हैं। मेरा बड़ा लड़का प्रद्युम्न (कप्तान) श्री सुखाड़िया मिनिस्ट्री में डिप्टी मिनिस्टर था। महाराज की व पीताम्बरा माई की फोटू के दर्शन सदैव करता था। सुखाड़िया मिनिस्टरी टूटी। महाराज जी ने स्वप्न में कहा मैं तो यहीं रहूँगा, उनके आशीष से ही तब से विधायक रहा और अब माथुर मंत्रिमंडल में भी मंत्री हैं। हमेशा महाराज की ही कृपा मानती हूँ।

मैं एक बार जनता एक्सप्रेस द्वारा धौलपुर से दतिया जा रही थी। ट्रेन में भारी भीड़ थी आदमी लटक रहे थे मैंने मन में सोचा कि अगर लौट के घर जाना पड़ा तो बहुत ही खराब लगेगा। १५-२०, लड़के इधर से उधर भाग रहे थे। चढ़ने के लिये मन में महाराज जी का स्मरण किया। जिस डिब्बे के सामने हम लोग खड़े थे न मालूम कैसे आराम से चढ़ गये सब लोग देखते रह गये।

जब महाराज जी देहली इन्स्टीट्यूट में डायलोसिस पर रहे, मेरा भतीजा ३५ साल की उम्र में मेननजाइटिस यकायक होने से बहुत ज्यादा बीमार हो गया, बेहोशी की हालत में उसको भी वहां भर्ती कराया था। महाराज जी को देखने व दर्शन करने मैं भी गई थी भतीजे की भी चिन्ता थी महाराज ने एक लड्डू प्रसाद का दिया। कमरे में से लौट कर एक बूंदी उसके मुंह पर लगा दी उसी दिन से महाराज जी की कृपा से उसकी तबियत ठीक होने लगी। मेरी बहन का लड़का मेरे साथ था कहने लगा उस बूंदी का ही चमत्कार है। महाराज हमेशा जैन धर्म को बहुत महत्व देते थे।

उनकी समाधि के पश्चात भी वहां पर जो सुन्दर कार्यक्रम रहता है, वहाँ के कार्यकर्ता व मंत्री जी व मास्टर मोतीलाल जी बधाई के पात्र हैं।

***

गुरुस्मरण

— *मोहनलाल भट्ट*, झांसी

क्या पेश करूँ तुझको, ए जलवा-ए जानाना।
जान का नजराना या, ईमान का नजराना।।

मैं प्रत्येक रविवार को झाँसी से चलकर पीताम्बरापीठ दतिया में भगवान महाकाल भैरव के सामने संगीत द्वारा उनकी आराधना करता हूँ। भगवान महाकाल भैरव संगीत के देवता कहे जाते हैं, इसी कारण भैरवी नामक एक राग भी है, जो इनकी शक्ति कही जाती है। वहां संगीत साधना करने मैं किस प्रकार गया उसकी भी एक कहानी है।

बहुत समय व्यतीत हुआ। एक दिन अपने एक मित्र के साथ जो प्रायः पूज्यपाद के दर्शनों के लिए दतिया जाते रहते हैं; उनके साथ पूज्य स्वामीजी के दर्शनों के लिए पीताम्बरापीठ दतिया पहुँचा। रात्रि लगभग साढे सात का समय रहा होगा, स्थान के प्रांगण में हम दोनों दर्शन करने के लिए खड़े थे। आंगन के पत्थर जो जमीन पर लगे हैं उन्हीं में से एक पर मैं खड़ा था। जून का महिना होने से तथा दिनभर की कडी धूप के कारण बहुत गर्म था। नंगे पैर होने से वह पत्थर मुझे बहुत-गर्म लग रहा था, चूंकि मेरी आदत नंगे पैर रहने की कम ही है इसलिए मैं कभी एक पैर रखता कभी दूसरा पैर, मैं बेचैन हो गया लेकिन तभी एक आश्चर्यजनक घटना हुई। मैंने उसीसे लगे दूसरे पत्थर पर पाँव रक्खा तो वह बिल्कुल ठंडा था। मुझे एकदम आराम मिल गया, जब तक पूजा होती रही तब तक उसी पर खडा रहा। अनन्त करुणामय श्री स्वामीजी महाराज की दया का प्रसाद मुझे मिला इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि एक पत्थर अत्यंत गरम और दूसरा उसीसे लगा हुआ एकदम शीतल। महान् आश्चर्य! वापसी पर इस घटना की चर्चा जब मैंने अपने मित्र से की तो उनका कहना था कि आप पर श्री स्वामीजी महाराज की कृपा हुई है, अब भविष्य में आप यहाँ आते रहें। इस प्रकार मुझे श्री भगवान महाकाल भैरव को प्रति रविवार संगीत सुनाने की प्रेरणा हुई और मेरे भाग्योदय का प्रारंभ हुआ।

परमपूज्य अनंत श्री स्वामीजी महाराज की कृपा और दया का वर्णन मैं तो क्या इस पृथ्वीलोक में ऐसा कोई प्राणी नहीं जो थोड़ासा भी कर सके, क्योंकि जब तक स्वामीजी महाराज शरीर धारण किए रहे तब तक, एवम् अब जब वे ब्रह्मलीन हो गये तब भी सूक्ष्मरूप में अवस्थित होकर सब लोगों को सनाथ किए हुए हैं।

* * *

ऊपर लिखी बात के लिए प्रमाण स्वरूप एक घटना का वर्णन करता हूं। यह घटना कुछ समय पहले की है, मुझे महीना याद नहीं। मैं तीन चार दिन से जुकाम और बुखार से पीड़ित था। रविवार आया तो नियम के अनुसार स्थान पर जाने की इच्छा हुई, परन्तु चिन्ता बहुत थी कि इस हालत में बस द्वारा, जिसमें रविवार होने के कारण बड़ी भीड होगी, यहाँ तक की शायद खडे होने का भी स्थान नहीं मिलता है और एक डेढ़ घंटे की यात्रा होगी, कैसे श्री चरणों में पहुँच पाऊंगा? इस स्थिति में मैं पत्नी के मना करने पर भी मैं दतिया के लिए घर से निकल पड़ा। मेरे घर के पास एक मुख्य सडक है, जैसे ही मैं सडक पर आया, दतिया जानेवाली बस जो बसस्टॅण्ड से इलाइट सिनेमा की ओर जा रही थी, देखी, मैंने रुकने के लिये हाथ दिखाया तो बसस्टॉप न होते हुए भी ड्रायव्हर ने बस रोक दी। यह पहला आश्चर्य था, दूसरा आश्चर्य यह हुआ कि जब मैं बस के अन्दर गया तो सामनेवाली सीट पूरी खाली पड़ी थी, जैसे मेरे लिए सुरक्षित रखी गयी है। दतिया पहुँचते पहुँचते मैंने अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव किया, तथा लौटते समय भी ऐसा ही हुआ। उन्हीं की कृपा से यह सब हुआ अन्यथा मैं उस दिन खडे होने लायक भी नही था।

आगे की घटना स्वप्न की है, जो मैं कभी नहीं भूल पाऊँगा। रोज की तरह रात को सोया, और मुझे उस रात श्री स्वामीजी महाराज के दर्शन हुए। मैंने देखा कि मैं दतिया गया हूं और उनके पास बैठने के पश्चात जब मैं वापस आने के लिए खडा हुआ तो उन्होंने बडे स्नेह से कहा "देखो आया करो"। फिर मैं दो कदम पीछे आया तो फिर दुबारा उन्होंने कहा "देखो बराबर आया करो"। वह स्वप्न दृश्य मुझे अभी तक अच्छी तरह याद है और याद रहेगा। जब भी स्वप्न की याद आती है, श्री स्वामीजी की छाया, उनका चेहरा अथवा पूरा साक्षात् शरीर आँखों के सामने मालूम पडता है कि मैं महाराज जी को देख रहा हूं। जब भी मैंने गाने लगता हूं तो वही मूरत सामने बराबर बनी रहती है।

पहले मैं लोगों को सुनाने के लिए गाता था, परन्तु अब ऐसा लगता है कि मेरा गाना केवल मेरे स्वामीजी महाराज ही सुनते हैं और वे ही मुझे गाने के लिए कहते हैं और मेरी इच्छा भी केवल उन्हें ही सुनाने की होती है। मेरे पाँव रविवार को अपने आप दतिया स्थान जाने के लिए उठने लगते हैं।

कुछ नहीं सूझता जब, प्यास की सिद्दत से मुझे।
झलक उठता है मेरी रूह में मीना तेरा।।

***

पीताम्बरापीठ-एक दर्शन

– डॉ. शिवदत्त शर्मा चतुर्वेदी
वाराणसी

मैं उन अभागों में एक हूँ, जिनको प्रात:वन्दनीय राष्ट्रगुरु के श्रीचरणों का दर्शन होते होते रह गया और अब मैं आध्यात्मिक रूप से उनके प्रशिष्य होने का सौभाग्य प्राप्त कर अपने को गौरवान्वित अनुभव करता हुआ सर्व विध शान्ति और सन्तोष का लाभ प्राप्त कर रहा हूं। मेरे पिता विश्वविख्यात स्वर्गीय महामहोपाध्याय श्री पं. गिरिधर शर्मांजी चतुर्वेदी तथा बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के आद्य संस्थापक माननीय पूज्य श्रीमान् रामनारायण शर्मा वैद्यजी में परस्पर अपार स्नेह था। पूज्य वैद्यजी महाराज ने मेरे पिताजी जैसे महामनस्वी पुरुष को भी सब प्रकार से परितुष्ट किया। उन्होंने एक बार पूज्य पिताजी को दतिया, पीताम्बरा पीठ में बुलाया और पूज्य स्वामीजी का दर्शन कराया। पूज्य पिताजी का वहां व्याख्यान हुआ, बड़े स्नेह और आदर से पूज्य स्वामीजी महाराज ने उन्हें श्रवण किया, यह सब मैंने पिताजी से सुना था। पिताजी की वृद्धावस्था जन्य शारीरिक दुर्बलता के कारण यात्रा में मैं ही उनके साथ बराबर रहता था, परन्तु दतिया यात्रा के उस पवित्र सन्दर्भ में मेरी वाराणसीय संस्कृत विश्व विद्यालय की आचार्य परीक्षा तिथि पड़ जाने के कारण पूज्य पिताजी के साथ मेरे भागिनेय को जाना पड़ा। फलत: श्रीचरणों के दर्शनों के अहोभाग्य से मैं वंचित रह गया। कुछ वर्षों के उपरान्त झांसी से पूज्य वैद्यजी महाराज ने पूज्य स्वामि-चरणों की प्रेरणा से उपनिषदों के 'पञ्चोपनिषद् भाष्य' की पुस्तक पिताजी को अवलोकनार्थ भेजी। उन दिनों पिताजी आगम शास्त्र और प्रत्यभिज्ञा दर्शन के ग्रन्थों के मनन-चिन्तन-अवलोकन में ही लीन रहते थे। म.म.स्व. पंडित श्री गोपीनाथ कविराज से सप्ताह में दोन दिन मुझे साथ लेकर मिलने जाया करते थे और उक्त विषयों की जिज्ञासाएँ उपस्थित करते, कई घण्टे अद्भुत दिव्य चर्चाएँ होती रहतीं, एक नए संसार का द्वार ही मानों मेरे सामने खुल जाता था, ऐसा लगता मानों वैदिक काल के दो तप: पूत महर्षि गूढ़ तत्त्वों पर परस्पर विचार विमर्श कर रहे हैं। जैसे ही पूज्य स्वामीजी महाराज की पुस्तक 'पञ्चोपनिषद् भाष्य' पिताजी को मिली, मैंने देखा ३, ४ दिन तक रात्रि को ११, १२ बजे तक वे उसका अवलोकन करते रहते। मुझे तो उसका विषय क्या समझ में उस समय आता, परन्तु उसके अध्ययन के काल में उनके मुख पर एक विलक्षण प्रसन्नता देखने में आती रहती थी, मुझ से उन्होंने स्व.म.म. पंचानन

तर्क रत्नजी का ब्रह्मसूत्र शाक्त भाष्य भी निकलवाया और दोनों पुस्तकों को साथ साथ पढ़ा। बाद में पुस्तक पर उन्होंने संक्षेप में अपने विचार लिखकर श्री वैद्यजी महाराज को भेजे जो संमति के रूप में 'चण्डी' पत्रिका में प्रकाशित हुए। बाद में मालुम हुआ कि पिताजी के उन विचारों से पूज्य स्वामीजी महाराज को परम हर्ष हुआ और उन्होंने पर्याप्त सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा कि मेरी बात को दो महामहोपाध्यायों ने खूब समझा है, एक मेरे पिताजी ने तथा महामहोपाध्याय श्री पं. उमेश मिश्रजी ने। मेरे पिताजी ने अपना मन्तव्य पञ्चोपनिषद् भाष्य पर देते हुये लिखा कि उपनिषदों के पूज्य स्वामीजी द्वारा प्रकट किये गए रहस्य आद्य शंकराचार्य भगवान् के भाष्यों में भी नहीं दिखाई देते। ये रहस्य पूज्य स्वामीजी के आविष्कार कहे जाने योग्य हैं।

मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीमान देवीदत्तजी चतुर्वेदी को यह सौभाग्य प्राप्त हुआ कि पडोसी महादेश चीन ने जब भारत की उत्तरी सीमा पर आक्रमण किया और प्रति दिन के युद्धों के परिणाम जब सैनिक पक्ष से भारत की ओर निराशा के आने लगे तो देश का बच्चा बच्चा "अब क्या होगा' जैसे डर के थर्रा उठा। प्रधान मन्त्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने देश के नाम रेडियो ब्राडकास्ट में अपना भय प्रकट किया, परन्तु देश की जनता पर उनकी पूरी आशा केन्द्रित थी। उसी अवसर पर दतिया पीताम्बरा पीठ के उस महान् साधक को अनेक भक्तों ने विह्वल होकर चेताया कि हमारा देश आध्यात्मिक शक्तियों से भरा है। इस समय भी ऐसी किसी शक्ति के प्रभाव को दर्शन कराइये। पूज्य स्वामीजी को बात तत्काल जँच गई, प्रखर आराधनात्मक प्रयोग का संकल्प मन में जाग उठा, शीघ्र ही कर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को आहूत किया गया और महाशक्ति के उस स्वरूप की आराधना तन्त्रोक्त विधि से प्रारम्भ हुई जो शत्रु निग्रह के लिए तन्त्र शास्त्रों में सुप्रसिद्ध है, पूज्यचरण तो साधनाओं के उच्चोच्च शिखरों पर विचरण ही करते थे। उस अनुष्ठान के प्रारम्भ होते ही उत्तरी सीमा के युद्ध के परिणामों में परिवर्तन आना शुरु हो गया। भारतीय सेनाएँ आगे बढ़ने लगी, और इस महान् अनुष्ठान के पूर्ण होते होते चीन की ओर से युद्ध विराम की घोषणा हो गई। यह था देश की पुकार पर इस महान् मनस्वी महायोगी का प्रत्यक्ष स्वरूप दर्शन। यह अनुष्ठान अत्यन्त गोपनीय रूप में सम्पन्न किया गया था, रात्रिभर जाग कर जप, पाठ, हवन आदि आराधनाएँ चलती थीं। इसी अनुष्ठान में मेरे ज्येष्ठ भ्राताजी ने भाग लिया था। उन्होंने भी बाद में मुझे दतिया जाकर पूज्य स्वामीजी महाराज का दर्शन कर आशीर्वाद प्राप्त करने को प्रेरित किया था, परन्तु फिर भी ऐसा अवसर हाथ नहीं आ सका कि मुझे उनका दर्शन मिल पाता।

प्राय: दो वर्ष पूर्व एक दिन अकस्मात् पूज्यचरणों के कृपा प्रभाव से श्रद्धास्पद संस्कृत और आयुर्वेद जगत् के अप्रतिम मनीषी 'श्री रामनारायण वैद्य अखिल भारतीय

पुरस्कार' से सम्मानित श्री दामोदर शर्मा गौड़ जी महोदय ने मुझे दर्शन दिये और पूज्य स्वामी जी महाराज के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "सिद्धान्त रहस्य" का संस्कृत अनुवाद करने का आदेश दिया। पूज्य स्वामी जी महाराज का एक तेजस्वी चित्र "सिद्धान्त रहस्य" में था, मैं प्रतिदिन उसका दर्शन कर लेता और अनुवाद करता रहता। सिद्धान्त रहस्य के इस संस्कृतानुवाद का मुद्रण भी वाराणसी में ही कराने की व्यवस्था हुयी जिससे प्रूफ आदि का सम्यक् संशोधन हो सके। यह अनुवाद और उसका मुद्रण कालक्रम से पूर्ण हो गया। तदुपरान्त मुझे परमपूज्य स्वामी जी महाराज के जीवन को आधार बना कर संस्कृत में एक काव्य रचना करने की प्रेरणा दी गयी। यद्यपि यह एक महान् कार्य था फिर भी काव्याऽध्ययन में अपनी नैसर्गिक रुचि और थोडी बहुत काव्यरचनात्मक प्रवृत्ति के आधार पर मैंने यह कार्य हृदय में स्थिर किया और सोचा कि मुझे इस कार्य की सामग्री इकट्ठा करने के लिए नवरात्र के अवसर पर पीताम्बरा पीठ दतिया में उपस्थित होना चाहिए। वहां भक्त मंडल के दर्शन करने के साथ ही उनसे वार्तालाप में पूज्य चरणों के विषय में काव्योपयुक्त सामग्री का संग्रह हो सकेगा। इससे पूज्य स्वामी जी के सहचरों और भक्तवृन्द के दर्शन का लाभ भी था एवं उस महान् पीठ के दिव्य विग्रह में विराजमान भगवती के दर्शनों का लाभ सर्वोपरि था ही।

मैं नवरात्रारम्भ के एक दिन पूर्व ही झांसी होते हुये दतिया पहुंच गया। इस ओर मेरी यह प्रथम ही यात्रा थी। उस दिन प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी झांसी में महारानी लक्ष्मीबाई के उत्सव समारोह, उनकी मूर्ति के अनावरण को सम्पन्न करने सायं आने वाली थी। दतिया स्टेशन पर उतरकर रिक्शे से मैं जब पीताम्बरा पीठ जा रहा था, उसी समय प्रधान मन्त्री का हेलीकाप्टर आकाश से जा रहा था और सड़क पर खडे सेना के जवान और पुलिस के लोग नीचे से सलामी दे रहे थे।

आश्रम में प्रविष्ट होते ही जिन सज्जन से मेरा प्रथम साक्षात्कार हुआ, बाद में मालुम हुआ कि वे थे गजराज सिंह जी, जो पूज्य स्वामी जी महाराज के अनेक वर्ष पर्यन्त निकट सहचर रह चुके थे। उसके उपरान्त श्रीमान् शिवनाथ शर्माजी से साक्षात्कार हुआ जिनके प्रथम दर्शन होते ही मैंने पाया कि जैसे मैं किसी अन्य ही संसार में आ गया हूं, जो संसार पूज्य स्वामी जी के द्वारा निर्मित है, और जो इस चारों और फैले कलिकालुष्य से ओतप्रोत संसार के बीच में होता हुआ भी 'पद्म पत्रमिवाम्भसा' इस संसार से सर्वथा विलक्षण है। सर्वथा नवीन स्थान और नवीन परिचय के परिवेश में पहुंचने पर भी पूरे १० दिन तक प्रथम क्षण से ही प्रारम्भ करके यह अनुभव होता रहा कि यही मेरा चिरवाञ्छित स्थान है, यहीं के लोग मेरे अत्यन्त निकट के बन्धु-बान्धव, गुरु, सुहृद हैं। श्री शिवनाथ जी शर्मा, जिनको वहां सागर बाबू के नाम से याद किया जाता है, उनसे वार्तालाप करते करते प्रायः ४०

घण्टे की यात्रा की सारी थकान न मालूम कहां गायब हो गई और वार्तालाप में बैठे बैठे न मालूम कितना समय व्यतीत हो गया। किसी सज्जन ने आकर श्री सागर बाबू को सूचना दी कि प्रधान मन्त्री जगदम्बा के दर्शनार्थ झांसी से यहां आएंगी ऐसी सूचना अभी मिली है। "ठीक है" एक सामान्य सा उत्तर देकर सागर बाबू फिर आगे के वार्तालाप में व्यस्त हो गए; वार्तालाप का विषय था, पूज्य स्वामी जी महाराज की चरित चर्चा, एक के बाद एक संस्मरण वे मुझे श्री स्वामी जी महाराज के सुना रहे थे और चित्त आनन्द विभोर होता जा रहा था। इसी बीच बाहर से पधारे सज्जनों से भी परिचय होता जा रहा था, स्वामी ए. प्रकाश सवाई माधोपुर से आए थे और वहीं विराजमान थे, मेरे एक निकट सम्बन्धी श्रीमान् जयशिव प्रसाद जी चतुर्वेदी श्री सागर बाबू जी के साथ ही विराज रहे थे, उनका परिचय होने पर नये स्थान और परिवेश की आत्मीयता क्षणों में सम्पन्न हो गई। वार्तालाप के बीच पुन: एक सज्जन ने आकर सूचित किया कि मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री महानुभाव दर्शन करके जा चुके हैं और प्रधानमन्त्री कुछ ही मिनिटों में आने वाली हैं। श्री सागर बाबू को मन्दिर में उनके स्वागत के लिए उपस्थित महानुभाव बुला रहे थे। श्री सागर बाबू ने उत्तर दिया कि "भाई प्रधानमन्त्री अपनी श्रद्धा से दर्शन करने आ रही हैं। वे पधारेंगी और दर्शन करके चली जाएंगी, इस कार्यक्रम में मैं वहां क्या करूंगा, मैं पंडितजी से वार्तालाप कर रहा हूं।" उस समय उस कक्ष में मैं और श्री सागर बाबू जी के अतिरिक्त वहां पूरे आश्रम में अन्य कोई नहीं था, ऐसा लगा, सभी प्रधानमन्त्री को देखने की इच्छा जागृत हुई साथ ही यह बात भी मन में आई कि श्री सागर बाबू के वहां न जाने में इस समय मैं ही निमित्त बन रहा हूं, अत: मैंने नम्रता से उनसे कहा कि आपका आश्रम की ओर से वहां रहना आवश्यक लग रहा है, कृपया आप पधारें, मैं भी प्रधानमन्त्री का दर्शन कर लूंगा। इस पर सागर बाबू ने मेरी उत्सुकता को देखते हुए "चलिए, आप की इच्छा है तो चलते हैं", कह कर उस ओर बहुत धीरे धीरे चलना प्रारम्भ किया। कुछ कदम बढ़ाते ही लगा कि पुलिस वाले पंक्तिबद्ध खडे हैं, कुछ दूर की चहल पहल से मालूम हुआ कि प्रधानमन्त्री परिक्रमा कर रही हैं, दोनों मुख्यमन्त्री उन के साथ हैं। हम पुलिस वालों के पास आकर रुक गए, एक सज्जन कुछ वेग से आए और हम लोगों को शीघ्र चलने का संयत भाव से संकेत देने लगे, तो हाथ के संकेत से ही हम लोगों ने आगे बढ़ने से निषेध कर दिया। कुछ क्षण बाद स्थिति सामान्य हो गई।

यह एक बहुत ही शीघ्र घटित हुई घटना थी, परन्तु इसने मेरे चित्त को बड़ी ऊँची और गहन भूमिका में पहुँचा दिया। मुझे राष्ट्र गुरु श्री स्वामी जी के दर्शन उनके पांचभौतिक शरीर के अतिरिक्त उनके प्रभाव और कार्यों के द्वारा ही करने थे। उसका इस घटना से संकेत मिला कि सर्वोच्च आकर्षक व्यक्तित्व के समक्ष भी नितान्त

उपेक्षाशील रहनेवाले व्यक्तित्वों का निर्माण राष्ट्रगुरु के द्वारा हुआ है। मैंने पीताम्बरा पीठ में नवरात्र के नौ दिवस मानों कुछ घंण्टों की तरह बिताये। प्रति समय पूज्य स्वामीजी के उपदेशों से अनुप्राणित पूर्ण प्रतिष्ठित महानुभावों के दर्शन, उनके द्वारा विभिन्न संस्मरणों एवं घटनाओं का श्रवण करते करते आनन्द से पुलकोद्‌गम और रोमाञ्च होने लगता था। डॉ. लालगोपालजी पर्याप्त वृद्धावस्था में बड़ी जिन्दा दिली से पूज्य स्वामीजी से सुने हुए उर्दू शेर सुनाते रहे, कानपुर के श्री जुत्शीजी ने अपने पूज्य पिताजी के साथ पूज्य चरणों के अनेक संस्मरण कहे। श्रीमान् बदनसिंहजी ने तो पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य में शाक्त आगम के बहुत से रहस्यों को आत्मसात् किया, शाक्त सौरभ नाम का उनका ग्रन्थ अनेक भागों में है, अभी और भी बहुत से ग्रन्थ उनके द्वारा आने की आशा है। श्रीमान् पं. ललिताप्रसादजी शास्त्री अपने पाण्डित्य से पूज्य स्वामीजी के प्रसाद का आज भी वितरण कर रहे हैं। श्री मोतीलालजी शास्त्री पीताम्बरा पीठ के पुस्तकालय का साधु संचालन कर रहे हैं। पं. सूर्यदेव शर्माजी का व्यक्तित्व और उनकी वाक्शक्ति किसी को भी बिना प्रभावित किये नहीं रहती। एक दिन सायंकाल खड़े खड़े प्रायः डेढ़ घंटे तक उन्होंने अपनी विलक्षण जीवन गाथा कही। उनकी शैली इतनी रोचक, प्रभावोत्पादक और निश्चल थी कि उसको सुनने के लिए उस समय पूरा आश्रम का जनसमूह इकठ्ठा हो गया था। ग्वालियर के श्रीमान् वैद्य वेणीमाधव शास्त्रीजी ने स्वामीजी महाराज की उपासना पद्धति के अनेक रहस्यों का विशकलन मुझे समझाया। श्री हेमचन्द्रजी मिश्र ने 'वैदिक उपदेश' ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, उनसे भी अनेक आध्यात्मिक अनुभव सुने। श्री किशोरी शरणजी की मूक सेवा और ज्ञानपिपासा अतुलनीय है। श्री कृष्णानन्दजी बुधौलिया, वेदान्त के प्रकाण्ड पण्डित और पूज्य स्वामीजी के प्रमुख शिष्यों में हैं। पं. ओमनारायण शास्त्री जी का संस्कृत पांडित्य और उपासना शक्ति विभोर कर देने वाली है। श्री मदनमोहनजी गौड़, श्री कादम्बीजी, श्री सूर्यप्रकाशजी गोस्वामी, श्री शरदेन्दुजी, श्री भोलानाथजी सक्सेना, श्री उपेन्द्रनाथजी दीक्षित, श्री अशोकजी पाण्डेय, श्री महेशनाथजी सेठ, श्री रेवारामजी तिवारी, श्री हरिमाधव शरणजी, श्री प्रदीपचन्द्रजी, श्री जगदीशचन्द्रजी अरोरा, श्री भगवानदासजी केवट, श्रीमान् दयाशंकरजी दूबे, डा. श्री राधारमणजी दुर्वार, श्री मनोहरजी चौरे प्रभृति महानुभावों से चित्त को आनन्दित कर देने वाले अनेक प्रसंग सुने।

कोई भी देख सकता था उस समय यह चमत्कारपूर्ण दृश्य कि सैकड़ों भक्तजन अपने अपने आसनपर आसीन होकर माला लेकर जप करने में लीन रहते थे। जब तक उन्हें अपने नेत्रों से देख न लें तब तक बाहर यह पता भी नहीं चल सकता था कि यहां इतना बड़ा जन समुदाय विद्यमान है। माता धूमावती के दिव्य दर्शन, श्री शिव का मन्दिर, भगवान् परशुराम का विग्रह, भगवान् शंकर के पाँचों मंगलमय

स्वरूप, भगवान् हनुमान, भगवान भैरव के सहित भगवती पीताम्बरा की अलौकिक छवि भक्त जनों को प्रतिक्षण भाव विभोर बनाये रखती है। गुरु मण्डल के महान् भवन का निर्माण कार्य आज कल चल रहा है। झांसी से वैद्य प्रवर श्रद्धेय पंडित रामनारायण वैद्यजी महाराज सपरिवार प्राय: रात्रि को प्रतिदिन ही आते थे, तथा पूजा अनुष्ठान करके वापस लौट जाते थे। राजमाता विजया राजे सिन्धिया भी प्राय: प्रतिदिन ही पूजा अर्चना करती थीं। जन समर्द का तो कुछ कहना ही नहीं था, परन्तु आत्मानुशासन ऐसा विलक्षण था कि कभी भी शान्ति भंग होने का कोई भी अवसर उपस्थित होही नहीं पाता था। दो शतचण्डी अनुष्ठान चल रहे थे। दुर्गा सप्तशती का पाठ इतनी आकर्षक और मनोरम शैली में संभवत: भारत भर में कहीं अन्यत्र सुनने को नहीं मिल सकता। रात्रिभर जागकर अधिकारिक पुरुषों द्वारा श्रीयन्त्र का पूजन अपने आपमें पूज्य स्वामिचरणों की विलक्षण उपलब्ध देन है।

जरा भी सन्देह नहीं कि पीताम्बरा पीठ दतिया की दिव्य ज्योति, सम्पूर्ण देश और विश्व को अपने आलोक से निरन्तर आलोकित रहेगी। पूज्य चरणों में अनन्त नमन।

***

–: वैदिक उपदेश :–

महापुरुष कर्म एवं ज्ञान का यथार्थ में समुच्चय मानकर कर्तव्य कर्म का कभी त्याग नहीं करते। ज्ञानरहित कर्म जो केवल भोग के लिए किया जाता है वह पशुवत् ही है, कार्य रहित ज्ञान केवल वाचक ज्ञान होने से निष्फल है, हृदय की शुद्धि कर्म से ही होती है। अशुद्ध हृदय का ज्ञान, अज्ञान का ही स्वरूप है।

– *श्रीस्वामीजी*

श्रीचरणों की कृपा का फल

– देवेन्द्रनाथ रेखी
नागपुर

पूर्व जन्म के पुण्य उदय होने पर ही मुझे श्री चरणों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। मैं व्यवसायी व्यक्ति हूँ, इसलिये दतिया आना जाना कम ही अवसरों पर हो पाता था। अज्ञात शक्ति के द्वारा आकृष्ट होने पर मैं पूज्य स्वामी जी के दर्शनार्थ दतिया गया। प्रथम बार में ही मुझे गुरु कृपा प्राप्त हो गयी। पूज्यपाद ने जो साधना विधि बतलाई उस पर मैं चलने लगा। परिवार में सभी प्रकार का सुख था, इसलिये भौतिक वस्तुओं के लिये पूज्यपाद से प्रार्थना करने की इच्छा नहीं हुई, परन्तु सांसारिक व्यक्तियों के सामने कभी न कभी ऐसी समस्याएं आ जाती हैं जिनको ईश्वरीय अनुग्रह से ही सुलझाया जा सकता है। हमारे सामने भी कुछ ऐसी समस्याएं आ गई परन्तु प्रत्यक्षतः मैंने पूज्यपाद के समक्ष ऐसी कोई प्रार्थना नहीं की। केवल मन में ही स्मरण कर उनसे समस्या को सुलझाने की प्रार्थना की और उन प्रार्थनाओं पर मुझे कई विलक्षण अनुभव प्राप्त हुए।

हमारे पास एक प्रतिष्ठित कम्पनी की एजेन्सी थी जो कि बहुत पहले समय से ही थी। एक बार कम्पनी के प्रबन्धक नागपुर आये और उन्होंने बिना किसी कारण के हमारी एजेन्सी समाप्त कर दी तथा अन्य व्यक्ति को एजेन्सी देने के लिये कह दिया। इस स्थिति में मुझे आर्थिक हानि के साथ सामाजिक अप्रतिष्ठा का भी भय था। मैंने पूज्य श्री चरणों से मन में ही इस विपत्ति से छुटकारे के लिये प्रार्थना की। सायंकाल मुझे प्रबन्धक महोदय ने मिलने के लिये होटल में बुलाया। मैं बुझे मन से उनके पास गया। वहां उन्होंने कहा कि मैंने गलत बातों में आकर आपकी एजेन्सी समाप्त की थी, अब मुझे पूरी तरह वस्तुस्थिति का पता चल गया है, आप ही हमारी कम्पनी के एजेन्ट रहेंगे। यह महाराज जी की कृपा के चमत्कार का फल था।

इसी प्रकार एक बार हमारी लड़की का विवाह था। वर पक्ष के लोग बहुत ही सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित परिवार के थे। उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करने में मुझे संकोच हो रहा था। मैं सोचता था कि इनके अनुरूप मैं व्यवस्था कर भी पाऊंगा या नहीं। अन्त में मैंने इस सम्बन्ध को बहुत ही संकोच के साथ स्वीकार कर लिया। पूज्य. से आशिर्वाद के लिये दतिया पत्र लिखा। वहां से पत्र के द्वारा ही मुझे विवाह के

लिये पूज्यपाद का आशिर्वाद प्राप्त हो गया, वहां से पत्र आने पर मेरा उत्साह बढ़ गया। मैंने बड़ी धूम-धाम से वह शादी की। शादी में सम्मिलित व्यक्तियों का मत था कि सभी व्यवस्था बहुत ही सुन्दर रही तथा वर पक्ष के लोग पूर्णतया सन्तुष्ट रहे। मुझे लगा कि एक असंभव कार्य पूज्यपाद के आशिर्वाद से संभव हो गया।

पूज्यपाद के ब्रह्मलीन हो जाने के पश्चात् भी उनकी कृपा में कोई अन्तर नहीं आया है। पूज्यपाद की कृपा से आश्रम की व्यवस्था वैसी ही चल रही है। सभी भक्तजन उसी प्रकार से आशिर्वाद प्राप्त कर रहे हैं। ऐसा मालूम पडता है जैसे आश्रम के कण-कण में पूज्यपाद व्याप्त हो गये हैं। पूरा आश्रम उनकी कृपा से अनुप्राणित हो रहा है। भक्त-जनों को इस बात के अनुभव हुए हैं कि महाराज जी अभी भी प्रार्थना को सुनते हैं तथा संकटों का निवारण करते हैं। इस सम्बन्ध में मेरी स्वयं की एक आश्चर्यजनक घटना है। पूज्यपाद के ब्रह्मलीन होने के पश्चात् मेरी दाईं आंख में कुछ तकलीफ हो गई। मैंने नागपुर, मुम्बई तथा दिल्ली के सुप्रसिद्ध नेत्रविशेषज्ञों से चिकित्सा कराई, सभी ने एक स्वर से कहा – इस आंख में रोशनी आना संभव नहीं। यदि आपरेशन किया जाता है तो बाई आंख की रोशनी जाने की भी संभावना है। मैं व्यथित हृदय से सब ओर से निराश होकर दतिया गया। वहां पूज्यपाद की समाधिपर जाकर प्रार्थना की। वहाँपर मुझे पूज्यपाद के शिष्य श्री ललिताप्रसाद जी शास्त्री मिले, उन्होंने मुझे बताया कि महाराज जी नेत्र रोगों के लिये नेत्र उपनिषद् का पाठ बताया करते थे। उन्होंने मुझे वह उपनिषद भी पाठ करने के लिये दिया। मैंने पाठ प्रारम्भ कर दिया। गुरु कृपा से आंख में रोशनी आना प्रारम्भ हो गई। आज मैं उस बीमारी से पूर्णतया मुक्त हूँ। यह समाधि पर पूज्यपाद के समक्ष की गई प्रार्थना का ही परिणाम है। पूज्यपाद के चरणों में शतशः नमन।

संलग्न – पत्र-प्रतिलिपि डा. मदनमोहन, A.I.I.M.M.S.
अन्सारी नगर, नवी दिल्ली/क्र.F.9-3/Co/Rpc. दि. २९.७.१९८०

Tele. Address : "MEDINST"

Phone : 634066
660110

Dr. Rajendra Prasad
Centre For Ophthalmic Sciences
A.I.I.M.S. ANSARI NAGAR
NEW DELHI-110016

Dr MADAN MOHAN
CHIEF ORGANISER
PROFESSOR OF OPHTHALMOLOGY

No. F.9-3/CO/RPC

Date 29th July, 1980

Ref: O.P.D. Card No.227954

....

Dear Shri Rekhi,

Reference your letter dated the 10th July, 1980 it is to inform you that there is no medical treatment for your eye problem except to reduce the symptoms. Dr. S.R.K. Malik can ask for the report of investigations done here. The Hospital file cannot be given.

Yours sincerely,

(P.K. KHOSLA)
Acting Chief Organiser &
Prof. of Ophthalmology.

Shri. D.N. Rakhi,
C/o Deepak Rekhi & Co.
Gandhi Bagh,
NAGPUR-2.

—: वैदिक उपदेश :—

फल-कामना से रहित जो कर्तव्य करते हैं उन्हें ही कामयाबी मिलती है। **'कर्मण्येवाधिकारस्ये मा फलेषु कदाचन'** - हे मनुष्य! कर्म ही तेरा अधिकार है, फल में नहीं - ऐसा श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है। कामनाप्रयुक्त कार्य करनेवाले को अज्ञ-मूढ़ बताया गया है। कामनाप्रयुक्त कार्यों में मनुष्य को बहुत अधिक श्रम करना पड़ता है और फल थोड़ा मिलता है, इसलिए गीता में इसे हेय कोटि में गिना गया है। निष्काम कर्म में थोड़ा परिश्रम एवं महान् फल होता है।

— *श्रीस्वामीजी*

आदरणीय श्रद्धेय शर्माजी, धौलपुर
१२-१०-८२

सादर सप्रेम गुरुस्मरण।

आपका कृपा-पत्र समय से प्राप्त हो गया था। उत्तर देने में विलम्ब इस कारण हुआ कि मैं अपने में कोई योग्यता नहीं पाता हूँ। ऐसे बड़े का क्या बखान करूँ समझ में नहीं आता है। श्री महाराज जी की कृपा आप-हम-सब पर है। यही बहुत बड़ी कृपा है। हम और आप हरिद्वार साथ ही गये थे, वह सब आप मुझसे अधिक जानते हैं। मेरे पास कोई अनुभूति नहीं है। उनकी कृपा से जीवन ठीक से चल रहा है। वैसे रियासत के जमाने से धौलपुर बैंक में मैं नौकर था। राज परिवर्तन होने पर भी उसमें से नहीं निकल सका। बैंक बन्द हो गया। केवल मैं ही अकेला व्यक्ति हूँ जो राजस्थान सरकार की सेवा में आ सका, जब कि मेरे साथ काम करने वाले सब लोग बेकार हो गए और मैं पैंशन पा रहा हूँ जिससे जीवन चल रहा है।

पं. मोतीलाल जी पधारे, यह हम सब का पुण्य है जो उन्होंने घर बैठे दर्शन दिए हैं। उन्होंने प्रेरणा दी है कि श्री पूज्यपाद के पास आने-जाने वाले धौलपुर के सत्संगियों से मिलकर कुछ समाचार एकत्रित हो सके तो लिखकर आपकी सेवा में भेजूं। वैसे दो-चार घटनाएँ जो कभी हम लोगों की श्री पूज्यपाद के साथ सायंकाल के भ्रमण में दिखी वह इस प्रकार हैं –

एक बार जंगल में चम्बल नदी की तरफ जाते हुए एक बड़ा भयानक काला सर्प दिखा जिसको देखकर सभी लोग डर गए। पूज्यपाद ने उन्हें आश्वस्त किया और कहा कि 'वह मुझे दण्डवत करने आ रहा है, डरो नहीं'। फिर सबने देखा कि सर्पराज जमीन पर तीन बार फन रखकर वापस चले गए।

धौलपुर में प्रथम पुरुष पं. रामनाथजी पुजारी हैं जिनके पास श्री पूज्यपाद श्री नृसिंह जी के मन्दिर में ठहरे थे। इसके पश्चात् बहुत काल तक श्री कुँवर नारायणसिंह जी जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास बहुत समय तक रहे तथा संतसंगियों को उपनिषद्, वेदान्त, गीता आदि ज्ञानमार्ग की पुस्तकों को सुनाते थे। बड़ा आनन्द रहता था। आजकल तो सतसंग का अभाव ही है।

यहां सब लोग अधिकतर ज्ञानमार्ग के पथिक थे। श्री पूज्यपाद की कृपा से अपने लक्ष्य को प्राप्त कर चुके। साधना-सम्बन्धी लोग २-४ ही थे जिनमें से कई तो शरीर छोड़ गये। अब एकाध रह गये हैं जो जाने की तैयारी में हैं।

मैं भी माई के दरबार से कुछ दिन रहने की अभिलाषा करता हूँ। देखें कब कृपा होती है। शेष कुशल है।

आपका हितैषी
पूरनप्रताप

गुरुचरणों में शतशः नमन

— अ. प्र. त्रिपाठी
नागपुर

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं उन भाग्यशाली जनों की हृदय से सराहना करता हूँ जिन्होंने राष्ट्रगुरु अहर्निशवन्दनीय पूज्य श्री स्वामीजी के सान्निध्य में रहकर जीवन की वास्तविकता का मार्मिक अध्ययन करके मानवोचित मार्ग पर चलने का मार्गदर्शन पूज्य स्वामीजी के द्वारा प्राप्त कर चुके हैं। जिनके सिर पर स्वामी जी के वरदहस्त की छाया पड़ चुकी है उनके जीवन की सार्थकता का आभास करके मुझे स्वयं के प्रति हार्दिक क्षोभ होता है कि मैं शिवस्वरूप श्री स्वामी जी के पदकमलों के दर्शन का पुण्य-लाभ प्राप्त न कर जीवनसाफल्य से क्यों वंचित रह गया? इस विषय में जब सोचता हूँ तो इसका समाधान यही पाता हूँ कि पूर्वजन्मों के सुकृत पर ही स्वामी जी जैसी महान् विभूतियों के दर्शन सुलभ हो सकते हैं इनमें सन्देह नहीं, जो कि मेरे भाग्य में नहीं था।

मैं लगभग ६-७ वर्षों से श्री पीताम्बरापीठ परिषद् से प्रकाशित तथा पूज्य स्वामी जी द्वारा विरचित, अनूदित और संकलित ग्रन्थों का मुद्रण कार्य कर रहा हूँ। यह कार्य स्वामी जी के अनन्य शिष्य द्वारा नागपुर में सम्पन्न होता है और उन्हीं के माध्यम से मुझे भी इस कार्य की देखरेख करने का अवसर प्राप्त होता है। अतः स्वामी जी से सम्बन्धित ग्रन्थों के मुद्रणार्थ जो किंचिन्मात्र दूर से सेवा करने का सौभाग्य मुझे मिलता है, उसके लिए मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। दतिया जाकर स्वामीजी का दर्शन करने का सौभाग्य मुझे अभी तक तो नहीं मिल सका है परन्तु पूज्य स्वामीजी की फोटो, जो प्रायः उनके ग्रन्थों मे रहते हैं उनका दर्शन करने का सौभाग्य अवश्य मिला करता है। उनके ब्रह्मलीन होने के बाद कुछ नये प्रकाशनों के लिए जब पाण्डुलिपियाँ आयीं तो उसमें स्वामी जी के सम्बन्ध में लिखी बातों का अध्ययन करने के बाद मुझे उनके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हुआ और तभी से उनकी शिवस्वरूपता पर अटल विश्वास हुआ, परन्तु शिवस्वरूप स्वामी जी का साक्षात् दर्शन उनकी संदेहावस्था में मुझे न हो पाने की हार्दिक व्यथा होती है। स्वयं को आश्वासित करने के लिए इसी बात से सन्तोष कर लेता हूँ शिवस्वरूप स्वामीजी भौतिक शरीर का त्याग करने के बाद भी श्रद्धा व विश्वास के साथ हार्दिक स्मरण

करने वालों को किसी न किसी रूप में दर्शन देकर मार्गदर्शन करते हैं और इस पर मुझे पूर्ण विश्वास है।

स्वामीजी मानवरूप में अवतार लेकर साक्षात् शिवस्वरूप थे। धर्मपरायण व विवेकपूर्ण होकर तथा उनके प्रति पूर्ण विश्वास, श्रद्धा व निष्ठा रखनेवाले उनके अन्तर्स्वरूप को अवश्य पहचान सकेंगे, ऐसे लोगों का कष्टनिवारण स्वामी जी भौतिक शरीर मे तो करते ही थे, परन्तु अब भी, जबकि वे ब्रह्मलीन हैं, उनकी आध्यात्मिक छाया श्रद्धालुओं को समुपलब्ध है। जन-कल्याण के लिए ही भगवान् शिव स्वामी जी के रूप में प्रगट होकर जनमानस को शारीरिक, मानसिक, आर्थिक व पारिवारिक समस्याओं का निराकरण करके उन्हें मानवोचित मार्ग पर चलने के लिए आध्यात्मिकता के ज्ञान दिये तथा सांसारिक कलुषता को मिटाने का हर-संभव उपाय स्त्रोतों को प्रवाहित किये। इनके धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन कर लेने के बाद मनुष्य की अज्ञानता दूर होकर जीवन में नया प्रकाश होने लगता है। स्वामी जी ने कई माध्यमों से जनकल्याण का पुनीत कार्य सम्पन्न किये व भविष्य में भी उनका मार्गदर्शन उपलब्ध होता रहेगा। उनकी दृष्टि में छोटे-बड़े व जाति-पाति का कोई भेदभाव न था। हर प्रकार से हतोत्साह होकर जो भी कोई उनकी कृपा प्राप्त करना चाहा तो अवश्य ही स्वामी जी उसके प्रति द्रवित होकर उसकी गूढतम समस्याओं का निराकरण किये हैं अथवा निराकरणार्थ किसी न किसी उपाय का मार्गदर्शन किये हैं यह उनकी जनकल्याणी भावना व अद्भुत कृपा का द्योतक है जो कि उनके पांच-भौतिक शरीर त्यागने के बाद भी गतिमान है। इस सम्बन्ध में मेरा स्वयं का भी एक अनुभव है जो कि पूज्य स्वामी जी की उदार कृपा-दृष्टि का उदाहरण है जब कि अभी तक मुझे न तो स्वामी जी का साक्षात् दर्शन करने का ही सौभाग्य मिल सका है और न तो पीठ का ही दर्शन कर सका हूँ फिर भी उनकी अलौकिक कृपा का अनुभव हुआ। घटना इस प्रकार है –

सितम्बर १९८२ में मेरे लड़के का पत्र गांव से आया जिसमें उसने अपनी बीमारी के विषय में लिखा था और उसका यथावत उपचार कराने पर भी ठीक न होने की बात लिखकर स्वयं को उसके लिए बहुत दुखी व्यक्त किया था। पत्र मिलने के बाद मैं प्रेस से अवकाश लेकर तथा पत्र द्वारा बीमारी की प्राप्त जानकारी एक वैद्यजी को देकर और उनके द्वारा निर्दिष्ट कुछ दवाइयां लेकर घर जाने के लिए तैयार हुआ। उस समय स्वामी जी से ही सम्बन्धित दो-तीन ग्रन्थों का मुद्रण-कार्य प्रेस में चल रहा था और उसकी छपाई सम्बन्धी देख-रेख मुझे ही करनी पड़ती थी। ये पुस्तके मुद्रणार्थ श्री स्वामी जी के पूर्वोक्त शिष्य द्वारा ही दी गई थीं अत: स्वयं को घर जाने की जानकारी उन्हें देना आवश्यक समझा। जब मैं उन्हें कारण बताकर घर जाने की बात बताई तो उन्होंने मेरे घर से वापस होने तक एक-दो ग्रन्थों की छपाई रोकने के लिए कहकर एक रुद्राक्ष की मणी दिये जो कि पीताम्बरा पीठ का ही प्रसाद था तथा स्वामी जी की फोटो की पूजा बच्चे द्वारा करने के लिए कहे व रुद्राक्ष बच्चे

के गले में पहनने को बताये। उनके बताये अनुसार मैंने किया, परिणामत: उसका चमत्कारिक प्रभाव हुआ, लड़के की बीमारी तो निर्मूल हो ही गयी इसके अतिरिक्त स्वामी जी के प्रति उसे अटूट श्रद्धा व विश्वास भी हो गया है तथा फोटो की पूजा करना अपना दैनिक नियम बना लिया है।

इस प्रकार की असंख्य वैयक्तिक कठिनाइयों का निवारण स्वामी जी पूर्ववत् कर रहे हैं। राष्ट्रहित के लिए भारत-चीन युद्ध के समय स्वामी जी द्वारा प्रयोजित अनुष्ठान इनकी आध्यात्मिक शक्ति का परिचायक है। ऐसे शिवस्वरूप उदारचेता श्री स्वामी जी का सान्निध्य जिन्हें प्राप्त हुआ है उनका जीवन कृतार्थ हो गया है तथा पीताम्बरा पीठ का वह स्थल एक ऐसा धार्मिक सजीव स्थल हो गया है जहां पर पूज्य स्वामी जी की आध्यात्मिक शक्ति व पीतवसना माँ की कृपा से सदैव पीड़ित जीवों का कष्ट निवारण होता रहेगा। ऐसे शिवस्वरूप पूज्य स्वामी जी के चरणारबिन्दों में शतशः नमन हृदय से अर्पित करके स्वामी जी कृपा की याचना करता हूँ।

।। गुरुस्तवराजः।।

ब्रह्मस्थानसरोजमध्य विलसच्छीतांशु पीठस्थितम्,
स्फूर्ज्जत्सूर्यरुचिं वराभयकरं कर्पूरकुन्दोज्ज्वलम्।
श्वेतस्रग्वसनानुलेपनयुतं विद्युद्रुचा कान्तया
संश्लिष्टार्द्धतनु प्रसन्नवदनं तं वन्दे गुरुं सादरम्।।१।।

मोहध्वान्तमदान्धताग्रहवतां चक्षूंषि चोन्मीलयन्,
यश्चक्रे रुचिराणि तानि दययाज्ञानाञ्जनाभ्यञ्जनैः।
व्याप्तं यन्महसा जगत्त्रयमिदं तत्त्वप्रबोधोदये,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।२।।

मातंगी भुवनेश्वरी च बगला धूमावती भैरवी,
तारा छिन्नशिरोधरा भगवती श्यामा रमा सुन्दरी।
दातुं न प्रभवन्ति वाञ्छितफलं यस्यप्रसादं बिना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।३।।

काशीद्वारवति प्रयाग मथुराऽयोध्या गयावन्तिका,
मायापुष्कर-काञ्चिकोत्कलगिरी श्रीशैलविन्ध्यादयः।
नैते तारयितुं भवन्ति कुशला यस्यप्रसादं बिना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।४।।

रेवासिन्धु सरस्वती त्रिपथगाः सूर्यात्मजा कौशिकी,
गंगासागर संगमोद्रितनया लौहित्य शोणादयः।
नालं प्रोक्तं फलप्रदान विषये यस्य प्रसादं बिना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।५।।

सत्कीर्तिविमलं यशः सुकविता पाण्डित्यमारोग्यता,
वादे वाक्पटुता कुले चतुरता गाम्भीर्यमक्षोभ्यता।
प्रागल्भ्य प्रभुता गुणे निपुणता यस्यप्रसादात्भवेत,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।६।।

लोकेशो हरिरम्बिका स्मरहरो माता पिता भ्यागता,
आचार्यः कुलपूजितोः यतिवरो वृद्धस्तथा भिक्षुकः।
नैते यस्य तुला व्रजन्ति कलया कारुण्यवारांनिधेः,,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम।।७।।

ध्यानं दैवतपूजनं गुरुतपोदानाग्निहोत्रादयः,
पाठो होमनिषेवणं पितृमखा ह्य भ्यागतार्च्चाबलिः।
एते व्यर्थफला भवन्ति सततं यस्य प्रसादं बिना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।८।।

पूर्वाशाभिमुखः कुताञ्जलिपुटः श्लोकाष्टकं यः पठेत
पौरश्चर्यविधि विनापि लभते मन्त्रस्य सिद्धिप्रदम्
नो विघ्नेः परिभूयते प्रतिदिनं प्राप्नोति पूजाफलम्
देहान्ते परम पद निविशते यद्योगिनां दुर्लभम्।।९।।

'इति श्रीवामकेश्वरतन्त्रे पार्वती-शिवसंवादे श्री गुरुस्तवराजः संपूर्णः।'

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

***

–: वैदिक उपदेश :–

सर्वदा सत्य भाषण, ईश्वरीयोपदेश, कर्म ज्ञान और भक्ति का आचरणरूप से करना ही एक मुख्य कर्तव्य है इसमें कभी भी प्रमाद नहीं होना चाहिए। उपनिषद् में **"स्वाध्यायान्मा प्रमदः"** स्वाध्याय ज्ञान-यज्ञ में प्रमाद न करो ऐसी प्रधान शिक्षा दी गई है। ज्ञानरहित मनुष्य और पशु में कोई अन्तर नहीं है, मनुष्य की श्रेष्ठता ज्ञान से ही है।

– ***श्रीस्वामीजी***

ब्रह्मलीन से पूर्व

(दि. २३-१२-७८ से ३-६-७९ तक)

२३ दिसम्बर १९७८ को लगभग ६ बजे सायंकाल की बात है, पूज्यपादजी ने कुछ लेटने की इच्छा व्यक्त की। मूढा से उठकर बिस्तर की ओर चलने को हुए किन्तु और दिनों की अपेक्षा आज चलने में असमर्थता अनुभव की। थोड़ा सा सहारा लेकर बिस्तर तक पहुंचे और जैसे ही लेटे, कुछ ही क्षणों बाद जोर की आवाज की। हम लोग महाराज जी की ओर दौड़े और पूछा की क्या बात है? पूज्यपाद ऐसी स्थिति में आ गये कि संभाले नहीं संभले। आवाज और जोर से करने लगे। तुरन्त डाक्टर बुलाये गये। झांसी मेडीकल कॉलेज के **डा. एम. सी. गुप्त** भी आये। जांच के बाद कुछ औषधि दी गई। डाक्टरों के विचार से महाराज जी का ब्लडशुगर कम हो जाने के कारण ऐसी स्थिति हुई है। पूज्यपाद लगभग ३-४ घण्टे इसी स्थिति में रहे। बोलचाल भी बंद रहा। ग्लूकोज, शक्कर आदि देने पर बहुत देर बाद सामान्य स्थिति में आये, किन्तु रात भर बेचैनी रही। उपचार २-३ दिन तक जारी रहा, इसके बाद स्थिति सामान्य हो गई। पूज्यपाद जी की यह स्थिति देखकर पीठ के सेवकों की इच्छा हुई कि श्रीचरणों का एक बार चैकअप हो जाना चाहिए। एक दिन श्री पं. रामनारायणजी शर्मा (वैद्यजी), पं. सूर्यदेव शर्मा, पीठ के मन्त्री तथा कुछ अन्य सेवकों ने पूज्यपाद से स्वास्थ्य निरीक्षण हेतु मुम्बई चलने के लिये निवेदन किया किन्तु श्री चरणों ने यह कह कर टाल दिया कि **अब हम ठीक हैं, श्री पीताम्बरा-माई की कृपा से और ठीक हो जावेंगे, हमें कहीं नहीं जाना है। इसने अपने शरीर की कभी परवाह नहीं की है।**

पूज्यपाद जी प्रारम्भ से ही आयुर्वेदिक उपचार में आस्था रखते थे। दिसम्बर समाप्त होकर नया वर्ष आरम्भ हो गया था। एक दिन श्री पं. वेणीमाधव अश्विनी कुमारजी शास्त्री (महाराज श्री से ही सेवक) ग्वालियर से आये। श्रीचरणों के स्वास्थ्य परीक्षण के बाद कुछ औषधि देने का निवेदन किया। महाराज जी तत्काल राजी हो गये और दूसरे दिन ही शास्त्रीजी ने औषधि तैयार कर लेने की विधि बता दी। अच्छा मुहूर्त देखकर महाराज जी औषधि सेवन करने लगे। इसी बीच इन्दौर के प्रसिद्ध वैद्य पं. रामनारायण जी शास्त्री को महाराज जी के स्वास्थ्यपरीक्षण हेतु बुलाया गया। वैद्यजी ने जांच के बाद वेणीमाधवजी द्वारा दी जा रही औषधि में कुछ परिवर्तन कर वही

औषधि जारी करने को कहा। औषधि बराबर ४० दिन तक चली। **१० फरवरी ७९** को अचानक पूज्यपाद जी को श्वास की शिकायत हुई। श्वास इतना बढ गया कि लघुशंका आदि के लिये भी जाना दूभर हो गया। थोडी-थोडी देर में श्वास फूलता था। बात करने में बैठे बैठे यह स्थिति हो जाती थी, याने दिन में १०-१५ बार श्वास उखडने लगी। थोडे से परिवर्तन के बाद वही पुरानी आयुर्वेदिक औषधि जारी रही, किन्तु लाभ नहीं हुआ। एलोपैथी इलाज भी किया, किन्तु कोई फायदा नहीं हुआ। एक दिन उनका निर्देश हुआ कि रुद्राक्ष घिस कर चाटना चाहिए। दो-एक दिन रुद्राक्ष घिस कर चटाया गया। कुछ थोड़ासा श्वास में अंतर आया। पूज्यपाद जी के श्वास उखड़ने की इस हालत को देख कर फिर पीठ के मुख्य सेवकों ने उनसे अपने स्वास्थ्यपरीक्षण हेतु दिल्ली चलने के लिये प्रार्थना की। श्रीचरणों ने इस बार भी कहीं जाने से मना कर दिया। दिनांक १५-२-७९ गुरुवार को रात्रि के ८ बजे दतिया के प्रमुख चिकित्सक श्री डाक्टर अमरसिंह जी परिहार (जो महाराज श्री के सम्पर्क में बहुत दिनों से थे और उनकी औषधि ज्योतिष्मती सेवन करते थे) ने महाराज जी से दिल्ली जाकर अपना स्वास्थ्यपरीक्षण कराने के लिये निवेदन किया। महाराज श्री ने डाक्टर साहब के निवेदन को इस बार स्वीकार कर लिया और दिल्ली चलने की अपनी स्वीकृति दे दी। रात्रि के दूसरे भाग में दिल्ली चलने की अपनी स्वीकृति दे दी। रात्रि के दूसरे भाग में दिल्ली चलने की सारी तैयारियां कर ली गई।

दिनांक १६-२-७९ शुक्रवार को प्रातः १० बजे भगवती पीताम्बरा को प्रणाम कर पूज्यपाद के साथ हम लोग कार द्वार दिल्ली के लिये रवाना हुए। पूज्य श्री के साथ पं. सूर्यदेव शर्मा, श्री ललिता प्रसाद जी शास्त्री, श्री जगदीश गुप्त, विनय जी, भोलानाथ जी, वनमाली जी, डा. योगेश, डा. गौरीशंकर गुप्त, ध्यानेन्द्र सिंह तथा कुछ अन्य सेवक बन्धु थे। इमरजेन्सी किट लिये डा. जे. पी. शर्मा भी साथ थे। लगभग १२ बजे दिन धौलपुर में महाराज जी के सेवक श्री भगतराम जी के यहां रुके। यहाँ पूज्यपाद जी के सेवक बड़ी संख्या में थे। महाराज जी के धौलपुर पधारने की सूचना बिजली की तरह फैल गई। सभी सेवकों ने दर्शन लाभ लिया। थोड़ा सा भोजन लेकर महाराज जी सुख करने लगे। विश्राम के बाद लगभग ४ बजे सायंकाल हम लोग आगे रवाना हुए। दिल्ली पहुँचने से पूर्व लगभग ७ बजे डिबचिक विश्रान्ति गृह में थोडी देर के लिये रुके। चाय आदि ली। यहां से हम लोग ८ बजे रवाना हुए। दिल्ली नगर में रात्रि ९ बजे प्रवेश किया। सीधे अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान की ४थी मंजिल के व्ही.आई.पी.कमरा नं. ४०१ में पहुँचे। कमरा पहले से ही श्रीमन्त राजमाता विजयाराजे सिन्धिया द्वारा सुरक्षित करा लिया गया था। महाराज जी के साथ कुछ दो-एक सेवक रुके। शेष सभी सेवकों के ठहरने की व्यवस्था राजमाता सिंधिया के लेखा लाज (सिंधिया विला) में की गई।

संस्थान में पहुँचते ही पूज्यपाद के स्वास्थ्य की जांच होना प्रारम्भ हो गई। श्वास की तकलीप तो पहले से ही थी अस्तु उसका उपचार दूसरे दिन सबरे कई एक्स-रे लिये गये। संस्थान के डा. रमेश कुमारजी (गुर्दा विशेषज्ञ) को पूज्यपाद जी का कन्सल्टेन्ट नियुक्त किया गया। ८-१० दिन की लगातार जांच के बाद डाक्टरों ने यह तय किया कि उनके गुर्दे काम कम कर रहे हैं अस्तु उन्हें डायलेसिस पर रखना चाहिए। इस हेतु डा. धवन के द्वारा दि. २५-२-७९ को महाराज जी के हाथ में शन्ट लगा दिया गया। यहां यह ज्ञातव्य हो कि महाराज श्री अपना मानसिक जप, ध्यान बराबर करते रहते थे। उनका यह क्रम बराबर बना रहा।

दिनांक २६-२-७९ को प्रातः ८ बजे स्वामी जी को कार द्वारा संस्थान के डायलेसिस यूनिट में ले गये जहां उन्हें ६ घण्टे की डायलेसिस पर रक्खा गया। यह प्रक्रिया एक दम नई थी फिर भी सब ठीक रहा। हम लोग महाराज जी को डायलेसिस के बाद लगभग ३ बजे अपने कमरे में वापिस लाये। चूंकि दिन भर की थकान थी अस्तु थोड़ासा भोजन दूध आदि लेकर उन्होंने विश्राम किया। दूसरे दिन प्रातः काल से ही हल्कापन महसूस किया। अपनी दिनचर्या के निश्चित कार्यक्रम के अनुसार जप-ध्यान पठन-पाठन प्रारम्भ कर दिया। अस्पताल में मिलने का समय सायं ४ बजे से ६ बजे तक निश्चित था। स्वामीजी के दिल्ली आने की खबर फैल चुकी थी अस्तु भक्त गण अस्पताल के निश्चित समय बारी बारी से दर्शन लाभ करते। पूज्यपाद के दिन भर कार्यक्रम इस प्रकार थे।

प्रातः ५ बजे – ध्यान, जप
" ६ बजे – चाय।
फिर शौच आदि से निवृत्त होना।
प्रातः ८ बजे – मूढा पर विराजमान –
(१ घन्टे के लिये शास्त्र चर्चा)
" ११-३० बजे – दोपहर का भोजन, फिर विश्राम।
सायं ५ बजे – चाय
रात्रि ८ बजे – भोजन, फिर विश्राम

पं. सूर्यदेव शर्मा सुबह-शाम महाराज श्री के दर्शनार्थ तथा स्थिति का जायजा लेने सिंधिया विला से आते थे। किसको क्या करना है? औषधि आदि पर पूरा ध्यान रखना आदि की पूरी व्यवस्था को नियन्त्रित किये हुए थे।

महाराज जी को पुस्तकों से सदा प्रेम रहा है, जो उन्हें पुस्तक भेंट करता था उनसे वे बड़े प्रसन्न होते थे। पुस्तकें भेट होना प्रारम्भ हो गई और लगभग ७०-८० ग्रन्थ उनके पास आ गये। आज पूज्य. जी द्वारा संस्थापित पुस्तकालय में

लगभग ३००० ग्रन्थ हैं जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। डायलेसिस सप्ताह में एक बार होता था। उस दिन को छोड़कर शेष दिनों में पुस्तकों का पठन-पाठन, जप-ध्यान, उपदेश देना, भक्तों को दर्शन देना आदि होता था। बीच-बीच में आप कहा करते थे कि **"बीमारी भी कुछ सिखा जाती है हम लोग यहां एकान्त में आ गये हैं, मौका लगा है, इसलिये सीख लेना चाहिए।"** इस बीच भी कई अनुभव हुए हैं। कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों जैसे नेत्र तन्त्र, योग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, लौगक्षिसूत्र, सारस्वत कुण्डलिनी योग आदि का पठन-पाठन होता रहा। पूज्यपाद नित्यप्रति श्रीबगलामुखी रहस्यं ग्रन्थ में दिये षडाम्नाय पूजन, लघु षोढान्यास, महा षोढान्यास का श्रवण करते थे। इस बीच उन्होंने कई लोगों को मन्त्रोपदेश देकर कल्याण किया। मुझे भी कई गुह्य उपदेश दिये। मार्च महीने में प्रति सप्ताह के हिसाब से चार डायलेसिस हुए।

संस्थान के परकोटे में रहते रहते बहुत दिन हो गये थे, अस्तु डा. साहब (श्री रमेश कुमारजी) की अनुमति से सायंकाल ५ बजे से ६ बजे तक कार द्वारा भ्रमण भी होने लगा। इस काल में दिल्ली में स्थित सभी मंदिरों, ऐतिहासिक इमारतों, विरला मन्दिर, जन्तर मन्तर, जमुना किनारा देखा। थोडी देर के लिये किसी पार्क में बैठ जाते थे। कुर्सी साथ में रहती थी पार्क में भी दर्शनार्थियों की भीड़ लग जाती थी। पूज्यपाद जी को अपने गुरु का ऐसा आशिर्वाद था कि **जहाँ भी रहेंगे, जन समूह उनके साथ रहेगा और ऐसा ही होता था।** एक घण्टे बाद पुनः अस्पताल वापिस आ जाते थे।

पूज्यपाद स्वर शास्त्र के अच्छे अध्येता रहे हैं। अपना एक अलग से पञ्चांग **'स्वरोदय पञ्चाङ्ग'** के नाम से बनाते हैं। प्रतिवर्ष चैत्र की प्रतिपदा संवत्सर के दिन वर्ष भर का फल लिख देते थे और फल में जो लिख दिया जाता था वैसा ही होता था। इस वर्ष चैत्र नवरात्र अस्पताल में ही शुरु हुए, अस्तु उन्होंने पञ्चांग का फल अस्पताल में ही लिखा। पाठकों के लिये ये पूज्य श्री द्वारा स्वरोदय के आधार पर लिखा गया। **संवत् २०३६ का फल** दिया जा रहा है –

"संवत्सर का फल शुभ है। तत्त्व पृथ्वी और जल मिश्रित है। योगाभ्यास भजन, जपतप और धार्मिक कार्य करने वालों के लिये शुभ। राजनैतिक लोगों को अडचने पैदा होंगी। किन्तु सुलझ जायेंगी। धन, मीन, वृश्चिक, मेष, कर्क राशि वालों को अच्छा। वृष, तुला, कन्या, मिथुन, मकर और कुंभ राशि वालों को सामान्य। सिंह राशि वालों को सम। गर्मी में हवा आंधी रहेगी। वर्षा अधिक। सर्दी सामान्य। व्यापार का काम भी ठीक रहेगा।"

पीठ से तथा अन्य स्थानों से सेवक बन्धु प्रायः दर्शनार्थ आते रहते थे। विशेषकर

रविवार को दर्शनार्थियों की भीड़ अधिक रहती थी। कोई दिन ऐसा नहीं होता था जिस दिन ५०-६० दर्शनार्थी न आते हों। एक दिन झांसी से प्रमोद (बाबू रामकृष्ण वर्मा के पुत्र) दर्शनार्थ आये। महाराज जी ने पूछा – **तुम्हारे मां बाप नहीं आये क्या?** इसके दूसरे ही दिन दादा और अम्मा, परमेश्वरी दयाल तथा लाल गोपाल पूज्यपादजी के दर्शनार्थ आ गये। उरई से श्री मानिकचन्द जी शर्मा के साथ श्री गोपालदास जी मिश्र आये। जैसे ही प्रणाम किया, वैसे ही पूज्यपाद जी ने पूछा – **तुम आ गये, बैठो और अपनी गोदी में खींच लिया।** श्री गोपालदास जी ने अपनी एक बात का संदेह दूर करने के लिये कई बार निवेदन करने पर पूज्यपाद जी ने उत्तर दिया **बातें गलत नहीं होती।** इन्हीं दिनों श्री रेवाराम जी तिवारी भी दर्शनार्थ आये। जैसे ही ढोक दी महाराज जी ने पूछा – **मास्टर, तुम इतने दिनों बाद क्यों आये?** मास्टर – महाराज जी, मेरी पूजा की ड्यूटी थी। महाराज – **अच्छा, स्थान पर सब ठीक है?** मास्टर – जी महाराज। फिर बहुत सारे फल खाने को दिये और कहा **खाओ यहां बैठ कर।** पीठ के सभी सेवकों ने बारी-बारी से दिल्ली आकर पूज्यपाद जी के दर्शन किये। महाराज जी के अन्तरंग सेवक-बड़े गोस्वामी, मुन्ना, विजय, देवेन्द्र, राजेन्द्र, बादाम, लच्छी, देवेन्द्र सिंह, गजराज, डामरेश्वर, अशोक, आलोक, श्रीकान्त सक्सेना, लक्ष्मणदास आदि आये और महाराज जी की सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया। श्री जे. के राव, नाहरचाचा, बी. के. सक्सेना भी आये। श्री हरिराम जी सांवला और पं. विष्णुकांत जी मुडिया को भी एक विशेष कार्य हेतु दिल्ली बुलाया गया। महाराज जी अपने सभी सेवकों पर विशेष कृपा करते थे। पीठ से आने वाले सेवकों से महाराज जी प्रायः प्रश्न करते थे – स्थान पर कैसा चल रहा है? माई की पूजा आदि ठीक चल रही है? इसी बीच श्री ललिता प्रसाद जी शास्त्री ने आकर स्थान की व्यवस्था सम्बन्धी सारी जानकारी निवेदन की। एक दिन बाबा रामदास जी पीठ से दर्शन करने आये। जैसे ही प्रणाम किया – **पूज्यपाद जी ने पूछा – कौन है?** किसी ने कहा बाबा जी। मेरी और संकेत करते हुए – **इन्हें सब लोग 'बाबा' कहते हैं।** फिर बाबा जी से – **तुम यहाँ क्यों आये हो? तुम्हें तो स्थान पर ही रहना चाहिए था। माई की पूजा आदि देखनी थी।** इससे स्पष्ट है कि महाराज श्री को, दिल्ली में रहते हुए भी स्थान माई की पूजा आदि का कितना ध्यान था। इन्हीं दिनों पीठ के ही श्री पं. कृष्णानन्द जी बुधौलिया एक दिन की अनुमति पर पूज्यपाद जी के दर्शनार्थ दिल्ली आये। पूज्यपाद जी उस समय लौंगाक्षिसूत्र-ग्रन्थ का पठन कर रहे थे। बुधौलिया जी से – **तुम्हारे घर का यह लौंगाक्षि सूत्र है।** बुधौलिया जी पुस्तक प्रेमी तो थे ही, महाराज श्री के चरणों में बैठकर उन्होंने पन्द्रह दिन तक अध्ययन किया और दर्शन लाभ लेते रहे। नागपुर से श्री शिवनाथ शर्मा भी कई बार आये। श्री कोठारी जी तथा रेखी जी ने भी आकर दर्शन लाभ लिया।

मार्च का महीना पुरा डायलेसिस होता रहा। अप्रेल प्रारम्भ हो गया था। बीच में उन्होंने पेट दर्द की शिकायत की। जांच के बाद डाक्टरों ने बताया कि गॉल ब्लैडर में बजरी के छोटे छोटे टुकडे इकठ्ठा हो गये हैं। इस दर्द का भी उपचार हुआ। **१५ अप्रैल '७९** तक डायलेसिस क्रम सप्ताह में एक बार रहा। उसके बाद जांच के बाद डाक्टरों की राय से पूज्य श्री का डायलेसिस सप्ताह में दो बार किया जाने लगा। इसके लिये मंगलवार और शनिवार निश्चित हुए। अब तक कुल मिलाकर महाराज श्री का स्वास्थ्य सामान्य रहा। पं. कमलापति त्रिपाठी, उपराष्ट्रपति श्री बी. डी. जत्ती, राजा दिनेश सिंह, संचार मंत्री श्री ब्रजलाल वर्मा, विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री शीतला सहाय्य स्वास्थ्य मन्त्री म.प्र. शासन आदि ने भी महाराज जी का दर्शन लाभ किया। अन्य कई श्रद्धालु भक्तों ने भी उनकी चरणरज लेकर अपने को कृतार्थ किया। पूज्यपाद जी ने श्री. पं. कमलापति को चिद्विलास तथा संस्थान के प्रो. एवं महाराज श्री के चिकित्सक डा. रमेशकुमारजी को वैदिक उपदेश ग्रन्थ पढ़ने को दिये। पुस्तक देने के बाद पूज्यपाद जी ने डा. साहब से तब तक पुस्तक सम्बन्धी प्रश्न करते रहे जब तक कि उन्होंने पूरा ग्रन्थ पढ़ नहीं लिया। प्राय: सभी डाक्टरों तथा संस्थान के अन्य प्रशासनिक अधिकारियों का रुख हम लोगों के प्रति सौहार्द्रपूर्ण रहा।

चूंकि महाराज श्री का डायलेसिस होते रहना है अस्तु राजमाता सिंधिया द्वारा एक डायलेसिस मशीन क्रय कर ग्वालियर मेडीकल कालेज को दान स्वरूप दी गई। अपने विशेष प्रयास से मशीन संचालन हेतु एक योग्य डाक्टर की नियुक्ति भी करवा दी। इस प्रकार राजमाता ग्वालियर के अथक प्रयास से ग्वालियर मेडिकल कालेज में डायलेसिस यूनिट की स्थापना हो गई। इधर वैद्य पं. रामनारायण जी शर्मा द्वारा भी झांसी मेडीकल कॉलेज में एक मशीन लगवाने का प्रयास किया गया। इस व्यवस्था के पीछे यह उद्देश्य था कि महाराज जी पीठ से ग्वालियर अथवा झांसी जाकर डायलेसिस करा आया करेंगे। अप्रैल मास समाप्त होने को हुआ। बीच में एकाधबार महाराज जी के स्वास्थ्य में कमी आयी फिर सामान्य हो गया। उनका ध्यान-जप बराबर चालू था। पूज्य श्री मुख से यह भी कहते सुना कि **''अब हमारा कार्य पूरा हो गया है''**।

पूज्यपाद जी विद्वानों से, संस्कृतज्ञों से विशेष लगाव रखते थे कोई विद्वान दर्शन करने आता था तो उन्हें तुरन्त बुला कर अपने चरणों में बैठा लेते थे चाहे वे किसी भी अवस्था में हों। इन्हीं दिनों डा. प्रभुदयाल जी अग्निहोत्री अपनी अमेरिका यात्रा के पूर्व महाराज श्री के दर्शनार्थ आये। पूज्यपाद जी लेटे थे, सायंकाल का समय था। जैसे ही निवेदन किया, तुरन्त तख्त पर विराज गये और डा. साहब को बुलाया।

थोड़ी देर तक शास्त्र चर्चा हुई प्रसाद स्वरूप कुछ फल आदि दिये फिर कहा – **अग्निहोत्री जी, आप विदेश जा रहे हैं भारतीय संस्कृति का प्रचार करना।** डा. साहब की महाराज श्री पर अटूट श्रद्धा थी।

मई महीने की आठ तारीख को जोशी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज, पूज्यपाद के दर्शनार्थ पधारे। आते ही कुशल क्षेम पूछा फिर सेवकों की ओर संकेत कर कहा कि स्वामीजी तो आप सब लोगों को सेवा का मौका दे रहे हैं। ये चाहें तो स्वयं को आज ठीक कर लें। **पूज्य श्रीचरण मुस्करा कर बोले – इस शरीर के रख रखाव के लिये चिन्ता नहीं की गई। इधर कभी सोचा ही नहीं।** इसी बीच आचार्य भागवतानन्द जी ने भी महाराज श्री के दर्शन किये।

दिनांक ११-५-७९ की रात्रि को पीठ पर वापिस चलने का तय हुआ। दि. १२-५-७९ शनिवार को प्रातः ६ बजे संस्थान से डिस्चार्ज होकर हवाई जहाज द्वारा हम लोग महाराज श्री के साथ ग्वालियर लगभग ८.०५ प्रातः पहुँचे। ग्वालियर विमानतल के बाहर एकत्र जन समूह महाराज जी के दर्शनार्थ हर्षोल्लास के साथ माई और महाराज की जय बोल रहा था। अपार भक्त समूह ने महाराज श्री के दर्शन किये। बाहर कार तैयार थी जिसमें बैठकर पूज्यपाद के साथ हम लोग दतिया पीठ के लिये रवाना हुए। लगभग साडेदस बजे पीठ के मुख्यद्वार पर पहुँचे जहाँ भक्त जन बड़ी उत्सुकता से पूज्यपाद के दर्शन हेतु खड़े थे। श्री. पं. ललिता प्रसाद जी शास्त्री तथा अन्य सभी पण्डितों ने स्वस्तिवाचन से महाराज जी का स्वागत किया और कुएँ तक आते आते बराबर स्वस्ति वाचन होता रहा। पूज्यपाद स्वस्तिवाचन से इतने आनन्दित हुए कि जब तक पण्डितों ने स्वस्तिवाचन पूरा नहीं कर लिया तबतक वे कार में ही विराजमान रहे। उपस्थित जन समुदाय ने महाराज श्री के दर्शनों का लाभ लिया। नये रास्ते से व्हील चेयर द्वारा पूज्यपाद बगिया से मन्दिर की दालान में आये। आते ही उन्होंने मां पीताम्बरा के दर्शनों की इच्छा की। माई का मन्दिर खोला गया। महाराजजी माई के दर्शनों के लिये मन्दिर में बिना किसी सहारे के आये, उसीसमय अचानक बिजली चली गई। किसी सेवक ने महाराज जी से कहा कि बत्ती चली गई है। महाराज जी तुरन्त बोले कि **हमें उस बत्ती से क्या करना? दर्शन तो दूसरी लाइट से करेंगे।** इससे यह स्पष्ट है कि पूज्यपाद माई के दर्शनों के लिये कितने उत्सुक थे। मन्दिर में सदा की तरह जैसे जप के लिये विराजते थे ठीक वैसे ही माई के सामने पद्मासनस्थ होकर माई की ओर देखा। उस समय माई की दिव्यता देखने ही बनती थी। **महाराज जी ने माई की ओर देखा और माई ने महाराज की ओर।** वह दृश्य आज भी दिख रहा है। अपने श्रीमुख से माई की जय बोली। सभी ने उनके बोल का अनुसरण किया। उस समय एक विचित्र हर्ष का वातावरण

था जो देखते ही बनता था। थोडी देर मन्दिर में विराजने के बाद अपने मूढापर आये। हां उन्होंने थोड़ा सा भोजन किया। बीच बीच में सभी से कुशल-क्षेम पूछते जाते थे। भोजन के बाद शयनकक्ष में यह कहकर लेट गये कि सायंकाल स्थान के अन्य सभी देवताओं के दर्शन करेंगे।

आज स्थान पर पहले की भाँति रौनक थी। स्वामी जी विश्राम से उठे, चाय ली फिर स्थान घूमने की इच्छा की। महाराज जी व्हील चेयर पर विराज गये। दो सेवक बगिया से बने नये दरवाजे से ही व्हील चेयर लेकर चल दिये, साथ में अन्य सेवक बंधु भी थे। पीछे से संस्कृत परिषद, वहां बने कमरों तक पहुँचे। रास्ते में श्री बाबूलालजी गुप्त से महाराज श्री ने पूछा – **कहो, बाबू क्या हाल है?** उत्तर – महाराज जी कृपा है। वहां से होते हुए साधकावास की ओर पहुंचे। बाबा रामदास जी से – **कहो, रामदास कैसे हो? पूजा पाठ ठीक चल रहा है?** उत्तर – आपकी कृपा से सब ठीक चल रहा है। बीच बीच में कई नन्हें मुन्नों को भी लाड़ किया। कुर्सी पर ही बैठे बैठे सरस्वती मन्दिर देखा। फिर धूमावती माई के दर्शन कर कुछ देर के लिये वहीं मूढा पर विराज गये। उपदेश देते रहे। बडी भीड़ थी। फिर भगवान परशुरामजी के दर्शन कर वापिस उसी रास्ते से बगिया में आ गये। रास्ते में सेवकों से पूज्यपाद जी बोले – **स्थान बन गया है, सब मिलकर रहना। पूजा-पाठ करते रहना। यह दिव्यता एक हजार वर्ष तक ऐसी ही बनी रहेगी।** चन्द्र प्रकाश अंगल से – **तुम जब १० वर्ष के थे तब कैसा था? और अब कैसा है?** आदि आदि। चूंकि थकान अधिक थी, इसलिये विश्राम की इच्छा की और बगिया में ही तख्त पर लेट गये। लगभग रात्रि के दो बजे भोजन के लिये निवेदन किया। आदेश हुआ कि अभी रुको। फिर थोडी देर बाद स्वयं कहा कि लाओ, क्या बनाया है? जो कुछ बना था, पाया और बगिया में ही लेट गये। लेटे लेटे उन्हें स्मरण हो आया कि पं. किशोरी दास जी बाजपेयी द्वारा भेजे ग्रन्थ पर उन्हें सम्मति भेजना है। तत्काल मुझे आदेश दिया कि व्रजनन्दन जी शास्त्री को बुलाओ। शास्त्रीजी आ गये। शास्त्री जी से – **देखो, यह किताब आयी है, इस पर सम्मति लिखना है सो समझ कर बहुत संक्षेप में लिखना, ज्यादा लम्बी नहीं।** थोडी देर बाद निद्रा देवी की कृपा हो गई।

दि. १३-५-७९ को प्रात:काल उठे। फरमाया कि आज नींद अच्छी आयी। प्रात:काल की चाय लेकर सदा की भांति मूढा पर विराज गये और मुझे बुलाया – चलो मास्टर, दिल्ली से जो पुस्तकें लाये थे, ले आओ। मैं फौरन पुस्तकों के बंधे बण्डल ले आया और एक एक पुस्तक खोल कर दिखाता गया। महाराज जी के पास श्री पं. ललिता प्रसादजी, श्री व्रजनन्दनजी, तथा अन्य कई सेवक बन्धु थे। सेवकों से – **देखो, हम दिल्ली ऐसे ही नहीं गये थे। कैसी-कैसी अभूतपूर्व पुस्तकें आ**

गईं हैं – यह नेत्रतन्त्र है, यह लौंगाक्षि सूत्र है, यह सारस्वत कुण्डलिनी महायोग है। एक एक कर सभी पुस्तकों का महाराज जी ने अवलोकन किया। इधर दर्शनार्थियों का तांता लगा था। बारी बारी से सब लोग दर्शन लाभ ले रहे थे। आज दोपहर को भोजन नहीं लिया। केवल मट्ठा लेकर विश्राम के लिये शयन कक्ष में आ गये, थोड़ा सा विश्राम किया, शाम को उठे। चाय आदि ली। शौच आदि से निवृत्त होकर फिर थोड़ी देर मूढ़ा पर विराजमान हो गये। हल्का सा पेट में दर्द महसूस किया। दर्द का केपसूल दिया गया। लाभ हो गया। कुछ देर बाद निद्रा महसूस करने लगे और फिर लेट गये। रात्रि के समय थोड़ा सा भोजन लिया। सेवकों को उपदेश देते रहे और बगिया में ही लेट गये। इसके बाद कोई दर्द नहीं हुआ।

दिनांक **१४-५-७९** सोमवार को प्रातः बेला में उठे। शौच आदि से निवृत्त होकर चाय ली। बाहर आकर सदा की भांति मूढा पर विराज गये। **पं. ओमनारायणजी से – पाठ ठीक चल रहा है?** उत्तर – जी, महाराज। बीच में छोटे छोटे बालक बालिकाओं को प्रसाद भी वितरित करते जाते थे। भक्त लोग दर्शन कर रहे थे। आज फिर ग्वालियर के लिये प्रस्थान करना था, इसलिये निवेदन किया गया। दोपहर भोजनोपरान्त कुछ देर विश्राम किया लगभग ४ बजे उठे। दर्शनार्थियों की बहुत भीड थी। श्री माता मन्दिर के पीछे बने नये कमरे में आप विराजमान थे। सेवक लोग चरणों में बैठे थे। अपने उपदेशामृत से सबको तृप्त कर रहे थे। अपने जीवन के कुछ संस्मरण, आख्यान सुना रहे थे। बीच बीच में ही – **मैं पहले बहुत अच्छा कथावाचक रहा।** महाराज जी के वचन इतने अच्छे लग रहे थे कि किसी को उठने की इच्छा ही नहीं हो रही थी। इतने में आदेश हुआ कि चाय लाओ। चाय बना कर हाजिर कर दी। आधा कप लिया। ताम्बूल लिया। इतने में शाम के ६ बज गये। इधर ग्वालियर जाने की तैयारी कर ली गई। आवश्यक सामान गाड़ी में रख दिया गया। गाड़ी तैयार थी। अपने अन्तिम उपदेश में पूज्यपादजी ने सबसे यही कहा – **सब मिलकर रहना, पूजा पाठ नियमित करते रहना। पं. सूर्यदेव जी से बोले – चलो, भाई अब चला चली का समय है। माई की पूजा होती रहे, इसका ध्यान रखना। माई एक हजार वर्ष तक रहेगी। माई की पूजा दीक्षित पुजारियों द्वारा पद्धति के अनुसार होती रहे – इसका पूरा ध्यान रखना।** यह सब संदेश देकर माई का दर्शन कर व्हीलचेयर पर बैठ कर कार तक आये। जैसे ही कार में विराजे, वर्षा की बूंदें पड़ना शुरू हो गई। पूज्यपादजी के साथ पं. सूर्यदेव जी, श्री हरिराम जी सांवला, वनमाली, विनय, भोलानाथ, ध्यानेन्द्र सिंह, गजराजसिंह, श्री वेणी माधव जी शास्त्री तथा कुछ अन्य सेवक थे। दतिया से लगभग ७ बजे चल कर ग्वालियर लगभग रात्रि के ९ बजे पहुँच गये। यहाँ राजमाता के शान्तिनिकेतन, जहाँ केवल महात्मा ही ठहरते थे, में ठहरने की व्यवस्था थी। शान्ति निकेतन में पहुँचने पर राजमाता ने पूज्यपाद की

आरती उतारी। महाराज जी को कमरे में लाये जहाँ उन्होंने थोड़ी देर विश्राम किया फिर थोड़ा भोजन दूध आदि लेकर रात्रि भर विश्राम किया। श्री मुख से यह सुनने को मिला कि यहाँ हम एक बार पहले, जब आबू से लौटे थे, आये थे।

दिनांक १५-५-७९ मंगलवार को प्रात: नित्य कर्म से निवृत्त होकर डायलेसिस के लिये तैयार हो गये। लगभग ८ बजे पूज्यपाद जी को कार द्वारा मेडीकल कॉलेज लाये, जहाँ डायलेसिस की व्यवस्था थी। यहाँ भी भक्तजनों की बड़ी भीड़ थी, सब लोग दर्शन कर लाभ ले रहे थे। कुछ देर बाद डायलेसिस कक्ष में पधारे जहाँ उन्हें ४ घण्टे के लिये डायलेसिस पर रक्खा गया, किन्तु दुर्भाग्यवश दिल्ली की अपेक्षाकृत डायलेसिस ठीक नहीं हुआ, क्योंकि डायलेसिस के फौरन बाद पूज्य श्री के शरीर में कपकपी हुई जो अच्छा सूचक नहीं था। अस्पताल से वापिस शांति निकेतन आये। रक्त आदि की जांच जारी रही। डॉ. अजय शंकर जी, जो महाराज जी के कन्सल्टेन्ट नियुक्त किये गये थे, को बुला गया। उनके विचार से डायलेसिस होने से महाराज जी के शरीर में नमक की कमी आ गई है, अस्तु नमक दिया जाना चाहिए। शान्ति निकेतन में ही यह सब व्यवस्था की गई। ३ दिन तक डॉ. अजय शंकर जी के ही निर्देशन में औषधि दी जाती रही। इस हेतु ३ डाक्टर नियुक्त किये गये। दि. १८-५-७९को डा. पाराशर (जो महाराज जी के डायलेसिस के लिये नियुक्त थे) को यह शक हुआ कि महाराज जी हाथ में लगा शन्ट कहीं क्लोट तो नहीं हो गया है। उन्होंने शन्ट वाश किया और सुबह डायलेसिस के लिये निर्देशित किया। दिनांक १९-५-७९ को उसी वाश किये शन्ट से डायलेसिस किया किन्तु आज भी ठीक नहीं हुआ। जैसेतैसे किया लेकिन शन्ट पूरी तरह क्लोट हो गया था। इसी बीच यह विचार हुआ कि मुम्बई से स्थायी फिस्चूला के लिये किसी विशेषज्ञ को बुलाया जाय। इस हेतु वैद्य जी (श्री रामनारायण जी शर्मा) के माध्यम से दिनांक २०-५-७९ को मुंबई अस्पताल के डा. श्री. सुरेश त्रिवेदी, प्रमुख किडनी यूनिट, बाम्बे हॉस्पिटल आये और देख गये। उन्होंने राय दी कि वहां (मुम्बई) के डा. देवेन्द्र सक्सेना फिस्चूला बनाने में माहिर हैं उनको मैं भेज दूंगा। चूंकि डायलेसिस का समय हो रहा था इसलिये डॉ. पाराशर जी एवं डॉ. नावकर द्वारा दिनांक २४-५-७९ गुरुवार को नया शन्ट पैर में लगाया गया। इस शन्ट के तैयार होने में पूज्य श्री को तकलीफ हुई और समय भी अधिक लगा। दिनांक २५-५-७९ को पैर में लगे शन्ट से डायलेसिस किया गया किन्तु यह भी उतना अच्छा नहीं हुआ। डा. साहब की राय के अनुसार कि आज का किया हुआ डायलेसिस दोन दिन काम दे जाएगा, इसलिये फिस्चूला के लिये मुम्बई ले जाना चाहिए। दूसरे दिन दिनांक २६-५-७९ को सुबह मुम्बई के डॉ. देवेन्द्र सक्सेना आये। उन्होंने भी पूज्यपाद को देखकर यह निर्णय लिया कि उन्हें फिस्चूला के लिये मुम्बई चलना चाहिए। सायंकाल लगभग ५ बजे, जब पूज्यपाद

मूढे पर विराजमान थे, तब उन्होंने अपना निवेदन किया। स्नेहलता शर्मा (बड़ी बहू), राजमाता, पं. सूर्यदेव शर्मा, श्री ब्रजेन्द्र शर्मा तथा अन्य सेवकों ने भी इसी निवेदन को दुहराया। पूज्य श्री ने सेवकों के निवेदन को ठुकराया नहीं और अपनी सहमति दे दी। साथ में यह भी कहा कि जैसा तुम लोगों को अच्छा लगे, वैसा करो। इसके पहिले दिनांक २५-५-७९ को रात्रि **महाराज श्री की आज्ञा हुई कि दतिया चलना चाहिए किन्तु डाक्टरों की राय नहीं थी इस वजह से पं. सूर्यदेवजी शर्मा को बुलाकर कहा कि स्थान पर जाकर देख आओ कि काम ठीक चल रहा है कि नहीं।** वे त्रिकाल दर्शी थे, उन्हें कोई बात दिखी होगी, साथ ही पीठ से लगाव अधिक होने से उन्होंने पं. सूर्यदेवजी शर्मा को भेजा। दिनांक १४-५-७९ से २६-५-७९ तक के १३ दिनों के ग्वालियर प्रवास काल में पूज्य महाराज जी का स्वास्थ्य दिल्ली की अपेक्षा कृत अच्छा नहीं रहा लेकिन इस बीच भी सुबह और शाम एक निश्चित समय पर भक्त जनों को दर्शन लाभ देते रहे और न जाने कितने लोगों ने उनके दर्शन पाकर अपने को कृतार्थ किया। पूज्यपाद जी के लिये भिक्षा श्री पं. वेणी माधव जी के यहाँ – से आती थी।

पूज्यपाद जी की स्वीकृति के बाद दिनांक २६-५-७९ की रात्रि को तय हुआ कि फिस्चूला के लिये मुम्बई चलना है। अस्तु रात्रि में ही आवश्यक तैयारी कर ली गई। दि. २७-५-७९ रविवार को प्रात: ५ बजे कुतुब एक्सप्रेस से चलकर हम लोग लगभग साडेदस बजे दिल्ली पहुँचे। पूज्यपाद जी के साथ पं. सूर्यदेवजी, विनयजी, डा. पाराशर आदि थे। ग्वालियर स्टेशन पर ही पूज्यपाद के सभी अन्तरंग सेवक दर्शनार्थ पहुँच गये थे। दिल्ली स्टेशन से कार द्वारा हम लोग सिन्धिया विला के लेखा लॉज में आये जहाँ पीठ के सेवक श्री ध्यानेन्द्रसिंह तथा श्री भोलानाथ सक्सेना ने ठहरने की सारी व्यवस्था कर रक्खी थी। दोपहर भोजनोपरान्त महाराज श्री ने कुछ देर विश्राम किया। उसी दिन हवाई जहाज से बम्बई जाने की व्यवस्था हो गई। सायंकाल महाराज जी के शिष्य श्री गौड़जी (वैद्य रामनारायण जी के बड़े दामाद) महाराज श्री के दर्शनार्थ आये, साथ में पूज्यपादजी के लिये जलपान भी लाये। पूज्यपाद जी ने हलका सा जलपान किया। गौड़ जी दर्शन कर कृतकृत्य हो गये। हम लोग कार द्वारा पालम विमानतल पर लगभग .७ बजे पहुंच गये। विमान (एअरबस) नं. ४०५ तैयार था और हम लोग महाराज जी के साथ विमान (एअरबस) में बैठ गये। विमान अपने निश्चित समय ७.२० पर मुम्बई के लिये रवाना हुआ। हम लोग १ घण्टा ४० मिनट के बाद रात्रि के ९.०५ पर मुम्बई विमानतल पर पहुँच गये। यहाँ पहले से ही महाराज जी के सेवक श्री सरियाजी, डा. सुरेन्द्र मिश्र तथा अन्य कई सेवक प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोग कार द्वारा मुम्बई अस्पताल लगभग १० बजे पहुंच गये, वहाँ ६वी मंजिल के व्ही.आई.पी. कमरा नं. ६३० में ठहरने की व्यवस्था थी। चूंकि दिन भर की थकान थी इसलिये थोड़ा सा आहार लेकर महाराज जी लेट गये। इसी बीच

डाक्टरों द्वारा पूज्यपाद का आवश्यक परीक्षण कर लिया गया। कुछ ग्लूकोज भी दे दिया गया।

दिनांक २८-५-७९ सोमवार को प्रात: ५ बजे उठे। बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे। चाय आदि ली। इस बीच मुझे संकेत करके कहा – **हम लोग मुम्बई आ गये हैं, बहुत दूर है। यहाँ हम इसके पहले सन् १९२६ में आये थे।** इसके बाद शौच आदि से निवृत होकर कमरे में रक्खी कुर्सी पर विराज गये। पं. सूर्यदेवजी शर्मा भी थे। हम लोगों (विनयजी और मुझे) को पुचकारने लगे। लगभग ११ बजे पूज्य श्री को फिस्चूला के लिए आपरेशन थियेटर ले गये, जहाँ डॉ. देवेन्द्र जी द्वारा महाराज जी के दूसरे हाथ में फिस्चूला बना दिया गया जो लगभग १० दिन बाद काम दे सकता था। ऑपरेशन थियेटर से वापिस अपने कमरे में आये। महाराज जी को थोड़ा सा भोजन देकर विश्राम करा दिया। स्वास्थ्य सामान्यत: ठीक रहा। रात्रि को आज भी ग्लूकोज दिया गया। रक्त की जांच भी होती रही। दिनांक २९-५-७९ मंगलवार को प्रात: ४ बजे पेट दर्द की शिकायत की। तुरन्त दर्द की दवा दी गई, थोडी देर बाद निद्रा आ गई। आज सबेरे अन्य औषधियों के अलावा महाराज जी को नस द्वारा ग्लूकोज दिया जा रहा था कि अचानक खूब जोर से सांस उखडी। डा. सुरेन्द्र मिश्र के साथ अन्य कई डाक्टर भी आये। श्वास का उपचार किया गया। थोड़ा अन्तर आया, लेकिन डाक्टर लोग इस नतीजे पर पहुँचे कि किसी भी तरह आज डायलेसिस हो जाना चाहिए। इधर पैर में लगे शन्ट को डाक्टरों ने देखा तो पाया कि यह शन्ट भी क्लोट हो गया है और डायलेसिस इस शन्ट से होना असम्भव है। हाथ वाला शन्ट तो पहिले से ही खराब हो गया था। अब डायलेसिस की समस्या हो गई कि कैसे डायलेसिस हो? उसी दिन लगभग ४ बजे सायंकाल जब महाराज जी को डायलेसिस यूनिट में ले जाया जा रहा था तब हम लोगों को संकेत देकर कहा **कि देखो, हो सकता है कि इस भौतिक शरीर से हमारा अलगाव हो जाये, हम सूक्ष्म शरीर से तुम लोगों को देखते रहेंगे और तुम्हारे साथ रहेंगे घबड़ाना नहीं।** यह कह कर पूज्यपाद डायलेसिस यूनिट में आ गये जहाँ डाक्टरों ने अपने एक विशेष तरीके से डायलेसिस करने का प्रयास किया लेकिन सफलता नहीं मिली अर्थात् डायलेसिस नहीं हो पाया। महाराज जी की हालत बिगड़ती गई। यह स्थिति देखकर पूज्यपाद जी को आई.सी.सी. यूनिट में लाया गया। महाराज जी की इस गंभीर चिंताजनक स्थिति की सूचना टेलीफोन द्वारा पीठ तथा अन्य आवश्यक स्थानों पर दी गई। पूज्यपाद केवल इतना ही बोल रहे थे – चलो हांको, ले चलो। डाक्टरों के पास डायलेसिस का एक तरीका और था, जो पेरीटोनियल डायलेसिस के नाम से जाना जाता है, और यह २४, ३६, ४८ और ७२ घंटे तक लगाया जाता है। महाराज श्री को भी दि. २९ मई की रात्रि को आई.सी.सी. यूनिट में ही ४८ घंटे के

लिये इसी पेरीटोनियल डायलेसिस पर रक्खा गया। इस बीच उनका रक्तचाप घटने लगा। कभी सामान्य हो जाता था, कभी घटने लगता था। दि. ३० मई को जसलोक अस्पताल के डायलेसिस विशेषज्ञ डा. मणि को बुलाया गया। उन्होंने भी इसी पेरीटोनियल डायलेसिस का सुझाव दिया। इस बीच महाराजजी को २ यूनिट रक्त भी दिया गया। रक्तदान श्री रुद्र राय (श्री पं. सूर्यदेव जी शर्मा के भानजे तथा मेजर साहब के सुपुत्र) तथा श्री विश्वम्भर बूवना जी के सुपुत्र द्वारा किया गया किन्तु डायलेसिस नहीं हो सका। अब तो पूज्यपाद का बोलना भी बन्द हो गया। ऐसा लगता था मानो प्रगाढ़ निद्रा में हों। डाक्टर लोग अपने उपचार के प्रयास में लगे थे। इधर राजमाता सिंधिया ने दि. ३१-५-७९ को रात्रि को स्वप्न में देखा कि पूज्यपाद जी की ओर एक काले पंखों वाला पक्षी झपट रहा है लेकिन फिर कुछ ही क्षणों में उस काली छाया को हटाने के लिये एक पीले सुनहरे पंखों वाला पक्षी आकर महाराज जी को अपने पंखों के नीचे रख लेता है।

दिनांक १-६-७९ शुक्रवार को महाराज श्री का रक्तचाप घटकर ८० हो गया। रक्तचाप को सामान्य बनाने के लिये डाक्टरों ने अपना हर संभव उपचार किया लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। दिनाक २-६-७९ शनिवार को प्रात: पूज्यपाद का रक्तचाप सामान्य होने की स्थिति आयी और डाक्टरों ने उसी दिन लगभग दो बजे से हीमोडायलेसिस पर रखने के लिये सोच लिया था किन्तु अचानक फिर रक्तचाप कम हो गया और ६० पर पहुँच गया। यह बात लगभग १ बजे दिन की है। डाक्टर लोग महाराज की छाती पर बड़ी तेजी से हाथ मलने लगे। हम लोग भी वहीं पास में बैठे पूज्यपाद जी द्वारा बताया हुआ जप कर रहे थे। तेजी से उठे और देखा कि महाराज श्री की आंखें बन्द हैं। हृदय गति बिल्कुल मंद पड़ गई थी। उसी समय तुलसी-दल मिला हुआ एक कटोरी गंगा जल उनके श्रीमुख में डाल दिया। इसी बीच गीता के १५ वें अध्याय का पाठ भी सुना दिया। कुछ ही क्षणों में पूज्य श्री की हृदय गति बिल्कुल बन्द हो गयी, ऐसा लगा कि पूज्यपाद जी ने अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में रख लिया है। महाराज जी की मुख स्थिति से ऐसा लग रहा था कि उन्होंने प्राणों को रोककर समाधि ले ली हो। यह स्थिति देखकर डाक्टरों ने अपने अस्त्र ढीले कर दिये और घोषणा कर दी। उस समय दिन का १.०५ था। मुम्बई प्रवास काल में पूज्यपाद की सेवा में पं. सूर्यदेव शर्मा, राजमाता सिंधिया, श्रीमती स्नेहलता शर्मा (बड़ी बहू) श्री सरियाजी, श्री विश्वम्भर बूबना तथा रुद्रराय बराबर रहे। नागपुर से श्री सागर बाबू, प्रदीप मुदाफले, पीठ से श्री माणिकचन्द शर्मा, श्री देवेन्द्र सिंह, श्री गजराज सिंह भी हमारे साथ थे। भोपाल से श्री जगदीश गुप्त भी पहुँच गये थे।

इधर रात भर महाराज जी के साथ हम लोग बैठे रहे। उधर पं. सूर्यदेव शर्मा, श्री जगदीश गुप्त, राजमाता सिंधिया तथा श्री ब्रजेन्द्र शर्मा पूज्यपाद जी को दतिया पीठ पर ले चलने सम्बन्धी प्रयास में लग गये।

दिनांक ३-६-७९ रविवार को प्रात ५ बजे महाराष्ट्र सरकार के विशेष विमान द्वारा महाराज जी के साथ मुम्बई से चल कर हम लोग ९-३० पर ग्वालियर आ गये। यहाँ एकत्र जन समूह अपनी आँखों में अश्रु लिये गर्दन नीचे किये शोकाकुल खड़ा था। यहाँ यह ज्ञातव्य हो कि दि. १२-५-७९ की सुबह को भक्त समुदाय की भीड़ में जो हर्षोल्लास था, महाराज जी के दर्शनार्थ आज उसी विमान तल पर सब लोग शोकाकुल और रुदन अवस्था में हैं। खुली गाडी में बर्फ की सिल्लियों के ऊपर महाराज जी को लेकर हम लोग लगभग १० बजे चल दिये और पीठ के प्रवेश द्वार पर लगभग १२ बजे पहुँचे। महाराज श्री का मुखमण्डल दर्शनार्थ खोल रक्खा था। ऐसा लग रहा था जैसे कि वे निद्रा-मुस्कान में हैं, उठने वाले हैं। वे शान्त एकदम शांत थे। भक्त समुदाय बहुत था। अपनी आंखों में अश्रुधारा लिये, गर्दन नीची किये लोग मौन मुद्रा में खड़े थे। जैसे ही भीड़ ने महाराज जी का दर्शन पाया, रुदन कोलाहल प्रारम्भ हो गया। पूज्यपाद के पार्थिव शरीर ने आश्रम में प्रवेश किया। ऐसा लगता था कि गुरु जी सोये हैं, अब उठने ही वाले हैं। चारों ओर अश्रुधारा प्रवाहित थी। बगिया में पार्थिव शरीर का संस्कार कर माई के सामने कुसुमाच्छादित सुन्दर मंच पर भक्तों के दर्शनार्थ एवं श्रद्धाञ्जलि अर्पण हेतु लाये। इसके बाद लगभग ३ बजे पूज्यपाद जी को स्नान हेतु बगिया में ले आये। स्नान करा कर जैसे ही वस्त्र लंगोट आदि बदलने को हुए, वैसे ही महाराज जी ने मल त्याग दिया। उसी समय पूज्य श्री के कपाल में माचिस की सीक में लगे रोशन के समान छिद्र भी देखा गया, जो इस बात का सूचक है कि महाराज श्री ने दि. २-६-७९ दिन के १.१० से आज ३-६-७९ दोपहर तक २८ घण्टे अपने रोके प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र से अभी अभी जाने दिया है। स्नान के बाद वस्त्र माला आदि धारण कराकर, पुष्पमाला, चन्दन आदि से सुशोभित कर पुनः माई के सामने दर्शनार्थ लाये और लगभग ६ बजे तक दर्शनार्थी लाभान्वित होते रहें। इसके बाद समाधि स्थल पर सम्पूर्ण आवश्यक सामग्री जुटा कर विधिवत् अन्येष्टि संस्कार पूर्ण कर महाराज जी के पार्थिव शरीर को समाधिस्थ कर दिया गया। महाराज जी का अन्तिम संस्कार पीठ के मन्त्री पं. सूर्यदेव जी शर्मा द्वारा किया गया। श्री ललिता प्रसाद जी शास्त्री ने अपने आचार्यत्व में शास्त्रीय विधि से यह सब कार्य कराया।

यहां यह ज्ञातव्य हो कि महाराज श्री को कोई बीमारी नहीं थी। बीमारी का तो उन्होंने बहाना ले लिया था। इस बहाने उन्होंने न जाने कितनों का कल्याण किया और कितने रोगी आये ग्वालियर में लगी डायलेसिस मशीन से लाभान्वित होंगे, यह तो भविष्य बतायेगा।

पूज्यपाद आज समाधिस्थ हो गये हैं किन्तु ऐसा विश्वास है कि वे इस भौतिक जगत् में स्थूल रूप से भले ही न हों किन्तु सूक्ष्म रूप से वे हम सब भक्तों को

देख रहे हैं और देखते रहेंगे। उनका दिव्य वरदहस्त हमेशा हमारे उपर था, है और रहेगा। हम सब का यह पावन कर्तव्य है कि उनके द्वारा बताये मार्ग का अनुसरण करते रहें और उनके निर्देशों का पालन करते रहें।

दिनांक २३ दिसम्बर ७८ से ३ जून ७९ तक पूज्यपाद जी की दैनन्दिनी का विवरण प्रस्तुत कर श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम।

– मास्टर

श्री पीताम्बरा पीठ

वनखण्डेश्वर, दतिया (म. प्र.)

दिनांक 31.12.82

प्रिय मास्टर साहेब।

आप के इस लेख को पढ़कर अभी मन लाभान्वित हुए। दि. 22.5.78 को बम्बई अस्पताल में आपरेशन रूम में जाने से पहले पूज्य पाद ने एक वाक्य कहा था जो शायद जानबूझकर आपने टाल दिया है। आप लोगो को पुचकारने के साथ २ यह भी कहा था कि " तुम लोगो ने माता पिता के समान मेरी सेवा की है मैं बहुत प्रसन्न हूँ" यह वाक्य सुन कर मेरा माथा ठनका और आप से कहा था कि "प्रतीत होता है इस महान आत्मा का यह अन्तिम आभार है"

[illegible]

***

विश्व बन्धुता चिरं विजयताम्

—डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर

विश्वबन्धुता चिरं विजयताम्।
एकात्मता दृढं वर्धताम्॥ध्रु.॥

जगदखिलं कुर्वती पावनम्।
सुप्रसन्नमानन्दकाननम्।
परममङ्गलं लोकजीवनम्।
सुधासरिदियं सदा प्रवहताम्॥१॥

स्वार्थलालसा नैवोद्भवतु।
ईर्ष्या स्पर्धा विलयं यातु।
हिंसा भीतिरनीतिरपेतु।
जने जने सद्बुद्धिरुदयताम्॥२॥

विश्वकुटुम्बं सततं भाव्यम्।
पीडित सेवाव्रतंच सेव्यम्।
सर्वस्वं जनहिताय हव्यम्।
उदारचरितं लोको भजताम्॥३॥

एका पृथिवी सुहिता माता।
मानवधर्मो महितोहि पिता।
भूतदया सा परा देवता।
हृदयमन्दिरे सदा राजताम्॥४॥

***

श्री स्वामी जी का जन्म दिवस

– *वासुदेव गोस्वामी*
वाणी विहार, भरतगढ़
दतिया-४७५ ६६१ (म.प्र.)

ऋषि परंपरा के वर्तमान आदर्श श्री स्वामी जी ने भी अपनी जीवनी के सूत्रों को प्रकट नहीं किया। इस कारण उनके नाम, ग्राम, कुल, परिवार आदि के विषय में निश्चयात्मक रूपेण कह सकना संभव नहीं हो पा रहा है। फिर भी कतिपय प्रासंगिक सन्दर्भों के सहारे श्री चरणों के जन्म दिवस के निर्धारण का प्रयास यहां किया जा रहा है।

प्रारंभ में ही यह निवेदन करना चाहूंगा कि मेरे मन्तव्य को अकाट्य निर्णय समझने की भूल न की जाय।

पीताम्बरा पीठ न्यास के पंजीकरण में श्री स्वामी जी ने दिनांक १७ जनवरी सन् १९७८ ई. को एक शपथ पत्र निष्पादित किया था, जिसमें उन्होंने अपनी आयु ७९ वर्ष बताई। उस दिन विक्रमी संवत् २०३४ की पौष शुक्ल ९ तिथि थी।

महाराज जी का जन्म चैत्र की नवरात्र में हुआ था – इतनी जानकारी पीताम्बरा पीठ के सेवकों को रही है, और मेजर बी. एन. ठुस्सू ने तो अपनी नोट बुक में महाराज जी से ही सुनकर तत्काल लिपिबद्ध भी इसे कर लिया था। दिनांक २१-१-६९ को मेजर बी. एन. ठुस्सू को महाराज जी ने बताया कि वे पिछले ४० वर्ष से शाक्त मार्ग में है तथा चैत्र की नवरात्र में रोहिणी नक्षत्र में उनका जन्म हुआ था। इस सूचना में मेजर ठुस्सू बुधवार भी लिखे हुए हैं; किन्तु ज्योतिष गणना के अनुसार बुधवासरीय रोहिणी नक्षत्र (पंचमी तिथियों को) विचारणीय कालावधि में चैत्र नवरात्र के अन्तर्गत संवत् १९५० वि., १९५४ वि. एवं. १९५७ वि. में हो उपलब्ध होता है। यह तीनों संवत् आगे प्रस्तुत विवेचन के आलोक में सही नहीं ठहरते हैं। कदाचित् भगवान कृष्ण के जन्म का रोहिणी नक्षत्र भी चर्चा में आ गया हो और उसके साथ का बुधवार इसमें भूल से समाविष्ट हो गया हो। जो भी हो बुधवार की संगति जमती नहीं है। अस्तु.

पौष शुक्ल ९ संवत् २०३४ वि. के दिन शपथ-पत्र में घोषित आयु ७९ वर्ष में सार्थकता के हेतु सं. १९५५ वि. अथवा संवत् १९५६ वि. की चैत्र नवरात्र में

जन्म की संभावना पर विचार केन्द्रित करना होगा। संवत् १९५५ वि. की चैत्र नवरात्र से शपथ-पत्र निष्पादन की तिथि को ७९ वर्ष ९ माह की आयु बैठती है जब कि संवत् १९५६ वि. की चैत्र नवरात्र से ७९ वर्ष की आयु पूर्ति के हेतु उस समय ३ माह कम पड़ते हैं। जिनको श्रीचरणों के निकट रहकर उनके व्यवहार की प्रकृति जानने का सौभाग्य मिला है उनका यही मत है कि ७८ वर्ष पूरी होने के बाद ही यह आयु महाराजजी ने बताई होगी। अत: संवत् १९५५ वि. की चैत्र-नवरात्र को ही जन्मदात्री स्वीकार करना उपयुक्त है। मेजर ठुस्सू की नोट बुक में अंकित अन्य घटनाओं के समय का तालमेल भी संवत् १९५५ वि. की चैत्र नवरात्र के जन्म से अपेक्षाकृत अधिक ठीक बैठता है।

महाराज जी का जन्म रोहिणी नक्षत्र में हुआ था और उनकी राशि वृष थी। इसकी पुष्टि श्री किशोरीशरण चउदा ने भी की है। उनकी जन्म कुण्डली में रोहिणी नक्षत्र में जन्म देखकर ही महाराज जी ने चउदाजी से कहा था कि हमारा जन्म भी रोहिणी नक्षत्र का है।

संवत् १९५५ विक्रमी के पंचाङ्ग में चैत्र शुक्ल षष्ठी सोमवार को ११ घड़ी ५० पल रोहिणी नक्षत्र बताया गया है। उसके पूर्व पंचमी रविवार को ५ घड़ी २८ पल कृतिका नक्षत्र अंकित है। अर्थात पंचमी रविवार को – सूर्योदय से २ घंटा ११ मिनट के उपरान्त पूरे दिन और पूरी रात रोहिणी नक्षत्र की स्थिति है। षष्ठी सोमवार को रोहिणी नक्षत्र की अवधि सूर्योदय से ४ घंटा ४४ मिनट तक की ही है। ऐसी स्थिति में चैत्र शुक्ल ५ संवत् १९५५ वि. रविवार तदनुसार दिनांक २७ मार्च १८९८ ईस्वी सन को राष्टगुरु श्री स्वामीजी महाराज का जन्म दिवस मानना अधिक उपयुक्त है।

प्रणतिपूर्वक

***

नारीसम्मान के पक्षधर

– पंडित बाबूलाल गोस्वामी
सम्वाददाता, नवभारत टाइम्स, दिल्ली

दतिया में राजकीय संस्कृत पाठशाला पहले बनखण्डी के पार्श्व में थी। मैं उसमें अध्ययन करता था। अपने शिक्षा गुरु पं. वनमाली शास्त्री के आदेश से श्री स्वामीजी महाराज के पास वेद-पाठ सीखने जाता था। शुक्ल यजुर्वेद (माध्यन्दिन) संहिता का ३२वां अध्याय चल रहा था। उस बीच दतिया रियासत में हशमतअली दीवान पद पर नियुक्त हुए थे। हशमत अली बड़े घमंडी थे, और सनकी भी। रियासत के उच्च वर्गीय जागीरदार एवं अन्य सभ्रान्त नागरिक दीवान के उपेक्षा भरे अशिष्ट व्यवहार से घोर असन्तुष्ट हो गये थे, परन्तु बुन्देलखण्ड के पोलिटिकल एजेन्ट की असहमति होते हुए दतिया के महाराजा गोविन्दसिंह ने दीवान की नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की थी। जागीरदारों और महाराजा के इर्द-गिर्द रहने वाले कर्ता-कामदारों ने महाराजा से दीवान को हटाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया, परन्तु सावधि नियुक्ति के कारण महाराजा कुछ न कर सके। इससे दीवान हशमत अली का दिमाग आसमान तक बढ़ गया था।

एक दिन घोड़े पर सवार होकर दीवान साहब महारानी की ड्योढ़ी पर पहुँचे। दोपहर के समय अचानक दीवान के आने से महारानी नन्द कुंवरवा को आश्चर्य हुआ तथा कारण जानने की इच्छा से पुछवाया। दीवान हशमत अली न मालूम किस जुंग में कह बैठा कि "मैं हर तरह की खिदमत के लिये तैयार होकर हाजिर हुआ हूँ"। दीवान के असभ्यता पूर्ण उत्तर से महारानी का क्रोध सीमा लांघ गया। तुरन्त महाराजा को खबर दे दी गयी। दीवान को पदच्युत करने की कारवाई शुरू हुई किन्तु, सावधि नियुक्ति के कारण पोलिटिकल विभाग ने दीवान को हटाने में सहमति नहीं दी।

राजमहल में जिस समय १९४१ ई. में दीवान हटाओ अभियान असफल हुआ था उस समय काशी के ज्योतिषी पं. जगन्नाथ जी दतिया में थे। महारानी नन्द कुंवरवा ने ज्योतिषी जी से 'दीवान हटेगा या नहीं' प्रश्न पूछा था। उत्तर था – 'दैवीशक्ति ही इस समय हटा सकेगी? तदनन्तर महारानी ने कर्नल रघुनाथ सिंह के द्वारा श्री स्वामी जी महाराज से दीवान द्वारा किये गये अभद्र व्यवहार का समाचार भेजकर प्रार्थना की कि 'दीवान को पदच्युत करने का उपाय करने की कृपा करें। पहले तो

श्री स्वामी जी महाराज ने यह कह कर टाल दिया; – 'हमें इन राजकीय कार्यों से क्या प्रयोजन है? परन्तु महारानी के प्रति दीवान द्वारा कहे शब्द श्री महाराज के समक्ष दुहराये गये तो उन्हें बुरा लगा। महारानी का अपमान करने वाला दतिया में नहीं रहेगा' – श्री स्वामीजी महाराज के श्रीमुख से निकला। फिर कुछ क्षण शान्त रह कर बोले।

"राज्याचार्य और राज पुरोहित को भेज दो, सब ठीक हो जायगा?

सन्ध्या समय से कुछ पूर्व श्री राम दुबे राज्याचार्य तथा श्री नन्दू पुरोहित जो महाराजा के वरिष्ठ पुरोहित थे श्री स्वामी जी महाराज के समक्ष उपस्थित हुए। कुछ विचार-विमर्श के पश्चात् अनुष्ठान करने का निश्चय हुआ। श्री राम दुबे राज्याचार्य और श्री नन्दू पुरोहित तथा मुझे अनुष्ठान में सम्मिलित कर नियमपूर्वक वर्ण किया गया। तीनों को अलग-अलग मंत्र बताये गये। मुझे श्रीगणेश मंत्र का जप बताया गया था। रात्रि में १० बजे से अनुष्ठान चलता था। करीब ३-३।। बजे रात्रि में विश्राम करते थे। पाँच रात्रियों में सवालाख मंत्र का जप होना था जो हुआ। श्री स्वामीजी महाराज स्वयं माला लेकर बैठते थे। एक रात्रि में जप पूरा कर हम लोग टीन के सायावान के नीचे चटाइयाँ बिछाकर लेटे गये। सामने मौलिश्री का घना वृक्ष था। थोडी देर में वह वृक्ष बड़े वेग से हिलने लगा जैसे तूफान आया हो। लेकिन वहाँ न आँधी न तूफान था फिर भी, मौलिश्री का वृक्ष लडखड़ाते देख हमलोग आश्चर्य से देखने लगे कुछ भय भी लगा। स्थिति समझकर श्री स्वामीजी महाराज उठकर खड़े हुए बोले कुछ नहीं है, चुपचाप सो जाओ। हम लोग लेट गये। दूसरे दिन मैंने श्री महाराज से विनयपूर्वक वृक्ष हिलने का कारण पूछा तब उन्होंने बताया था कि एक 'जिन्न' है जो हमारे पास आता है। अनुष्ठान को देखकर वह आया होगा, चला गया होगा। अब दीवान हशमत अली बरखास्त कर दिया जायगा। मैंने कहा कब तक। श्री महाराज बोले कल दोपहर तक। और ठीक दूसरे दिन दीवान हशमत अली को बरखास्त करने का हुक्म दे दिया गया था।

***

जन्म-दिवस विचार

— *पं. रामकृष्ण शर्मा वैद्यशास्त्री*
भाण्डेर (ग्वालियर)

श्री पूज्यपाद स्वामीजी के दर्शनार्थ पीताम्बरा पीठ पर सर्वप्रथम १९६२ ई. में गया उस समय वहां पर एक वृहत यज्ञ का आयोजन था।

मैं कई बार तान्त्रिक मंत्र दीक्षा के लिये पूज्यपाद से निवेदन करता रहा किन्तु वह यह कहकर टालते रहे कि बूढे हो गये हो अब मंत्र लेकर क्या करोगे।

सन् १९६८ में एक गम्भीरतापूर्वक स्वामीजी से दीक्षा देने के लिये कहा उन्होंने वही उत्तर दिया तो मैंने दृढ़तापूर्वक कहा कि मैंने आपको अपना गुरु मान लिया है और आपका चित्र अपने यहाँ पूजा भवन में रखा है वहीं पूजा कर लिया करूंगा। उस समय पाँच मिनट तक नेत्र बन्द कर विचार कर बोले कि आपको दो दिन बाद महाशिवरात्रि के दिन प्रात: आठ बजे दीक्षा दूंगा और उस महान शिवरात्रि के दिन में पहुँचा और प्रार्थना की कि महाराज मैं वैष्णाव हूँ मुझे ऐसा मन्त्रोपदेश दें जो विपरीत न हो पूज्य स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ''सीताराम के नाम में तारा रही समाय'' तथा तुरन्त ही भगवती माँ पीताम्बरा के मन्दिर में मुझे मन्त्रशास्त्र में दीक्षित किया।

तत्पश्चात मुझे मंत्रशास्त्र की कई पुस्तकों का अध्ययन कराया और एवं तान्त्रिक पंचांग बनाना सिखाया।

पूज्यपाद श्री स्वामीजी महाराज जब अस्वस्थ थे तो वह श्रीमंत राजमाता ग्वालियर एवं अन्य कई लोगों के साथ आयुर्वेद संस्थान दिल्ली में चौथी मंजिल क्र. नं. ४०१ में ठहरे हुये थे। ३ मार्च सन् १९७९ ई. को आयुर्वेद संस्थान में जाकर पूज्य स्वामीजी का दर्शन किया वह देखकर प्रसन्न हुये।

सन् १९७७ अप्रैल की बात है श्री शीतलादेवी सिद्ध पीठ, तहसील – मोंठ, जिला – झाँसी का प्रसिद्ध एवं वृहत मेला वैशाख कृष्ण प्रतिपदा को प्रतिवर्ष भरता है। मेले में कुछ असामाजिक तत्त्वों ने उपद्रव किया और गम्भीर रूप बन गया उस समय पुलिस ने गोली चलाई और परिणामस्वरूप दो आदमी मारे गये। विरोधियों ने मेरे विरुद्ध भी असत्य षडयन्त्र रचा जब कि मुझ से इस घटना से कोई सम्बन्ध नहीं था।

पूज्यपाद स्वामी जी के पास अपने अभिन्न सहयोगी श्रीमान् पं. कृष्णानन्द जी बुधोलिया, एडवोकेट के साथ पहुँचा और मेला का विवरण सुनाते हुये प्रार्थना की कि मुझे अकारण विरोधी लोग चक्कर में डालना चाहते है। स्वामीजी ने नेत्र बन्द कर कुछ समय बाद कहा कि जाओ माई से प्रार्थना करो सब भला होगा और ऐसा ही हुआ।

मैं स्वामीजी की अंत्येष्टि के समय भी पीताम्बरा पीठ दतिया पहुँचा था एवं गीता पाठ आदि में भाग लिया था।

२ अक्टुबर सन् १९७९ ई. श्री गांधी जयन्ति के दिन ठाकुर श्री बदनसिंहजी रायभा, आगरा (उ.प्र.) श्रीमान् पं. कृष्णानन्दजी बुधोलिया एम्.ए., वेदान्त शास्त्री के साथ भाण्डेर में मेरे पास आये और कहा कि स्वामीजी ने एक व्यक्तिगत सेवक ब्रह्मचारी विनय कुमार शर्मा को बताया है कि गुरुदेव भाण्डेर, ग्वालियर (म.प्र.) के निवासी श्री रामकृष्ण शर्मा को अपना सहपाठी बताते रहे इसलिये हम लोग आपसे जानकारी लेने आये है।

मुझे सहसा स्मरण आया और मैंने स्वामीजी के विषय में बताया कि काशी विद्यापीठ में स्वामीजी जब सहपाठी थे तो दण्ड धारण किये हुये थे जहाँ तक स्मरण है उनका जन्म १८९८ ई. तदनुसार चैत्र शुक्ल ५ संवत् १९५५ जन्म तिथि का पता चला है।

स्वामीजी मेधावी छात्र, कुशल तैराक तथा प्रसिद्ध पहलवान थे एवं व्याकरण का अध्ययन करते थे। उस समय काशी विद्यापीठ के पास में ही गिरनार स्वामी श्री तारानन्दजी का आश्रम था और स्वामीजी ने स्वामी तारानन्द जी से ही संन्यास की दीक्षा ली हुई थी इनका प्रथम नाम महावीर प्रसाद था जहाँ तक मुझे स्मरण है इनका जन्म ग्राम रामपर था वह श्री हनुमान उपासक थे।

संन्यास लेने के साथ पूज्य स्वामी जी का नाम श्री देवानन्दजी हुआ, अधिकांश सहपाठी इसी नाम से परिचित थे। मुझे अधिकांश सहपाठी उस समय पर परशुराम कहकर पुकारते थे। स्वामी जी से दतिया पीताम्बरा पीठ में भेट होने पर प्रणाम करते ही उन्होंने मुझे तत्काल ही पहचान लिया और उन्होंने मुझे परशुराम कहकर सम्बोधित किया एवं पास में ही एक आसन पर बैठने को कहा। मेरी बुद्धि में पुरानी याद की जागृति न हुई मैं उन्हें न पहचान सका। श्री पूज्यपाद स्वामीजी ने हर बार पहिचानने के लिये मार्मिक शब्द कहे किन्तु मैं समझ नहीं सका।

एक समय स्वामीजी सभी सहपाठियों को रामनगर रामलीला दिखाने ले गये वहाँ पर महाराज काशी नरेश के महल के नाम पार्श्व में हनुमानजी का मन्दिर है

उस मूर्ति में रोंम रोंम दिखाई देते है। यह विचित्र मूर्ति है बाल्यावस्था में गुरुदेव इन्हीं की उपासना करते थे।

पूज्य स्वामीजी काशी विद्यापीठ में विद्यार्थी जीवन में संन्यास लिये हुये थे तथा वह सरयूपारी ब्राह्मण थे। इनके एक बड़े भाई थे तथा माताजी भी थी, माताजी स्वामीजी से मिलने आया करती थी।

पूज्यपाद ने ब्रह्मलीन होने के पहले कई बार मुझ से कहा कि अब हमारा कार्य पूरा हो चुका है अब हमें अधिक ठहरने की आवश्यकता नहीं है। कोई भी व्यक्ति पूज्य स्वामीजी से मिलने आता तो यही समझता था कि स्वामीजी की मुझ पर कृपा है। स्वामी का ध्येय हर समय आध्यात्मिक चिन्तन एवं परोपकार में लीन रहता था। क्यों न हो मानस में कहा है –

"संत विटप सरिता गिर धरिणी,
पर हित लागि इन्हिन की करनि।।"

अन्त में राष्ट्र गुरु श्री पूज्यपाद गुरुदेव के श्रीचरणों में अकिंचन दास श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता है।

"नारायण समारम्भां शंकराचार्य मध्यमाम्।
अष्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम।।"

***

श्री पीताम्बरा पीठ

ह्लीं

दतिया (म. प्र.)

डिझाईन : राकेश जोशी मो. : ९८२३१५३२२१ मुद्रक : शिवशक्ति प्रेस, प्रा. लि., ग्रेट नाग रोड, नागपुर - ९ फोन : २७४२२६६